श्री
यशपाल
अभिनन्दन ग्रंथ

१५.६
६४

पंजाबी विभाग
पैप्सु
पटियाला

श्री

यशपाल

अभिनन्दन ग्रंथ

श्री यशपाल
अभिनन्दन
ग्रन्थ

यशपाल

श्री यशपाल अभिनन्दन ग्रन्थ

भूमिका

स्वतंत्रता जहाँ हमारे देश के लिये चौमुखी देन बन कर प्रकट हुई, देश को हर पहलू से उन्नत होने के अवसर प्राप्त हुए, वहाँ हमारी भाषाओं के विकास की भी सभी अवरुद्ध राहें खुल गईं और उनके साहित्य-भण्डार को भरपूर बनाने के नये साधन भी मुहय्या हो गए। साहित्य-भण्डार के भरने से ही आध्यात्मिक एवं मानसिक शिखरों को छुआ जा सकता है और देश तथा जाति के जीवन-प्रवाह को सरस, सबल और शाश्वत गति दी जा सकती है। साहित्य जीवन का स्रोत है और साहित्यकार उस स्रोत के प्रवाहक होने के नाते देश, जाति, समाज और राष्ट्र में सरसता तथा समरसता के संचारक और स्फूर्तिदाता हैं। इनका जितना भी सम्मान किया जा सके, थोड़ा है।

पैप्सु सरकार ने इस राज्य की स्थापना के साथ ही प्रादेशिक भाषाओं—हिन्दी और पंजाबी—को उन्नत करने के यत्न आरम्भ किये और साहित्य-भण्डार को भरने के आदर्श की पूर्ति के लिये साहित्यकारों को सम्मानित करना विभाग की मूल-योजना में शामिल किया। जिसके अनुसार गत पाँच-छः वर्षों में उच्च कोटि के साहित्यकारों को मानपत्र और सिरोपे भेंट कर सम्मानित किया जाता रहा है। इस वर्ष अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करना उसी परम्परा की एक कड़ी है।

श्री यशपाल जी के सम्बन्ध में अधिक परिचय की आवश्यकता नहीं। आपका बहुमुखी विशाल साहित्य आपकी प्रतिभा एवं विद्वत्ता का जीता-जागता प्रमाण है। हिन्दीसाहित्य के क्षेत्र में इस समय स्थान अप्रतिम है। प्रगतिशील लेखकों के तो आप सिरमौर माने जाते हैं। आपकी अनेक रचनाओं के अनुवाद भारत की अनेक प्रांतीय भाषाओं के अतिरिक्त रूसी, चैक तथा फ्रेंच आदि विदेशी भाषाओं में भी हो चुके हैं और विश्व-प्रसिद्ध आलोचकों ने मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा की है। हिन्दी का यह सौभाग्य है कि इस समय उसे श्री यशपाल के रूप में एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का महान साहित्यकार प्राप्त है। आरम्भिक जीवन में प्रसिद्ध क्रांतिकारी देशभक्त तथा आजकल के महान् प्रगतिशील लेखक को अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा सम्मानित कर पैप्सु सरकार ने उचित दिशा में ही अपेक्षित पग उठाया है।

हम ने अपनी ओर से पूर्ण यत्न किया है कि 'ग्रन्थ' अपने महत्त्व के अनुरूप तैयार हो सके और प्रस्तुत साहित्यकार के साहित्यक जीवन का ऐसा उज्ज्वल दर्पण बन सके जिस में

पाठक उनकी साहित्यिक गरिमा के दर्शन पा सकें। समय की तंगी हमारे प्रयत्नों में एक भारी रुकावट बनी रही है, किन्तु फिर भी हमें प्रसन्नता है कि हम आज इस अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में भारत के इस महान् साहित्यकार के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि एवं स्नेहाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता का सेहरा अधिकतर उन प्रतिष्ठित साहित्य-मनीषियों साहित्य-कला-मर्मज्ञों, साहित्य रसिकों तथा लेखकों के सिर है जिन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके कम समय होने पर भी इसके लिये विशेष रूप से लिखना स्वीकार किया। उन सब सज्जनों के हम ऋणी हैं।

अंत में मैं इस ग्रन्थ की सम्पादन-समिति के सभी सदस्यों, विभाग के अन्य कर्मचारियों तथा प्रेस वालों का धन्यवाद करना अपना कर्तव्य समझता हूं जिनके अनथक परिश्रम और लगन के फलस्वरूप यह सफलता प्राप्त हो सकी है।

आशा है विद्वत्समाज हमारे इस प्रयत्न का स्वागत करेगा।

पंजाबी विभाग

पटियाला

२८—३—१९५९

ਰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਗਿੱਲ

डायरेक्टर

परिचय

महाराज यादवेन्द्र सिंह, राजप्रमुख, पैप्सु
श्री बृष भान, मुख्य मन्त्री, पैप्सु
श्री राम सरन चन्द मित्तल, स्पीकर, पैप्सु विधान सभा
सरदार हरचरन सिंह, माल मन्त्री, पैप्सु
राजा सुरेन्द्र सिंह नालागढ़, वित्त तथा विकास मन्त्री, पैप्सु
जनरल शिवदेव सिंह, शिक्षा मन्त्री, पैप्सु
सरदार प्रेम सिंह प्रेम, उपमंत्री (गृह), पैप्सु
श्री साधु राम, उपमंत्री (गृह), पैप्सु
मेजर अमीर सिंह चौधरी, उपमंत्री पी० डब्ल्यू० डी०, पैप्सु
श्रीमती चन्द्रावती चौधरी, पार्लियामैंटेरी सेक्रेटरी मुख्य मन्त्री, पैप्सु
श्री बी० पट्टाभी सीतारमय्या, राज्यपाल, मध्य प्रदेश
श्री रविशंकर शुक्ल, मुख्य मन्त्री, मध्य प्रदेश
सरदार प्रताप सिंह कैरों, मुख्य मन्त्री, पंजाब
बख्शी गुलाम मुहम्मद, प्रधान मंत्री, जम्मू तथा काश्मीर
श्री तख्तमल जैन, मुख्य मंत्री, मध्य भारत
श्री मोहन लाल सुखाडिया, मुख्य मंत्री, राजस्थान
सरदार गुरमुख निहाल सिंह, मुख्य मंत्री, दिल्ली
श्री केशव देव मालवीय, मिनिस्टर आफ नैच्यूरल रिसोर्सिज, भारत सरकार
आचार्य जुगल किशोर, श्रम तथा समाज कल्याण, मंत्री, उत्तर प्रदेश
श्री बलिराम भगत, उप वित्त मंत्री, भारत सरकार
श्री बी० जी० खेर, अध्यक्ष, आफिशल लैंगुएज कमीशन,
डा० सुनीति कुमार चटर्जी, अध्यक्ष, बंगाल विधान परिषद्
श्री बी० एन० झा, वायस चांसलर इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री जस्टिस के० टी० मंगलमूर्ति, वायस चांसलर नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर
श्री जी० एस० महाजनी, वायस चांसलर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
श्री यू० एन० ढेबर, प्रधान, आल इंडिया कांग्रेस कमेटी
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (हिन्दी प्रचार की प्रमुख केन्द्रीय संस्था)

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
(हिन्दी साहित्य तथा भाषा सम्बधी खोज की केन्द्रीय संस्था)
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा (हिन्दी प्रचार की एक प्रमुख संस्था)
श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति, आचार्य, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन (हिन्दी प्रचार की प्रादेशिक संस्था)
बंगीय हिन्दी परिषद् (हिन्दी प्रचार की प्रादेशिक संस्था)
पंजाब प्रांतीय साहित्य सम्मेलन (हिन्दी प्रचार की प्रादेशिक संस्था)
पैप्सु हिन्दी साहित्यकार परिषद् (पैप्सु के हिन्दी साहित्यिकों की प्रतिनिधि संस्था)
भारतीय साहित्य संगम, (दिल्ली विश्वविद्यालय की साहित्यिक संस्था)
श्री देवदास गांधी, मैनेजिंग डाइरेक्टर हिन्दुस्तान टाइम्स दिल्ली
,, जगत नारायण, भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री, पंजाब
,, आचार्य विश्वबन्धु, साधु आश्रम, होशियारपुर
,, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी एस. एल. सी., नज़र बाग़, लखनऊ।
,, जगदीश चन्द्र माथुर, डाइरेक्टर जनरल, आल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली
महापंडित राहुल सांकृत्यायन, हैपीवेली, मसूरी
श्री गुलाब राय एम० ए०, दिल्ली दरवाजा, आगरा
डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, काशी विश्वविद्यालय, काशी
डा० धीरेन्द्र वर्मा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर
डा० श्री कुमार बनर्जी एम० एल० ए०, कलकत्ता
डा० नगेन्द्र, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डा० इन्द्रनाथ मदान, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, जालंधर
डा० सत्येन्द्र, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
श्री रामपूजन तिवारी, अध्यक्ष हिन्दी भवन, शांति निकेतन
प्रो० विनय मोहन शर्मा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर
प्रो० एस० शंकर राजू नायडू, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास
प्रो० ए० चन्द्रहासन, महाराजा कालेज, एर्नाकुलम
प्रो० गुलाम रसूल, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, अन्नामालाई विश्वविद्यालय, अन्नामालाई नगर
प्रो० पृथ्वी नाथ पुष्प, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, जम्मू तथा काश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर
प्रो० उदय सिंह भटनागर अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महाराजा सय्या जी विश्वविद्यालय, बड़ौदा
श्री रामनिरंजन पांडेय, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, ओस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद
श्री मिलखी राम रत्न, महामन्त्री पैप्सु प्रदेश कांग्रेस कमेटी, पटियाला
श्री उदय शंकर भट्ट, आल इंडिया रेडियो, नागपुर
श्री चिरंजीत, आल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली
श्री सुरेन्द्र कुमार दीक्षित, लखनऊ

श्री भदंत आनंद कौसल्यायन, धर्मोदय विहार, कालिम्पोंग, पश्चिमी बंगाल
,, शिव वर्मा, २२ कैसर बाग़, लखनऊ
,, मन्मथनाथ गुप्त, सम्पादक पब्लीकेशंस डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली
,, उपेन्द्र नाथ अश्क, ५ खुसरो बाग़ रोड, अलाहाबाद
,, वैद्य गुरुदत्त, कनाट प्लेस, नई दिल्ली
,, हंसराज रहबर, उर्दू बाज़ार, दिल्ली
,, प्रभाकर माचवे, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
,, देसराज डोगरा, सेप्ट बिल्डिंग, बम्बई
,, प्रकाशचन्द्र गुप्त, बनारस
प्रो० दिवाकर, लखनऊ
श्री विष्णु प्रभाकर, आल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली
सन्त इन्द्र सिंह चक्रवर्ती, पटियाला
श्रीमती प्रकाशवती पाल, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ
श्री महेन्द्र, पंजाबी विभाग, पटियाला
डा० पद्म सिंह शर्मा कमलेश, गोकुलपुरा, आगरा
श्रीमती दुर्गा देवी बोहरा, लखनऊ
श्री सुदर्शन, सम्पादक हिन्दी मिलाप, जालंधर
श्री सुरेशचन्द्र तिवाड़ी, बनारस
प्रो० दुर्गा दत्त मेनन, जालन्धर
श्री सत सोनी, सहायक सम्पादक 'वीर अर्जुन', दिल्ली
,, कृष्ण कुमार, महामंत्री पेप्सु हिन्दी साहित्यकार परिषद्, पटियाला
,, ओंप्रकाश आनंद, पंजाबी विभाग, पटियाला
प्रो० ज्ञान चन्द्र शर्मा, महेन्द्र कालेज, पटियाला
श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित, लखनऊ
प्रो० रत्नचन्द्र शर्मा, करनाल
श्री बालमुकुंद मिश्र, दिल्ली
श्रीमती शची रानी गुर्टू, ७/२३ दरिया गंज, दिल्ली
डा० सरन दास भनोत, सम्पादक पं० यू० पब्लीकेशंस ब्यूरो, जालन्धर
श्री विश्वम्भर मानव, आल इंडिया रेडियो, लखनऊ
डा० दशरथ ओझा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, हिन्दू कालेज, दिल्ली
डा० वेदपाल खन्ना विमल, बी० एम० कालेज, शिमला
श्री रमेशचन्द्र प्रेम, साहित्य सम्पादक नवभारत टाइम्स, दिल्ली
प्रो० सीता राम बाहरी, डी० एम० कालेज, मोगा
,, अमर नाथ शर्मा कौशल, पंजाबी विभाग, पटियाला
,, त्रिलोकी नाथ रंजन, पंजाबी विभाग, पटियाला
,, शांतिप्रिय द्विवेदी, बनारस

प्रो० वासुदेव, गया कालेज, गया
श्री शिवदान सिंह चौहान, रोहतक
श्री अनंत, अलाहाबाद
श्री भीमसेन विद्यालंकार, महामन्त्री पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अम्बाला छावनी
प्रो० शिवनाथ, शांति निकेतन
प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, दिल्ली
श्री सत्यदेव शर्मा, आल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली
,, देवेन्द्रसिंह विद्यार्थी, विद्यार्थी भवन, नाभा
,, सरदार जीत सिंह सीतल, पंजाबी विभाग पटियाला
,, लेल कुज़नेत्सेव, लेनिन ग्राद (रूस)
,, ज कुवेकोवा, लेनिन ग्राद (रूस)

चित्रकार: त्रिलोक सिंह
शुभ कामनाएँ

I am glad that my Government is going to honour Shri Yashpal by presenting him an Abhinandan Granth in appreciation of his talent as one of India's eminent Hindi novelist and short-story writer.

All good luck to him, and best wishes for the future.

YADAVENDRA SINGH
His Highness the Rajpramukh,
PEPSU.

Motibagh Palace,
Patiala

I am glad to know that an Abhinandan Granth is being presented to Shri Yash Paul by the Panjabi Department of the PEPSU Government at their ensuing Annual Darbar of Languages.

Shri Yash Paul is an eminent scholar in Hindi and enjoys unique reputation as novelist and short-story writer. His valuable contributions to the Hindi language have earned an immortal name for him. I have had chances to study his literature and I can say without hesitation that he richly deserves the honour which is being conferred upon him in the shape of an Abhinandan Granth.

On this occasion I congratulate Shri Yash Paul and wish him the best of luck and longevity so that he may continue to serve the cause of Hindi—our National Language—in free India with great success.

BRISH BHAN
Chief Minister,
PEPSU.

Patiala

IT gives me great pleasure to know that the Government of PEPSU is awarding robe of honour and Abhinandan Granth to Shri Yash Pal in recognition of his services to the cause of Hindi language.

Hindi, though the national language of India, has yet to make a headway in this State. It is therefore a matter of satisfaction that the Government in hououring an acknowledged scholar of Hindi has done a national duty.

I congratulate the learned scholar for the distinction conferred upon him which he so richly deserves.

RAM SARAN CHAND MITAL
Speaker,
PEPSU Legislative Assembly.

Patiala

I am extremely pleased to learn that PEPSU Government is presenting an Abhinandan Granth at the forth-coming Annual Darbar being held at Patiala to Shri Yashpal for his contributions towards the Hindi language. I greatly appreciate the initiative taken by the Panjabi Department in honouring this great scholar. Indeed he richly deserves this honour.

Recognition of the services of men like Shri Yashpal would surely add towards the progress of Hindi language and enrich the literature.

I pray that he may live long to serve the literature by his scholarly contributions.

HARCHARAN SINGH
Revenue Minister,
PEPSU.

Patiala

IT has given me great pleasure to know that Shri Yashpal, famous novelist and short story writer, is being honoured by the presentation of an Abhinandan Granth.

Shri Yashpal's contributions to the Hindi literature are worthy of the highest praise, and I have great pleasure in associating myself with his admirers.

Patiala

SURENDRA SINGH NALAGARH
Finance and Development Minister,
PEPSU.

I have great pleasure in associating myself with numerous admirers of Shri Yash Paul who, in recognition of his services rendered to the Hindi literature, are presenting him an Abhinandan Granth.

Shri Yash Paul by his immortal writings has made a name for himself in the field of Hindi novel and short story. His is a popular name among lovers of Hindi.

I wish him a long life and unimpaired health so that he may continue to serve the cause of Hindi.

Patiala

SHIVDEV SINGH
Education Minister,
PEPSU.

IT gives me a great pleasure to state that Shri Yashpal is being honoured with the presentation of an Abhinandan Granth by the PEPSU Government in recognition of his great services to the cause of Hindi language and literature. He is one of the foremost novelists and short story writers who has earned a wide fame and admiration in the country as well as abroad. He rightly deserves the honour.

I wish him long life and prosperity and pray that he may continue serving the National Language with renewed vigour and still greater zeal.

Patiala

PREM SINGH 'PREM'
Deputy Minister (Home),
PEPSU.

I am glad to know that the Panjabi Department has decided to present an Abhinandan Granth to Shri Yash Pal. As is well known to all the students of Hindi literature Shri Yash Pal is a novelist and short-story writer of repute. I hope the writer will continue to enrich Hindi literature by his valuable contributions.

SADHU RAM
Deputy Minister (Home),
PEPSU.

Patiala

Shri Yashpal is an eminent scholar of Hindi and an honour done to such distinguished sons of the country is a great source of inspiration for the generations to come.

May he live long to serve the Nation through his meritorious scholarly contributions.

AMIR SINGH CHAUDHRI
Deputy Ministry P. W. D.,
PEPSU.

Patiala

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि पैप्सु सरकार प्रमुख प्रगतिशील साहित्यकार श्री यशपाल को सम्मानित कर रही है।

यशपाल ऐसे साहित्यकारों में से हैं, जो साहित्य के माध्यम से जीवन में नई स्फूर्ति और चेतना का संचार चाहते हैं और इस ध्येय की पूर्ति के लिए वर्षों से जागृति और नवनिर्माण का संदेश जगत तक पहुँचाते रहे हैं।

यशपाल की बहुमुखी प्रतिभा ने निबंधों, कहानियों, उपन्यासों और नाटकों के भव्य-भवन खड़े किए हैं। यशपाल जी के समूचे साहित्य में अपनी भावनाओं और विचारों के प्रति उनकी सचाई स्पष्टतया लक्षित होती है। सम्भवतः यही उनकी रचनाओं का सबसे बड़ा गुण है।

इस प्रदेश की जनता में राष्ट्रभाषा के सम्मान को सुदृढ़ करने के लिए हिन्दी सहित्यकारों का सम्मान होना वांछनीय है। अतः यशपाल के सम्मान-समारोह के आयोजन के लिए मैं पैप्सु सरकार को बधाई देती हूं और आशा करती हूं कि भविष्य में भी सरकारी स्तर पर ऐसे समारोहों का आयोजन किया जाता रहेगा।

चन्द्रावती चौधरी
पार्लियामैंटेरी सेक्रेटरी

पटियाला

When the PEPSU Government, in pursuance of their policy of honouring Hindi writers of eminence and all-India fame, have decided to present an Abhinandan Granth to Shri Yashpal, it must be a unique honour conferred upon the writer concerned.

I congratulate the Government upon its wider policy and the scheme it has adopted in order to encourage writers and their writings.

I wish you success.

B. PATTABHI SITARAMAYYA
Governor,
MADHYA PRADESH.

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पटियाला और पूर्वी पंजाब संघ ने अपने राज्य के युग प्रवर्तक साहित्यकार श्री यशपाल के अभिनन्दन का आयोजन किया है।

राष्ट्रभाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि में उपन्यासकार और कहानीकार यशपाल का योगदान गौरवपूर्ण है। मेरा विश्वास है कि उनकी कई कहानियां विश्व के श्रेष्ठ कहानीकारों की रचनाओं के समकक्ष रखी जा सकती हैं।

अपने प्रान्त के साहित्य मनीषी का अभिनन्दन कर पटियाला तथा पूर्वी पंजाब संघ स्वयं गौरवान्वित हुआ है। मैं इस आयोजन की सराहना करता हूँ।

श्री यशपाल को साहित्य सेवा में अधिकाधिक श्रेय प्राप्त हो, यही मेरी कामना है।

रविशंकर शुक्ल
मुख्य मन्त्री,
मध्य प्रदेश

नागपुर

हर्ष का विषय है कि पैप्सु सरकार हिन्दो के प्रमुख उपन्यासकार और कहानी लेखक श्री यशपाल के सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर रही है।

श्री यशपाल ने अपनी लेखनी द्वारा थोड़े से समय में ही विश्व साहित्य में अपना स्थान बना लिया है। आपने अपनी रचनाओं द्वारा एक नया संदेश दिया है और उपन्यास, कहानी, नाटक एवं निबन्धों द्वारा हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की है। जीवन का यथार्थ रूप चित्रित करने में श्री यशपाल को अभूतपूर्व सफलता मिली है। आपके पात्र जीते-जागते और चलते-फिरते व्यक्ति हैं, उनमें सजीवता भी है और सरसता भी। एक बार पाठक पात्रों के सुख-दुख के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है; इसी में कलाकार की कुशलता निहित है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी। श्री यशपाल द्वारा श्रेष्ठ साहित्य का सृजन होता रहेगा और पंजाबी होने के नाते उन्होंने जो ख्याति प्राप्त की है उस पर भारत तथा विशेषतः हमें गर्व है।

प्रताप सिंह
मुख्य मंत्री
पंजाब

चंडीगढ़

I am glad to learn that the PEPSU Government is fittingly honouring the well-known Hindi writer Shri Yashpal by presentation of an Abhinandan Granth.

Shri Yashpal in his writings has been depicting the aspirations of the common people for freedom and a richer life adorned by honest toil and growing material and cultural standards.

It gives me much pleasure to convey my greetings and good wishes to this popular writer of our country.

G. M. BAKHSHI
Prime Minister,
JAMMU AND KASHMIR.

Jammu

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि पैप्सु राज्य द्वारा हिन्दी के प्रमुख साहित्यकार श्री यशपाल जी को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। राष्ट्र भाषा हिन्दी के लेखकों को इस प्रकार सम्मानित करने का राज्य सरकार का यह प्रयत्न सराहनीय है और इसके लिये मैं अपनी शुभ कामनायें भेजता हूँ।

तख्तमल जैन
मुख्य मंत्री,
मध्य-भारत

ग्वालियार

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि पैप्सू सरकार ने हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री यशपाल के सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया है।

श्री यशपाल हिन्दी के प्रमुख श्रेणी के कहानीकार और उपन्यासकारों में से हैं। प्राणवान शैली परिमार्जित भाषा और मानव सम्वेदना से अनुप्राणित विचारधारा उनकी रचनाओं की विशेषताएँ हैं। किसी विशेष समस्या के प्रति व्यक्त किये हुए दृष्टिकोण से सैद्धान्तिक मत-भेद रखते हुए भी उनका जीवनोन्मुख जीवन दर्शन और तीव्रतम मानवीय अनुभूति पाठक के मासस्थल पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। हिन्दी साहित्य को श्री यशपाल से भविष्य में बहुत आशाएँ हैं।

मोहन लाल सुखाड़िया
मुख्य मंत्री,
राजस्थान

जयपुर

I congratulate the PEPSU Government for honouring Shri Yashpal, the Hindi novelist and short story writer. The presentation of the Abhinandan Granth is a befitting recognition of the contributions made by Shri Yashpal to Hindi literature.

GURMUKH NIHAL SINGH
Chief Minister,
DELHI.

Delhi

पैप्सु सरकार द्वारा यशपाल जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किए जाने का समाचार पाकर मैं प्रसन्न हूँ। यशपाल जी ने उच्चकोटि के उपन्यास एवं कहानियों द्वारा हिन्दी जगत में जो अमूल्य सहयोग दिया है वह सर्वथा सराहनीय है।

केशव देव मालवीय
मनिस्टर ऑफ नैच्यूरल रिसोसिज़,
भारत सरकार

नई दिल्ली

I am very happy to know that the PEPSU Government are intending to present an Abhinandan Granth to Shri Yashpal as a mark of their appreciation for the services rendered by him to the cause of Hindi through his novels and essays.

Shri Yashpal, since he was a student in the National College, has been interested in writing short stories which were very much appreciated even then. Besides his services in other political fields, he has continued to take considerable interest in writing interesting short stories which are very much liked by the public.

I am sure, this Abhinandan Granth will be welcomed not only as a token of appreciation of Shri Yashpal but also of the quality of his work.

JUGAL KISHORE
Labour and Social Welfare Minister,
UTTAR PRADESH.

Lucknow

हिन्दी राष्ट्र की एकता की नींव है, अतः जितना बढ़ावा इसे दिया जाय थोड़ा है। इसी हेतु पैप्सु राज्य ने विशिष्ट हिन्दी-सेवियों को मान प्रदान करने का जो निर्णय किया है वह सर्वथा सराहनीय है। ऐसे मान के प्राप्तकर्ता श्री यशपाल को मेरी भी हार्दिक बधाई।

बलिराम भगत
उप-वित्त मन्त्री,
भारत सरकार

नई दिली

I am very happy to know that the PEPSU Government have decided to honour Shri Yash Paul by presenting him an Abhinandan Granth at the Annual Durbar to be held in the last week of March 1956.

I send my best wishes for the success of the function.

B. G. KHER
Chairman,
Official Language Commission.

Bombay

I hold very high estimation of Sri Yash Pal as a writer of Hindi, and I had occasion to meet him several times. But unfortunately I did not have the privilege of getting to know him as intimately as I would otherwise have liked. I am very happy to hear that the Panjabi Directorate of Patiala and Eastern Panjab States Union are thinking of presenting a Volume of Felicitations to Shri Yashpal at the ensuing Annual Darbar proposed to be held in the last week of March 1956.

I wish I could write something specially suitable for the occasion. But my very urgent preoccupations combined with my want of proper study of the literature with which Shri Yashpal has enriched Hindi prevents me from doing so.

I only hope that the function will be a great success.

SUNITI KUMAR CHATTERJI
Chairman,
West Bengal Legislative Council.

Calcutta

मुझे यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि पैप्सु सरकार की ओर से हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार यशपाल को अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित किया जा रहा है।

हिन्दी के कथाकारों में श्री यशपाल ने अपने यथार्थवादी उपन्यासों और कहानियों से एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। भारतीय मध्यवर्ग की आर्थिक और नैतिक असंगतियों का अत्यन्त मार्मिक उद्घाटन उनके साहित्य में उपलब्ध है। प्रशासन कार्यों में हिन्दी के स्थान के विषय में भी उनके विचार अत्यन्त संतुलित रहे हैं और समय पर उन्हों ने साहस-पूर्वक अपने विचार प्रस्तुत भी किये हैं। उनके अभिनन्दन के अवसर पर मेरी शुभ कामनाएँ प्रस्तुत हैं। विश्वास है कि चिरकाल तक श्री यशपाल अपनी कृतियों से हिन्दी को समृद्ध करते रहेंगे।

बी. एन. झा
वायस चांसलर।
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

I r elighted to hear that the PEPSU Government are presenting an Abhinandan Granth to the great fiction writer of Hindi, Shri Yashpal. I congratulate the Government for the conception of the scheme and wish the scheme all success.

Shri Yashpal's realistic writings have made a most valuable contribution to the Hindi literature of today and I wish him many more years of valuable service to the cause of Hindi literature.

K. T. MANGALMURTI
Vice-Chancellor,
Nagpur University

Nagpur

I have heard so much about the contribution that Shri Yashpal has made to the cause of Hindi and I am glad to associate myself with all those who have sponsored this function. I fear my own acquaintance with Hindi literature is meagre and it will be out of place for me to say anything more than what I have said above.

I sincerely hope that Shri Yashpal's example will be widely emulated.

G. S. MAHAJANI
Vice-Chancellor,
Delhi University

Delhi

I am glad to know that the PEPSU Government intend to recognise the great services of Shri Yash Paul to the cause of Hindi literature.

I send my greetings to Shri Yash Paul on the occasion.

U. N. DHEBAR
President,
All India Congress Committee,

New Delhi

यह जानकर हमें परम प्रसन्नता हुई कि पेप्सु राज्य सरकार हिन्दी के ख्यातनामा उपन्यासकार और पत्रकार श्री यशपाल जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर उनका उचित सत्कार करने जा रही है।

यशपाल जी का गौरवपूर्ण जीवन और बहुमुखी कृतित्व की तुलना पंजाब की पांच नदियों से की जा सकती है। सप्तसिन्धु प्रदेश में जन्म लेकर यशपाल जी ने अपने स्वभाव, चरित्र और कार्यों में अपने पूर्वज सप्तसिन्धुवासी आर्यों का उच्च आदर्श अपनाया है। गत स्वाधीनता संग्राम के वे एक अजेय सेनानी हैं। अपने जीवन के प्रथम चरण से ही उन्हें शस्त्र और शास्त्र दोनों के साथ प्रेम रहा है और अपनी प्रतिभा एवं उदात्त चरित्र की उन्हों ने इन दोनों के माध्यम से बहुत उच्च बना लिया है। आज के स्वाधीन भारत में उनकी प्रतिमा का प्रसाद हमें साहित्य के माध्यम से प्राप्त हो रहा है। और यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि उनके कार्यों की परम्परा सदा से ही निर्माणकारी एवं ठोस रही है। कागदी योजनाओं से दूर रह कर उन्होंने कार्योंको ही प्रेम किया है। 'विप्लव' का संचालन, सम्पादन करते हुए उन्होंने अपनी पत्रकार प्रतिमा का ज्वलन्त रूप प्रर्दशित किया तो कहानी, संस्मरण और उपन्यास लिखकर उन्होंने प्रगतिशील साहित्य की एक नयी दिशा, नयामोड़ और नयी चेतना प्रदान की है। ऐसी बहुमुखी प्रतिभा के अदम्य व्यक्तित्व को मैं अपनी प्रणामांजलि दे रहा हूं हमारी कामना है कि वे शतंजीवी हों और भविष्य में राष्ट्रभारती की अधिकाधिक सेवा करते रहें। ऐसे कर्मठ एवं महनीय व्यक्ति को ऐसा सम्मान देकर आपकी राज्य सरकार अपना कर्तव्य पूरा कर रही है। हम इस शुभ संकल्प की सफलता की कामना करते हैं।

रामप्रतात त्रिपाठी
सहायक मंत्री,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

हमें यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई की पैप्सु सरकार यशस्वी साहित्यकार श्री यशपाल जी के अभिनंदन का आयोजन कर रही है।

श्री यशपाल जी का साहित्य हिंदी के कथा वाङ्मय में अपने विचारोत्तेजक गुणों के कारण सदा आदरणीय रहेगा, यह हमारी ध्रुवाधारणा है। अभाव और अतृप्ति के कारण संतोष या अवसाद की भावना जिस प्रकार उनके व्यवहार में कभी नहीं रही, वैसे ही उनकी रचना-ओं में भी। उनकी रचनाओं में सर्वत्र समाज की सुषुप्ति और क्लांति पर सचेतक आघात तत्त्व वर्तमान हैं। रुढ़िवादिता, अंध विशवास पर अपनी कटाक्ष और व्यंग्यमूलक रचनाओं में भी यशपाल जी बड़ी सतर्कता से कटुता को बचाते रहे हैं। समाज में उदात्त वृत्तियों के प्रति जब तक आकर्षण रहेगा, यशपाल की रचनाएँ उसे प्रेरणा देती रहेंगी।

उनके अभिनंदन में सभा आपके साथ है, वे चिरंजीवी हों और इसी प्रकार भारती की सेवा करते रहें, यह हमारी आंतरिक अभिलाषा और कामना है।

राजबली पांडेय
प्रधान मंत्री,
नागरी प्रचारिणी सभा

काशी

राष्ट्रभाषा प्रचार समिती और अपनी ओर से मैं श्री यशपाल जी के सम्मान में किये गये आपके सब प्रयत्नों की सराहना करता हूं और हार्दिक सहयोग का विशवास दिलाता हूं। श्री यशपाल जी ने हिन्दी की अच्छी सेवा की है और आगे भी वे वैसे ही सेवा माँ भारतो की करते रहें, यह हमारी सबकी अभिलाषा है।

स्वाक्षर—
प्रधान मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

वर्धा

I have great pleasure in associating myself in the felicitations being given to Shri Yash Paul ji, the renowned Hindi novelist and short story writer in the shape of an Abhinandan Granth to be presented to him by the PEPSU Government on 30th March, 1956.

I wish the function every success.

J. H. DAVE
Hon. Gen. Secretary,
Sanskrit Vishva Parishad.

Bombay

श्री यशपाल जी हिन्दी भाषा के प्रतिष्ठा प्राप्त कहानी लेखक और उपन्यासकार हैं। हिंदी में प्रगतिवादी साहित्यधारा को उन्नत करने में आपने अच्छा प्रयत्न किया है। आप विद्रोही साहित्यकार हैं। जो परम्पराएँ और रूढ़ियाँ हमारे समाज को पंगु और निर्बल बनाती हैं उनके विरोध में जिहाद बोलने में अपनी पूरी शक्ति लगाकर शोषितों, पीड़ितों और दलितों के उद्धार को आपने अपना जीवन कार्य बनाया हुआ है। अपनी जोरदार और प्रभावशाली लेखनी द्वारा आपने साहित्य क्षेत्र में अच्छी उथल-पुथल मचा दी है। साहित्य द्वारा लोक कल्याण के क्षेत्र में श्री यशपाल जी अधिकाधिक सफलता प्राप्त करते रहें यही हमारी शुभ कामना है।

प्रियव्रत वेदवाचस्पति
आचार्य,
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

गुरुकुल काँगड़ी

श्री यशपाल जी जैसे देशभक्त और जनसाहित्य के स्रष्टा का अभिनन्दन कर पेप्सू सरकार हिन्दी साहित्य और हिन्दी-साहित्यकारों के उन्नयन की ओर अपने को इस प्रकार अग्रसर करके स्वयं धन्यवाद की पात्र बन गई है। बिहार हिन्दी सम्मेलन श्री यशपाल जी के अभिनंदन के अवसर पर अपनी अनन्त शुभकामनाएँ प्रेषित करता है।

मथुरा प्रसाद दीक्षित
सभापति,
बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि ३० मार्च १९५६ को श्री यशपाल जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जायगा। आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माण में श्री यशपाल जी का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनकी कृतियों में जीवन की वास्तविकता के दर्शन होते हैं, ऐसे लेखक सदा अभिनन्दनीय हैं।

आपको इस समारोह में पूर्ण सफलता प्राप्त हो, यही हमारी शुभ कामना है।

ललित प्रसाद सुकुल
प्रधान
बंगीय-हिन्दी-परिषद

कलकत्ता

यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप पंजाब के यशस्वी साहित्यकार श्री यशपाल जी को उनकी साहित्यक सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मानार्थ अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर रहे हैं। श्री यशपाल जी ने राष्ट्रभाषा की इन सेवाओं द्वारा हिन्दी प्रेमी पंजाबियों का उत्साह वर्धन तथ मार्ग प्रदर्शन किया है। आपकी इस गुण ग्राहकता के लिये मैं आप को बधाई तथा धन्यवाद देता हूं। इस कार्य की सफलता के लिये हमारी मनोकामनाएँ आप के साथ हैं।

रला राम,
प्रधान,
पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

अम्बाला छावनी

पैप्सु सरकार द्वारा हिन्दी साहित्यकारों को सम्मानित किया जाना महत्व की बात है? इससे उदीयमान साहित्यकारों को प्रोत्साहन मिलेगा। तथा जनता में राष्ट्रभाषा के सम्मान की भावना सुदृढ़ होगी।

यशपाल प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार हैं। उनके लिखे उपन्यासों, निबन्धों, कहानी-संग्रहों और एकाँकी नाटकों में एक नियमित भावधारा का प्रवाह प्रतीत होता है। यह भावधारा निबन्धों में तो स्वभाविक रूप से विचारमय हो कर गम्भीर हो गई है पर कहानियों और उपन्यासओं में उर्मिल होकर सीधा हृदय को स्पर्श कर लेती हैं। इसी में साहित्यकार की सफलता है। ऐसे साहित्यकार को सम्मानित करना कला के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करना है। यशपाल-सम्मान-समारोह की सफलता की कामना करता हुआ मैं इसके आयोजन के लिए पैप्सु सरकार को बधाई देता हूँ।

किरण चन्द्र शर्मा
प्रधान,
पैप्सु हिन्दी साहित्यकार परिषद्

पटियाला

I was extremely happy at the news of presenting an Abhinandan Granth to Shri Yash Paul ji. He is one of the foremost writers and novelists of the present era. He does deserve this honour.

DASHRATH OJHA
General Secretary,
Bhartya Sahitya Sangam

Delhi

I am very happy indeed that the talents of a Hindi novelist of repute are going to be recognized in this very appropriate manner.

The Hindustan Times,
New Delhi.

DEVDAS GANDHI

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि पैप्सु सरकार हिन्दी के प्रोत्साहन के लिए काफी काम कर रही है। इस परम्परा में श्री यशपाल को अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने का निश्चय सराहनीय है।

मैं यशपाल जी का चिरकाल से परिचित हूँ। लाहौर में विरजानन्द प्रेस, मोहन लाल रोड पर वह स्वर्गीय भगत सिंह के अन्य साथियों सहित प्रायः मेरे पास आया करते थे। उस समय तो मैंने इन्हें एक क्रांतिकारी नवयुवक के रूप में ही देखा था। उस समय को याद कर मेरे सामने साण्डर्स बध, असैम्बली बम काण्ड और लाहौर बम काण्ड और लाहौर बम फैक्टरी आदि की घटनाएँ एक-एक कर दृष्टिगोचर होने लगती हैं, जिनमें श्री यशपाल ने उग्र रूप से भाग लिया था।

स्वतंत्रता के बाद यशपाल हिन्दी प्रगति-साहित्य के श्रेष्ठ आवाहन कर्त्ता हैं। पंजाब को श्री यशपाल पर बहुत गर्व है। आप पंजाब की वीर प्रसवा भूमि के पुत्र हैं, जो पंजाब से बाहर जाकर हिंदी साहित्य की महान् सेवा कर रहे हैं। हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी साहित्य में श्री यशपाल का अग्रणी स्थान है। यद्यपि मेरे विचार इन के प्रगतिमय उग्र विचारों से पूर्णतः मेल नहीं खाते फिर भी इनकी सेवाओं को अदृश्य नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता से पूर्व इन्होंने अपने साहित्य में क्रांति का स्वर भर करोड़ों भारतीयों के दिल में मुक्ति की कामना पैदा की और पश्चात् साहित्य में यथार्थ का खुला चित्रण किया। साहित्य को इनकी साहित्य-साधना से अवश्य गति मिली है।

इस समारोह के लिये मेरी शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं।

पक्का बाग़
जालन्धर

जगतनारायण

यह जान कर प्रसन्नता हुई कि पंजाबी विभाग पटियाला हिंदी के यशस्वी लेखक श्री यशपाल को, उनकी बहुमूल्य साहित्य-सेवाओं के उपलक्ष्य में अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट करने का आयोजन कर रहा है।

गत वर्ष भी विभाग ने पंजाब के प्रसिद्ध हिंदी लेखक, उपन्यासकार, कहानी-लेखक और कवि श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' कोसम्मानित किया था। इस वर्ष के आयोजन में आपने विशेष प्रगति की है। अब आप 'अभिनंदन-ग्रंथ' भेंट कर रहे हैं। इस सत्कार्य के लिए आप समस्त हिंदी जगत् और विशेषतः पंजाब के हिंदी-साहित्यिकों की ओर से अभिनंदनीय हैं। आपके इस आयोजन से मुख्यतः चार लाभ होंगे—

(१) पंजाब के प्रौढ़ हिन्दी लेखकों का सम्मान होगा,

(२) अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा सम्मानित लेखक के जीवन और उसके प्रिय विषय पर अधिक प्रकाश पड़ेगा,

(३) नये साहित्यकारों को साहित्य सेवा के निमित्त नई स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त होगी, और

(४) सबसे बढ़ कर उस भ्रान्त धारणा का सर्वथा निराकरण होगा, जिसे कुछ लोग समय समय पर व्याख्यानों और लेखों द्वारा प्रवाहित करते रहते हैं कि पंजाब ने अभी तक हिन्दी का कोई भी अच्छा लेखक,उपन्यासकार,कहानी-लेखक या कवि उत्पन्न नहीं किया।

आशा है, पंजाबी विभाग आगे भी न केवल इसी प्रकार, अपितु इससे भी बढ़ कर, हिन्दी साहित्यिकों के सम्मान में यथोचित आयोजन करता रहेगा।

इन शब्दों के साथ मैं आपके इस सत्प्रयास की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

साधु आश्रम
होशियारपुर

विश्वबन्धु

इधर कुछ वर्षों से केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों ने कला और साहित्य के क्षेत्र में जो अनुराग दिखाया है, उस दिशा में पैप्सु सरकार का साहसपूर्ण निश्चय प्रशंसनीय है। कई सरकारों ने साहित्यकारों को उपाधियाँ और पुरस्कार इत्यादि से सम्मानित किया है पर संभवतः यह पहला अवसर है, जब सरकार की ओर से एक साहित्यकार को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। यशपाल जी की सेवाओं से लोग भली-भांति परिचित हैं। राजनैतिक कलाकार के अतिरिक्त राजनैतिक कथाकार के रूप में भी वे महती ख्याति अर्जित कर चुके हैं।

उनके एक कहानी संग्रह पर विंध्य प्रदेश सरकार ने पिछले वर्ष उन्हें पुरस्कृत किया था। इस नवीन सम्मान के लिये मैं यशपाल जी को बधाई के साथ ही आशीर्वाद देता हूँ कि हिन्दी साहित्य की निरन्तर श्रीवृद्धि करते रहें।

नज़र बाग़
लखनऊ

अम्बिका प्रसाद वाजपेयी

विन्ध्य-प्रदेश-सरकार

हिन्दी-पुरस्कार सम्मान-पत्र

सन् १९५४-५५

लखनऊ के निवासी श्री यशपाल

को इस वर्ष की राज्य-हिन्दी-पुरस्कार-योजना के अन्तर्गत उनकी

रचनात्मक गद्य विषय पर उद्दिष्ट चित्र का शीर्षक

रचना के सम्मानार्थ निर्णायकों की [illegible]ति के अनुसार

वर्ग के अन्तर्गत का [illegible]

पुरस्कार दो हजार एक सौ रुपयों का इस सम्मान-पत्र के साथ

सादर प्रदान किया जाता है।

के सन्तानम्

उप-राज्यपाल, विन्ध्य प्रदेश

मुख्य सचिव, विन्ध्य प्रदेश

श्रद्धांजलि
चित्रकार: त्रिलोक सिंह
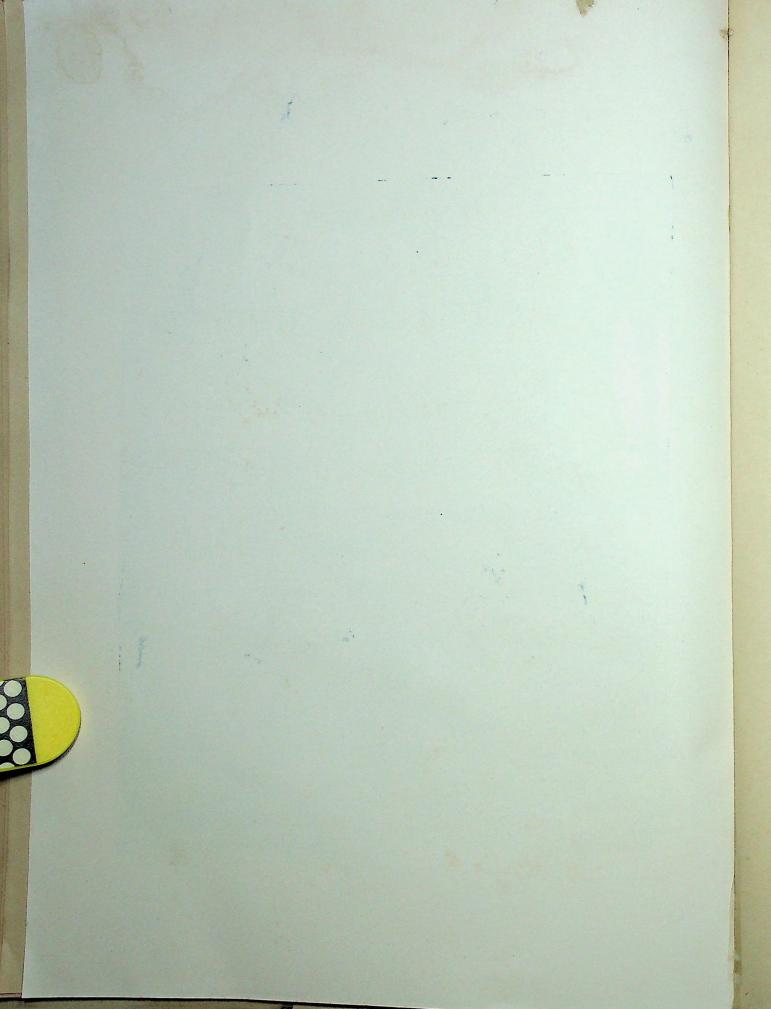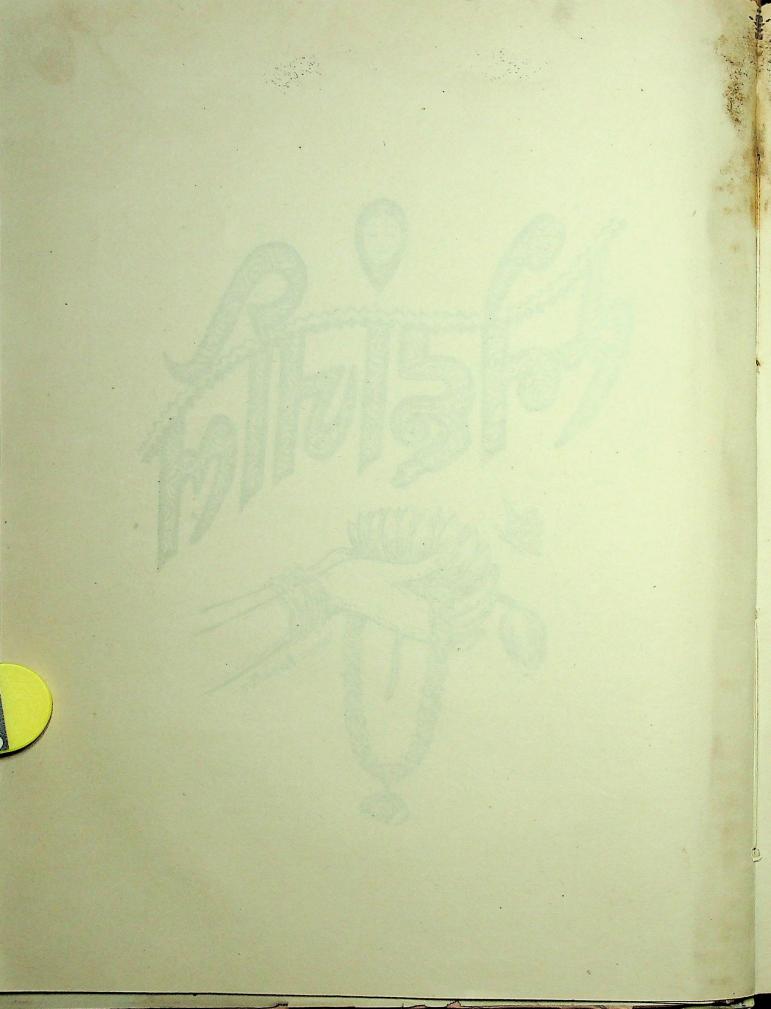
मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि पैप्सु सरकार की ओर से श्री यशपाल को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। इस सदुद्योग के लिये मेरी बधाई स्वीकार कीजिये। शायद एक प्रादेशिक सरकार द्वारा किसी लेखक का इस प्रकार का अभिनन्दन पहले कभी नहीं हुआ है।

व्यक्तिगत रूप से यशपाल जी के संपर्क में मैं पिछले ५-६ वर्षों में आया, किन्तु उनकी कृतियों का प्रशंसक बहुत पहले से रहा हूँ। यशपाल का कथा साहित्य हिन्दी साहित्य का गौरव है और 'दिव्या' जैसे उपन्यास एवम् उनकी लघु कथाएँ हमारे साहित्य की स्थायी संपत्ति हैं। संघर्षकालीन भारतीय समाज का जितना स्पष्ट वर्णन यशपाल जी की कृतियों में मिलता है और जितनी करारी चोट उनमें सन्निहित है, वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

किसी समसामयिक साहित्यिक की अमरता के विषय में भविष्यवाणी करना कठिन है किन्तु यशपाल जी की लगन, कर्मठता और मौलिक सूझ की सराहना, बावजूद उनके विवादास्पद सिद्धांतों के, करनी पड़ती है।

जगदीश चन्द्र माथुर
डाइरेक्टर जनरल,
आल इंडिया रेडियो

नई दिल्ली

यशपाल जब सशस्त्र क्रान्ति के पथ पर थे, तब भी उनका जीवन बड़ा महत्त्व रखता था, और तब जो साहस उन्होंने दिखलाया, उसका परिणाम प्राणों से हाथ धोना हो सकता था। यदि वह हमारे साहित्य की महान् सेवा करने के लिये बच गये, तो यह हमारा सौभाग्य है।

काँगड़ा के पहाड़ों में पैदा हुआ शिशु पुश्तों की कूपमँडूकता को छोड़ कर विश्वप्रसिद्ध लेखक हो जायगा, यह बचपन में बहुत कम ही ने आशा की होगी। यशपाल सीधे किताबों और विद्यालय के भीतर से साहित्य के क्षेत्र में नहीं उतरे, बल्कि उन्होंने जीवन के बहुत से कड़वे-मीठे अनुभव हासिल किये हैं। उनकी लेखनी में जो पार-दर्शिता, विविधता देखने में आती है, वह उनके इसी जीवन की देन है। यदि उन्होंने राजनीति में अपने साहस का परिचय दिया तो लेखनी के क्षेत्र में आने पर भी वह उसी रूप से आये।

नये लेखक के लिये हरेक भाषा के साहित्य में अपना स्थान प्राप्त करना बड़े संघर्ष का काम है, और हिन्दी में तो वह और भी अधिक। यशपाल ने किसी का पल्ला नहीं पकड़ा, किसी की अँगुली पकड़ कर आगे बढ़ना नहीं चाहा, न परिचय और विज्ञापन ढूंढ़ने की कोशिश की। अपनी लेखनी और क्षमता पर उन्हें पूरा विश्वास था, और उसी संबल के साथ वह हिन्दी साहित्य में एक कहानीकार के रूप में आये।

उस दिन से उनकी लेखनी बराबर चल रही है। उनके चेहरे पर बुढ़ापे का असर दिखाई पड़ रहा है, बाल बहुत सफेद हो गये हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ भी दिखाई पड़ रही हैं, लेकिन उनका मन, उनकी लेखनी तरुणाई को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। ऐसे पुरुष से आशा नहीं कि वह कभी 'बैक नम्बर' बन जायगा।

वह बढ़ई नहीं तक्षक शिल्पी हैं। भाव में, भाषा में, कथावस्तु में—सभी में—बड़े सजग रहते हुये वह लेखनी चलाते हैं। इसी कारण 'देशद्रोही', 'दिव्या' जैसी कलापूर्ण मूर्तियों के सृजन करने में वह सफल हुये।

यशपाल में एक कलाकार और एक उच्च साहित्यकार की ईमानदारी कूट-कूट कर भरी है। साथ ही किसी मान और प्रलोभन से वह अपने विचारों को बदलने के लिये तैयार नहीं हैं। इसीलिये विचारों से गहरा मतभेद रखते हुये भी लोग उनकी क़द्र करते हैं। मैं तो यशपाल को कई तरह से अपना समानधर्मी समझता हूँ, इसलिये उनकी प्रशंसा मुझे अपनी प्रशंसा मालूम होती है। अल्हड़ जवानी में वह मस्तमौला थे, और आज भी वह स्वभाव उनका गया नहीं है।

यशपाल के बारे में बहुत लिखना चाहिये, लेकिन उसके लोभ से 'बस मिस' करना नहीं चाहता। वह चिरकाल तक चिरतरुण रह अपनी लेखनी द्वारा हमारे साहित्य को समृद्ध करते रहें, यही कामना है।

हैपीवेली
मसूरी

राहुल सांकृत्यायन

मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पैप्सु सरकार हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार यशपाल जी का एक अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा सम्मान कर रही है। सरकार की ओर से यह सम्मान विशेष महत्व रखता है; जनता में तो वह लोकप्रिय हैं ही। यशपाल जी ने जनता का ध्यान सामाजिक विषमताओं की ओर बड़ी निर्भीकता से आकर्षित किया है। इस सम्बन्ध में वह पूर्ण मानवतावादी हैं।

इस साहित्य-सम्मान से सभी साहित्यकों को प्रसन्नता होगी। इसके लिए पैप्सु सरकार के अधिकारी बधाई के पात्र हैं। जनता की सेवा और साहित्य की अभिवृद्धि के लिए ईश्वर यशपाल जी को चिरायु करे। अनेक शुभकामनाओं के साथ।

दिल्ली दरवाज़ा
आगरा

गुलाब राय

श्री यशपाल जी हिन्दी के विशिष्ट साहित्यकार हैं। उनके सम्मानार्थ अभिनन्दन की योजना का मैं स्वागत करता हूँ। श्री यशपाल जी ने अपनी दीर्घकालीन महती साधना से वर्तमान साहित्य के कई अंगों को समृद्ध किया है। उनके उपन्यास साहित्य की सच्ची निधि हैं। उन ग्रन्थों के पीछे उनके जीवन का सत्य अन्तर्निहित है। उन्होंने मातृभूमि को बन्धन मुक्त कराने के लिये महान स्वार्थ त्याग किया और असीम कष्ट सहे। अनुभवों के उस कोश से उनके ग्रन्थों को प्राणवन्तभाव-चैतन्य प्राप्त हुआ है।

यशपाल जी लखनऊ में मेरे पड़ोसी रहे हैं। जिस समय वे 'दिव्या' लिख रहे थे उस समय मुझे उनका विशेष सान्निध्य प्राप्त हुआ और उनके साहित्यिक विशिष्ट रूप की छाप तुरन्त मेरे मन पर पड़ी। 'दिव्या' की पाण्डुलिपि उन्होंने कृपा कर मुझे पढ़ने को दी। उसकी समर्थ भाषा शैली, कथा-प्रवाह और ऐतिहासिक तथ्यात्मकता से मैं प्रभावित हुआ। यह हमारी भाषा का सौभाग्य है कि यशपाल जी की समर्थ लेखनी अभी कार्य में सक्षमता से प्रवृत्त है। भगवान करे उन्हें शतायु जीवन में निरन्तर साहित्य और राष्ट्र की सेवा का अवसर प्राप्त होता रहे।

काशी विश्वविद्यालय,
काशी

वासुदेव शरण अग्रवाल

यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि पेप्सू सरकार की ओर से हिन्दी के यशस्वी लेखक श्री यशपाल को अभिनंदन ग्रन्थ दिया जा रहा है।

श्री यशपाल हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों में अग्रणी हैं और उनकी कलम ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को संयत करने में बहुत हिस्सा बँटाया है। विचारों के क्षेत्र में नवीनता और सोचने की सामग्री देने के अतिरिक्त उनकी शैली में भी असाधारण शक्ति और नैसर्गिकता है। पुरानी पीढ़ी का होने के कारण उनकी विचारधारा से पूर्णतया सहमत न होते हुए भी मैं उनकी हिन्दी सेवाओं का समादर करता हूँ और उनके उत्साह और लगन को नए लेखकों के लिए पथ-प्रदर्शन स्वरूप समझता हूँ। विश्वास है कि भविष्य में उनके द्वारा हिन्दी की अधिकाधिक सेवा हो सकेगी।

हिन्दी विभाग,
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

धीरेन्द्र वर्मा

श्री यशपाल की कृतियों से हिन्दी संसार भली-भाँति परिचित है। वे किसी प्रान्त-विशेष के प्रतिनिधि के रूप में नहीं बल्कि भारतीय हिन्दी-लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं, और हम सभी उन्हें इसी निगाह से देखते हैं। फिर भी पटियाला और पूर्वी पंजाब शासन उन्हें अपने प्रांत का लेखक मान कर उनके सम्मान में अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहा है, यह कम प्रसन्नता की बात नहीं है। यशपाल जैसे हिन्दी लेखक का सम्मान कोई भी प्रादेशिक शासन करे उसकी प्रशंसा ही की जायगी। मैं आपके इस आयोजन का स्वागत करता हूँ और आपकी सफलता चाहता हूँ।

श्री यशपाल के लिए मैं इस अवसर पर अपना हार्दिक सम्मान व्यक्त करता हूँ और उनके दीर्घ-जीवन की कामना करता हूँ।

नन्ददुलारे वाजपेयी
अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग

सागर विश्वविद्यालय
सागर

I cannot claim any thing more than a cursory acquaintance with the general hand of the writings of Shri Yash Paul. I however was fortunate enough to meet him at Patna some two years back and was truck forcibly by his advanced ideas on social and political questions. swhich, I understand, have formed a literary expression in his writings. He is certainly a force to reckon with in Hindi literature and has done a lot to widen its scope and range and imbue it with the most progressive ideas of the contemporary world. I am very happy that a writer of his eminence is being honoured by a state Government and have this oppertunity of adding my humble tribute of appreciation to his highly interesting and significant contributions in the field of literature.

SRIKUMAR BANERJEE
Retired Rawtaun Professor of Bengali
Language and Literature.

Calcutta

हिन्दी के यशस्वी लेखक श्री यशपाल के सम्मान में पैप्सु सरकार ने उन्हें अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने का आयोजन कर एक शोभन परम्परा का निर्वाह किया है। श्री यशपाल हिन्दी के उन विचारशील लेखकों में हैं जिनकी प्रतिभा निबंध और कथा-साहित्य के माध्यम से पाठक में सामाजिक चेतना उद्‌बुद्ध करने में सहायक हुई है। उनके निबंधों की चिन्ता-धारा सामयिक प्रश्नों पर एक विशिष्ट दृष्टिकोण से प्रकाश डालकर उनका समाधान प्रस्तुत करती है। पुरातन मान्यताओं पर जिस शैली से आपने अपने निबंधों में व्यंग्य-प्रहार किया है, उसमें निर्ममता और कठोरता होने पर भी सामाजिक कल्याण-भावना का अभाव नहीं है। शैली की विदग्धता के कारण उनके निबंध सजीवता के सुन्दर निदर्शन हैं। किन्तु यशपाल का यथार्थ क्षेत्र निबंध नहीं कथा-साहित्य है।

यशपाल हिन्दी के उन गल्प-लेखकों में हैं, जिनकी पारदर्शी दृष्टि समाज के नानास्तरों, जीवन की विविध स्थितियों और मानव-मन की गुप्त मनोवृत्तियों का उद्‌घाटन करने की अद्‌भुत क्षमता रखती है। समाज के वैषम्य पर प्रहार करते समय प्रखर व्यंग्य उनकी अभिव्यक्ति का मेरुदंड बनता है। धर्म और नीति के रूढ़िग्रस्त, जर्जर खंडहरों को धराशायी बनाकर साम्यवादी अर्थ व्यवस्था के आधार पर नव-निर्माण का आग्रह उनकी कला का अंग बन गया है। सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं के चित्रण में यशपाल ने प्रायः मध्य या निम्नवर्ग के पात्रों की अवतारणा कर उनके प्रति करुणा, समवेदना, आक्रोश या उद्‌बोधन का भाव व्यक्त किया है, वह अपने प्रभाव में कहीं भी निष्फल नहीं हैं—यही लेखक की सफलता है।

श्री यशपाल से हिन्दी को अभी और अधिक गंभीर एवं मौलिक प्रश्नों पर विचार-साहित्य की आशा है। मैं इस अवसर पर अपनी मंगल कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

दिल्ली विश्वविद्यालय — नगेन्द्र
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

यशपाल प्रेमचन्द परम्परा के कथाकार हैं। आपने कथा साहित्य में उस परम्परा को आगे बढ़ाया है। आपकी कथा का उद्देश्य आधुनिक समाज की जर्जर मान्यताओं का विश्लेषण कर उसे स्वस्थ तथा सुन्दर बनाने का है। इनके यथार्थवाद में प्रेमचन्द की तरह आदर्श का पुट नहीं रोमांस का संयोग है। समाजवादी चिन्तन तथा रोमांस के गठबन्धन से आप अपनी कथाओं को मनोरंजक बनाते हैं। आपकी धारणा है कि साहित्य का उद्देश्य सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवनका चित्रण मात्र ही नहीं है। दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, देशद्रोही इनके राजनीतिक रोमांस समझे जाते हैं; परन्तु मनुष्य के रूप में इनकी उपन्यास कला विकसित तथा स्वाभाविक है। इस उपन्यास में सामाजिक पृष्ठभूमि विस्तृत तथा शैली यथार्थवादी है। 'दिव्या' इनका ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें बौद्ध धर्म के ह्रास, वर्णाश्रम धर्म के उत्थान ब्राह्मणों के षड़यन्त्र और दासों के विद्रोह की सामंती परिस्थितियों में नारी-चरित्र का विकास दिखाया है। सामन्ती समाज में नारी को भोग तथा विलास का साधन

माना गया है। दिव्या एक समय रचना के रूप में ऐतिहासिक उपन्यास की परम्परा को सम्पन्न बनाती है। वास्तव में यशपाल की कला का उद्देश्य परस्पर-विरोधी विचारधाराओं का समन्वय करने का है। मार्क्सवादी विचारधाराएँ हिन्दी उपन्यास को प्रभावित कर रही है। बाहर तथा भीतर के जीवन में सामंजस्य स्थापित कर लेखक व्यक्ति तथा समाज में समन्वय चाहते हैं उनकी कला का भविष्य उज्वल है। इस उज्ज्वल भविष्य की मैं कामना करता हूँ।

इन्द्रनाथ मदान
अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
जालंधर

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि पैप्सु शासन श्री यशपाल जी को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर रहा है। यशपाल जी ने अपने उपन्यासों और कहानियों में निरन्तर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने इस क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। जन-जन के मन और जातीय जीवन की शृङ्खला को उन्होंने यथा सम्भव ईमानदारी और लगन से हृदयंगम करने की केष्टा की हैं; इस चेष्टा में उन्हें जो अनुभूतियाँ हुई हैं, वे उन्होंने निर्भय होकर लेखनी से उतारी हैं। मानव के सहज और उपलब्ध अर्जन के संघर्ष से उनका प्रत्येक शब्द गूंज रहा है, अभिनन्दन का यह आयोजन उनकी देन के मूल्यांकन को और अधिक प्रेरणा देना है। मैं इस अभिनन्दन का अभिनन्दन करता हूँ, और अभिनन्दनीय का सादर वंदन करता हूँ। इस शुभ कामना के साथ कि अभिनन्दनीय अपनी कला-प्रभा से और अधिक वंदनीय बनता जायगा।

सत्येंद्र
अध्यक्ष
हिन्दी विद्यापीठ
विश्वविद्यालय
आगरा

यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि पेप्सू सरकार ने 'यशपाल अभिनन्दन' ग्रन्थ का आयोजन किया है।

श्री यशपाल के कथा-साहित्य से हिन्दी के पाठक सुपरिचित हैं। उनके कथा-साहित्य पर हिन्दी को नाज़ है। पीड़ितों और शोषकों के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति ने ही उनके कथा-साहित्य में कलात्मक-रूप धारण किया है। आधुनिक समस्याओं के भीतर से उन्होंने शाश्वत सौंदर्य को प्रत्यक्ष करने को चेष्टा की है और इस दिशा में बहुत दूर तक सफल हुए है।

उनके दीर्घ जीवन और सफलता की कामना करता हूँ।

राम पूजन तिवारी
अध्यक्ष, हिन्दी भवन
शांतिनिकेतन

परसू शासन श्री यशपाल को अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित कर रहा है, यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ। श्री यशपाल ने हिन्दी कथा साहित्य में अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। प्रेमचंद के पश्चात् कथा क्षेत्र में यशपाल को ही अन्तर्राष्ट्रीय यश मिला हैं। उन्होंने केवल कहानियां और उपन्यास ही नहीं लिखे, एकांकी और अन्य विचारोत्तेजक ग्रन्थों की भी रचना की है। हम उनके दृष्टिकोण से भले ही सहमत न हों, इसमें सन्देह नहीं, कि वे प्रतिभावान् साहित्य स्रष्टा हैं; अभिनन्दनोय हैं।

विनयमोहन शर्मा
अध्यक्ष,
हिंदी विभाग

नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर

LITERATURE' according to Mathew Arnold "is the criticism of life." Yashpal's literature is the criticism of the past and the present, of the latent and of the manifest, with a veiw to bring forth a new and peaceful future—peaceful in the sense that man should desire for what he rightly deserves, and the same should be fulfilled, striking thereby a legitimate margin of providing all human beings the fundamental necessities of life.

As a story-writer and novelist, Yashpal, of whom the Hindi literature can feel proud, with all his ripe experiences of the dependent and independent India, and comradeship of persons like Bhagat Singh and Sukh Dev, has poured out through his untiring pen, messages which his heart, full of Revolution (Viplava) for bringing in quickly a happy India of his imagination. Each and every sentence contained in his various writings, stands rising above, as flames spreading the light of good-will for a new social structure, thereby burning into ashes the age-old hindrances and obscure impediments and afflictions. His writings are generally so easy of approach that even a lay man who knows just enough to read and understand, gets not only the aesthetic pleasure out of them, but also the firm belief and conviction for the purport of the piece to which he has given a reading. Problems which are truly difficult for explantion even for the economists, Politicians and Philosophers, have been so well brought out through the 'Pen of Yashpal', that one gets spell-bound when the end of the plot is reached.

Yashpal has made the people best understand the society next only to the unparalleled Prem Chand.

May I say as I feel, that the barrel of the 'Pen of Yashpal' contains more lively fire than that was contained in that of even Prem Chand ?

Yashpal has indeed brought 'Su-Yash' to Hindi fiction. But much more is expected of him in the future.

S. SHANKAR RAJU NAIDU

University of Madras
Madras

Head of the Department of Hindi

यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यशपाल को, उनकी साहित्य सेवाओं के उपलक्ष्य में, अभिनंदन ग्रंथ भेंट करने का निश्चय किया गया है ।

दक्षिण में श्री यशपाल का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है । प्रेम चन्द के बाद दक्षिण को सब से अधिक प्रभावित करने वाला गद्य लेखक निःसन्देह यशपाल है ।

मैंने मलयालम भाषा में उनकी 'दिव्या' का अनुवाद कराया है और वह जल्दी ही प्रकाशित होगी ।

अभिनन्दन ग्रन्थ की पूर्ण सफलता ही मेरी शुभकामना है ।

ए. चन्द्रहासन

महाराजा कालेज
एर्नाकुलम

अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग

यशपाल जी ने अपनी लेखनी द्वारा हिन्दी की जो सेवा की है इसे कौन नहीं जानता। आपने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी के नये लेखकों के लिए एक नया मार्ग तैयार किया है ।

सम्मान-आयोजन के लिए मेरी शुभ कामनायें आपके साथ हैं । यशपाल जी दीर्घ जीवन पायें और हिन्दी की सेवा करें, यही मेरी प्रार्थना है ।

गुलाम रसूल

अनामालाई विश्वविद्यालय
अनामालाई नगर

अध्यक्ष
हिन्दी तथा उर्दू विभाग

भारती के साधक सपूत यशपाल जी का अभिनन्दन उन पर कोई अनुग्रह नहीं हिन्दी साहित्य के लिए एक सौभाग्य है। यशपाल जी का कृतित्व भारतीय साहित्य की एक अनमोल थाती बनता जा रहा है, और आगे के लिए भी हमें उनके कला कौशल से उज्ज्वल आशाएँ बँध चुकी हैं। उनकी रचनाओं में स्वरूप, सामाजिक चेतना को कला की एक ऐसी यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है जो भावपूर्ण होते हुए भी तर्कशून्य नहीं। भावना और तर्क का यह तालमेल 'पिंजरे की उड़ान' से ले कर 'उत्तमी की माँ' तक लगातार निखरता ही चला है। इसके साथ ही व्यंग-ध्वनि के संयोजन में यशपाल दूसरे कहानी-कारों से बाजी ले गये हैं।

यशपाल के यौन-प्रसंगों से जिन आलोचकों को शिकायत रही है उन्हें भूलना नहीं चाहिए कि यौन-कुंठाओं से छुटकारा दिला कर एक स्वस्थ संतुलन स्थापित करना ही इस चित्रण का मूल उद्देश्य है। दुराव-छिपाव से काम न लेकर यशपाल ने कलापूर्ण अनावरण ही अधिक समीचीन माना है, और ऐसा करते हुए वे अपने प्रति ईमानदार तो हैं।

'सिंहावलोकन' से स्पष्ट है कि यशपाल ने बहुत कुछ देखा-झेला और सोचा-सुलझाया है। उनके पास अभी बहुत कुछ लिखने को है। उनकी कलाभिव्यक्ति का अंग अंग दीख पड़ता है। आजके अभिनन्दनोत्सव पर उनके प्रति स्नेहांजलि अर्पित करते हुए हम चाहते हैं कि अभी बरसों तक आपका कलाकार स्वस्थ, सचेत और सक्रिय रहे।

अमरसिंह कालेज,
श्रीनगर

पृथ्वीनाथ पुष्प

यशपाल जी हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान लेखक हैं। उनका सृजन बड़ा सबल, सरस और गहन होता है। हिन्दी को उन्होंने जो कुछ दिया है वह गौरवपूर्ण है। श्री यशपाल का अभिनन्दन, संपूर्ण हिन्दी जगत का अभिनन्दन है।

आकाशवाणी,
नागपुर

उदयशङ्कर भट्ट

यह जानकर हमें अपार हर्ष और हार्दिक सन्तोष हो रहा है कि स्वर्गीय भगतसिंह जी के अभिन्न और निकटतम सहयोगी तथा सिद्ध साहित्यकार श्री यशपाल जी को अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित कर पैप्सु राज्य की सरकार सम्मानित करने जा रही है। इस पुण्य तम कार्य में मेरा हृदय पूर्णतः आपके साथ है। श्री यशपाल जी की साहित्य-सेवाओं का बदला किसी तरह नहीं दिया जा सकता। आप लोगों का यह प्रयास उनके प्रति हम सब लोगों का स्नेह और आभार व्यक्त करने का प्रयत्न मात्र है। इस पवित्र निर्णय के लिये एक क्षुद्रतम

साहित्य-सेवी होने के नाते, मैं पैप्सु सरकार का आभारी हूँ तथा मेरी यह हार्दिक कामना है कि आपके पंजाबी विभाग को ऐसे पुण्य कार्य करने का श्रेय निरन्तर मिलता रहे।

रामनिरंजन पाण्डेय
अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,

ओस्मनिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद

हर्ष का विषय है कि पैप्सू सरकार प्रसिद्ध प्रगतिवादी साहित्यकार श्री यशपाल को उनकी साहित्य सेवाओं के सम्मान स्वरूप अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर रही है।

श्री यशपाल का नाम आज देश के चोटी के लेखकों में गिना जाता है, प्रगतिवादी लेखकों में तो उन्हें सब से ऊंचा स्थान प्राप्त है। मेरे विचार से श्री यशपाल सही अर्थों में जनता के लेखक हैं। उन्होंने जो लिखा है जनता के कष्टों को अनुभव कर के लिखा है और यही कारण है कि भारत के लेखकों-पाठकों ने उन्हें अपना चहेता लेखक माना है। श्री यशपाल का समूचा जीवन जनता और देश का जीवन है। अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग उन्होंने देश की आज़ादी के लिये पिस्तौल और बम लेकर और या फिर वर्षों जेल की काल-कोठड़ी में अपनी कल्पना द्वारा देश और जनता की दशा का सही विश्लेषण करते हुए बिताया है। १६३८ में जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने एकान्त भाव से साहित्य रचना की है। इन थोड़े से वर्षों में ही उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी तथा निबन्धों के रूप में ३४ पुस्तकें दी हैं। इतने थोड़े समय में इतनी अधिक पुस्तकों की रचना की दृष्टि से उन्हें जहां भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम-कक्ष कहा जा सकता है वहाँ उनको लोक प्रियता की दृष्टि से उन्हें मुन्शी प्रेम चंद जी का उत्तराधिकारी माना जा सकता है। उनकी रचनाओं को भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त पश्चिम की प्रमुख भाषाओं – अंग्रेज़ी फ्रांसीसी रूसी और चेक भाषाओं में— अनूदित होने का गौरव भी प्राप्त हुआ है।

श्री यशपाल के हज़ारों प्रशंसकों की भांति मुझे भी इस बात की प्रसन्नता है कि भारत का यह महान् लेखक मूलतः हिन्दी का लेखक है। मेरी प्रसन्नता का एक कारण यह भी है कि भारत और इससे भी अधिक संसार को ऐसा महान् जनवादी लेखक देने का गौरव पांचाल देश की भाग्यशाली भूमि को ही प्राप्त है।

मिलखी राम रत्न,
महा मंत्री,
पैप्सू प्रदेश कांग्रेस कमेटी।

पटियाला

श्री यशपाल जी का यद्यपि मेरा कोई व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं रहा है फिर भी उनकी रचनाओं के द्वारा उनके कथाकार रूप से मैं भली-भाँति परिचित हूँ। एक प्रगतिशील कथाकार के रूप में आपने हिन्दी की जो सेवा की है और उसके लिये आपको जो

सम्मान मिल रहा है। वह हर्ष की बात है आपकी विचार-धारा में काफी बल और प्रेरणा है, मेरा हार्दिक अभिनंदन।

उदयसिंह भटनागर
अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग

महाराजा सयाजी विश्वविद्यालय
बड़ौदा

श्री यशपाल का सम्मान एक ऐसी महान प्रतिभा का सम्मान है, जिसने आज तक कभी आदर-सम्मान पाने के लिए जोड़-तोड़ नहीं किया, यशपाल आज हिंदी के अग्रणी उपन्यासकार और कहानीकार है—केवल अपनी साहित्य-साधना के बल पर।

यशपाल को निर्विवाद रूप से भारतीय चेतना का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। उन्हों ने जो कुछ लिखा है बड़ी निर्भीकता और ईमानदारी से लिखा है। अपनी रचनाओं में उन्होंने न केवल सामाजिक तथा राजनैतिक संघर्षों का उचित निराकरण किया है बल्कि एक नवीन दृष्टिकोण के बल पर रचनात्मक ढंग से मानव-जीवन की असंगतियों और विकृतियों को उघाड़ कर उनका यथार्थ समाधान भी प्रस्तुत किया है। उनकी सब से बड़ी सफलता है कि उन्होंने यथार्थवाद और बौद्धिकता को बलि-वेदी पर कला की हत्या नहीं होने दी।

यशपाल निश्चय ही हिन्दी साहित्य का गौरव हैं। पंजाब को गर्व होना चाहिये इसने हिन्दी को यशपाल जैसा बहुमूल्य रत्न दिया है।

दिल्ली

चिरंजीत

यशपाल जी के प्रति

वह सहज मन्द मुसकान लिए पतले-पतले
ओठों के बीच दबी सिगरेट, उजले-उजले
हो चले केश, चौड़ा माथा, आँखें गहरीं
चश्मे के नीचे, हड्डियाँ गाल की कुछ उभरीं;
कुछ चिबुक नुकीली, उठी नाक, भ्रू-पाँति सघन
हर एक रेख में अँकित क्रांतिभरा जीवन !
ज्यों कुशल कृती ने एक मूर्ति रक्खी तराश !
कुछ भारी स्वर जैसे कि गले में हो खराश
पर निरायास बहती वाग्धारा ! सरल भाव
सबके ही प्रति आश्वस्त, नहीं कोई दुराव।
ऊपर से रूखे पर अन्तर से निरभिमान,
व्यक्तित्व सहज साधारण होकर भी महान !

ओ कथाकार ! तुमने ही दिखलाया, अनगिन
पार्श्वों से मध्यवर्ग का अति जर्जर जीवन
जो हम सब जीते , सामाजिक विकृतियाँ सारी ;
चिर जागरूक मन की 'भस्मावृत चिनगारी ;'
मुक्ति के लिए बन्दियों को 'पिंजड़े की उड़ान'
नीले नभ में—गुंजरित हुए समवेत गान।
अनेकों 'मनुष्य के रूप' लेखनी का आश्रय
पा हुए अमर।'अभिशप्त' हो गए फिर निर्भय !
तुमने सेनानी ! सभी शोषणों के विरुद्ध
आयोजित कर डाले कितने ही 'धर्म युद्ध'।
सामाजिक न्याय के लिए तुम्हारे सब प्रयास
स्तुत्य, उपजती श्रद्धा मन में अनायास !

लखनऊ — सुरेन्द्र कुमार दीक्षित

चित्रकार: त्रिलोक सिंह
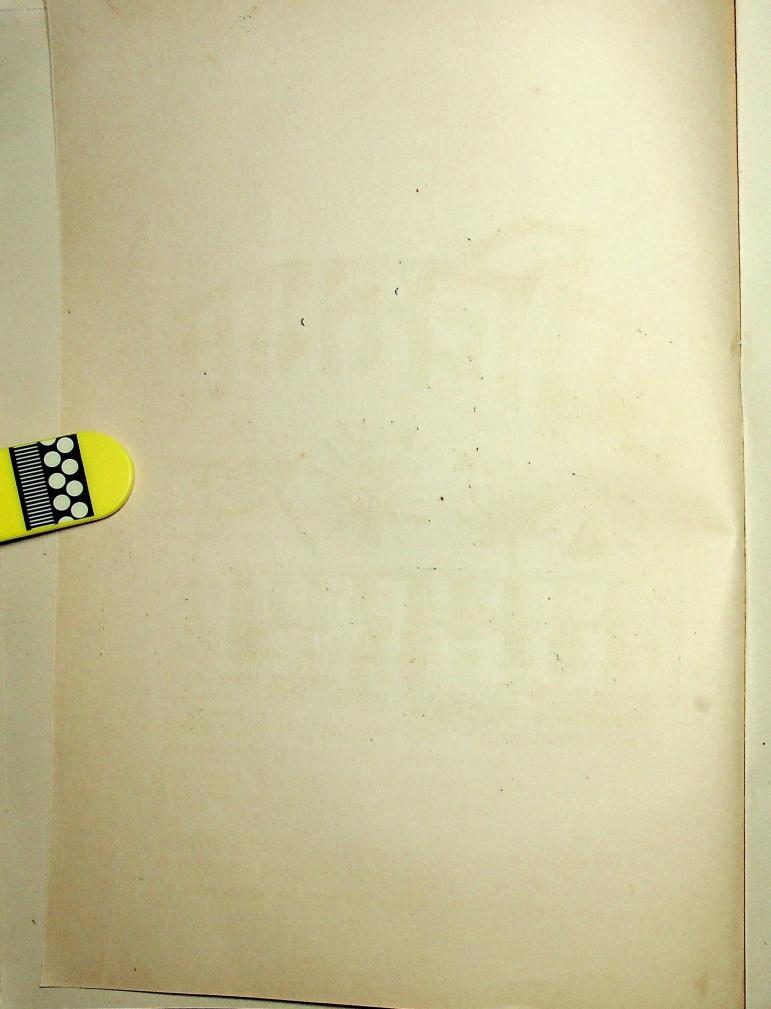
'अभिनन्दन' का अभिनन्दन

सर्वप्रथम मैं पैप्सू-सरकार के पंजाबी-विभाग का ही अभिनन्दन करना चाहता हूँ कि जिसने सचमुच एक अभिनन्दनीय का ही अभिनन्दन करने का निश्चय किया है।

यशपाल उन थोड़े से सुहृदों में से हैं, जिनके बारे में मेरे लिये कुछ भी लिखना कठिन है। वे मुझे, अपनी आँखों की ही तरह बहुत समीप लगते हैं। यह ठीक है बहुत दूर की चीज़ दिखाई नहीं देती किन्तु बहुत समीप की भी कहाँ दिखाई देती है ?

यशपाल मेरे सहपाठी रहे हैं। हम दोनों ही उस विद्यापीठ के स्नातक हैं जो अब नाम-शेष ही रह गया है पंजाब-कौमी-विद्यपीठ (नेशनल कालेज)।

अपने हिन्दी-प्रेम के कारण, जब मैंने बिना प्रथमा पास किये ही, एकदम, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की 'विशारद' दे डाली थी, और उसमें अनुत्तीर्ण हो गया था, उस समय यशपाल हिंदी के कहानी-लेखक बन चुके थे।

यशपाल, पंजाब-कौमी-विद्यापीठ में आने से पहले, 'गुरुकुल' में रह चुके थे। उनका हिन्दी-ज्ञान हम सबकी प्रशंसा का विषय था।

पंजाब-कौमी-विद्यापीठ से निकलने के बाद मुझे याद नहीं आ रहा है कि मैंने यशपाल की कौन सी चीज़ सबसे पहले पढ़ी ? एक रचना याद आ रही है—शीर्षक था 'हृदय' मेरी स्मृति में संजो कर रखी हुई रचनाओं में, वही यशपाल की, मेरी बाँची हुई पहली रचना है। आज भी मैं समझता हूँ कि वह रचना यशपाल की सारी कृतियों का अनुपम भाष्य है।

यशपाल के पास कलाकार का हृदय है; दार्शनिक का मस्तिष्क है और साथ साथ है एक क्रांतिकारी का दो-टूक-पन। इधर कुछ वर्षों से यशपाल जो कुछ लिखते रहे हैं, मैं सभी कुछ पढ़ने का प्रयास करता रहा हूँ। यदि सभी कुछ नहीं पढ़ पाया तो उसका एक कारण यशपाल स्वयँ हैं। उन्होंने मात्रा की दृष्टि से भी इतना पर्याप्त लिखा है कि मेरे जैसे उनके कई पाठक इस लिखाई और पढ़ाई की दौड़ में पीछे रह गये होंगे।

यशपाल की वर्णन-शक्ति अद्‌भुत है। कहने वाले कह सकते हैं कि देखी-जानी-पहचानी जगह का वर्णन कोई भी कर ही सकता है। थोड़ी देर के लिये यशपाल को अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में कांगड़े ज़िले तथा मसूरी नैनीताल जैसी देखी-जानी-पहचानी जगहों के अद्‌भुत चित्र उपस्थित करने के नाते

अत्यधिक श्रेय न भी दिया जाय, लेकिन क्या किया जाय वे 'देशद्रोही' में अनेक ऐसे स्थलों का भी, जिनके बारे में निश्चय से उन्होंने केवल पढ़ा ही है, वैसा ही यथार्थ चित्रण उपस्थित कर देते हैं। यह शक्ति सामान्य कल्पना-शक्ति से कुछ विशेष है। इसलिये इसे कोई दूसरा ही नाम देना होगा।

यशपाल जिन दिनों 'विप्लव' का सम्पादन करते थे, मैं समझता हूँ, उन्हीं दिनों यशपाल की चतुर्मुखी-प्रतिभा को आत्म-विकास तथा आत्म-प्रकाशन का खूब अवसर मिलता रहा है। कम लोगों को यह मालूम होगा कि अपनी उस पत्रिका में लगभग एक दर्जन भिन्न-भिन्न नामों से अकेले यशपाल को ही अपनी पत्रिका के 'यश' का 'पालन' करना पड़ता था। अग्रलेख लिखें तो यशपाल, सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखें तो यशपाल, कहानियाँ लिखें तो यशपाल, मार्क्सवाद की पाठशाला लिखें तो यशपाल, चाय की चुस्कियाँ लिखें तो यशपाल और भी न जाने कितने स्तम्भ वे स्वयं ही भरते थे।

मैंने हिन्दी के हर मासिक के मालिक-सम्पादक को प्रायः घाटे का रोना रोते देखा है। उस दिन 'यशपाल' की बात सुनी तो जैसे घाव पर मरहम रखा गया—"हम लोग ग़रीबी से रहने में विश्वास नहीं करते। हमारा सब कुछ इसी 'विप्लव' के भरोसे हैं।"

समाज में, आदमी को, अपने आपको, सर्वश्रेष्ठ रूप' में पेश करने की ज़रूरत हर जगह महसूस होती रहती है। आदमी जैसा भला-बुरा है, ठीक उसी तरह उठ-बैठ न सके, यह कितनी बड़ी क़ैद है? जब कभी लखनऊ जाना हुआ है, और जब जब यशपाल वहाँ रहे हैं, और जब जब उनके 'विप्लव' भवन में कुछ समय बिताया है, मुझे यही लगा है कि यह एक घर तो ऐसा है जहाँ हर आदमी 'घर' में घर की तरह रह सकता हैं। यह निर्णय कर सकना आसान नहीं कि इस जौहर में यशपाल का कितना हिस्सा है और यशपाल की 'रानी' प्रकाशवती पाल का कितना? शायद उन्हीं का अधिक है।

यशपाल की पुरानी लालसा है, एक बौद्ध-उपन्यास लिखने की। 'दिव्या' लिख कर भी 'दिव्या' के आरम्भिक हिस्से में ही यशपाल ने पिस्तौल का एक ऐसा निशाना लगाया है कि छाती के आरपार हो जाता है। पिता-परित्यक्ता, पति-परित्यक्ता नारी जब अपने दुध-मुँहे बच्चे को लेकर, एक बौद्ध-विहार का दरवाज़ा खटखटाती है तो उसे वहाँ भी शरण नहीं मिलती। आर्त्तनाद करती हुई वह जब विहार के महास्थविर से निवेदन करती हैं कि इस विहार में तो अम्बपाली वेश्या को शरण मिली थी, आखिर मुझे क्यों शरण नहीं मिल सकती? तो महास्थविर के पास एक ही निर्मम उत्तर था—वेश्या स्वतन्त्र-नारी है। उसे शरण मिल सकती है, तुम्हें नहीं मिल सकती।"

मैंने जब यह पंक्तियाँ पढ़ीं तो मेरे बौद्ध-हृदय पर ऐसी चोट लगी कि मैं तिलमिला उठा। उस दिन से मैं सोच रहा हूँ कि इन पंक्तियों में, यशपाल ने हमारी समाज-व्यवस्था में नारी की दयनीय-स्थिति पर जो निर्मम प्रश्नचिन्ह लगा दिया है, उसका हमारे पास क्या जवाब है?

यशपाल, लेखनी की नोक चुभोने में बेजोड़ हैं। अफ़ीमची-समाज की निद्रा भंग करने का दूसरा उपाय भी तो नहीं। समाज के सौभाग्य से यशपाल की लेखनी की स्याही कभी न सूखने पाए।

कालिम्पोंग

भदन्त आनन्द कौसल्यायन
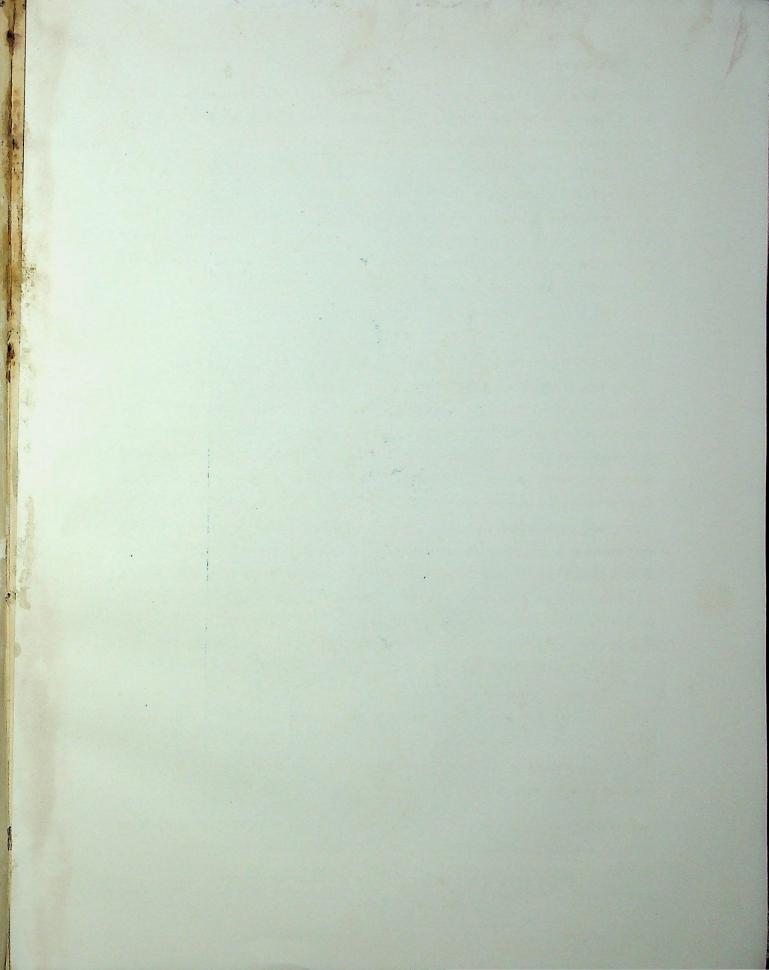
यशपाल १९२९ में लार्ड अरविन की स्पेशल के नीचे बम विस्फोट का
कार्य सौंपा जाने के समय

यशपाल मेरी नज़रों से

दिल्ली केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने की सभी तैयारियाँ हो चुकी थीं। उस समय दिल्ली में हम लोगों के पास सिर्फ़ एक पिस्तौल और एक रिवाल्वर था। पिस्तौल भगत सिंह को ले जाना था। इस प्रकार मेरे और जयदेव के पास केवल एक रिवाल्वर रह जाता था।

असेम्बली में बम फेंकने के बाद दिल्ली में पुलिस की जो सरगर्मी शुरू होगी उससे बच निकलना कोई आसान काम नहीं होगा, यह हम जानते थे। अस्तु, आत्म-रक्षा के लिये दोनों के पास हथियार रहना आवश्यक था। निश्चय हुआ कि मैं लाहौर जा कर सुखदेव के पास से कम से कम एक पिस्तौल या रिवाल्वर और ले आऊँ। बम फेंकने के बाद कई परिस्थितियों में दल का काम कैसे चलेगा इस पर भी सुखदेव से बात करनी थी। दल के निर्णय के अनुसार ७ अप्रैल १९२९ को प्रातः मैं लाहौर पहुँच गया।

दिन भर दल के मसलों पर बात करने के बाद सुखदेव शाम को थोड़ी देर के लिये बाहर चला गया और वापस आया एक नये साथी को लेकर—यह नये साथी खाकी निकर और खाकी मोज़ों पर सुरमई रंग का शिकारी कोट पहने थे। सिर पर रोयेंदार पंजाबी टोपी और हाथ में एक छोटा बेंत था। दिल्ली की तरफ़ आम तौर पर ख़ोफ़िया पुलिस वाले इसी बाने में रहते थे। लम्बे छरहरे किस्म की दो सतर्क आँखें रही-सही कमी पूरी कर रही थीं। अगर वह महाशय सुखदेव के साथ न आये होते तो उन्हें देख कर कम से कम एक बार भागने की ज़रूर सोचता।

यह नये साथी उमर में मुझ से कुछ बड़े होते हुये भी मेरे मुकाबिले में काफ़ी चुस्त, फुर्तीले और मुस्तैद थे। दल में इस प्रकार के साथियों का अपना महत्व था और सच बात तो यह है कि उस समय उनकी चुस्ती, फुर्ती और ढंग-ढर्रे का मेरे ऊपर काफ़ी रोब पड़ा। उस जीवन में परिचय का रिवाज नहीं था लेकिन उनका सुखदेव के साथ बम फैक्टरी में आना इस बात का सबूत था कि वे दल के ही कोई जिम्मेदार साथी हैं। अस्तु, थोड़ी ही देर में आपसी व्यवहार में हम काफ़ी बे-तकल्लुफ़ हो गये। मैंने उन्हें इन्स्पेक्टर साहब का नाम दे दिया और उन्होंने मेरे कम और देर में बोलने के कारण मेरा नाम wise man of the East (पूरविया ज्ञानी) रख दिया।

उस दिन हथियार न मिल सकने के कारण लाहौर में एक दिन और ठहरना पड़ा। दूसरे दिन शाम को वे फिर आये। उनके हाथ में एक उर्दू अख़बार का सप्लिमेन्ट था। कुछ कहे बग़ैर उन्होंने वह अख़बार खोल कर हम लोगों के सामने बिछा दिया—भगत सिंह और दत्त असेम्बली में बम फेंक कर

गिरफ़्तार हो गये थे। कल वाला मज़ाकिया, चुहलबाज़ व्यक्ति कुछ देर किसी गम्भीर चिन्ता में डूबा रहा; फिर सुखदेव से अलग कुछ सलाह की और एक रिवाल्वर निकाल कर मेरे हवाले करते हुये सुखदेव से कहा,—"इन्हें जल्द यहाँ से वापस जाना चाहिये।" बमों के खोल और मसाला आदि सुखदेव ने पहले ही मेरे सिपुर्द कर दिया था।

यशपाल से दुबारा मुलाकात हुई अण्डमन से वापस आने पर १९३८ में। पंजाब से जब हम नैनी लाये गये तो यशपाल अस्पताल में थे। यहाँ दुबारा उनसे मिलने पर उनका एक नया रूप देखने को मिला। समाचार पत्रों ने उन्हें दल के एक सफल सैनिक एवं आज़ाद के बाद हि० स० प्र० स० के सेनापति के रूप में पेश किया था किन्तु जेल में उनका एक नया व्यक्तित्व जन्म ले रहा था—साहित्यकार एवं कलाकार का व्यक्तित्व।

यों तो यशपाल ने कहानियाँ, उपन्यास, एकांकी, निबन्ध, व्यंग आदि सभी कुछ लिखा है लेकिन मेरे ख्याल से साहित्यकार के रूप में वे अपनी कहानियों और व्यंग के लिये सबसे अधिक याद किये जाते हैं।

यशपाल की कहानियों में भाषण या ऊँचे सिंहासन पर बैठे ज्ञानी का उपदेश नहीं मिलता लेकिन सामाजिक रीतियों, रूढ़ियों आदि पर इतनी गहरी चोट रहती है कि कभी कभी पढ़ने वाला उन कुरीतियों के खिलाफ़ तिलमिला उठता है।

कुछ आलोचकों ने यशपाल की कहानियों में सेक्स ही देखा है। उनमें उन सामाजिक कुरीतियों, अनैतिकताओं आदि पर कितनी चोट है, इसे उन्होंने नहीं देखा है। जहाँ कुछ लेखकों की मनोवैज्ञानिक कहानियों में सुन्दर भाषा के पीछे सेक्स के प्रति लिप्सा मिलती है वहाँ यशपाल की कहानियों में समाज के डर से आचरण खो कर भी झूठी 'प्रतिष्ठा का बोझ' ढोने वालों के प्रति सहानुभूति की और उन्हें ऐसा करने पर मजबूर करने वाले समाज के खिलाफ़ एक विद्रोह की भावना मिलती है।

यशपाल की एक और विशेषता है उनका तीखा व्यंग। यह व्यंग निबन्धों में तो है ही, कहानियों में भी बराबर मिलता है। शिष्टता के साधारण स्तर को छोड़े बग़ैर और व्यंग के लिए अपने साहित्य को नीचे गिराये बग़ैर वे कभी कभी बड़ी गहरी चोट कर जाते हैं।

लेकिन मेरी निगाह में यशपाल की सबसे बड़ी चीज़ है उनका क्रांतिकारी आत्म-सम्मान। हमारे बहुत से ऐसे पुराने साथी हैं जिन्हें अपने पिछले क्रान्तिकारी जीवन पर कोई अभिमान नहीं रहा। जीवन का एक दौर कह कर उन्होंने उसे भुला-सा दिया है। इसके विपरीत यशपाल ने अपने इस अभिमान को संजो कर रक्खा है अपने इस खजाने को बचा कर रखने में मार्क्सवाद के अध्ययन ने भी उनकी काफ़ी सहायता की है। यही कारण है कि जहाँ अनेक साहित्यकारों ने पैसे को बड़ा समझ कर राजी खुशी अपनी कलम की नोक तोड़ डाली है या उसे एक विकृत रूप दे डाला है, वहाँ यशपाल ने एक क्षण के लिए भी अपनी लेखनी को बेचने या पैसों के लालच में उसके स्वच्छन्द प्रवाह को रोकने या मोड़ने की बात नहीं सोची।

आज के युग में मैं इसे साहित्यकार की सबसे बड़ी खूबी समझता हूँ। मेरा विश्वास है कि यशपाल अपने इस क्रान्तिकारी आत्मसम्मान और बड़प्पन की हिफाज़त आगे भी इसी प्रकार कर सकेंगे.

कलकत्ता

शिव वर्मा

श्री यशपाल के कुछ संस्मरण

श्री यशपाल के सम्बन्ध में लिखते हुए सबसे पहले यह बात याद आती है कि उनके सम्बन्ध में दो दृष्टियों से लिखा जा सकता है। एक तो यह कि वे अपने समय के प्रमुख क्रान्तिकारी थे, और उस सिलसिले में बहुत वर्षों तक जेलों में रहे। फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में उनके साथ मैं लगभग तीन साल रहा।

यशपाल की दूसरी हैसियत एक लेखक की हैसियत है। लेखक रूप में मैं उनका बहुत बड़ा प्रशंसक रहा हूँ। फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में रहते समय मुझे उनकी इस दिशा में साधना को प्रत्यक्ष करने का मौका मिला और उनकी प्रथम अच्छी हिन्दी कहानियाँ उन्हीं के मुँह से सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्हीं दिनों मैंने यह भविष्यवाणी की थी कि उनकी कहानियाँ बहुत उच्च कोटि की हैं और बाद में चल कर उनकी बहुत क़द्र होगी। दुर्भाग्य से जेल से छूटने के बाद उनकी सारी रचनाएँ मैं नहीं पढ़ सका, फिर भी जो कुछ मैं पढ़ता रहा, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैं मानता हूँ कि हिन्दी जगत में कथाकार के रूप में यशपाल जी की जितनी क़द्र होनी चाहिये, उतनी क़द्र नहीं हुई। यह बात केवल यशपाल के सम्बन्ध में ही नहीं हिन्दी के अन्य बहुत से लेखकों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। इस विषय में मैं इससे अधिक इस कारण नहीं कहूँगा कि इससे अधिक कहने के लिये यशपाल की सारी पुस्तकों का अध्ययन करना जरूरी हो जायेगा, जो मैंने किया नहीं। कभी समय मिला तो यह अध्ययन पूरा करूँगा।

अब मैं फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में लौटता हूँ। जब मैं वहाँ १६३१ में पहुँचा, तो श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी वहाँ मौजूद थे। आगे चलकर श्री बनर्जी के अलावा श्री यशपाल जी भी वहाँ आ गये। इस प्रकार हम तीन व्यक्ति एक बैरक में रहते रहे।

यद्यपि श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी आज भुला दिये गये हैं, पर एक क्रान्तिकारी के रूप में उनका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल रहा और यदि यह कहा जाय कि फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में यशपाल तथा मेरे जीवन में जो सबसे बड़ी घटना हुई वह उनकी शहादत थी, तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस समय का विवरण लिखते हुये हमने 'क्रान्तिकारी की आत्मकथा' में लिखा है—इस जेल में यशपाल भी आये। वे बी० श्रेणी में थे, और सीधे हमारे यहाँ पहुँचाये गये। मणीन्द्र बनर्जी और मैं उनको साथी रूप में

पा कर बहुत खुश हुए। सन् १६२६ के २३ दिसम्बर को दिल्ली के पास लार्ड इरविन की गाड़ी को उड़ाने की चेष्टा हुई थी, उसके लिए वे ही ज़िम्मेदार थे। उसके बाद से वे फ़रार थे। इलाहाबाद में आयरिश महिला श्रीमती सावित्रीदेवी के मकान पर पुलिस की गोली का जवाब गोली से देने के बाद गिरफ़्तार कर लिये गये थे, और उनको चौदह साल की सज़ा हुई थी। भगतसिंह के बाद के युग के मुख्य क्रान्तिकारी नेताओं में उनकी गिनती है। क्रान्तिकारी रूप में उनका जीवन बहुत ही घटना-बहुल तथा रोमांचकारी रहा। उन्होंने बाद की जो कहानियाँ लिखीं, उनमें से कई उनके जीवन के इस तूफ़ानी युग को प्रतिध्वनित करती हैं। उनकी सबसे अच्छी कहानियाँ फतेहगढ़ में ही इन दिनों लिखी गयीं, और हम दोनों उनके प्रथम पाठक थे। जल्दी ही सी० कलास में दो और राजनैतिक कैदी आये, जिनका नाम रणधीरसिंह सचान और रेवतीसिंह सचान था। इन लोगों ने अपना एक क्रान्तिकारी गुट बनाया था, किन्तु कुछ करने के पहले ही गिरफ़्तार कर लिये गये थे। इनके अतिरिक्त और भी राजनैतिक कैदी आये।

यद्यपि हम तीनों को अन्य राजनैतिक कैदियों से, बल्कि अन्य सभी कैदियों से, अलग रखा जाता था, और हमसे केवल अपने नम्बरदारों, भंगी तथा बावर्ची से भेंट होती थी, फिर भी हम जेल के अन्य भागों में रहने वाले राजनैतिक कैदियों के साथ पत्र-व्यवहार करने लगे थे। कई बार रमेश और रणधीर (रमेश केवल इस चक्कर में दिन में काम करने के लिए आते थे) हम लोगों से एक नाली के ज़रिये से बातचीत कर लेते थे। महीनों तक हमने एक-दूसरे की सूरत नहीं देखी, किन्तु फिर भी हम लोग बात करते थे। स्वाभाविक रूप से इस जेल के जितने भी राजनैतिक कैदी थे, वे सब सलाह, खबर तथा सहायता के लिये हम लोगों का मुँह ही ताकते थे। स्वभाव से मणीन्द्र बनर्जी अधिक इधर-उधर जाना पसन्द नहीं करते थे। यही हाल यशपाल का था, इसलिए सी० श्रेणी के कैदियों के साथ तिकड़म से सम्बन्ध रखने का सारा भार मेरे ही ऊपर रहा, और इस प्रकार मैं राजनैतिक कैदियों के बीच एक 'मिलाने वाले अफसर' की तरह हो गया।

एक दिन हमें यह खबर मिली कि हैड जेलर लेडली ने चन्द्रमासिंह नामक एक राजनैतिक कैदी को गिरा कर मारा है, इस खबर को सुन कर हम चकित हो गये। इसके प्रतिवाद के रूप में चन्द्रमासिंह ने फौरन ही अनशन कर दिया था।

जब लेडली के इस अत्याचार तथा साथ ही चन्द्रमासिंह के अनशन की खबर हम तक पहुँची, तो हम बहुत क्रुद्ध हुए। हम सोच ही रहे थे कि क्या करना चाहिये, इतने में हमें यह खबर मिली कि रमेश को कोठरी, बेड़ी और चक्की दी गई है। अब हम न रुक सके। हम यथेष्ट आराम से थे, और हमें कोई शिकायत नहीं थी, किन्तु सी० श्रेणी के कैदियों के दुखों ने हमारे मन को हिला दिया। थोड़ी देर सलाह-मशविरा करने के बाद यह तय पाया कि इस जेल के सब राजनैतिक कैदी अनशन कर दें। तीन-चार दिन अनशन के अन्दर ही हम तीनों को अलग-अलग कर दिया गया। हमें ले जा कर एक दूसरे चक्कर की एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। मणीन्द्र का स्वास्थ्य सब से खराब था, और उस समय वे बीमार भी थे, इसलिए उनको उसी स्थान पर रखा गया, जहाँ हम रहते थे। यशपाल को भी हटा दिया गया, किन्तु सी० श्रेणी के कैदियों के साथ जो कुछ हुआ, उसको देखते हुए हमारे साथ तो कुछ भी नहीं हुआ।
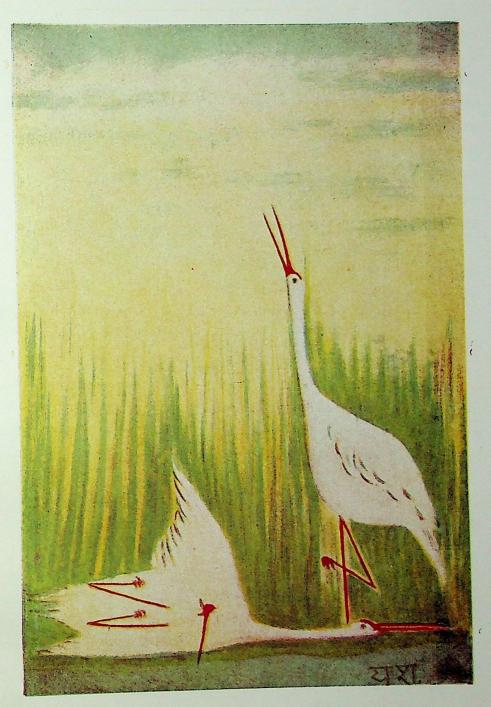
मृत्तिकाश्रुमय शरीर—*Homme d' argile et de larme.*

(श्री यशपाल द्वारा जेल में बनाया हुआ एक चित्र—२५ अगस्त १९३५.)

जो हो, अनशन के सातवें दिन हमें यह खबर मिली कि कुछ साथी कमजोरी दिखा रहे हैं, और शायद खाना खा लें। एक व्यक्ति ने शायद अनशन तोड़ भी दिया। इस पर हमें यह खबर मिली कि मणीन्द्र बनर्जी के स्वास्थ्य की हालत बहुत खराब है। सबसे मजेदार घटना तो यह हुई कि अनशन के आठवें दिन शाम को मुझे यह खबर मिली कि चन्द्रमासिंह, जिनके कारण अनशन हो रहा था, उन्होंने ही अनशन भंग कर दिया, और खाना खा लिया। मुझे इस खबर से इतना आश्चर्य हुआ कि मैंने पहले विश्वास करने से इनकार किया। मैंने सोचा, किसी प्रकार अधिकारीवर्ग मुझे बेवकूफ़ बना रहे हैं, किन्तु शाम को ही इस खबर की पुष्टि भी हो गई। स्वाभाविक रूप से इस प्रकार चन्द्रमासिंह के अनशन के टूट जाने से अनशन की रीढ़ टूट गई। यहाँ पर चन्द्रमासिंह के प्रति न्याय करने के लिए यह अवश्य बता दिया जाय कि उन्होंने जिन परिस्थितियों में अनशन तोड़ा था, वह अनुचित नहीं कहा जा सकता। बात यह है, लेडली ने जब इस अनशन को ज्यादा बढ़ते हुए देखा, तो वह उनके पास अकेले गया। सब कैदियों को हटवा दिया, और उनके पैर पर टोप रख दिया। इसके अतिरिक्त चन्द्रमासिंह यह भी शायद नहीं जानते थे, कि और लोग उनकी सहानुभूति में अनशन कर रहें हैं। ऐसी हालत में उनका अनशन तोड़ना बिलकुल उचित था। जो हो, जब यह खबर मुझे मालूम हुई, तो मैंने यह निश्चय कर लिया कि अब अनशन तोड़ देना चाहिये। अवश्य इस समय हमें यह 'टोप पैरों पर रखने वाली' बात ज्ञात नहीं थी। मैंने अपनी कोठरी से यह खबर भेजी, कि मैं अनशन तोड़ने के सम्बन्ध में उनसे मिलना चाहता हूँ। संक्षेप में सारी घटना यह है कि नवें दिन शाम तक मैं जेल में सर्वत्र जा कर साथियों से अलग-अलग मिला और अनशन समाप्त हो गया।

मणीन्द्रनाथ बनर्जी का स्वास्थ्य गिर चुका था, और वह दिन-ब-दिन और गिरता जा रहा था। कुछ दिनों तक तो ऐसा ज्ञात हुआ कि उनका स्वास्थ्य सुधर रहा है, किन्तु एक समय के बाद उनका स्वास्थ्य निर्णयात्मक रूप से नीचे की ओर जाने लगा। अधिकारी वर्ग ने अपने स्वभाव के अनुसार उनके स्वास्थ्य की कोई परवाह नहीं की, और वे शय्यागत हो गये। बाद को वे अस्पताल ले जाये गये। उनके पेशाब की जाँच करने के बाद यह मालूम हुआ, कि उसमें अलबुमेन जा रहा है। फिर वे सन् १९३४ २० जून को बहुत ही दुःखजनक परिस्थितियों में शहीद हो गये।

जिस समय श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी शहीद हुये, उस समय यशपाल और मैं दोनों उनकी शय्या के पास बैठे थे। हम लोग याने श्री यशपाल तथा मैं अपने बैरक में थे, इतने में जेलर हमें बुलाकर मणीन्द्रनाथ के पास ले गया। उसने जिस ढंग से हम लोगों को अस्पताल में ले जाना चाहा, वह साम्राज्यवाद की हृदयहीनता का परिचायक है। उसने कहा—मि० बनर्जी की हालत बहुत खराब है। क्या आप उनसे मिलना चाहते हैं?—उसने हमारे हाँ करने पर कहा—आगामी दस मिनटों के अन्दर मि० बनर्जी का मरना निश्चित है।

इस खबर को सुन कर हम लोग दौड़े हुए गए और अस्पताल में मणीन्द्र के पास पहुँचे। मालूम हुआ कि मणीन्द्र के घर वालों को तार भी नहीं दिया गया है, तब हम लोगों ने तार दिलाने की व्यवस्था की। इसके बाद हम लोग इधर उधर की बातें केवल इसलिए करते रहे कि मणीन्द्र को यह विश्वास हो कि उनकी हालत कुछ अधिक खराब नहीं है। धीरे-धीरे उनकी हालत और बिगड़ती चली

गई। जब अन्तिम अवस्था आई तो वहाँ कोई डाक्टर मौजूद नहीं था। ठीक सवा चार बजे दिन (यह २० जून १९३४ की बात है) मणीन्द्र मेरे सीने पर लुढ़क कर गिर पड़े। मैंने उनके शिथिल मस्तक को अपनी गोद में रख लिया। मैं मणीन्द्र मणीन्द्र कह कर बड़े जोर से चिल्लाया। किन्तु कुछ भी उत्तर न मिला। श्री यशपाल उस समय डाक्टर को बुलाने गए, किन्तु डाक्टर उस समय सो रहा था। अन्त में जब डाक्टर आया, तो मणीन्द्र के हाथ पैर छटपटा रहे थे और उनका अन्तिम समय करीब था। एक इन्जेक्शन दिया गया, पर उससे कोई काम नहीं बना। इस प्रकार यशपाल तथा मैं अपनी आँखों के सामने भारत के एक देशभक्त तपस्वी की अन्तिम घड़ियों के साक्षी रहे।

इसके कुछ दिन बाद देश में आन्दोलन के साथ साथ जेल के अन्दर भी राजनीतिक कैदियों की लड़ाई जारी रही। राजनीतिक कैदियों की लड़ाई के फलस्वरूप (जिसमें श्री योगेश चटर्जी का सुदीर्घ अनशन सबसे अधिक उल्लेख योग्य है) सरकार ने क्रान्तिकारी कैदियों को नैनी में एकत्र करना स्वीकार किया। यशपाल भी वहाँ पहुँच गए।

फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में यशपाल अपना समय दो कामों में लगाते थे, एक तो पठन-पाठन और लिखना और दूसरा बाग़वानी। मणीन्द्र बनर्जी को भी बाग़वानी का बहुत शौक रहा। मैं भी इन लोगों के साथ साथ कुछ कुछ बाग़वानी करता। हम लोगों ने अपने बैरक के इर्द-गिर्द बहुत सुन्दर बाग़ बनाया था। बेला, चमेली, गुलाब के अतिरिक्त मौसमी फूलों का भी प्राचुर्य रहता था। इसके अलावा हम सभी लोग कुछ न कुछ व्यायाम भी करते थे। आज हम उस जीवन से बहुत दूर हैं, इसलिए यह कहने में हर्ज नहीं कि सचमुच वह बैरक और उसके इर्द-गिर्द का हाता एक तपोवन-सा था

हम लोगों पर दो नम्बरदारों का दिन-रात पहरा रहता था। इनमें से एक मुसलमान और एक हिन्दू होता था, वह इसलिए कि ये आपस में मिल न जायें और हमें जेल से भागने न दें। जो लोग बड़ी बड़ी किताबें पढ़ कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अन्तरंग बातों को समझने की कोशिश करते हैं, हमें अपने दीर्घ जेल जीवनों में वह ज्ञान स्वतः प्राप्त हो जाता था।

एक साथी के रूप में श्री यशपाल वैसे ही साथी थे, जैसे कि पढ़ने लिखने वाले लोगों के लिए रहते हैं। बाहर क्रान्तिकारी रूप में उनके कार्य का मुझे कोई प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है, पर वे एक प्रमुख क्रांतिकारी रहे, इसमें सन्देह नहीं। मैं फतेहगढ़ जेल के उन दिनों को अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों में मानता हूँ।

दिल्ली

मन्मथ नाथ गुप्त

यशपाल

यशपाल से मेरा परिचय न घना है न पुराना—उस इन्द्रधनुष के परिचय-सा है, जिसका एक सिरा नीचे के बादलों में गुम हो और दूसरा आकाश के विस्तार में खो गया हो और दो-चार बार ही जिसकी झलक मुझे मिली हो।

यशपाल के अतीत को मैं अधिक नहीं जानता, केवल इतना सुना है कि स्व० चन्द्रशेखर आज़ाद की 'सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' से उनका सम्बन्ध था। उन्होंने 'बम की फ़िलासफ़ी' नामक पेम्फ़लेट लिखा था, जिसकी उन दिनों बड़ी चर्चा थी। लाहौर षड्यंत्र तथा गवर्नर की गाड़ी को उड़ाने आदि के मामलों से उनका गहरा सम्बन्ध था। बहुत समय तक वे पुलिस के हाथ नहीं आये। जब आये तो चन्द्रशेखर आज़ाद शहीद हो चुके थे। तब वे इलाहाबाद में पकड़े गये। आठ वर्ष की सज़ा हुई। १९३७ में कांग्रेस ने जब सरकार से सहयोग किया और प्रान्तों में कांग्रेस सरकारें बनीं तो यशपाल भी रिहा हुए। जेल ही में उनकी शादी प्रकाश जी से हो गयी थी, जो स्वयं क्रान्तिकारिणी रही थीं अथवा यों कहना चाहिए कि प्रकाश जी ने अधिकारियों से प्रार्थना कर श्री यशपाल से शादी कर ली थी। अभी यशपाल की सज़ा काफ़ी शेष थी, पर बीमार हो जाने और डाक्टरों के यक्ष्मा घोषित करने से उन्हें छोड़ दिया गया। पंजाब के किस प्रदेश में उन्होंने जन्म लिया, कहाँ पले, पढ़े? क्रान्तिकारी बनने से पहले क्या करते थे? क्रान्तिकारी दल में उनका क्या स्थान था? ये और उनके अतीत की बीसियों बातों का मुझे कोई ज्ञान नहीं। उनका अतीत काफ़ी घटनामय रहा है, भविष्य कैसा रहेगा, इसके सम्बन्ध में भी मैं कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि पुरुष का भाग्य जब देवता नहीं जानते तो मैं मनुष्य क्या जानूँगा। कुछ वर्षों के सम्पर्क में उनकी जो झलक मैंने व्यक्तिगत रूप से देखी वही मेरी निधि है और उसी की झलक मैं दूसरों को दिखा सकता हूँ।

यशपाल को पहली बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शिमला अधिवेशन में देखा और इस बात के अतिरिक्त कि मैंने क्रान्तिकारी यशपाल को देख लिया है, अन्य किसी बात का प्रभाव मेरे मन पर नहीं रहा। बात यह थी कि सन् १९२८-२९ की सनसनियों का ज़माना बीत चुका था, भगत सिंह को और राजगुरु को फाँसी लगे वर्षों हो गये थे। कांग्रेस असहयोग की नीति को छोड़ कर सरकार के साथ सहयोग कर रही थी। इसलिए यशपाल उस ज़माने की राजनीति में महत्व खो बैठे थे। यदि मुझे कहीं उन्हें उस ज़माने में देखने का अवसर मिलता जब देश भर में 'हिन्दुस्तान सोशलस्टि रिपब्लिकन आर्मी' की सरगर्मियों के चरचे थे तो मुझे विश्वास है कि न केवल यशपाल को देखने की प्रबल

उत्कंठा मेरे मन में होती, वरन् उस भेंट का गहरा प्रभाव भी मेरे मन पर रहता। १६३८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर पधारने वाले प्रतिष्ठित सज्जनों में से वे भी एक थे और उनकी अपेक्षा कई अन्य व्यक्तित्व मेरे लिए अधिक महत्व रखते थे, इसलिए उस भेंट को मैंने महत्व नहीं दिया।

लेकिन शिमला के उस अधिवेशन की अस्पष्ट-सी याद आज भी मेरे हृदय में बनी हुई है। हम लोग चोर बाज़ार की नयी-नयी बनी धर्मशाला में ठहरे थे। ऊपर की मंज़िल पर थियेटर अथवा सिनेमा का हाल था। हाल का फ़र्श लकड़ी का था। वहीं हम लोगों के बिस्तर लगे थे। यह जान कर कि क्रान्तिकारी यशपाल भी हाल ही में ठहरे हैं, उन्हें देखने की उत्सुकता हुई। बच्चन, सुमन आदि स्टेज पर बिस्तर जमाये थे, वहीं मैं यशपाल को देखने गया। पहली दृष्टि में मुझे यशपाल में क्रान्तिकारियों-की-सी कोई बात न लगी अथवा यह कहना ठीक होगा कि अपनी कल्पना में क्रान्तिकारियों का जो रूप मैंने बना रखा था, यशपाल उस पर पूरे न उतरे। मैंने क्रान्तिकारी अज्ञेय का जेल से छूटने के बाद लिया गया चित्र देखा था। हृष्ट-पुष्ट देह, लम्बे-लम्बे घुंघराले बाल, गहरी अनुभूति-प्रवण आँखें, नंगे शरीर पर धोती और चादर। यही चित्र 'भग्न दूत' में छपा भी था। उसी के अनुरूप मैंने यशपाल की कल्पना की थी। हृष्ट-पुष्ट देह की बात न सही, लेकिन लम्बे बालों और कुछ बेपरवाही के भाव की आशा तो थी ही। मैंने देखा—बढ़िया सूट पहने हुए मँझले क़द और साँवले रंग का एक युवक, सफ़ाई से कटे-छँटे छोटे बाल, चौड़े खुले-खुले वक्ष मोटे ओंठ, घनी भवें और पिचके हुए कल्ले। किसी क्रान्तिकारी के बदले मुझे यशपाल किसी बिगड़े हुए ईसाई युवक-से लगे। तब मेरी उत्सुकता का केन्द्र यशपाल के बदले बच्चन अधिक थे। मैं नया-नया उर्दू से हिन्दी में आया था। सरल होने के कारण बच्चन की कविताएँ मुझे बड़ी अच्छी लगती थीं। उनका काव्य था भी अपनी जवानी पर और—

> इस पार प्रिये तुम हो मधु है,
> उस पार न जाने क्या होगा?

तथा—

> मिट्टी का तन मस्ती का मन,
> क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।

आदि बच्चन की कविताएँ मुझे कंठस्थ थीं। इसलिए एक नज़र यशपाल को देखने के बाद मेरा ध्यान बच्चन की ओर मुड़ गया। बिलकुल उसी तरह जैसे अजायबघर में आदमी प्राचीन काल की किसी अनूठी चीज़ को एक नज़र देख कर फिर नये ज़माने के अजायबात को देखने के लिए बढ़ जाय।

लेकिन सभी मेरे जैसे हों, यह बात नहीं। दिल्ली के पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री सुबह शाम यशपाल के पीछे पड़े रहते थे। वे 'हिटलर महान' और 'मुसोलिनी महान' का सृजन करने के बाद उन दिनों भारतीय क्रान्तिकारियों के इतिहास का निर्माण कर रहे थे। लिखे मसौदे का पुलन्दा बगल में दबाये, वे सुबह-शाम यशपाल को घेर लेते थे। × × × एक सुबह हम 'जाकू' की सैर को गये तो शास्त्री जी से मेरी झड़प हो गयी, छेड़ा पहिले उन्होंने ही था, मैंने उत्तर दिया तो वे झुँझला उठे। स्वयं मजाक करके दूसरे के मज़ाक को सहना हर किसी के बस का है भी नहीं। × × ×

मित्र ठहाके पर ठहाके लगाने लगे। बच्चन, सुमन और दूसरे मित्रों के साथ-साथ यशपाल भी थे। मुझे अच्छी तरह स्मरण है, वे चुपचाप अपने बड़प्पन को लिये-दिये साथ-साथ चलते रहे। बच्चन, सुमन तथा अन्य मित्र हँसी-ठठोली में भाग लेते रहे, पर यशपाल मुस्कराये शायद हों, यद्यपि इसकी याद मुझे नहीं, परन्तु एक बार भी उनके कंठ से ठहाका नहीं निकला। × × × जाकू की वह सैर और उसकी ऊँचाई पर बैठ कर सुनी हुई कविताओं का माधुर्य सदा के लिए मेरे मन पर खुशगवार असर छोड़ गया। यशपाल से भी शिमला में भेंट हुई है, इस बात को मैंने कोई महत्व नहीं दिया।

लेकिन धीरे-धीरे शिमले की वह भेंट, जिसमें हम एक दूसरे से बोले तक नहीं, महत्व प्राप्त कर गयी और तब बारह-तेरह साल बाद गतवर्ष अलमोड़ा में उनसे मिला तो मैंने उसी भेंट का तार पकड़ा। बात यह हुई कि यशपाल से मिलने पर भी जो परिचय गहरा न हुआ था, वह बिना मिले गहरा होता चला गया और उसी अनुपात से शिमले की वह भेंट महत्व प्राप्त करती गयी।

शिमला से आने के बाद मैंने सहसा 'विशाल भारत' में एक कहानी देखी। शीर्षक था 'परसराम' और रचयिता का नाम लिखा था—यशपाल। उन दिनों मेरे परिचितों में दो यशपाल थे। लाहौर के यश जी—'हिन्दी मिलाप' के मालिक महाशय खुशहालचन्द के छोटे लड़के—जो उन दिनों अपने भाई श्री रणवीर सिंह 'वीर' के अनुकरण में कहानी लिखने लगे थे और दूसरे दिल्ली के यशपाल—श्री जैनेन्द्र के सहृदय भानजे—जो अपने मामा की हर गतिविधि का व्योरा रखने के साथ स्वयं भी कभी-कभी कहानी लिख लेते थे।

× × × कहानी पंजाब के पहाड़ी प्रदेश की थी। चन्द सतरें पढ़ने पर फिर खयाल आया कि शायद लाहौर के यश जी की है, पर ज्यों-ज्यों मैं कहानी पढ़ता गया, महसूस करता गया कि यह उन दोनों में से किसी की भी नहीं हो सकती। × × × तब सहसा खयाल आया कि कहीं यह क्रान्तिकारी यशपाल की कहानी न हो? किसी से सुना था कि वे भी कहानी लिखते हैं और लखनऊ से पत्र निकालने जा रहे हैं। कुछ दिन बाद मैंने अनारकली के चौराहे में फ़ज़ल के स्टाल पर 'विप्लव' के दर्शन भी किये। खरीदने की शक्ति तब थी नहीं, 'विप्लव' को देख कर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि कहानी क्रान्तिकारी यशपाल ही की है। इस विश्वास के साथ शिमला की वह भेंट विस्मृति के गर्त से निकल कर सामने आ गयी।

यदि मैं लाहौर रहता। 'विप्लव' खरीद कर अथवा कहीं से लेकर उसमें यशपाल की चीज़ें पढ़ता तो मैं निश्चय ही उस संक्षिप्त परिचय को घनिष्ट बनाने का प्रयास करता। पर मैं प्रीतनगर चला गया।

× × × बहुत दिन बाद, याद नहीं, प्रीतनगर में, लाहौर अथवा दिल्ली में, मैंने यशपाल की एक और कहानी पढ़ी—'ज्ञानदान' और यद्यपि न मुझे कहानी के आधारभूत विचार में नवीनता लगी और न 'परसराम' सा प्यारापन, पर उससे यशपाल के कहानीकार की शक्तिमत्ता का ज़रूर अभास मिला। उर्दू के प्रसिद्ध कहानीकार मंटो की भाँति यशपाल का कथाकार भी अपने पाठकों को चौंका देना पसन्द करता है। मंटो की इस 'शॉक टेकनिक' का उल्लेख करते हुए उर्दू की एक दूसरी प्रसिद्ध कथाकार 'इस्मत' ने लिखा है कि मंटो को, बातचीत हो अथवा साहित्य, अपने सुनने और पढ़ने वालों को चौंकाना अधिक रुचिकर है। यदि लोग साफ़-सुथरे कपड़े पहने बैठे हों तो मंटो वहाँ इस लिए शरीर पर मिट्टी मले पहुँच जायगा कि लोग उसे देख कर चौंक पड़ें। यशपाल के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है या नहीं, यह मैं नहीं

जानता, हालाँकि इसमें संदेह नहीं कि मंटो ही की तरह यशपाल की कई कहानियों में यह चौंका देने वाला गुण वर्त्तमान है। 'ज्ञानदान' के बाद 'प्रतिष्ठा का बोझ' और 'धर्मरक्षा' इसके उदाहरण हैं, पर यशपाल केवल चौंकाने के लिए नहीं चौंकाते, उन्होंने अपने नये कहानी संग्रह 'फूलो का कुर्ता' की प्रथम कहानी अथवा पुस्तक की भूमिका में अपनी इन कहानियों के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि बदली स्थिति में परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने के प्रयत्न में क्या से क्या हुआ जा रहा है, समाज अपने आदर्शों को ढँकने के प्रयास में कितना उघड़ता चला जा रहा है, प्रगतिशील लेखक यही बताना चाहता है और समाज को उसकी बातें बड़ी उघड़ी-उघड़ी लगती हैं।

जो भी हो, इन कहानियों के मुकाबले में कहीं सुन्दर कहानियाँ यशपाल ने लिखी हैं, जिनकी आर्द्रता और समवेदना, जिनके आधारभूत विचारों की यथार्थता और उस यथार्थता को कहानी में रखने के ढंग की नवीनता अपूर्व हैं। × × 'पराया सुख', 'राज़', 'उसकी जीत', 'गँडेरी', 'धर्म युद्ध' और 'ज़िम्मेदारी' तो बहुत ही सुन्दर बन पड़ी हैं। 'सन्यास', 'दो मुँह की बात', 'सोमा का साहस', 'दूसरी नाक' आदि कितनी ही कहानियाँ हैं, जो दोबारा पढ़ने पर भी उतना ही आनन्द देती हैं।

लेकिन मैं १९४७ तक 'परसराम' और 'ज्ञान-दान' के अतिरिक्त यशपाल की कोई कहानी न पढ़ पाया। प्रीतनगर से मैं सीधा ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली में आया। × × ×एक दो बार फ़तेहपुरी की एक दुकान पर यशपाल की पुस्तकें दिखायी दीं, पर ख़रीद न पाया। जिस प्रकार यशपाल कहानी के शीर्षक की चिन्ता नहीं करते उसी प्रकार मुख-पृष्ठ पर ध्यान नहीं देते। आर्ट पेपर और जिल्द की बात तो दूर रही अच्छी क्वालिटी का सफ़ेद कागज़ भी नहीं लगाते। यशपाल का ख़याल है कि जनता महँगी पुस्तकें नहीं ख़रीद सकती। पर मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अच्छी पुस्तकों के साथ अच्छा मुख-पृष्ठ भी चाहता हूँ और फिर मेरा ख़याल है कि जो लोग रोज़ सिनेमा देख सकते हैं, वे चाहें तो, महीने में एक-दो महँगी पुस्तकें भी ख़रीद सकते हैं। दूसरी बातों के अतिरिक्त यह बात भी मेरे मार्ग की बाधा बनी। मैं प्रायः पुस्तकें ख़रीद कर पढ़ता हूँ और अपने निजी पुस्तकालय में उन्हें अर्जित करता हूँ। यशपाल की पुस्तकें इसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं, जब तक कि उन पर फिर से जिल्द न बँधायी जाय।

दिल्ली में तीन साल बिता कर मैं बम्बई चला गया। आर्थिक कठिनाई न रही, पर जीवन और भी व्यस्त हो गया। तभी 'नया साहित्य' में मैंने यशपाल की एक और कहानी 'साग' पढ़ी। उसका व्यंग्य और तीखापन पूर्व परिचित था। उन्हीं दिनों मैं एक दिन गिरगाम में 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' किसी काम से गया और यशपाल की जितनी भी पुस्तकें दुकान पर थीं, ख़रीद लाया।

ख़रीद लाया पर पढ़ने का अवसर फिर भी न मिला। केवल एक पुस्तक पढ़ पाया 'पार्टी कामरेड'। मेरी आदत है कि जब मैं अपनी कोई चीज़ लिखता हूँ, बीच ही में किसी दूसरे की चीज़ पढ़ने लगता हूँ, यशपाल का सेट नया-नया लाया था, उस समय जाने मैं किसी फ़िल्मी कहानी का सिनारियो लिख रहा था या अपना नाटक, लिखते-लिखते जी कुछ घबराया तो यशपाल के सेट में सबसे छोटी पुस्तक उठा कर पढ़ने लगा। वहीं कुर्सी पर पीठ को पीछे लगाये, टाँगें मेज़ पर टिकाये सारी पुस्तक एक ही बार में पढ़ गया। पुस्तक बड़ी नहीं है, पर मैं काम में रत था और उस स्थिति में मेरा सारी की सारी पुस्तक को पढ़ जाना कम से कम उसके सबसे बड़े गुण—मनोरंजकता का तो द्योतक है ही। वहीं बैठे-बैठे मैंने यशपाल को एक लम्बा पत्र 'पार्टी कामरेड' के गठन और उसकी कला की सुन्दरता के सम्बन्ध में लिखा।

शिमला की उस भेंट के बाद यशपाल को यही मेरा पहला पत्र था। यशपाल ने उसका उत्तर भी दिया, पर बम्बई के व्यस्त जीवन में यह पत्र-व्यवहार अधिक दिन न चल सका। यशपाल की कहानियों का सेट भी उसी तरह पड़ा रहा। कुछ नयी किताबें आयीं, रैक की पुरानी किताबें अलमारी में चली गयीं। फिर सन् १९४६ में मैंने फ़िल्म की नौकरी छोड़ दी तो मेरी पत्नी दूसरे सामान के साथ पुस्तकें भी लाहौर ले गयी और 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' गिरगाम बम्बई से ख़रीदा हुआ यशपाल का वह सेट उस समय तक मेरे हाथ न आया जब तक मैं अपनी बीमारी के छै महीने सेनेटोरियम में काट कर, पंचगनी ही में बाहर एक बँगले में न आ गया। समय काफ़ी था। दिन-रात वर्षा होती थी। लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त और कोई काम न था। लाहौर में और तो बहुत कुछ रह गया, पर पुस्तकें बच गयीं। स्थान की तंगी के कारण भाई साहब ने उन्हें जालन्धर पहुँचा दिया था, वहाँ से वे वापस बम्बई होती हुई पंचगनी पहुँचीं। यशपाल की कहानियों के जितने संग्रह उस सेट में थे, वे सब मैंने एक साथ पढ़ डाले। × × ×

× × × प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के बाद हिन्दी में लोकप्रिय सामाजिक कहानियों का जो अभाव मुझे हिन्दी के पाठक की हैसियत से खटकता था, वह यशपाल की कहानियों को पढ़ कर बड़ी हद तक दूर हो गया। देश का विभाजन हो जाने से लाहौर हमारे लिए पराया हो गया था। मित्रों की सन्निकटता के कारण बीमारी के बाद स्वस्थ होकर हम इलाहाबाद बसने की सोच रहे थे। मेरे मन में कई बार यह विचार उठता था कि इलाहाबाद रहे तो लखनऊ जाने का अवसर अवश्य मिलेगा। लखनऊ जाऊँगा तो यशपाल से अवश्य मिलूँगा। शिमला के उस हलके से परिचय पर समय की जो धूल पड़ गयी है, उसे झाड़ कर कुछ गहरा बनाऊँगा।

लेकिन जब मैं लगभग डेढ़ साल पंचगनी में गुज़ार कर और फ़िल्म में कमाया बारह-पन्द्रह हज़ार रुपया ठिकाने लगा कर, इलाहाबाद आया तो ऐसे संघर्ष में रत हो गया जैसा पहले जीवन में कभी नहीं किया। यों तो मेरा सारे का सारा जीवन संघर्षमय रहा है, लेकिन एक ही बरस में जैसा एकाग्र संघर्ष मुझे इलाहाबाद आते ही करना पड़ा, वैसा कभी नहीं किया। यही कारण था कि दो बार लखनऊ जाने पर भी मैं यशपाल से न मिल सका। फिर जब एक दिन लखनऊ में समय निकाल कर उनसे मिलने चला तो मालूम हुआ कि सरकार ने उन्हें नज़रबन्द कर दिया है।

सन् १९४९ में गर्मी का एक डेढ़ महीना काटने के लिए मैंने अलमोड़ा जाने का निर्णय किया। रास्ते में दो दिन काम से लखनऊ रुका। यशपाल के सम्बन्ध में पता चलाया मालूम हुआ कि सरकार ने छोड़ तो दिया है पर लखनऊ से निकाल दिया है और वे अपने निष्कासन का समय भुवाली में काट रहे हैं।

भुवाली अलमोड़ा के मार्ग ही में है। यह ख़बर सुन कर मुझे प्रसन्नता हुई। सोचा कि अलमोड़ा में रहने-खाने का प्रबन्ध हो जाय तो फिर एक दिन आकर यशपाल से भी पुराने परिचय के तार नये सिरे से जोड़े जायँ।

अलमोड़ा मैं पन्त जी के कारण गया था। उनके अतिरिक्त मैं वहाँ किसी को न जानता था। 'देवदार होटल' की एक छोटी सी कॉटेज, जो एक बड़ी सुरम्य घाटी के किनारे बनी थी, पंत जी ने मेरे लिए तय कर रखी थी। नौकर भी चन्द दिन में मिल गया। श्री देव दा पन्त, श्री हरीश जोशी, श्री गणेश, श्री धर्मचन्द और अन्य बंधुओं के स्नेह में अलमोड़े का प्रवास सुखद लगने लगा। इतने में

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में छुट्टियाँ हो गयीं और 'इप्टा' के कुछ कार्यकर्ता तथा लखनऊ और ग्वालियर के कुछ युवक भी अलमोड़ा आ पहुँचे, जिनमें लखनऊ की स्टूडेण्ट यूनियन के मन्त्री भी थे। उन्हीं से मैंने एक दिन भुवाली चल कर यशपाल से मिलने की इच्छा प्रकट की। हम अभी प्रोग्राम बना ही रहे थे कि एक सुबह एक युवक ताराचन्द ने आकर बताया कि यशपाल अलमोड़ा पधारे हैं और डाक बँगले में ठहरे हैं। मैं उसी वक्त डाक बँगले को चलने के लिए तैयार हुआ, पर मालूम हुआ कि वे देव दा से मिलने गये हुए है। वापसी पर वे मुझे मिलने आयेंगे। उन्हें मेरे यहाँ होने का पता हैं और वे देव दा से मिलकर ही यहाँ आयेंगे।

देव दा, श्री सुमित्रानन्दन पंत के बड़े भाई हैं। पूरा नाम देवी दत्त पंत हैं। एडवोकेट हैं। अलमोड़ा कांग्रेस कमेटी के प्रधान हैं और अब तो भारत की पार्लियामेंट के सदस्य भी हैं। पार्लियामेंट में चोर-बाज़ारी की समस्या पर बहस के मध्य अपने भाषण में उन्होंने सौंदर्य की चोर बाज़ारी का जो उल्लेख किया, वह उनके स्वभाव की चौंका देने वाली प्रवृत्ति, दलीलों की मौलिकता और प्रत्युत्पन्न-मति का द्योतक है। उनकी बातों में उलझे यशपाल शीघ्र न लौट सकेंगे, इस बात का मुझे पूरा विश्वास था। मेरा अनुमान ठीक निकला। क्योंकि यशपाल यद्यपि उनके पास से सीधे मेरे पास आये थे तो भी एक बजने को हो आया था।

मेरी कॉटेज बड़ी सड़क से नीचे थी। सड़क से जब कोई आदमी मेरी कॉटेज को उतरता था तो अपनी खिड़की से मैं पहले ही जान जाता था। खाना खाकर लेटा ही था कि मैंने सीढ़ियों पर पाँवों की चाप सुनी और ताराचन्द को मार्ग दिखाते पाया। मैं उठ कर बैठ गया। ताराचन्द के पीछे यशपाल दुर्गा भाभी (लाहौर षड़यन्त्र केस के शहीद श्री भगवतीचरण वर्मा की पत्नी) के साथ आ रहे थे। इन दस-बारह वर्षों में यशपाल का बड़प्पन कुछ और बढ़ गया था। उनके बाल पक गये थे। घनी कालीं भवें श्वेत हो गयी थीं और चेहरे पर समय ने रेखाएँ अंकित कर दी थीं। दाँत उन दिनों वे निकलवा रहे थे, इसलिए कल्ले उनके धँसे हुए थे और जबड़े की हड्डियाँ उभरी हुई थीं। लेरिंजाइटिस अथवा उसी प्रकार का कोई गले का रोग उन्हें था। स्वर बड़ा भारी था, जो उनके व्यक्तित्व के बड़प्पन को और भी बढ़ाता था। वेश-भूषा पूर्ववत् साहबी थी। मैं दरवाज़े के बाहर निकल आया। वे खुल कर मुझसे गले मिले। फिर उन्होंने दुर्गा भाभी से मेरा परिचय कराया। मैंने नौकर से चाय बनाने को कहा और हम अन्दर आ बैठे। पहली बात जो हमने की वह शिमला के कवि सम्मेलन के सम्बन्ध में थी। यशपाल भी उसे भूले न थे। जाकू की सैर, हमारा हास-हुलास और चन्द्रशेखर शास्त्री के साथ मेरी झड़प की सब बातें उन्हें याद थीं।

यशपाल भुवाली से पैदल पहाड़ी प्रदेश की सैर करते आ रहे थे। अलमोड़ा से तेरह-चौदह मील दूर, सेबों के बाग़ के किसी जागीरदार मालिक के यहाँ दो दिन का आतिथ्य स्वीकार कर और वहाँ के अतुल शिष्टाचार और सीमित मानसिक परिधि से घबराकर निकल भागे थे। इतने बड़े जागीरदार के अतिथि कुलियों के साथ पैदल ही मीलों की मंज़िल मारते पधारे हैं, यह देख कर उन लोगों को जो आश्चर्य और उत्कंठा हुई, उसका उल्लेख मज़ा ले-लेकर यशपाल ने किया। दुर्गा भाभी को शिकायत थी कि ये महाशय जहाँ बैठते हैं, अपना वाद-विवाद ले बैठते हैं। भला वे जागीरदार क्या समझें मार्क्स और उसके सिद्धान्तों को !

बातचीत में चाय आ गयी। यद्यपि चाय का समय न था, लेकिन गर्म चाय के प्याले को यशपाल कभी नहीं ठुकराते। चाय के मध्य मैंने पूछा कि अलमोड़ा कितने दिन रहने का इरादा है? यशपाल ने कहा कि अलमोड़ा उन्हें पसन्द आया है, यदि रहने का कोई प्रबन्ध हो जाय तो वे डेढ़-दो महीने वहीं काटेंगे। मैंने कहा कि यदि एक छोटे से कमरे में आपको असुविधा न हो तो जब तक मकान का प्रबन्ध नहीं हो जाता, आप यहाँ दूसरे कमरे में आ जाइए।

यशपाल ने उठ कर कमरा देखा। पहले उसमें फर्श नहीं था। चूँकि पन्द्रह-बीस दिन बाद कौशल्या-मेरी पत्नी—बच्चे को लेकर आने वाली थी, इसलिए मालिक मकान से कह कर मैंने उसमें फर्श लगवा दिया था। कमरा काफी छोटा था, पर यशपाल ने कहा कि ठीक है और यदि मुझे कोई असुविधा नहीं तो उन्हें भी नहीं। फिर उन्हें कौशल्या के आने का खयाल आया, पर मैंने कहा कि अव्वल तो कौशल्या बीस एक दिन बाद आयेगी, तब तक आपको मकान मिल जायगा और यदि न भी मिला तो आप दोनों उस कमरे में रह लीजिएगा और हम दोनों इस कमरे में रह लेंगे, और यशपाल संतुष्ट हो गये। मैं तो चाहता था कि वे उसी शाम उठ आयें, पर यशपाल सब से पहले बाज़ार की सैर करना चाहते थे, इसलिए तय हुआ कि रात डाक बँगले ही में गुज़ारेंगे, दूसरे दिन सुबह ही मेरे यहाँ आ जायँगे।

यशपाल सात दिन मेरे साथ रहे। इस बीच में देव दा ने 'शक्ति-कार्यालय' का एक कमरा उनके लिए ख़ाली करा दिया और यशपाल वहाँ उठ गये। 'शक्ति-कार्यालय' मेरी कॉटेज से आध-एक फ़रलांग ही के अंतर पर था, इसलिए उन सात दिनों के निकट साहचर्य के बाद भी मैं जब तक अलमोड़ा रहा, यशपाल से रोज़ साँझ-सबेरे, एक न एक बार भेंट होती रही। अलमोड़ा के बाद भी मुझे दो-तीन बार उनसे लखनऊ में मिलने का अवसर मिला और मुझे यशपाल को कुछ निकट से देखने का संयोग प्राप्त हुआ।

यशपाल में सबसे पहले जो बात मुझे अच्छी लगी और जिससे मुझे ईर्ष्या भी हुई, वह उनका लिखने का ढंग है। यशपाल दिन भर सैर-सपाटा और गप-शप करके रात-रात भर लिख सकते हैं। मैं जीवन में पहले भी अधिक सैर-सपाटा, इच्छा रहने के बावजूद, नहीं कर पाया और अब तो शरीर में उतनी शक्ति ही नहीं। यशपाल को सैर-सपाटे का बेहद शौक है। अज्ञेय की भाँति वे भी काफ़ी पैदल घूमे हैं। उनकी कई कहानियाँ और लेख इस बात के साक्षी हैं। अलमोड़ा में आते ही उन्होंने सारे बाज़ार अच्छी तरह देख डाले। दुर्गा भाभी को उनसे भी अधिक घूमने का शौक है। कई बार मैंने देखा कि यशपाल थके हैं, पर दुर्गा भाभी तैयार हुई तो वे भी सैनिक झोला कंधे पर लेकर तैयार हो गये। मैं इधर वर्षों से सैर-सपाटे का आनन्द नहीं ले पाया और जब यशपाल अपने मित्रों के संग घूमते रहे, मैं अपनी कॉटेज में बन्द लिखता-पढ़ता रहा।

लेकिन दो बार तो उन्होंने मुझे भी साथ घसीट ही लिया। एक बार हम सब सितोला की पिकनिक को गये। सितोला की पहाड़ी देवदार होटल से सात-आठ मील दूर है। वहीं खाना-वाना रहा। खूब आनन्द आया, लेकिन मैं बेहद थक गया और फिर दूरी और चढ़ाई की सैर पर न जाने का प्रण करके अपने कॉटेज में पड़ा रहा।

एक रात बाज़ार की काफी सैर करके हम लौटे तो चाँद निकल आया था। यशपाल ने तब देवदार होटल के बहुत ऊपर, नीचे से दिखायी पड़ने वाली कैंटोन्मेंट के देवदारों की पंक्ति को देखने का प्रस्ताव किया। साढ़े नौ बज चुके थे। साधारणतः उस समय मुझे सो जाना चाहिए। लेकिन यशपाल ने

साथ घसीट लिया। भरी चाँदनी में गगनचुम्बी देवदारों की छाया में कैंटोन्मेंट की एकाकी सड़कों पर घूमने में जो आनन्द आया वह अकथ्य है। ऊपर जाकर हम गिरजे के एक ओर बैठ गये, चाँदनी में गिरजा किसी खोये हुए स्वप्न-महल-सा दिखायी दे रहा था और नीचे घाटी और देवदार के पेड़, हल्की-हल्की हवा की सरसराहट और चाँद......मैं इतनी रात गये शायद कभी घर से न निकलता। कैंटोन्मेंट की उन सड़कों, वीथियों, और देवदार की उन पंक्तियों में चाँदनी का जो दृश्य मैंने देखा उसके लिए मैं यशपाल का आभारी हूँ।

यशपाल प्रायः दो एक बैठकों में ही चीज़ लिख लेते हैं, पर वे लिखे को वेद-वाक्य नहीं समझते। मेरी तरह बार-बार काँट-छाँट भी नहीं करते, पर जैनेन्द्र की तरह उसे अन्तिम भी नहीं समझते। दूसरी बार वे लिखी चीज़ को देखते हैं तो उसे काँट-छाँट भी देते हैं।

लोगों को यशपाल के अहं से शिकायत है। मैंने पंचगनी में ही प्रयाग के प्रगतिशील लेखक सम्मेलन (१९४७) के सम्बन्ध में हंस राज 'रहबर' का रिपोर्ताज पढ़ा था, जिसमें उन्होंने यशपाल के अहं की ओर इशारा किया है कि यशपाल को अपने सिवा कोई कथा-लेखक अच्छा नहीं लगता। ××× अलमोड़ा में यशपाल मेरे यहाँ ठहरे तो मुझे 'रहबर' के लेख की याद आ गयी। मैंने तय कर लिया कि मैं अपनी कहानियों के बारे में उनसे बिलकुल बात न करूँगा। लेकिन कौशल्या ने तब प्रकाशन का काम आरम्भ कर दिया था और पहली पुस्तक 'पिंजरा' छापी थी, जिसका पहला संस्करण 'सामयिक-साहित्य सदन' लाहौर से हुआ था और कई वर्षों से अप्राप्य था। उस पुस्तक की दो प्रतियाँ कौशल्या ने मुझे अलमोड़ा भेजी थीं। यशपाल ने 'पिंजरा' देखकर उसे पढ़ने की इच्छा प्रकट की। यह भी कहा कि दुर्भाग्य से उन्होंने मेरी कोई भी कहानी नहीं पढ़ी। मैंने 'पिंजरा' उन्हें भेंट किया और कहा कि यद्यपि इसमें मेरी दस-बारह साल पुरानी कहानियाँ संकलित हैं, पर कुछ बहुत अच्छी हैं। यशपाल ने पुस्तक सधन्यवाद ले ली और कहा कि वे रात को सोते समय कुछ कहानियाँ पढ़ेंगे।

यशपाल पुस्तक अपने कमरे में रख कर दुर्गा भाभी के साथ सैर को चले गये तो मैंने कौशल्या को पत्र लिखा कि वह 'भारती-भण्डार' से मेरा उपन्यास 'गिरती दीवारें' और मेरे सांकेतिक नाटकों का संग्रह 'चरवाहे' खरीद कर भेज दे, क्योंकि मैं दोनों पुस्तकें यशपाल को भेंट करना चाहता हूँ।

पुस्तकें दस-बारह दिन बाद आ गयीं, पर मैं उन्हें भेंट न कर सका। चुपचाप उन्हें अपने पास रखे रहा और वापसी पर जब रानीखेत रुका और वहाँ रोडवेज़ के श्री जोशी से भेंट हुई और उन्होंने 'गिरती दीवारें' पढ़ने की बड़ी इच्छा प्रगट की तो मैंने दोनों पुस्तकें उन्हें बेच दीं।

हुआ यह कि जो पुस्तक मैंने यशपाल को भेंट की थी, वह उसी तरह बे-पढ़े मु े एक कोने में पड़ी मिली। यशपाल ने उसमें शायद एक दो कहानियाँ पढ़ी थीं, फिर शायद मन ही मन अपनी कहानियों से उनकी तुलना की और उन्हें सेण्टीमेंटल कह कर एक ओर रख दिया। 'पिंजरा' और 'डाची'—उस संग्रह की दो कहानियाँ बड़ी लोक-प्रिय हुई थीं, पर यशपाल ने उनके बारे में भी कोई राय न दी।

××× कौशल्या ने 'गिरती दीवारें' और 'चरवाहे' लीडर प्रेस से खरीद कर भिजवायी थीं, क्योंकि मैं लेखक की छः प्रतियाँ (जो भारती भण्डार वाले बड़ी कृपा पूर्वक देते हैं) कब की बाँट चुका था, इसलिए पुस्तकें खरीद कर ऐसे साहित्यकार को देना जो उन्हें बिना पढ़े एक कोने में फेंक दे मुझे गवारा न हुआ। और मैंने उन्हें बेच दिया।

[बाद में जब यशपाल से मेरी काफ़ी बेतकल्लुफ़ी हो गयी। मैं कई बार लखनऊ गया और वे इलाहाबाद मेरे यहाँ आकर रहे और मैंने बड़ा मज़ा लेकर यह बात बतायी तो उन्होंने बड़ा बुरा माना और कौशल्या से जबरदस्ती 'गिरती दीवारें' लेकर उसे पढ़ा।]

सो अहं तो यशपाल में है। लेकिन पहली बात तो यह है कि जैनेन्द्र से लेकर सत्येन्द्र (शरत) तक अहं हिन्दी के हर लेखक में है।

यशपाल स्नॉब के साथ स्नॉब हैं। और उनकी स्नॉबरी के कई किस्से मुझे याद हैं —

भुवनेश्वर अपने ज़माने में खासे स्नॉब रहे हैं। एक बार वे यशपाल से हज़रतगंज में मिल गये। यशपाल सिगरेट खरीद रहे थे।

"बोनियो!" भुवनेश्वर ने आश्चर्य प्रकट करते हुए और आँखें चढ़ाते हुए कहा, "हूँ—!"

"हाँ—!"

"कम्यूनिस्ट और हिन्दी लेखक और बोनियो के सिगरेट!" भुवनेश्वर ने अँग्रेज़ी में कहा, "आई-सी-एस वाले भी इतने मँहगे सिगरेट नहीं पी पाते।"

"आई- सी- एस- वाले किसी के नौकर होते हैं, जब कि मैं मालिक़ हूँ।" यशपाल ने उसी ऊँचाई से उत्तर दिया।

* कान्तिचन्द सोनरिक्सा नये-नये डिप्टी कलक्टर हुए थे। सिर पर टेढ़ी टोपी और हाथ में ५५५ क़ा डिब्बा लिए घूमा करते थे। एक दिन वे यशपाल से 'कॉफ़ी हाउस' में मिल गए और उन्होंने डिब्बा आगे वढ़ा दिया।"

"Have a Smoke"

"नहीं मैं यह नहीं पीता।

"It is 555।

"मैं ५५५ नहीं पीता" यशपाल ने कहा, और जेब से पाउच निकाल कर वे अपना सिगरेट बनाने लगे।

* एक बार राम विलास शर्मा और अज्ञेय इकट्ठे यशपाल से मिलने आये। रामविलास ने कहा, "देखो यार सुब्रह से इनके साथ हूँ, पर एक शब्द भी नहीं बोले। तुम इन्हें बुलवा दो तो जानें।"

"Do you think, I am so much in love with his Voice" यशपाल ने उत्तर दिया।

और ऐसी बीसियों बातें हैं। लेकिन यह भी तय है कि इसका पता उनके साथ काफ़ी दिन तक रहने के बाद ही लगता है कि साधारण लोगों के साथ वे कभी स्नॉबरी से काम नहीं लेते और बड़ी सरलता से उसके साथ घुल-मिल जाते हैं।

यशपाल अधिक बातचीत नहीं करते। इधर तो गले की बीमारी के कारण कम बोलते हैं, लेकिन उनकी बात-चीत काफ़ी रोचक और व्यंग्यात्मक होती है। विनोदप्रियता उनमें बहुत है और जिसे अँग्रेजी में टखना खींचना कहते हैं, वह उनके स्वभाव का आवश्यक अंग है। कई बार दूसरा व्यक्ति, यदि उसमें मजाक सहने की शक्ति न हो तो तिलमिला भी जाता है।

* यशपाल जेल से छूटे थे। एक बड़े कवि उनके मित्र हैं। उनके घर दो दिन के लिए गए तो मित्र ने अपनी नयी कविताएँ सुनायीं। कवि-पत्नी ज़रा अँग्रेज़ी-दाँ हैं और अँग्रेजी अदब आदाब में विश्वास रखती हैं, कुछ वाक्य स्वभाववश बोलती रहती हैं, पति ने कविताएँ समाप्त कीं तो पत्नी चहकी, "Are'nt they lovely ?"

यशपाल चुप रहे। कविताएँ उन्हें बहुत अच्छी न लगी थीं। उत्तर की न उन्होंने वांछा की न यशपाल ने दिया।

खाने की मेज़ पर हेरिंग्ज (छोटी मछली) का डिब्बा खुला। यशपाल को प्लेट देते हुए कवि-पत्नी ने फिर वही वाक्य दोहराया "Are'nt they lovely"

"Just like your husband's poems!" यशपाल ने उत्तर दिया।

* पढ़ी-लिखी लड़कियों में एक बार उन्होंने कहा, "मिरचें और पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। आदमी पाना भी चाहता है और 'सी' 'सी' भी करता है।

* एक बार उनके एक मित्र की पत्नी अपने पति के साथ लखनऊ आयीं। बरसात के दिन थे। बाहर गयीं तो भीग गयीं। आकर उन्होंने रानी (मिसेज़ यशपाल) की साड़ी पहनी और ड्राइंग रूम में आ बैठीं। क़द-बुत से वे मिसेज़ यशपाल सरीखी हैं। उनकी साड़ी पहने वे सुस्ता रही थीं कि यशपाल कहीं बाहर से आये। वे चहकीं—

"Am I not looking like Rani ?"
"Am I not looking like Rajah ?" यशपाल ने कहा। और वे चिल्लायीं—
"Oh, you are horrible !"

लेकिन इस सब अहं और स्नॉबरी के बावजूद वे कितने बड़े तमाशाई हैं, इसे वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्होंने उनके मुँह से यह सुना हो कि उन्होंने मिश्र बन्धुओं को कैसे अपनी कहानी सुनायी।

यशपाल जीवन को जीने में विश्वास रखते हैं। खाने-पीने और जीवन को ढंग से जीने में उनका विश्वास है। बढ़िया सूट-बूट के साथ वे नव्वे-सौ का शू पहनना चाहते हैं, रेफ्रिजिएटर में रखे पेय का आनन्द उठाना चाहते हैं और अधिक खर्च करना चाहते हैं। इसका एक कारण तो वह ग़रीबी और अभाव हो सकता है जिसमें उनका बचपन और जवानी का अधिकांश समय बीता और दूसरा नास्तिकता तथा आवागमन के दर्शन में उनका अविश्वास ! वे इसी जीवन में विश्वास रखते हैं और दूसरे जीवन की चिन्ता में इसे विगाड़ने के बदले इसे ही बनाना चाहते हैं। यह बात कि कौसानी में जिस जगह बैठ कर महात्मा गाँधी को अनासक्ति योग लिखने का विचार आया वहीं यशपाल को आसक्ति योग लिखने की सूझी, यह जहाँ उनके प्रचंड अहं की ओर संकेत करती है, वहाँ उस अंतर की ओर भी इंगित करती है जो महात्मा गाँधी और यशपाल की धारणाओं में है।

लेकिन उत्तरोत्तर अच्छा खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और बेहतर जीवन बिताने की वांछा रहने के बावजूद यशपाल के स्वभाव में अभिजात-वर्गीय अहं नहीं। उनका अहं उस लेखक का अहं नहीं जो रिक़्शा में बैठे हुए नाक पर रूमाल रख ले कि कहीं साइकिल चलाते मज़दूर के पसीने की गंध हवा से उड़ कर
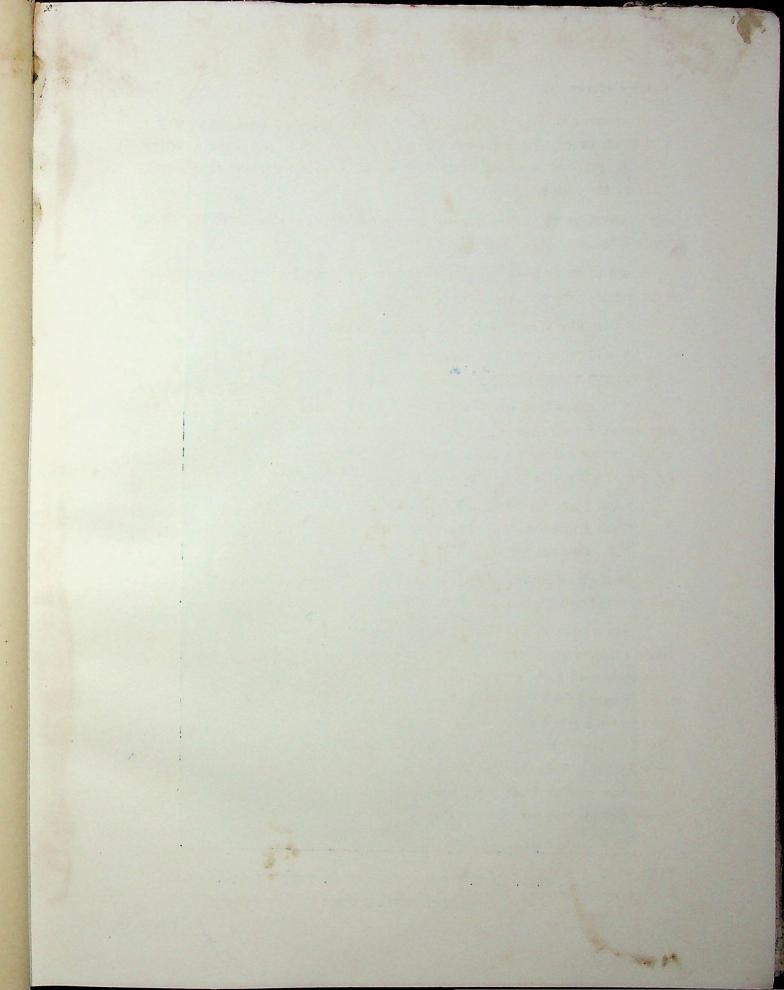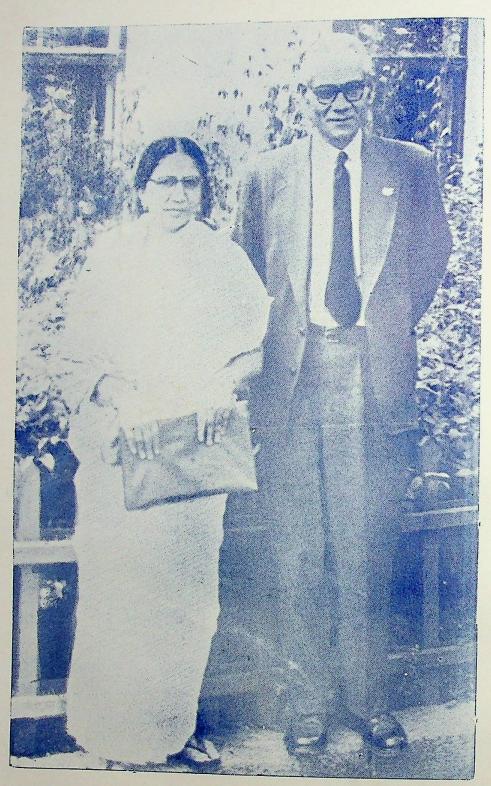
श्रीमती यशपाल और श्री यशपाल सोवियत लेखक संघ के अतिथि के रूप में संघ के मास्को कार्यालय के बाहर।

उसके नथनों को न छू ले या अपने गाँव के किसी ज़रूरतमन्द छात्र को कई बार की मुलाकात के बावजूद पहचानने से इनकार कर दे या फ़र्स्ट क्लास में सफ़र करे और साथ में एक साधारण सा कम्बल बिस्तरे के रूप में रखने की रियाकारी करे। मैंने यशपाल को इस अहं के बावजूद कि उन्हें किसी दूसरे कथाकार की चीज़ अपने मुक़ाबले में अच्छी नहीं लगती, खुले स्वभाव और सरल प्रकृति का पाया है। अलमोड़ा में डेढ़ महीने के प्रवास में 'याद' रखने वाली चीज़ यशपाल का संसर्ग है शेष अनुभव तो खासे कटु हैं। ××××

××× बहुत सी बातें भाभी (रानी पाल) और यशपाल में मिलती हैं, लेकिन शायद भाभी में अहं, गाम्भीर्य और काम करने की शक्ति यशपाल की अपेक्षा अधिक हैं। मैंने सुबह उठते ही उन्हें काम में जुटे पाया और फिर उसी निष्ठा से दिन भर काम करते रह कर गयी रात तक अनथक उसी में विरत देखा। इस पर मैंने उन्हें झुँझलाते, चिड़चिड़ाते या खीझते नहीं पाया। नदी जैसे अनायास कंकर पत्थरों और गढ़ों के ऊपर बहती चली जाती है, मैंने उन्हें दैनिक कार्यक्रम की ऊबड़-खाबड़ता पर धैर्य से बहते देखा है। वे खाना खाने आयी हैं कि नीचे से पुकार आयी, वे चली गयीं, फिर कुछ देर बाद आकर खाने लगीं। वे बैठी प्रूफ़ पढ़ रही हैं कि कोई आदमी मिलने आ गया, किसी बात पर वाद-विवाद हुआ, वह चला गया तो बिना माथे पर बल डाले प्रूफ़ पढ़ने लगीं।

यशपाल के एक मित्र ने मेरी पत्नी को परामर्श दिया था कि आप लखनऊ जायँ तो रानी पाल से अवश्य मिलें, आपको प्रेरणा मिलेगी। कौशल्या स्वयं अनथक काम करने वाली है, पर इसमें संदेह नहीं कि भाभी के काम और विश्वास को देखकर उसे प्रेरणा मिली। मुझे तो यशपाल के जीवन को देखकर महाकवि ठाकुर के नाटक चित्रा की अन्तिम पंक्तियाँ याद आ गईं। चित्रा जैसा आत्म-विश्वास, दिलेरी और अपने संगी के साथ जीवन के ऊबड़-खाबड़ पथ पर सुख और संकट में पग से पग मिला कर चलने की भावना उनमें है। ऐसी संगिनी को पाकर अर्जुन की भाँति कौन संगी न कह उठेगा:—

'Beloved my life is full'

इलाहाबाद

उपेन्द्र नाथ अश्क

अविस्मरणीय संस्मरण

एक प्रबल प्रेरणा के अधीन भारत के विभिन्न प्रकृति के तत्व १९२१ में देश के स्वतंत्रता के युद्ध में आ सम्मिलित हुए थे। मेरा और श्री यशपाल जी का सम्पर्क इसी प्रेरणा के अधीन हुआ। ये लाहौर में कांग्रेस द्वारा खोले गए नैशनल कॉलेज के विद्यार्थी हुए और मैं उसी से सम्बन्धित स्कूल में अध्यापक हुआ। वास्तविक सम्बन्ध तो तब हुआ था जब वे स्कूल में हिन्दी के अध्यापक बने।

कुछ पूर्व जन्म के संस्कारों के अधीन श्री यशपाल जी क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गए और उस दल में रहते हुए अनेक साहस के कार्यों में भाग लेते रहे। उन्हीं दिनों मुझे इस वीर मित्र से और भी अधिक घनिष्ठता का अवसर मिला। १९३१ के जुलाई अथवा अगस्त मास में एक दिन हम दोनों को, एक देहात में, जहाँ मैं नौकरी करता था, जंगल में घूमते हुए अपने राजनीतिक मतभेद पर बात करने का अवसर मिला। उस समय यशपाल जी सरकार द्वारा ऐक्स्कौंडर घोषित थे। उस समय की वार्तालाप की स्मृति जो मेरे मस्तिष्क में अभी तक विद्यमान है वह है श्री यशपाल जी के आतंकवाद से उठ रहे विश्वास की झलक।

एक समय दिल्ली में मैं इनके साथ दिल्ली स्टेशन पर जा पहुँचा। वहाँ की पुलिस चौकी के बाहर ऐक्स्कौंडरों को पकड़वाने के लिए इनाम का घोषणापत्र लगा हुआ था। उस विज्ञापन की रक्षा के लिए एक बंदूकची सिपाही समीप खड़ा था। हम दोनों उस विज्ञापन को पढ़ने खड़े हो गए। विज्ञापन पर यशपाल जी का चित्र था और नीचे तीन हज़ार उक्त चित्र वाले व्यक्ति को पकड़वाने वाले के लिए इनाम लिखा था। कुछ देर विज्ञापन पढ़ हम भीतर प्लेटफ़ार्म पर चले गए और वहाँ जा कर खूब हँसे।

इस प्रकार के साहसी व्यक्ति जब लेखक के रूप में प्रकट हुए, तब तो अभिनन्दन के योग्य हैं ही। मैं परमात्मा से उनकी दीर्घायु का प्रार्थी हूँ।

देहली

गुरुदत्त

मुझे हरकत पसन्द है – एक संस्मरण

१६ अप्रैल सन् ५५ की बात है कि सहसा लखनऊ जाना हो गया। एक मित्र का काम था, जो मेरे द्वारा हो सकता था। इसलिए उसी के साथ ठहरा था। लेकिन सुबह-सुबह नहा-धोकर पहले यशपाल से मिलने गया। लखनऊ जाना और उनसे न मिलना मेरे लिए सम्भव नहीं है। सूचना दी तो पति-पत्नी दोनों आ गये। बड़े तपाक से मिले। कुछ इधर-उधर की बातें हुईं, फिर यशपाल ने अकस्मात पूछा— "कल शिव वर्मा कह रहे थे कि तुम्हारा कोई खत आया है, जिस में तुमने मेरी कहानी की आलोचना की है। वह खत भिजवाने को कह रहे थे। लेकिन अब तुम खुद आ गये हो, इसलिए ज़बानी बता दो कि कहानी पर तुम्हें क्या एतराज है?"

मैं असमंजस में पड़ गया। जो बात हम लिख देते हैं, उसे लेखक के सामने कह देना साहस का काम है। मुझे तो यह साहस भी दुस्साहस ही जान पड़ता था, यशपाल ही नहीं भाभी भी सामने बैठी थीं। शायद यह सोच कर कि यशपाल अपनी कृतियों में बहुत ही कड़ा व्यंग प्रहार करने के आदी हैं, जो बात ठीक समझते हैं उसे कहते कभी नहीं चूकते, इसलिए अगर कोई दूसरा व्यक्ति भी उनके बारे में ठीक और खरी बात कहेगा, तो वे पसन्द करेंगे, मैं दो तीन बार पहले भी उनके सामने उनकी आलोचना करने का साहस या दुस्साहस कर चुका था।

सितम्बर सन् १९४७ में हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन इलाहाबाद में हुआ। महापंडित राहुल सांकृत्यायन सभापति थे और मुझे भी निमंत्रित किया गया था। इस सम्मेलन में यशपाल ने गत दस वर्ष के हिन्दी-कथा-साहित्य पर एक आलोचनात्मक लेख पढ़ा, जिस पर बड़ी ले-दे हुई, बड़ा हंगामा मचा। कारण यह था कि यशपाल ने कुछ लेखकों पर खूब फब्तियाँ कसी थीं।

लोगों को ऐसी बातें सुनना कब गवारा होता है। जब इस लेख पर विचार प्रगट करने की बारी आई तो दूसरों ने भी यशपाल पर कड़े आक्रमण किये और अपनी दानिस्त में लेख की धज्जियाँ उड़ा दीं। निश्चय ही इस प्रत्यालोचना में प्रतिशोध और प्रतिकार की भावना शामिल थी। लेकिन यशपाल तटस्थ बैठे सुनते रहे। बस, कभी-कभी विद्रूप भाव से मुस्करा देते थे।

मुझ पर कोई व्यंग-प्रहार नहीं हुआ था, लेकिन लेख की आलोचना मैंने भी की। मेरा एतराज़ यह था कि यशपाल ने अपने लेख में आलोचना का जो दृष्टिकोण अपनाया है, वह वैज्ञानिक नहीं, व्यक्तिवादी है। एक एक लेखक को लेकर उस पर अपना मत प्रकट करने के बजाय होना यह चाहिए था

कि इस दस साल के अरसे में कौन-कौन से राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन उठे और कौन-कौन सी मुख्य विचारधाराएँ रहीं, उनके अन्तर्गत किसी ने क्या लिखा है और वह कला और विषय की दृष्टि से कहाँ तक उपयोगी और सफल है।

अब यशपाल की उदारता यह है कि जब वे बहस का जवाब देने आये तो उन्होंने बिना किसी संकोच के कहा कि पिछले दिनों मैं बीमार था। इसलिए यह रिपोर्ट जल्दी में लिखी है। रहबर ने जो बात कही है, वह सही है और इस रिपोर्ट को दोबारा लिखते समय मैं इसे ध्यान में रखूँगा। लोगों ने जो रोष प्रकट किया था, उसका उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया।

इसके बाद नवम्बर या दिसम्बर सन् ४८ में मार्क्सवादी विचारधारा को मानने वाले साहित्यकारों की एक बैठक खुद यशपाल के मकान पर हुई, जो लगभग सात रोज़ तक चलती रही। इसमें डाक्टर रामविलास शर्मा ने और मैंने मार्क्सवाद सम्बन्धी उनके विचारों की आलोचना की। यशपाल ने सब कुछ चुपचाप सुना और अन्त में कहा—"हमने मार्क्सवाद को जैसा समझा, उस ढंग से लोगों में फैलाया, अब जो लोग बेहतर समझते हैं, वे बेहतर ढंग से फैलायें।"

बात यह थी कि 'नया पथ' में उनकी कहानी 'पाप की कीचड़' छपी थी। लखनऊ आने से दो दिन पहले पत्र के सम्पादक शिव वर्मा को मैंने एक खत लिखा था, जिसमें मैंने उस कहानी की आलोचना की थी। उन्होंने उसी की चर्चा चलाई। पिछली पृष्ठभूमि के कारण मुझे अपनी बात कहने में कुछ अधिक संकोच नहीं हुआ। एक क्षण रुक कर उत्तर दिया—"मुझे आपकी कहानी पर दो एतराज़ हैं। एक तो यह कि आप ने टाँगेवाले और उसकी पत्नी पर जो सिद्धान्त ठोंस दिया है, वह उनके चरित्र के अनुकूल नहीं है। दूसरे आपने जो समस्या उठाई है उसका हमारे जन-जीवन में कोई अस्तित्व नहीं है।

"मैं दक्षिण में गया था" यशपाल ने शांतभाव से उत्तर दिया, "वहाँ देखा कि गिरजों में धर्म के नाम पर बहुत ही अन्धविश्वास चलता है......"

"अन्ध-विश्वास के अनेकों रूप हो सकते हैं, लेकिन जो रूप आपने अपनी कहानी में दिखाया है, वह सोलहवीं सत्तरहवीं सदी में हो तो हो, अब नहीं है।"

"सोहलवीं सत्तरहवीं सदी में .." यशपाल ने धीमे स्वर में दोहराया और एक मिनट सोचने के बाद खामोश हो गये। टैलीफोन का रीसीवर उठाया और आल इंडिया रेडियो से मिलाकर गिरजाकुमार माथुर से कहा—"रहबर साहब आये हैं। आपके पास कब पहुँचें ताकि प्रोग्राम-वरोग्राम हो जाये।

प्रोग्राम भी तय हुआ और दोपहर का खाना भी यशपाल के ही साथ हुआ। उनकी छोटी साली भी उनके साथ रहती थी। कालेज में पढ़ती थी और चित्रकारी का शौक था। उसे बुलाकर चित्र दिखलाये और फिर हम सब भोजन करने बैठे। एक बड़ी सी मेज़ थी। उसपर शीशे का एक बहुत बड़ा जग पानी से भरा हुआ रखा था। कुछ हरियावल भी थी और उसमें रँगारंग की मछलियाँ तैर रही थीं।

"मुझे हरकत बहुत पसन्द है।" यशपाल ने मछलियों की गति के साथ-साथ दृष्टि को घुमाते हुए कहा और फिर जीवन, उसकी गति और विविध विषयों पर बातचीत होती रही।

बंमई

हंसराज 'रहबर'

श्री यशपाल : व्यक्तिगत संस्मरण

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी और हिंदी लेखक श्री यशपाल को पंजाबी विभाग की ओर से अभिनन्दन-ग्रंथ दिया जा रहा है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। श्री यशपाल से मेरा पुराना परिचय है। एक लेखक के नाते मैं उन्हें पंद्रह-बीस वर्षों से जानता हूँ और प्रायः उनकी सभी रचनाएँ पढ़ता रहा हूँ। उनके हमारे बीच में कई मतभेद होने पर भी मैं उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास की ओर प्रेम और आदर की दृष्टि से देखता हूँ। एक अकेले व्यक्ति ने हिंदी कहानी और उपन्यास को, व्यंग और विनोद को, निबंध और पत्रकारिता को—बावजूद कई विरोधों के—नये पथ पर लाने का जो साहस और संघर्षमय यत्न किया, उसे देखकर लेखक यशपाल के प्रति मेरी आशंसा-भावना और भी बढ़ जाती है।

यशपाल का आतंकवादी आंदोलन से गहरा सम्बंध रहा। अभी इस सारे आंदोलन का पूरा विस्तृत इतिहास लिखना बाकी है। कुछ क्रांतिकारियों ने अपनी आत्म-कथाएँ लिखी हैं—जैसे यशपाल के सिंहावलोकन (तीन भाग) या कोमागाटामारू (अंग्रेज़ी) या बारींद्र घोष की बंगाली पुस्तक या सावरकर की 'माही जन्मठेप' (मराठी) आदि पुस्तकें। परन्तु इस काल की सबसे अच्छी जानकारी हमें यशपाल द्वारा संपादित 'विप्लव' नामक पत्रिका में मिलती है। 'विप्लव' के भगवतीचरण विशेषांक में दुर्गा भाभी के लिखे संस्मरण आदि के रूप में बड़ी पठनीय सामग्री प्राप्त होती है। 'विप्लव' की अपनी विशेषता थी। इसी में यशपाल ने 'चक्कर-क्लब' लिखना शुरू किया, जो बाद में 'मन की आँखें खोल' आदि स्तंभों के रूप में हिंदी की उन्हीं महत्त्वपूर्ण व्यंग विनोद परंपराओं में से एक बन गया, जैसे शिवशम्भू का चिठ्ठा या विजयानंद दुबे की डायरी आदि थीं।

यशपाल ने यह सब कुछ बहुत कम पूंजी के आधार पर किया। हिंदी भी यशपाल जी ने स्वयं ही सीखी—उनकी मातृ भाषा वैसे पंजाबी की पहाड़ी शैली है। मार्क्सवाद का दार्शनिक सैद्धांतिक अध्ययन स्वयं के बल पर, जेलों में किया। अंग्रेजी पर इतना अधिकार प्राप्त किया कि कई पुस्तकों के अनुवाद किये और हिंदी साहित्य में जो पहले वे उतरे तो कहानीकार के रूप में। 'विशाल भारत' में तब छपी उनकी 'मक्रील' (जो उनके पहले कहानी संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' है) अभी भी मन पर एक अमिट छाप छोड़े हुए हैं। कृशनचंदर की काश्मीर के जीवन के विषय में 'बारजा' जैसी आरंभिक कहानियाँ या जैनेन्द्र जी की 'फाँसी' जैसी आरंभिक कहानियों की याद सहसा हो उठती है।

कहानीकार यशपाल ने स्त्री और पुरुष के यौन सबंधों को लेकर लिखा है— और उन्हें आर्थिक परिपार्श्व में; खोखले आदर्शवाद की बेकार बैसाखियाँ खींच कर देखा है। उनमें मनुष्य के (पतित) रूपों की भी खुली चर्चा है। और 'ज्ञान-दान' जैसे कहानी संग्रह में वे आलोचकों के कटु टीका-भाजन बने हैं। भगवतीचरण उपाध्याय, रामविलास शर्मा और अमृतलाल जैसे सशक्त प्रगतिवादी आलोचकों ने उनकी इन कहानियों में या 'दिव्या' जैसे उपन्यासों में 'अश्लीलता' का आरोप किया है। यशपाल ने स्वयं की स्थिति के पक्ष में सफाइयाँ भी दी हैं। यशपाल जब ऐसे प्रसंगों का या चरित्रों का चित्रण करते हैं, तब साहित्यालोचक को देखना यह चाहिए कि लेखक का उद्देश्य क्या है? क्या लेखक मुक्त-प्रणय का प्रचारक है, या मनुष्य में पशुत्त्व की प्रबलता की ओर वह इंगित करता है? 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' या 'पार्टी कामरेड' जैसी उपन्यास पुस्तकें पढ़ने पर ऐसा नहीं लगता कि लेखक यौन-समस्याओं के प्रति अनावश्यक रूप से, विकृत ढंग से आकृष्ट है, या उन उक्त प्रसंगों का उपयोग अपनी पाठक संख्या बढ़ाने के लिए कर रहा है। कुल मिला कर यशपाल ने जो ग्रंथ निर्मिति की है, उन हजारों पृष्ठों में ऐसे स्थल विंदु मात्र हैं और जो नया लेखक आज के जीवन को समग्रता से ग्रहण करेगा, उसका सामाजिक यथार्थता से अंकन करना चाहेगा, वह अपना दामन इन धब्बों से बचा नहीं सकता। मैं यहाँ लेखक के साहस की और संयम की प्रशंसा करता हूँ।

सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में लेखक ने न केवल उपन्यास-कहानी या व्यंग-विनोद के द्वारा यह जिहाद किया, परन्तु उन्होंने प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने में भी बड़ी सफलता प्राप्त की। उनके उपन्यास-कहानियाँ पढ़ने के लिए पाठक समाज आगे बढ़ा। उन्होंने हिंदी की पाठक संख्या बढ़ाई। सरल सहज हृदयग्राही शैली में प्रामाणिकता से लिखी चीज़ें दूर दूर तक पाठकों के मन को छूती गयीं। क्रांतिकारी यशपाल पत्रकार बने, पत्रकार से उपन्यासकार और प्रकाशक भी। उनका इस दिशा में पहला बड़ा प्रयत्न था कि हिंदी का गद्य-लेखक स्वयं प्रकाशक बन कर सफल हो सकता है। अश्क, जैनेंद्र आदि लेखक स्वयं प्रकाशक बाद में बने।

सब व्यक्तिगत संस्मरण यहाँ देना संभव नहीं। परन्तु कुछ घटनाएँ सहज याद आती हैं। उज्जैन में युद्धकाल में, यशपाज आए थे। इंदौर में किसी लेखक सम्मेलन के सभापतित्त्व के लिए गए थे। मज़दूर बस्ती में मैं भी उनके साथ गया। जिस अकृत्रिम भाव से वे सब तरह के कामगारों से मिले, वह देखने और सुनने की बात थी। जैसे वे उनमें से ही एक हों। व्यवहार में कहीं कोई ऐसी छटा नहीं मिली कि लेखक जनता से भिन्न और कोई हो।

यशपाब को चित्रकला से भी शौक है। उनकी पुस्तकों के कबर डिज़ायन उन्हीं के बनाए हुए हैं। इस कला-प्रेम के कारण हम और भी निकट आए। मुझे भी चित्रकला का कुछ अध्ययन और सक्रिय अनुभव प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है। मेरे कुछ चित्र, जलरंगों में तैलरंगों जैसा आभास उत्पन्न करने वाले राजपूत बृद्ध योद्धा का, और एक बलूची बाला का चित्र यशपाल के ड्राइंगरूम में कई वर्षों तक लगाये हुए थे।

फिर जब-जब मैं लखनऊ रेडियो पर पुस्तक समीक्षा या अन्य विषयों पर भाषण देने जाता— लखनऊ में हसरतगंज में विप्लव-कार्यालय अवश्य जाता था। वहाँ उनके साथ चाय चक्कर में भाग लेकर न केवल मनोरंजन होता, ज्ञान-वर्धन भी अवश्य होता।
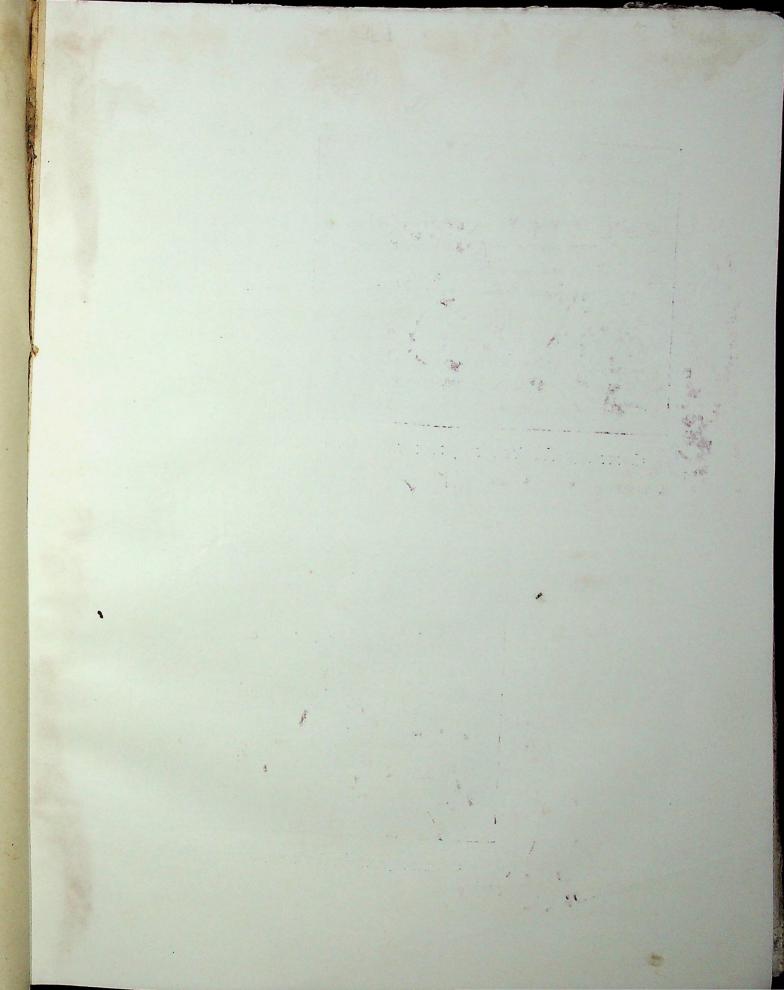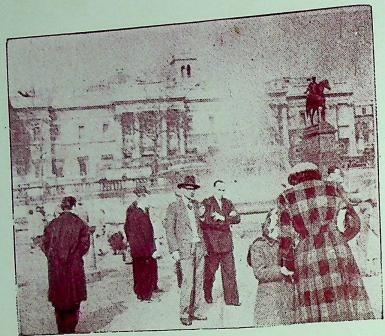
श्री यशपाल एक अँग्रेज़ मित्र के साथ ट्रफालगर स्व-वॉयर लंदन में
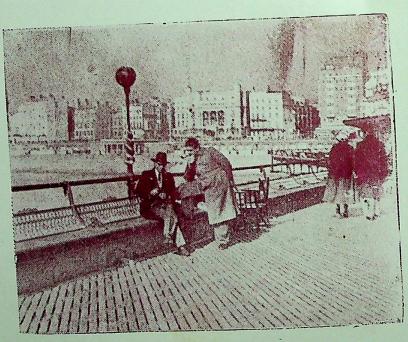
श्री यशपाल एक भारतीय मित्र के साथ—ब्राइटनइङ्गलैण्ड में

१९४७ में इलाहाबाद में राहुल जी के सभापतित्त्व में प्रगतिशील लेखक संघ का बड़ा अधिवेशन हुआ जहाँ यशपाल ने हिन्दी कहानी और उपन्यास साहित्य पर एक निबन्ध पढ़ा। उसमें काफी खलबली मच गई। मुझे अब भी याद है, उस निबन्ध में यशपाल ने कहा था किसी एक प्रगतिशील उपान्यासकार के बारे में कि उसके लेखन में प्रगतिवाद और सिद्धांत उनकी कथा पर इस तरह हावी हैं जिस तरह से एक टट्टू पर बहुत सा बोझ लाद दिया जाय तो उसकी टाँगें टेढ़ी हो जाती हैं। यशपाल ने अपने कथा लेखन को कभी किसी सिद्धान्त-प्रचार के लिए केवल एक साधन की तरह से प्रयुक्त नहीं किया परन्तु उसे उसका यथोचित स्थान दिया—कला-पक्ष को सँवारने के लिए आवश्यक लगन, उत्सुकता और चिन्ता दी। इसीलिए वे 'पर्दा' या 'साग' या 'महादान' जैसी कहानियाँ लिख सके। उनकी रचनाओं के अनुवाद अन्य कई भारतीय भाषाओं में हुए। 'दादा कामरेड' का मराठी अनुवाद मैंने देखा है, और 'देशद्रोही' आदि के तेलगू, मलयालम आदि अनुवाद हो चुके हैं।

फिर मुझे याद आता है अलमोड़े में 'शक्ति' कार्यालय का प्रसंग। तब वे (स्वर्गीय) देवदत्त पंत संसद सदस्य के यहाँ रहते थे। नैनीताल से मैं राहुल जी के साथ कूर्माचल की यात्रा पर था। १९५१ की गर्मियों की बात है। यशपाल तब किसी पुस्तक-लेखन में लगे थे। नित्य कुछ घंटे सवेरे वे अपनी रचनाओं के निर्माण में लगाते हैं। 'अश्क' की भाँति वे भी अपने लिखे को दुबारा पढ़ते हैं। माँजते हैं, सुधारते हैं। हिन्दी के कई और लेखकों की भाँति उन्हें इस बात का मोह या आग्रह नहीं कि एक बार स्फूर्ति के उन्मेष में जो कुछ लिख लिया गया, वह पत्थर की लकीर बन गया, उसमें कोई शोशा नहीं जोड़ा जा सकता। उन दिनों हम लोग कई बार मिले। श्रीमती देवकी पाँडे भी तब साथ थीं—उन्होंने हिन्दी के छायावादी कवियों की स्वर-मुद्रा आदि की ऐसी सुन्दर नकल की कि हम सब लोग हँसते-हँसते लोटपोट हो गए। तभी छायावाद के लिए मैंने कुछ कहा कि उसकी भी हिन्दी कविता में अपनी देन है, कि यशपाल कह उठे—"छाया बड़ी अच्छी चीज़ है ठंडक देती है। सब को सुखद लगती है। लेकिन एक बात है, छाया में कोई चीज़ उगती नहीं।"

इसके बाद सुना यशपाल विदेश भी हो आए। और हमारे कई लेखक-मित्रों के विदेश से लौट आने पर, उनमें जैसे सूक्ष्म और स्पष्ट परिवर्तन घटित हुए उन्हें देखते हुए—मुझे लगा कि शायद यशपाल पर भी पच्छिम का जादू चढ़ गया होगा। लेकिन वह बात असार लगी। १९५३ में मैं नागपुर में था तब यशपाल को नागपुर के विद्यार्थियों ने हिन्दी सभा का सभापति बनाकर बुलाया। यशपाल अच्छे वक्ता नहीं हैं—उनकी आवाज़ कुछ 'हल्की' और फटी-सी है। परन्तु जो बातें उन्होंने कहीं—वह इतनी धार्मिक और सीधे युवकों के मन को छूने वाली थी कि श्रोता आवाज़ के गुणों पर नहीं अटके रहे। यशपाल को मार्क्सवाद ने और कुछ दिया हो, न दिया हो—परंतु एक पैनी तर्कनिष्ठता दी है। हिन्दी लेखकों को छोड़ कर, औरों की तर्कमात्र से दुश्मनी होती है। बुद्धिवादिता उनके लेखे दुर्गुण है—वे भावुकता और अंधश्रद्धा को अधिक महत्त्व देते हैं। क्योंकि हिन्दी साहित्य के पाठक तो उसी अर्द्ध-सामंती मनोलोक में रहना पसंद करते हैं। शरद बाबू के 'पथेर दाबी' से ज्यादा प्रभावित होते हैं। यशपाल का जवाब 'दादा कामरेड' उन्हें नही जँचता। आदर्शवादी कुहेलिका से निकल कर कठोर, नग्न यथार्थ की प्रखर चौंधियाती रौशनी में आना किसे अच्छा लगता है। यशपाल उस सूर्य-सत्य को हिन्दी गद्य में

लानेवाले कुछ अग्रणी विचारक लेखकों में से एक हैं। इसलिए उनके प्रति मैं यह प्रेम और प्रशंसा के भाव व्यक्त कर रहा हूँ।

यशपाल की इस तर्कनिष्ठ यथार्थवादिता के साथ-साथ,जो दूसरी चीज़ मुझे पसंद है, वह है एक दार्शनिक की-सी तटस्थता। जीवन के रस को उन्होंने ग्रहण किया, उस ने मुँह नहीं मोड़ा, विरक्त बनने का दम्भ कभी नहीं किया पर उसी में अटके नहीं रहे, मधु भीगी पाँखों से उसी में ऐसे मुब्तला नहीं हुए कि वह जीवन रस उनके लिए रोग या आत्मघात का कारण बनता। उर्दू के कई लेखक जैसे मजाज़ और मंटों इस तरह के उदाहरण हैं। यशपाल में एक प्रकार का, संघर्ष से उपजा हुआ आत्म संतुलन पाया जाता है। इसीलिए वे किसी भी राजनैतिक मतवाद की जकड़न के जुज़ नहीं बन सके। उनमें का कलाकार-दार्शनिक अराजकतावादी भौतिकतावादी बना रहा—परंतु जब भाषानीति का प्रश्न उठा, उन्हों ने स्पष्ट भाव से साम्यवादी दल की द्विभाषावादी नीति का विरोध किया। यहाँ उन्होंने अपना विचार-स्वातंत्र्य व्यक्त किया। 'पार्टी कामरेड' में उन्होंने साम्यवादी दल के व्यक्तिगत प्रेम इत्यादि के विषय में अपनाये जाने वाले कड़े अनुशासन के नाम पर निर्मम रुख पर व्यंग्य भी किया है। भगवान को चाहे यशपाल और मैं न मानें फिर भी मुहावरे की सुविधा के लिए मैं कहना चाहता हूँ कि भगवान का लाख लाख शुक्र है कि यशपाल जैसे समाजवादी लेखक ने अपने दिलो-दिमाग की खिड़कियाँ खुली रखी हैं—और वे निरे पक्षाँध सांप्रदायिक ('कम्यूनल' के अर्थ में नहीं पर 'सेक्टेरियन' या 'पार्तिनोस्त के अर्थ में) लेखक नहीं बन गए। हमें अपने देश के निर्माण में उनकी कलम से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। आत्मा को न बिकने देना भी आज एक बड़ा विधायक गुण है।

हिन्दी के ऐसे संघर्षशील और स्व-निर्मित, विज्ञापन और सस्ती सहास्तित्व से दूर रहने वाले मानीषी कलाकार के लिए मैं दीर्घायु कामना करता हूँ। मैं साहित्य के क्षेत्र में भी सहास्तित्व मानता हूं। सब लेखक एक से हो जायँ वह साहित्य का दुर्दिन होगा।

दिल्ली

प्रभाकर माचवे

यशपाल के साथ कुछ समय

यशपाल की अनेक पुस्तकें पढ़ी थीं। कहानियाँ, उपन्यास और परम्परागत आदर्शों की आलोचना से भरे निबन्ध और न्याय का संघर्ष आदि। विशेषकर सिंहावलोकन के दो भाग पढ़ कर राजनैतिक और साहित्यिक क्रान्तिकारी को आँखों देख पाने की उत्सुकता थी।

यशपाल जी से कैसे परिचय हुआ, यह भी एक विचित्र घटना है। सिंहावलोकन के दो भाग पढ़ कर और यह जान कर कि वह अपने काङ्गड़े से ही हैं, बड़ा गर्व अनुभव हुआ। उनके नाम एक पत्र लिख डाला, पर भेजने का साहस नहीं हो रहा था। इसी दौरान में अपने एक मित्र को मिलने दादर गया। रास्ते में एक बोर्ड पर नज़र पड़ी। हिन्दी ज्ञान सत्र की ओर से हिन्दी के चोटी के कुछ लेखकों के भाषणों का आयोजन किया गया था और उससे दूसरे ही दिन यशपाल का भाषण था। अनुमान लगाना सहज ही है कि मुझे कितनी प्रसन्नता हुई होगी? संयोग की बात थी जिन्हें मिलना कठिन जान पड़ रहा था, वह घर-द्वार ही आ गए। एक नए उत्साह से लम्बे डग भरता मित्र के घर पहुँचा और उसे भी यह खुशखबरी सुनाई। वहाँ बैठे-बैठे यह योजना भी बना ली कि उन्हें मिल कर अपनी संस्था 'काङ्गड़ा-मित्र-मण्डल' की ओर से निमन्त्रित किया जाए ताकि वहाँ उनका स्वागत करें।

उनका भाषण सुनने की विशेष उत्सुकता थी, इसलिए दूसरे दिन समय से पहले ही पँडाल में जा पहुँचे। सुन रखा था कि आप पुरानी परिपाटी के साहित्यकारों की कटु आलोचना करते हैं और प्रगतिवाद के समर्थन में अन्य (आदर्शवादी) लेखकों पर खूब बरसते हैं। पर भाषण सुनकर कुछ और ही अनुभव हुआ। कहीं आग बरसती नज़र नहीं आई। ऐसे जान पड़ता था कि कोई चतुर वकील अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए बड़े तार्किक ढङ्ग से न्यायाधीश के सामने बहस कर रहा हो।

व्याख्यान के बाद पहली बार भेंट हुई। अपना कार्ड भेजा। तुरन्त आप मिलने के लिए आए और प्रेम से हाथ मिलाया। परन्तु मिलने का प्रयोजन जानने पर आप समय देने से आनाकानी करने लगे। हम लोगों ने अनुरोध किया, पर आप कहे जा रहे थे—"फिर देखा जाएगा, जल्दी क्या है।" हम समझ रहे थे 'देखा जाएगा' का अर्थ है कि आपको निमन्त्रण स्वीकार नहीं। बहुत आग्रह करने पर आप ने कहा—"अच्छा, यही बात है तो सुनिए, परसों तक मैं बिलकुल व्यस्त हूँ। आप परसों फिर मारवाड़ी

पुस्तकालय में मिलिए। वहाँ भी ऐसी ही एक सभा है। यदि समय हुआ, तो मैं आपको वहाँ बता सकूँगा।" हमें कुछ आशा बँधी।

तीसरे दिन नियत समय पर पुस्तकालय पहुँचे। भाषण समाप्त होने के उपरान्त मैं आगे बढ़ा, पर वह हमारी ओर ध्यान न देकर दूसरी ओर चल पड़े। समझ नहीं आ रहा था कि भूल गए या इतना अहंकार कि साधारण लोगों के साथ बात करना भी पसंद नहीं। खैर, उन्हें दरवाजे तक पहुँचते पहुँचते ही जा घेरा और पिछली मुलाकात की याद दिलाई। आपने पहचाना और फरमाया—"सच तो यह है कि मैं इतना व्यस्त हूं कि वहाँ न आ सकूंगा।" और यह कहते हुए आप दूसरे लोगों के साथ चाय पीने कार्यालय की ओर चल दिए। हम भी अपनी धुन के पक्के थे और उनके चाय से लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। काफी खुशामद की, परन्तु आप टाले जा रहे थे—"फिर देखा जाएगा"। अपने सब प्रयास विफल जाते देख, अन्तिम कोशिश की और कहा—"हमें तो यह स्वप्न तक न था कि आप हमारा निमन्त्रण अस्वीकार करेंगे। इसलिए इसी खयाल से हमने अपने सब भाइयों को फार्बस गुजराती हाल, लैमिङ्गटन रोड में कल शाम ६ बजे को बुला रखा है। वे सभी आएँगे और निराश होंगे।" आप बोले—"कल तो एक मज़दूर सभा में जाना है और मज़दूरों की सभा किसी हालत में टाल नहीं सकता।" मैंने तुरन्त उत्तर दिया—"तो हम ने क्या कोई रईसों की सभा रखी है। कृपा कर ज़रूर आइए, वे भी मज़दूर ही हैं।" इस पर आप कुछ पिघले और कहा—"अच्छा मंज़ूर। कल ४ बजे तारदेव, नवनीत कार्यालय में आकर ले जाएँ और छः बजे, मुझे वर्ली छोड़ देना।" इतना कह, पास ही खड़ी कार में जा बैठे। हम असंमजस में पड़ गए। जहाँ एक समस्या हल हुई, दूसरी आन पड़ी क्योंकि हमने हाल छः से नौ तक बुक कराया था और क्या मालूम वह इससे पहले खाली भी हो या नहीं। उनसे कहा—"बात असल में यह है कि हाल छः बजे से बुक कराया है और लोगों को भी इसी समय की सूचना दे रखी है। इस लिए इसमें कोई परिवर्तन करना कठिन है"। आप जाते जाते कह गए—"अच्छा आप मुझे साढे पाँच बजे तार देव से ले लेना।"

दूसरे दिन टैक्सी लेकर मैं तारदेव पहुँचा, लेकिन पता चला कि आप तो वर्ली चले गए हैं और ऐड्रेस छोड़ गए हैं। हम उसी पते पर वर्ली पहुँचे। वहाँ पहुँच कर हैरान रह गए कि अभी आप कहीं घूमने गए हैं और आने पर भाषण होगा। १५ मिनिट बाद आप आ पहुँचे। भाषण प्रारम्भ किया। पौन घंटा भाषण चला फिर प्रश्नोत्तर। इधर अपना दिल धड़क रहा था कि लैमिङ्गटन रोड पहुँचते पहुँचते लोग तंग आकर लौट न गए हों और सारा मजा किरकिरा हो जाए। पर खैर हुई कि जब हम हाल में पहुँचे तो लोग धीरज और उत्सुकता से बैठे इन्तज़ार कर रहे थे।

यह दिसम्बर १९५३ की बात है। उसके बाद उन्हें बम्बई कुछ महीनों के लिए रुकना पड़ा उनके साथ बीसियों बार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुछ दिन तो उन्होंने मेरा अतिथि बनना भी स्वीकार किया, इसलिए मैंने उन्हें काफी समीप से देखा है और उनके साहित्य के अतिरिक्त जीवन को जानने का अवसर भी पाया है।

जिन लोगों ने यशपाल जी को सभाओं तथा साहित्य सम्मेलनों में देखा है, उनका यह अनुमान कि आप एक अहंकारी और कम बोलने वाले व्यक्ति हैं, निराधार नहीं। यशपाल का बाहरी रूप कुछ

ऐसा ही है, रूखे सरकारी अफसरों जैसा। परन्तु एक बार आपसी सम्बन्ध कायम हो जाने पर जान पड़ता है कि वह मनुष्यों को स्वयं ढूंढते फिरते हैं। इस तरह उन्हें जो व्यक्ति एक बार मिला है, उसे उनसे बार बार मिलने की इच्छा रहती है। जल्दी ही अपनेपन या घरेलूपन की-सी बात हो जाती है। उनसे बात करते हुए ऐसा जान पड़ता है कि आप अपने किसी मित्र से बात कर रहे हैं, न कि हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक यशपाल के साथ।

एक दिन उनके निवास-स्थान मालाबार हिल पर मिलने के लिए गया, तो आप सूट-बूट पहने बाहर जाने के लिए तैयार थे। संकोच हुआ कि ऐसे समय आकर इनके प्रोग्राम में बाधा ही डाली। शिष्टता निभाने को बोला— "क्षमा कीजिए, आपके काम में रुकावट डाली। अभी चलता हूँ, फिर आऊँगा।" उत्तर मिला—" नहीं तो, बैठे बैठे दिल उकता गया था। सोचा, बाहर घूम आऊँ। आप आ गए और भी अच्छा हुआ। आराम से बैठ जाइए।" कोई घंटा भर बातें होती रहीं, खूब घुल मिल कर। इस बीच उन्होंने पूछा—'चाय पीजिएगा ?' देखा नौकर तो था नहीं। चाय कैसे बनेगी ! बोला—"नहीं जी अभी पी कर आया हूँ।" इस पर आप थोड़े मुस्कराए और स्वयं चाय बनाने में लग पड़े। बहुत कहा पर आप न माने और चाय दानी और कप सामने लाकर रख दिए।

चाय पीने का भी यशपाल का एक ढङ्ग है। चाय में चीनी नाम मात्र ही होती है। दूध न भी हो, तो चलेगा। उनका विचार है कि चाय में दूध अधिक होने से ऐसा लगता है कि चाय नहीं पी आधा लंच कर लिया।

एक दिन उनके साथ प्रिन्सैस स्ट्रीट से जा रहा था कि बोले—"क्यों न एक एक प्याला चाय पी जाए।" मैंने कहा—'हाँ ठीक है' और पास के एक रैस्टोरां की ओर चलने लगा। आपने टोक दिया—"नहीं भाई, यहाँ कोई चाय पीना होगा। चाय पीना चाहता हूँ मुँह में उडेलना नहीं चाहता। कहीं ऐसी जगह चलिए जहाँ ढङ्ग से चाय पी सकें।" ढङ्ग से चाय पीने के लिए हमें प्रिन्सैस स्ट्रीट से परशियन डायरी तक जाना पड़ा। आपने बम्बई में ऐसे होटल ढूंढ रखे थे, जहाँ घन्टे आध घन्टे शान्ति से बैठा जा सके। और प्रायः ही उन्हें कामरेड लोगों के साथ ईरानी होटलों में चाय पीते देखा है।

भोजन के सम्बन्ध में भी तामसिक या सात्विक का कोई विचार नहीं हैं। खाना घी-प्रधान पञ्जाबी हो या मसाला-प्रधान मद्रासी, सब चलता है। एक दिन पूछा सबसे बढ़िया खाना आपको कहाँ मिला तो बोले "बँगलौर के माडर्न होटल में और सब से नीरस लन्दन के ए० बी० सी० होटलों में।" हाँ, यदि शाकाहारी खाना योरुपियन ढङ्ग (कांटा छुरी) से परोसा जाए तो उसे निरा मजाक समझ लेते हैं।

सिग्रेट आप खूब पीते हैं और वह भी सात पैसे का पैकट। पहले तो मैं झिझकता रहा, परन्तु एक बार कह ही दिया—"भाई साहिब ! एक तो आपका यूँ ही गला खराब है और उस पर यह घटिया सिग्रेट। क्यों अपने गले पर अन्याय कर रहे हैं।"

उत्तर में कहने लगे—"भाई बाकी सिग्रेटों में क्या कोई घी पड़ा रहता है। ऊँचे सिग्रेट पीने से शान चाहे ही बनती हो, परन्तु जहाँ तक हानि-लाभ का तअल्लुक है, सभी सिग्रेट हानिकारक हैं। ज्यादा पैसा खर्च करके हानि उठाने से लाभ तो नहीं हो जायगा ?'

यशपाल जी के गले में कुछ खराबी है। आवाज़ फट जाती है। पिछले वर्ष रूस में ऑपरेशन हुआ था। अब बहुत कुछ सुधर गई है।

जिस प्रकार आप साहित्य में प्रगतिवादी हैं, उसी प्रकार आपकी वेशभूषा भी आधुनिक ढङ्ग की है। अधिकांश हिन्दी लेखकों की तरह आप धोती-कुर्त्ता नहीं पहनते। सफेद कमीज़ या बुश-शर्ट और गरम पतलून साधारणतया उनकी पोशाक है। सर्दियों में सूट, जरूरत होने पर ओवरकोट भी, शाल नहीं।

कपड़े अधिक होने पर भी बदलने में ढील कर जाते हैं। एक दिन किसी से मिलने के लिए तैयार हो रहे थे कि मैं पहुंच गया। मैंने कहा—"कपड़े बदल ही डालिए। पेंट में क्रीज़ नहीं, बुश-शर्ट कुछ मैली दीखती है।" कहने लगे—"आपने तो और दुविधा में डाल दिया। कौन खोलेगा अब सूटकेस, यही अच्छे हैं।"

अपना लिखा हुआ अपने मित्रों को सुनाने का भी उन्हें शौक है और उस पर उनकी राय भी लेते हैं और उससे लाभ भी उठाते हैं। अपनी सफलता की कसौटी वह पाठक का सन्तोष ही समझते हैं। एक दिन मुझे उन्होंने अपनी नई कहानी सुनाई और पूछा—"कैसी जमी"। मैंने उत्तर दिया—"मेरी राय से क्या होगा।" कहने लगे—"क्यों? मैं पुस्तकें कोई अपने लिए लिखता हूँ। पाठक की पसंद ही मेरी सफलता की कसौटी है। आपकी राय, किसी भी पाठक की राय हो सकती है, फरमाईए।" मैंने साहस बटोर कुछ आलोचना की। आपने इस पर तर्क किया। दूसरे दिन मुझे उन्होंने बताया कि कहानी में काफी फेर-बदल कर दिया है। घनिष्टता होने पर तो आप से आपके साहित्य के सम्बन्ध में काफी लम्बी-चौड़ी बहस भी होती।

एक बार कई दिन बाद मैं उनके यहाँ गया तो मालूम हुआ कि इस बीच उन्होंने तीन कहानियाँ लिख डाली थीं। प्रश्न किया—"आप महीने में कितनी कहानियाँ लिख लेते हैं।" बोले—"यह मैं क्या बता सकता हूँ। कभी तो एक भी नहीं और कभी चार पाँच। यह निर्भर करता है लिखने लायक बात सूझने पर। जब दिमाग़ में कोई सूझ आ जाती है, तो लिख डालता हूँ। लिखना ही है, इस खयाल से मैं कभी नहीं लिख पाता। इन दिनों तो मैंने खूब काम किया है। 'सिंहावलोकन' का तीसरा भाग लिख रहा हूँ। कुछ रेडियो के लिये लिखा है और फिर यह कहानियाँ।" वह कहे जा रहे थे और मेरी नज़र चारों ओर कमरे में घूम रही थी, जहाँ टेबुल पर, कुर्सी पर और यहाँ तक कि सूटकेसों के ऊपर भी उनकी लिखी हुई छोटी छोटी स्लिपें पड़ी थीं। वे अक्सर छोटी छोटी स्लिपों पर ही लिखते हैं। मेरे पूछने पर कि वे कापी या रजिस्टर पर क्यों नही लिखते?" बोले—"स्लिपों पर लिखने का लाभ यह रहता है कि ठीक न जँचने पर कोई स्लिप उनमें से निकाली जा सकती है और नई स्लिपें जोड़ी भी जा सकती हैं।"

वे धारावाही रूप से लिखते ही नहीं जाते। उनकी बैठक का समय भी नियत नहीं। देखने में आया है कि कभी कुछ पंक्तियाँ ही लिख कर फिर सोचने लगते हैं और यदि सन्तोष नहीं होता, तो उठकर लेट जाते हैं या पुस्तकें पढ़ने लग पड़ते हैं। अपने लिखे हुए में कई बार काट-छांट भी करते हैं। उनकी जो भी लिपियाँ देखी हैं, उनमें अक्सर लाल लाल डॉट लगे रहते हैं और उनका अर्थ होता है कि इस प्रसंग में किसी दूसरी जगह भी किसी स्लिप पर आपने कुछ लिखा है।

आपके लिखने का भी कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं। लिखने बैठें तो छः-छः घण्टे एक साथ लिखते रहें। न लिखें तो कई-कई दिन ही न लिखें। आप लिख रहे हों और कोई आ जाए तो आपके लिखने में कोई बाधा नहीं पड़ती। लिखना छोड़, आने वाले से बातचीत शुरू हो जाएगी जैसे कि इसके लिए तैयार ही बैठे हों, हाँ, कोई निजी मित्र हो, तो कह देंगे "ज़रा ठहरो" और उसके बैठे-बैठे ही वाक्य या पैरा जैसा भी हो, लिखकर, उठ बैठेंगे। उनका कहना है "जहाँ भी मैं लिखना छोड़ता हूँ, दूसरी बैठक में वहाँ से शुरू करने में कोई कठिनाई नहीं होती। कभी कभी तो ऐसे अवसरों का इन्तज़ार करता रहता हूँ। इस बहाने सुस्ता लेता हूँ।"

आधारभूत विचारों को खोजने में भी किसी की उपस्थिति बाधक नहीं होती। कई बार देखा है कि कोई उनसे बात कर रहा है और वह सोचने की मुद्रा में हैं। बात भी आपकी सुन ली और उनका सोचना भी जारी रहा। कभी कभी तो कह देंगे "ज़रा दो मिनट" और फिर बात शुरू हो जाएगी। मेरे पूछने पर आपने बताया कि बैठे बैठे ऐसे ही उन्हें कई बार सूझ आ जाती है और कहानी का प्लाट बन जाता है। गाड़ी में हों, बस में हों, भीड़ में हों या सिनेमा में, यह कार्यक्रम चलता रहता है।

यशपाल पढ़ते भी खूब हैं। कोई न कोई अँग्रेजी की पुस्तक आपके बिस्तर पर पड़ी ही रहती है। रूसी फ्रैन्च और इटालियन लेखकों का आपने खूब अध्ययन किया है। एक दिन मैंने उन्हें कहा--"भाई साहब! आप सदा विदेशी पुस्तकें ही पढ़ते रहतेहैं और हैं हिन्दी के लेखक"? कहने लगे--"हिन्दी की पुस्तकें भी पढ़ता हूँ। परन्तु मेरी लाईब्रेरी में हिन्दी का जितना साहित्य है, वह रानी (प्रकाशवती जी) ने ही खरीदा है या भेंट में मिला है। हर मास दो चार पुस्तकें भेंट में मिल ही जाती हैं। मैं प्रयत्न यही करता हूँ कि अधिक से अधिक विदेशी साहित्य का परिचय प्राप्त हो। जब मैं जेल में था, तो मैंने फ्रैन्च और इटालियन उपन्यासों को मौलिक रूप में खूब पढ़ा। अनातोले फ्रांस और वोलटेयर से विशेष प्रभावित हुआ।"

प्रायः ऐसा हो जाता है कि सड़क या बाजार में कोई परिचित सामने से मिल जाए और यशपाल ध्यान ही न दें। धारणा यही होती है कि यशपाल परिचितों की उपेक्षा करते हैं परन्तु इसका एक रहस्य है। यशपाल की आँखें बड़ी तेजी से खराब हो रही हैं। इसलिए वह व्यक्ति का चेहरा पहचान नहीं पाते। व्यक्तियों के बारे में स्मरण शक्ति भी बहुत अच्छा नहीं है प्रायः भूल जाते हैं। यदि मिलने वाला आदमी आत्मीयता प्रकट करे और यशपाल बहुत विनय करते जान पड़ें, तो शंका यह ही होती है कि वे मिलने वाले को पहचान नहीं पाये।

भाषण या व्याख्यान देने का शौक यशपाल में नहीं है बल्कि वे प्रायः इससे बचने का ही रास्ता सोचते रहते हैं। इसका शारीरिक कारण गले की खराबी है। उनका कहना है कि भाषण के ढंग से बोलने पर उन्हें कष्ट होता है। प्रायः वे १०-१५ मिनट में भाषण समाप्त कर देते हैं। एक बार भूला भाई देसाई हाल में तो उन्होंने अपने भाषण को केवल तीन ही वाक्य कह कर समाप्त कर दिया था। लेकिन सैद्धान्तिक प्रश्न होने पर सुनने वालों को ध्यान से सुनते देख कर ४५ मिनट या एक घण्टे तक भी बोल जाते हैं।

समाज के प्रति ईमानदारी और जागरूकता का ज्वलन्त उदाहरण यशपाल जी का साहित्य है। वह व्यवसाय का नहीं, प्रयोजन का साहित्य है। जिस दिशा में आप आज से पंद्रह वर्ष पहले चले थे,

उसी ओर तेज़ी से बढ़े जा रहे हैं। जेलों में जाना पड़ा, कत्ल की धमकियाँ मिलीं, पर आप कभी विचलित न हुए। आप ही क्यों सब जगह उच्च प्रतिभाओं को ऐसी ही परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। पर सत्य एक दिन प्रकट होता ही है और तब इन महानुभावों की पहचान शुरू होती है।

आयु पचास से ऊपर होने पर भी यशपाल जी का साहित्यिक जीवन सन ४० से ही शुरू हुआ है। इन १५ वर्षों में हिन्दी की जितनी सेवाएँ आपने कीं, उसके लिए हम सब आभारी हैं। इससे पहले देश के लिए आप जीवन को हथेली पर लिये फिरते थे। इस समय जब इन्हें यह अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट हो रहा है, हमें अपार आनन्द मिल रहा है, और मैं इस देश-भक्त, युग-प्रवर्तक लेखक और जिन्दा-शहीद के आगे नतमस्तक हूँ।

देसराज गेगरा

बम्बई

यशपाल : व्यक्तित्व और कला

यशपाल से मेरा व्यक्तिगत परिचय एक दशक से भी अधिक से है। मैंने उन्हें सभाओं में बोलते सुना है। उनका व्यंग चुटीला और मर्माहत करने वाला होता है। वे समाज की प्रतिगामी शक्तियों पर भरपूर प्रहार करते हैं। मैंने उन्हें कर्तव्यनिष्ठ साहित्य-साधक के रूप में देखा है। उनका जीवन बहुत नियमित, सधा और अनुशासित है। वे अपने वचन के धनी हैं। प्रगतिशील संगठनों को उन्होंने सतत बल दिया है और अनन्य साधनों से उन्हें पोसा है। मैंने उन्हें रोगी के रूप में प्रवास में भी अपनी साधना का तन्मयता से निर्वाह करते देखा है।

यशपाल का व्यक्तित्व खरा पैना और स्पष्ट है, वे निर्भीक और स्वभिमानी व्यक्ति हैं। उन्होंने किसी भी सत्ता के सामने, कभी भी अपना अभिमानी मस्तक नहीं झुकाया। उनमें विनय और नम्रता भी पर्याप्त मात्रा में है। किन्तु पाखण्ड और मिथ्याचार को वे किसी भी अवस्था में बर्दाश्त नहीं कर सकते।

आतंकवादी जीवन के कठोर, क्रूर अनुभवों के बाद यशपाल के जीवन में अब व्यवस्था आई है। वे साहबी लिबास में रहते हैं और अपने सुव्यवस्थित, नियमित जीवन में हमें पाश्चात्य लेखकों का स्मरण दिलाते हैं। वे सूट पहनते हैं, सिगार पीते हैं, लंच खाते हैं, नित्य सुबह ही 'शेव' करते हैं। इसी प्रकार वे नियमित रूप से साहित्य-सेवा में भी लगे रहते हैं। लेखकों के ऐसे व्यवस्थित, संगठित जीवन में स्वयं मैं कुछ दोष देखने में असमर्थ हूँ। अवश्य ही सतत संघर्ष के बाद यशपाल अपने लेखन-कार्य के लिए इतनी सुविधाएँ जुटा पाए हैं, जो औसत हिन्दी लेखक के लिए सर्वथा दुर्लभ हैं। इतना मैं विश्शास से कह सकता हूँ कि यशपाल की सभ्य; सुसंस्कृत नकाब के पीछे मैं एक आर्द्र, मानवीय सम्वेदना से परिपूर्ण व्यक्तित्व पाता हूं। उनकी कला और व्यक्तित्व के प्रति मेरे हृदय में असीम आदर, स्नेह और सम्मान है।

यशपाल ने पहले क्रान्तिकारी देशभक्त और फिर साहित्यिक के रूप में असीम ख्याति पाई है। क्रान्तिकारी जीवन के अनुभव उन्होंने अपने "सिंहावलोकन" शीर्षक संस्मरणों में लिखे हैं। इस काल का उनका जीवन रोमांचकारी घटनाओं से परिपूर्ण था। बाद में अन्य क्रान्तिकारियों की भाँति यशपाल ने भी मार्क्सवाद का अध्ययन किया और वे इस निर्णय पर पहुँचे कि कुछेक नवयुवकों के छिप कर काम करने और षड्यन्त्रों के माध्यम से भारत में क्रान्ति होना असंभव है। इसके लिए भारतीय जनता का क्रान्तिकारी आन्दोलन में आना अनिवार्य है। इस विचार-धारा को पुष्ट करने के लिए यशपाल ने लखनऊ से "विप्लव"

का सम्पादन आरम्भ किया और "मार्क्सवाद" नाम की पुस्तक लिखी। यशपाल अपनी चुटीली व्यंगात्मक और ओजस्वी शैली के लिये हिन्दी पाठकों के विशेष प्रिय लेखक बन गए।

यशपाल साहित्यिक-सृजन के बीस से अधिक पार कर चुके हैं। एक समाज-चेता लेखक के रूप में वे हिन्दी संसार में बहुत ख्याति पा चुके हैं। उनका जीवन-अनुभव अब प्रसार और गहराई दोनों में ही बढ़ चुका है। कथाकार के रूप में हमें उन से अभी और भी प्रौढ़ और सबल रचनाओं की अपेक्षा है। कवि तरुणाई में अपनी सर्वश्रेष्ठ देन साहित्य को दे जाते हैं, किन्तु उपन्यासकार की दृष्टि निरन्तर अधिक पारदर्शी और गहरी होती जाती है। ख्याति की ऊँची चोटी पर खड़े होकर यशपाल और भी उन्नत शिखरों पर चढ़ने की क्षमता रखते हैं, उनके मित्र और पाठक ऐसी भावना मन में सहज ही रख सकते हैं।

बंबई

प्रकाश चन्द्र गुप्त

यशपाल—नाटकार, निर्देशक तथा अभिनेता

उपन्यासकार, कलाकार, निवन्धकार तथा पत्रकार के रूप में यशपाल का यश हमारे ही देश के नहीं अपितु रूस, जेकोस्लोवाकिया, फ्रांस तथा इंगलैंड के साहित्य-क्षेत्रों में भी मिल चुका है, किन्तु यशपाल को नाटककार निर्देशक तथा अभिनेता के रूप में अभी अपेक्षाकृत कम ही लोग जानते हैं। यूं शायद कुछ लोगों को ज्ञात हो गया होगा कि यशपाल ने प्रसिद्ध निर्देशक के लिये कहानी लिखी है जो निकट भविष्य में सफल फिल्म के रूप में हमारे सामने आयेगी। किन्तु मैं यहाँ पर रंगमंच की बात करना चाहता हूँ।

मैं यशपाल के विषय में विश्वास के साथ इसलिये लिख रहा हूं कि उनसे मेरा व्यक्तिगत घनिष्ट सम्पर्क पिछले सात आठ साल से रहा है। इस काल में मैंने उनके प्रायः सभी रूप देखें हैं और उनसे साहित्यिक प्रेरणा तथा सहायता पाई है। उनकी नम्रता, समझदारी और छोटे-बड़े सबके साथ मिलजुल कर सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्य कर सकने की अनूठी प्रतिभा का उदाहरण मैं उस नाटक के संदर्भ में देना चाहता हूं जो शायद उनका पहला नाटक था और जिसमें उन्होंने स्वयं कई रूपों में काम किया।

सन् १६५१ के आसपास लखनऊ के सांस्कृतिक जीवन में कुछ शिथिलता के चिन्ह देख वहाँ के कुछ सचेत और उत्साही सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से 'थेटर-ग्रुप' नामक एक संगठन बना। इसको नगर के कई प्रसिद्ध लेखक, बुद्धिजीवी, नाटककार तथा प्राध्यापकों का सहयोग प्राप्त हुआ। इस संस्था के कई ध्येय थे, जिनमें मुख्य यह था कि लखनऊ में एक उच्चकोटि के रंगमंच की नींव डाली जाय, जो कि नगर और आसपास की छोटी-मोटी बिखरी हुई संस्थाओं का केन्द्र बन कर सांस्कृतिक पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण योग दे। इस महत्त्वाकांक्षा को सक्रिय रूप देने के लिये कोई अच्छा नाटक चुन कर प्रबुद्ध जनता के सामने रखने की सलाह हुई। किन्तु जब नाटक चुनने का समय आया तो इस बात को देख कर निराशा हुई कि हिंन्दी में रंगमंच पर दिखाने-योग्य चोटी के आधुनिक नाटकों की कमी है। बहुत से नाटक पढ़े गये किन्तु कोई किसी दृष्टि से अस्वीकृत हुआ तो कोई किसी से। यहाँ तक कि अंग्रेजी के किसी अच्छे नाटक का अनुवाद करने की बात चलने लगी। लेकिन यह हिन्दी के लिये अपमानजनक बात थी। यशपाल 'थेटर-ग्रुप' के प्रमुख सदस्यों में से एक थे। अन्त में उन्होंने अपनी एक कहानी को नाटक का रूप देने का निश्चय किया। इस प्रकार 'नशे नशे की बात' की रूप-रेखा सामने आई।

'थेटर-ग्रुप' ने सर्व प्रथम इसी को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का निश्चय किया। बाद में रिहर्सलों के अनुभव से लाभ उठा कर यशपाल ने प्रथम रूप-रेखा में आवश्यक परिवर्तन कर नाटक में जान डाल दी और उसको अन्तिम और स्थायी रूप देकर 'थेटर-ग्रुप' की लाज रख ली। यशपाल के दो नाटक और प्रख्यात हैं, 'गुड बाई दर्दे दिल' तथा 'रूप की परख' जिनका 'नशे नशे की बात' की तरह लखनऊ तथा अन्य स्थानों में सफल अभिनय हो चुका है।

'नशे नशे की बात' को ग्रुप ने चैन की सांस लेकर चुन लिया, किन्तु अब प्रश्न आया उसको रंगमंच पर उपस्थित करने का। ग्रुप में न तो कोई पेशेवर अभिनेता था और न प्रशिक्षित निर्देशक, लेकिन अनुभव बताता है कि पेशेवर अभिनेता हर प्रकार के नाटक में सफल हो ही जायेंगे या शास्त्रीय निर्देशक नाटक की आत्मा को पहचान ही लेंगे, यह विश्वास के साथ कहना कठिन है। ग्रुप ने श्रीमती दुर्गादेवी के स्कूल में 'नशे नशे की बात' को नौसिखिये अभिनेताओं के भरोसे पर चालू कर ही दिया। रिहर्सल होने लगी। प्रतिदिन निर्देशक बदलता, प्रतिदिन पात्र बदलते किन्तु धीरे- धीरे सफलता की आशा होने लगी, क्योंकि नाटक के लेखक में निर्देशक के भी गुण झलकने लगे थे। यशपाल आत्मश्लाघा और स्वभाव की कटुता के दोषों से विहीन थे। उनकी दृष्टि में छोटे से छोटे कार्यकर्ता की राय का भी महत्व था।

गाड़ी आगे बढ़ चली। किन्तु शीघ्र ही एक बाधा और आ खड़ी हुई। 'छिद्दू काका' के रूप में श्री रघुवीर सहाय और 'कामता की बहू' के रूप में कुमारी देवकी पांडे तो सफलता की आशा देने लगे किन्तु शराबी 'कामता' के रूप में कोई जम न पाया। अन्त में मित्रों के अनुरोध से यशपाल ने यह काम अपने सर ले लिया, एक ही दो रिहर्सलों के बाद हम सबने फिर चैन की सांस ली क्योंकि पैदायशी अभिनेता की खोज पूरी हो गई थी। यशपाल ने अत्यंत उत्साह से अपने चेहरे की नकाब हटाकर इस नये रूप का प्रदर्शन कर दिया।

इस प्रकार यशपाल के त्रिमुखी सहयोग से 'नशे नशे की बात' का प्रथम सफल अभिनय ३१ अप्रैल सन् १९५१ की रात्रि को छतरमंजिल के हाल में हुआ। कई साल के लम्बे काल में नाटक प्यासी लखनऊ की जनता ने शायद पहली बार इस प्रकार का सफल अभिनय देखा होगा। इस नाटक की स्थानीय पत्रों में बड़ी प्रशंसा हुई और यह आधुनिक नाटक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सीमा-चिन्ह माना गया।

यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यशपाल द्वारा हिन्दी नाटक और रंगमंच को बल प्रदान हुआ है। इनको भविष्य में भी यशपाल से बड़ी बड़ी आशाएँ है।

लखनऊ

देवकी नन्दन पान्डे 'दिवाकर'

श्री यशपाल–एक अपरिचित की दृष्टि में

आज यह तो ठीक याद नहीं पड़ता कि यशपाल से मेरा परिचय पहले पहल कब हुआ । क्रान्तिकारियों की बात दिनों से सुनता आ रहा था और शायद ३२-३३ में लाहौर जाने पर मैंने उन लोगों की बहुत सी कहानियाँ भी सुनी थीं । उन दिनों रोहतक के लाला शामलाल वकील (अब स्व०) क्रान्तिकारियों की ओर से मुकदमे लड़ा करते थे । एक दिन एक मित्र के साथ मैं उनसे मिलने के लिए उनके निवास स्थान पर गया । मैंने वहाँ कई ऐसे युवकों को देखा जो मुझे और लोगों से कुछ भिन्न जान पड़े । उस भिन्नता का स्तर क्या था यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकता लेकिन उन दिनों सर से क़फ़न बाँधे रहने वाले उन युवकों के प्रति मेरे मन में जो धारणा उत्पन्न हो गई थी शायद वही मेरी उस मानसिक भिन्नता का कारण थी । वे कौन थे, यह जानने की न तो मैंने तब कोई चिन्ता की और न आज ही मुझे उनके बारे में कुछ मालूम है । लेकिन बहुत दिन बीत जाने पर जब देश ने एक नई करवट ली और हमारे बहुत से क्रान्तिकारी बन्धु जेलों से मुक्त हुए तो मुझे कई कारणों से उनमें से कई एक के सम्पर्क में आने का अवसर मिला । मैं उन दिनों सरकारी नौकर था और वह भी पंजाब सरकार का । बदनाम भी काफ़ी था । और सी० आई० डी० वालों की कृपा का पात्र भी । ऐसी अवस्था में उनके सम्पर्क में आना खतरे से खाली नहीं था । ख़तरे के बादल उठे भी लेकिन हमेशा बिना बरसे ही लौट गए । क्योंकि मेरे इन लोगों के सम्पर्क में आने का कारण राजनैतिक कभी नहीं था । हाँ मन में श्रद्धा के भाव अवश्य थे । भले ही उनकी कार्य-प्रणाली से किसी का मतभेद रहा हो, पर देश पर जान देने वालों से मतभेद रहने पर भी प्रेम में कमी नहीं पड़ती ।

सबसे पहले मेरा सम्पर्क यशपाल के साथ ही स्थापित हुआ । कारागार से बाहर जाने के बाद वे हिन्दी के एक लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो गए थे इसलिए स्वभावतः ही मेरा ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ । उनसे साक्षात् परिचय शायद श्री जैनेन्द्रजी द्वारा की गई एक साहित्य परिषद में हुआ था । मैं मान लूँ यशपाल की उस मूर्ति ने मेरे मन पर कोई बहुत अच्छा प्रभाव नहीं डाला था । और शायद आज भी मेरा जो उनसे परिचय है उसमें कोई आत्मीयता है यह कहने की धृष्टता नहीं करूँगा । आज भी सांसारिक दृष्टि से हम दोनों एक दूसरे के लिये अपरिचित हैं । लेकिन फिर भी उनको मैं कभी भुला नहीं सका । न भूलने की एक बड़ी मजेदार घटना है ।

बात उन दिनों की है जब वे 'विप्लव' निकाल रहे थे । मैंने भी उनके पत्र में लिखा था । इस कारण और बाद में मैं जब एक लेख की सामग्री तलाश कर रहा था तब मेरा उनसे कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था । लेख का विषय था 'प्रसिद्धि की आयु' में यह जानना चाहता था कि विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले व्यक्तियों की प्रसिद्धि की औसत आयु क्या है? ज़ाहिर है,इस सम्बन्ध में मैंने विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले अनेकानेक व्यक्तियों से पत्रव्यवहार किया । यशपाल भी उनमें एक थे । उन्होंने मेरे पत्रों का शायद ही कभी उत्तर दिया हो, लेकिन फिर भी ऐसा अनुमान है कि मेरा लिखा हुआ कोई पत्र सी० आई० डी० के हाथ पड़ गया था । फाइल वहाँ मेरी पहले से ही मौजूद थी । इसलिए जब ६ जून सन् ४० को मैंने अपना नाम पंजाब के उन विद्रोहियों की सूची में पाया जिनकी उसी दिन तलाशियाँ होनी थीं, मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ । यों तो मुझे इस तलाशी की सूचना का कई मित्रों की कृपा से पहले ही पता चल गया और मैंने अपने पुस्तकालय के बहुत सारे आपत्तिजनक समझे जाने वाले साहित्य को हटा भी दिया था । फिर भी पुलिस को अपनी कार्यवाही करने के लिए कुछ न कुछ मिल ही गया । उसमें जो सबसे मजेदार बात थी वह यह थी कि मेरे मित्र श्री यशपाल जैन कुछ दिन पूर्व ही मेरे पास से गए थे और ग़लती से अपना लेटर पैड वहीं छोड़ गए थे । सी० आई० डी० इन्स्पैक्टर, जो आज भी मेरा मित्र है, उसको पाकर इस प्रकार उछला मानो उसे कोई निधि मिल गई हो ।

मैंने पूछा—'क्या मिल गया ?'

कहने लगे—'पहले यह बताओ कि तुम्हारा यशपाल से क्या सम्बन्ध है ?'

मैंने उत्तर दिया—'सम्बन्ध तो कोई नहीं है । बस हिन्दी के लेखक होने के नाते हम दोनों एक ही पथ के पथिक हैं । लेकिन आपको मिला क्या है ?'

वे बोले—'यह देखो । यह उनका लैटर पैड है । वे तुम्हारे पास अवश्य आए थे ।'

यह सुनकर मुझे हँसी आ गई और यदि मैं चितेरा होता तो उस समय का उन सी० आई० डी० इन्सपैक्टर का चित्र आज भी खेंच देता ।

सच बात बताने पर उनकी जो स्थिति हुई वह शब्दों में कैसे बताई जा सकती है ।

ख़ैर कुछ भी हो उस दिन से यशपाल मेरे जीवन में चिर-स्मरणीय बन गए । अगली बार उनसे मिलने पर जब यह घटना मैंने उन्हें सुनाई तो वे बहुत हँसे । कहने लगे—'तुम तो खुशकिस्मत हो । कई व्यक्तियों को तो इसी कारण जेल की हवा खानी पड़ी है ।' शायद उन्होंने यह भी कहा था कि इसी कारण वह बहुत से पत्रों का उत्तर नहीं देते ।

यह तो हुई परिचय की बात । जब-जब मैं उनसे मिला मैंने उनको सदा एक उत्साही, कर्मठ और तत्पर व्यक्ति के रूप में पाया । उनके साहित्य ने मुझे सदा अपनी ओर खींचा है । विशेषकर उनकी सामाजिक कहानियों ने मेरे मन और मस्तिष्क पर गहरी चोट की है, उसे बुरी तरह से झकझोरा है और सोचने को विवश किया है । 'ज्ञानदान, भस्मावृत चिन्गारी, सोमा का साहस' जैसी उनकी बहुत सी कहानियाँ आज भी मेरे मन पर अंकित होकर रह गई हैं । 'दिव्या' जैसे उनके उपन्यास किसी भी साहित्य की निधि हो सकते हैं । उनके निबन्धों के चुटीले व्यंग, ताज़गी और ईमानदारी से उनके विरोधी भी इन्कार नहीं कर सकते । मैं मानता हूँ वे निर्दयी हैं बेईमान नहीं हैं । इस दृष्टि से वे उन साहित्यिकों से बहुत ऊँचे हैं जो सौम्यता का आवरण ओढ़ कर शब्दों का मायाजाल रचते हैं ।

यशपाल राजनीति के एक विशेष दल से इस प्रकार सन्नद्ध हो गए हैं कि बहुत से लोग उनके सारे साहित्य में उसी की ध्वनि सुनते हैं। लेकिन मैंने उनके साहित्य का अध्ययन इस दृष्टि से कभी नहीं किया। बल्कि जब कभी भी मुझे उनकी रचनाओं को पढ़ने का अवसर मिला है तब मैं उनके मनोवैज्ञानिक चित्रण, अभिव्यक्ति और सूक्ष्म-दृष्टि से प्रभावित हुआ हूँ। वे कहानी कहना जानते हैं और यह उनकी सबसे बड़ी सफलता है। वे आक्रमण करते हैं, प्रचार भी करते हैं लेकिन सबसे पहले वे कलाकार हैं। इसलिए उनका अधिकांश साहित्य राजनीतिक पेम्फलेटबाज़ी से बहुत दूर और बहुत ऊँचा है। ठीक है, कुछ रचनाओं के बारे में विवाद किया जा सकता है और बहुत से आलोचक उन पर यह आक्षेप भी करते हैं कि प्रगतिवादी होते हुए भी उनकी रचनाओं में रोमांस का चित्रण बहुत हुआ है। रोमांस है और कभी-कभी मुझे भी ऐसा लगा है कि जैसे वे यहाँ जाकर तटस्थ नहीं रह पाते लेकिन यह मानना पड़ेगा कि यहाँ भी वे इस प्रकार बचकर निकल जाते हैं जिससे उनकी रचनाओं का मूल सन्देश पाठक की दृष्टि से ओझल नहीं हो पाता। किसी भी कलाकार की यह एक बहुत बड़ी सफलता है।

मैं आलोचक नहीं हूँ। मैं उनका मित्र भी नहीं हूँ। एक साधारण पाठक और एक ऐसे साधारण व्यक्ति के रूप में, जो इस प्रकार से टकरा जाता है जिस प्रकार तूफ़ान से उड़ने वाले दो पत्र, या नदी की धारा में बहने वाले तख्ते, मैंने यह सब लिखा है। उनसे पूरा मतभेद रखते हुए भी मैं उनको हिन्दी का महान कथाकार स्वीकार करता हूँ। उनके साहित्य की शक्ति, स्फूर्ति, मनोवैज्ञानिक चित्रण और व्यंग सौन्दर्य का कायल हूँ। मेरी यह कामना है कि उनका अभिनन्दन करने के ऐसे अनेक अवसर हमें मिलते रहें और हमारा साहित्य उनसे गौरवान्वित होता रहे।

दिल्ली

विष्णु प्रभाकर

क्रांतिकारी लेखक : यशपाल

१९४२ के दिन थे। पहले पहल मैं यशपाल से उनके साहित्यकार होने के नाते नहीं वरन् क्रांति की दीक्षा देने वाले के नाते मिला था और मेरा उद्देश्य उनसे बंब बनाने का नुस्खा लेना था। यद्यपि उन दिनों आंतकवादियों की सरगर्मियाँ खत्म थीं। लेकिन १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन का एक भाग हिंसा से अंग्रेज़ों को देश से बाहर निकाल देने के लिए कटिबद्ध था। नामधारी दरबार के काम से या हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति की बैठक में सम्मिलित होने के लिए अलाहाबाद लखनऊ अक्सर जाना होता होता था ऐसे सुअवसरों पर क्रांतिकारी साहित्यकारों से बिना भेंट किए लौट आना मुझे जँचता न था।

१९४२ के फरवरी महीना में जब मैं उनसे मिला तो संध्या का समय था। मेरे साथ हिन्दी पंजाबी के तरुण लेखक श्री प्रीतम सिंह पंछी भी थे। हम ने जब उनके शिवाजी मार्ग वाले घर पर दस्तक दी तो वे नाईट सूट पहने हुए बरामदे में आए। मुझे पहचानते ही भीतर ले गये और हम एक गोल मेज़ के चारों ओर जम कर बैठ गये। जब उन्होंने बात चीत आरम्भ की तो लगा कि वे आर्थिक दुश्चिंताओं से अभी तक सर्वथा निश्चित नहीं हो पाये हैं। उनकी धर्म पत्नी ने दाँतों की डाक्टरी शुरू कर रखी थी लेकिन फिर भी गुजर नहीं होती थी और उन्हें पर्स, बटुए आदि बनाकर बेचने पड़ते थे। उन्होंने बताया कि ऐसा उन्हें इसलिए करना पड़ा था कि कहीं से कोई उनका क्रांतिकारी साथी या साहित्यक मित्र आया ही रहता था और फिर उनकी आवभगत का खर्च कैसे चलता ?

इसका प्रत्यक्ष सबूत उसी समय मिल गया जब कि हमारे बैठे ही दो साहित्यिक बंधु श्री चन्द्र अग्निहोत्री और श्री महादेव साहा आ उपस्थित हुए। अतिथियों के चाय-पानी के लिये पूछा ही जाना चाहिये इसलिए उस पर खर्च भी अवश्य होगा। मुन्शी प्रेम चंद के दुर्दिनों की कहानी सब जगह दुहराई जाती थी लेकिन यशपाल सरीखे क्रांतिकारी लेखकों को तो दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था. अंग्रेज़ी सरकार उनका पीछा कहाँ छोड़ने वाली थी और दूसरी ओर पुस्तकें लिखकर भर पेट रोटी मिल पायेगी, यह अभी बहुत दूर की बात थी परन्तु यशपाल ने सत्कार में कमीं नहीं की।

पिछले चौदह वर्षों के समय में बड़े बड़े परिवर्त्तन हुए हैं। स्वतंत्रता मिली और दुनिया का मानचित्र ही परिवर्तित हो गया। यशपाल ने इस लम्बे समय में प्रत्येक विषय पर कलम चलाई है। नये लेखक अब उन्हें अपना खलीफ़ा मानने लगे हैं और वे भी नई पीढ़ी के लेखकों को बढ़ावा देने में किसी से पीछे नहीं हैं।

यही मंगल कामना है कि यशपाल चिरायु हों और 'सत्यं शिवं सुंदरम्' साहित्य में वृद्धि करते जाएँ।

पटियाला — संत इन्द्र सिंह
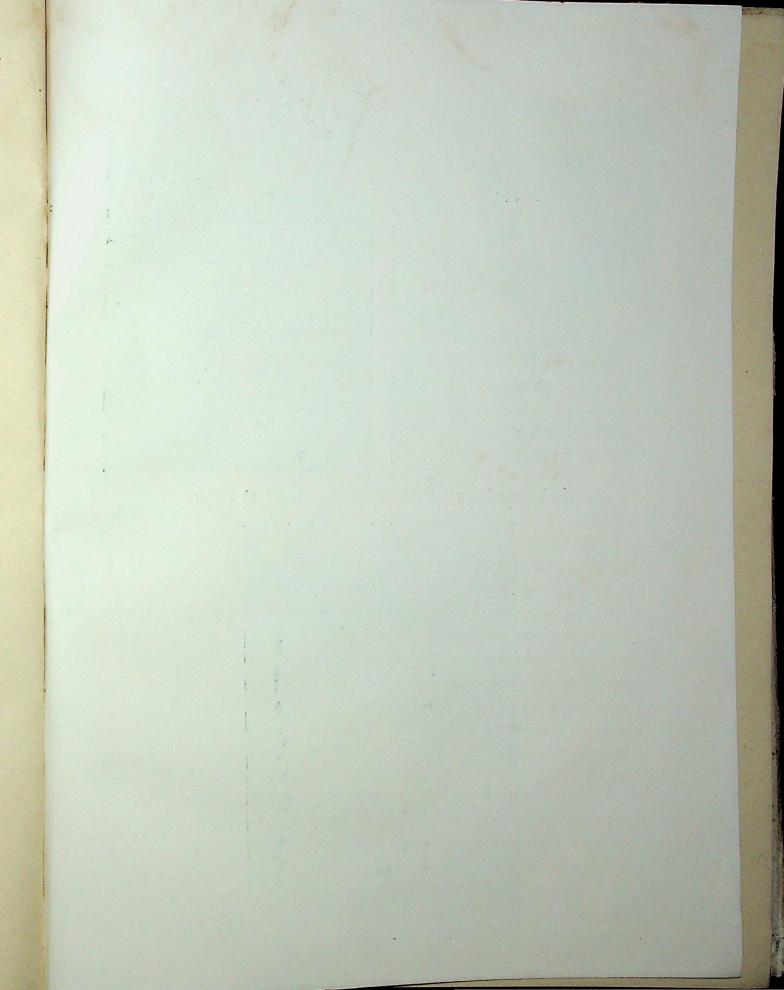
श्रीमती प्रकाशवती पाल

श्री यशपाल

श्री यशपाल के बेटी-बेटा किरण और आनन्द
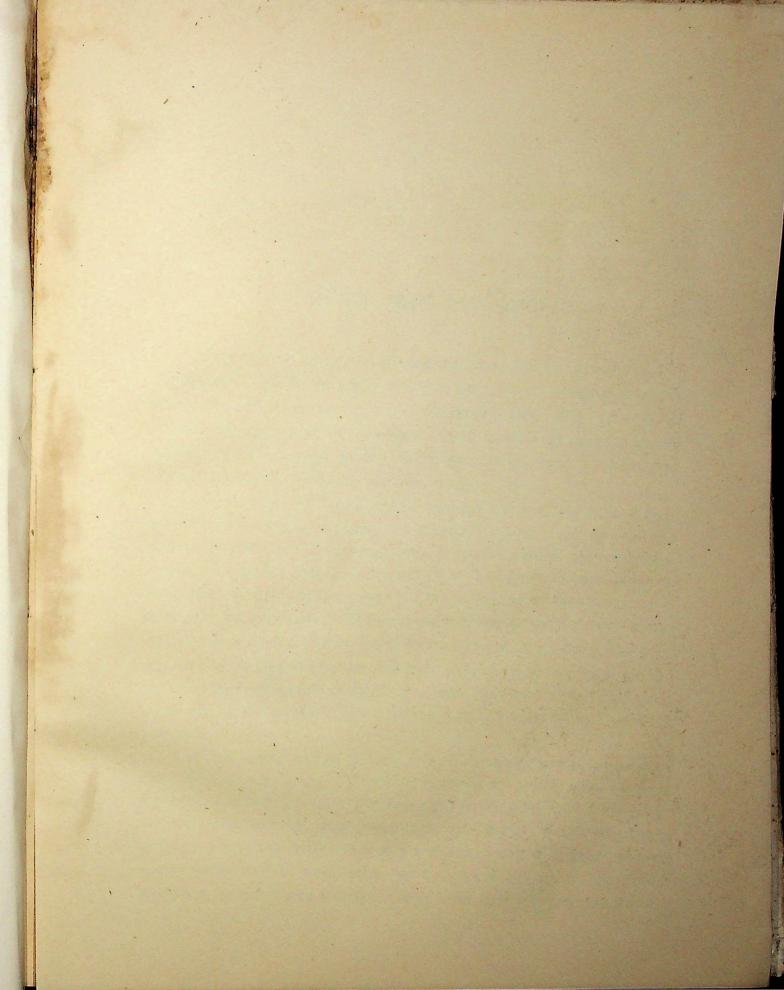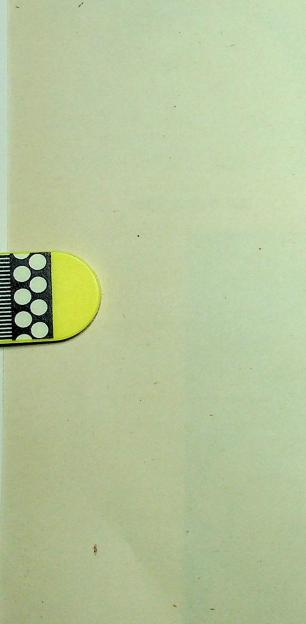
जीवन और व्यक्तित्व

यशपाल को गर्व है कि वह साधनहीन श्रेणी से आए हैं। उनका जन्म ३ दिसम्बर, १९०३ को फ़ीरोज़पुर छावनी में हुआ था; कद ५ फुट ७ इंच है। उस समय उनकी मां फ़ीरोज़पुर छावनी के प्रसिद्ध अनाथालय में अध्यापिका का काम करती थीं। उनके माता-पिता कांगड़ा ज़िले से आये थे, इस लिये वह अपने आपको पहाड़ी समझते हैं। उत्तराधिकार के रूप में यशपाल ने कोई ज़र-ज़मीन या मकान नहीं पाया। बचपन में वह गुरुकुल कांगड़ी में निःशुल्क छात्र थे। सातवीं श्रेणी में पढ़ते समय बहुत बीमार हो जाने के कारण उनकी माता उन्हें लाहौर ले आईं।

यशपाल डी० ए० वी० स्कूल में पढ़ने लगे और उसके बाद उनकी माता के फिर फ़ीरोज़पुर छावनी चले जाने के कारण वह वहां मनोहर लाल हाई स्कूल में पढ़ने लगे। हाई स्कूल में पढ़ते समय वह गुरुकुल कांगड़ी की शिक्षा और आर्यसमाजी माता के विचारों के प्रभाव के कारण आर्यसमाज के आन्दोलन में भाग लेते थे। माता की तनख़ाह केवल तीस रु० थी। इसलिये यशपाल ने उसी समय से ट्यूशन पढ़ाना भी आरम्भ कर दिया। १९१९ के रौलेट ऐक्ट के विरोध में कांग्रेस के आन्दोलन का प्रभाव उन पर पड़ा। १९२०-२१ में फ़ीरोज़पुर छावनी में जो कुछ भी कांग्रेसी या स्वदेशी आन्दोलन चला, वह केवल दो विद्यार्थियों – यशपाल और लजवन्त राय – के प्रयत्नों और साहस का परिणाम ही था। यशपाल ने १९२१ में मैट्रिक की परीक्षा फर्स्ट डिवीज़न में और अपने स्कूल में प्रथम रह कर पास की। उन्हें वज़ीफ़ा मिला परन्तु असहयोग आन्दोलन के कारण उन्होंने सरकारी कालेज में भर्ती होने से इनकार कर दिया और वह फ़ीरोज़पुर ज़िले के देहात में कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन का प्रचार करने के लिये घूमते रहे।

१९२१ में चौराचौरा की घटना के कारण गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया। यशपाल को बहुत निराशा हुई। सामने कोई रास्ता नहीं था। सरकारी कालेज में भर्ती होना मंजूर नहीं था। वह लाहौर में स्वर्गीय लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित नेशनल कालेज में भर्ती हो गए। यहाँ उनका परिचय भगत सिंह, सुखदेव, भगवती चरण आदि से हुआ। ये सभी लोग असहयोग आन्दोलन द्वारा देश के लिये स्वराज्य प्राप्ति के उद्देश्य से जीवन-अर्पण करने का निश्चय कर चुके थे और आन्दोलन स्थगित कर दिये जाने के कारण क्षुब्ध थे। एक साथ मिल जाने पर विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप इन लोगों ने कांग्रेस के गांधीवादी मार्ग की अपेक्षा क्रांति के मार्ग को अधिक भरोसे-योग्य

समझा। क्रांतिकारी दल और नौजवान भारत सभा की स्थापना हो गई। भगत सिंह और सुखदेव तो पढ़ाई छोड़कर दल का गुप्त काम करने के लिये फ़रार हो गये परन्तु यशपाल नेशनल कॉलेज से बी० ए० पास करके कॉलेज में पढ़ाते हुए दल के सूत्र जमाने का काम करते रहे।

भगत सिंह और यशपाल दोनों की ही साहित्य पढ़ने और लिखने की ओर रुचि थी। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार उदय शंकर जी भट्ट उस समय नेशनल कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक थे। उनके प्रोत्साहन से ही यशपाल की पहली कहानी हिन्दी के एक मासिक पत्र में प्रकाशित हुई थी। उससे उत्साहित होकर यशपाल उस समय कानपुर से शहीद गणेशशंकर जी विद्यार्थी के संपादकत्व में प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'प्रताप' में जब-तब कुछ भावात्मक गद्य-काव्य लिखने लगे। कभी-कभी लाहौर के उर्दू 'वन्देमातरम्' में भी वह कुछ लिखने लगे थे। लिखने की ओर उनकी प्रवृत्ति बचपन से ही थी। सबसे पहली कहानी उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में बारह वर्ष की आयु में लिखी थी।

१९२८ दिसंबर में, लाहौर में लाला लाजपतराय पर आक्रमण करने वाले पुलिस सार्जेंट साण्डर्स को गोली मार दी गयी और १९२९ मार्च में दिल्ली असेम्बली में भगत सिंह ने बम फेंका और १९२९ अप्रैल में लाहौर में एक बम फैक्टरी पकड़ी गई। इन घटनाओं के कारण यशपाल लाहौर से फ़रार हो गए। १९२१ दिसंबर में वायसराय की गाड़ी के नीचे क्रांतिकारी दल ने जो बम विस्फोट किया था, उसके लिये घटनास्थल पर यशपाल ही गए थे। इसके बाद वह क्रांतिकारी दल और अंग्रेज़ सरकार के बीच चलने वाले सशस्त्र संघर्ष में भाग लेते रहे। वह लगभग तीन साल तक फ़रार रहे। उस समय भी सदा हाथ में पिस्तौल रहने पर भी वह कलम को भूल नहीं पाए। वह कुछ न कुछ लिखते रहते। हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना का घोषणा पत्र 'फिलासफी ऑफ दी बम' भगवती चरण और यशपाल ने ही मिलकर लिखा था। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक क्रांतिकारी नाटक का अनुवाद किया, जो प्रकाशित नहीं हो सका और एक चार साढ़े चार सौ पृष्ठ की पुस्तक 'गांधी और लेनिन' भी उन्होंने लिखी, जिसे दिल्ली से श्री ऋषभ चरण जैन ने लेखक का नाम बदल कर प्रकाशित किया था। भेद खुल जाने पर अंग्रेज़ सरकार ने इस पुस्तक को ज़ब्त कर लिया।

१९३१ फ़रवरी में हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना के कमांडर-इन-चीफ शहीद चंद्रशेखर आज़ाद इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में अंग्रेज़ सरकार की पुलिस से लड़ते हुए शहीद हो गये। इसके पश्चात दल ने यशपाल को हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना का कमांडर नियुक्त कर दिया। इसी समय लाहौर और दिल्ली में प्रथम और दूसरे लाहौर षड्यंत्र और दिल्ली षड्यंत्र के मुकद्दमे चलते रहे। यशपाल इन मुकद्दमों के प्रधान अभियुक्तों में थे, परन्तु थे फ़रार। यशपाल और दूसरे फ़रार क्रांतिकारियों की गिरफ़्तारी के लिये सरकारी इनाम के बड़े-बड़े विज्ञापन सभी जगह लगे रहते थे।

२३ फ़रवरी १९३२ की सुबह यशपाल को अंग्रेज़ सरकार की पुलिस ने इलाहाबाद में एक मकान में घेर लिया। जाड़ों की सुबह का घना अंधेरा था। दोनों ओर से गोली चलती रही। पिस्तौल में गोलियां समाप्त हो जाने पर यशपाल गिरफ्तार हो गए। उन्हें चौदह वर्ष सख्त कैद की सज़ा दे दी गई और लाहौर और दिल्ली षड़यन्त्रों के समाप्तप्राय मुकद्दमे उन पर से हटा लिए गये। १९३८ में कांग्रेसी मंत्रिमंडल की नीति सभी राजनैतिक कैदियों को रिहा कर देने की थी। यशपाल यू० पी० की जेलों में थे, इस लिये यू० पी० के कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने उन्हें भी २ मार्च १९३८ को जेल से रिहा कर दिया।

जेल के समय को यशपाल ने पढ़ने-लिखने में बिताया। उन्होंने बंगला, फ्रेंच और इटेलियन का अध्ययन किया और खूब लिखते रहे। वह अपनी लिखी कहानियों की स्वयं आलोचना कर उन्हें फिर से लिखते। उनके संग्रहों में प्रकाशित लगभग पन्द्रह-बीस कहानियां उसी समय की लिखी हुई हैं।

जेल में ही अगस्त १९३६ में प्रकाशवती कपूर से बरेली सेण्ट्रल जेल में यशपाल का विवाह हो गया। ऐसी घटना जेलों के इतिहास में एक ही बार हुई। प्रकाशवती कपूर १९३० में ही लाहौर में अपने परिवार से फ़रार होकर क्रांतिकारी दल के गुप्त आन्दोलन में सम्मिलित हो गयी थी। १९३४ में लगभग सभी क्रांतिकारियों के पश्चात वह दिल्ली में गिरफ़्तार हो गयी थी। यह विवाह केवल कानूनी बात थी। प्रकाशवती जेल के दफ़्तर में पहुँच गयी, यशपाल को भीतर से बुला लिया गया। बरेली के डिप्टी कमिश्नर ने विवाह की रजिस्ट्री कर दी। यशपाल जेल के भीतर अपनी बैरक में और प्रकाशवती जेल के बाहर चली गयी।

१९३८ में जेल से रिहा होने के बाद यशपाल को पंजाब में प्रवेश करने की मनाही थी। उन्होंने लखनऊ के एक साप्ताहिक पत्र में ७५) मासिक की उप संपादक की नौकरी कर ली, परन्तु निभ नहीं सकी। उनकी माता के पास ३००) की पूंजी थी। उसी के बल पर यशपाल और प्रकाशवती ने मिलकर लखनऊ से एक मासिक पत्र 'विप्लव' के नाम से प्रकाशित कर दिया। यशपाल का काम लेख लिखना, लेख बटोरना, प्रूफ देखना और पत्र के पार्सल स्टेशन पर पहुँचाना था और प्रकाशवती का काम घूम-घूम कर पत्र के ग्राहक बनाकर अगले मास का अंक प्रकाशित करने के लिये रुपया जमा करना था। इस प्रकार पत्र के तीन चार अंक निकाल देने पर 'विप्लव' चल पड़ा। 'विप्लव' अपने ढंग का अकेला पत्र था, शायद इसलिये उसकी मांग थी। जेल से मुक्ति के बाद भी यशपाल ने हिन्दी पत्रों में लेख और कहानियां लिखीं। पत्रों से चार या पांच रुपये प्रति लेख या कहानी मिल जाते थे और कभी कुछ भी नहीं। 'विप्लव' के कुछ लेख धारावाहिक रूप से चलते थे। उदाहरणतः चक्कर क्लब, मार्क्सवाद की पाठशाला और सिंहावलोकन। एक कहानी भी रहती। इन लेखों के प्रति पाठकों का बहुत आकर्षण था। यही लेख विप्लव की जान थी। कुछ लेख या अनुवाद यशपाल नाम बदल कर लिख डालते। विप्लव में अस्सी पृष्ठ होते थे। पचास या साठ पृष्ठ यशपाल स्वयं ही लिखते थे। १९४०-४१ में जब अंग्रेज़ी सरकार द्वारा भयंकर दमन हुआ और विप्लव के लिये लेख लिखने वाले जेलों में पहुँच गए तो यशपाल पूरे अस्सी पृष्ठ अनेक नामों से लिख डालते थे। १९३९ के अंत में विप्लव इतना जनप्रिय हो चुका था कि विप्लव का एक उर्दू संस्करण भी 'बाग़ी' के नाम प्रकाशित होने लगा।

नवम्बर १९३९ में यशपाल की कहानियों का पहला संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' प्रकाशित हुआ और जुलाई १९४० में उनके हास्यरस के समस्यामूलक लेखों का संग्रह 'न्याय का संघर्ष' प्रकाशित हुआ। १९४० अगस्त में उनकी पुस्तक 'मार्क्सवाद' प्रकाशित हो गयी। अगले वर्ष मई मास में उनका पहला उपन्यास 'दादा कामरेड' प्रकाशित हो गया। उसके बाद १९४२ में कहानियों का दूसरा संग्रह 'वो दुनिया' प्रकाशित हुआ। १९४१ में अंग्रेजी सरकार ने 'विप्लव' और 'बाग़ी' से जमानत मांग ली इसलिये 'विप्लव' और 'बाग़ी' का नाम बदल कर 'विप्लव ट्रैक्ट' रख दिया गया। इसी समय १९४२ में यशपाल की पुस्तक 'गांधीवाद की शव परीक्षा' भी प्रकाशित हो गयी।

१९४२ में अंग्रेज़ी सरकार ने यशपाल को फिर गिरफ़्तार कर लिया और 'विप्लव' और 'बाग़ी' से

पुनः बारह हजार रुपये की जमानत मांग ली। रुपया था नहीं इसलिये विप्लव और बाग़ी बंद हो गये। यशपाल मुकद्दमे में रिहा हो गये परन्तु गुज़ारे का कोई तरीका नहीं था। विप्लव का काफी रुपया जो एजंटों के यहां बकाया था, वह भी डूब गया। तीन-चार किताबों की बिक्री से पूरा पड़ नहीं सकता था, प्रकाशवती ने डेंटिस्ट्री सीख ली थी और लखनऊ में डेंटिस्ट की प्रैक्टिस भी शुरू कर दी थी। मजबूर होकर डेंटिस्ट्री का सब सामान बेच डालना पड़ा। इससे भी पूरा न पड़ा तो यशपाल और प्रकाशवती घर में लैम्पों के शेड और चमड़े की गद्दियां बनाकर दुकानों पर थोक बेचने लगे और रुपया बचाकर १९४३ में दूसरा उपन्यास 'देशद्रोही' प्रकाशित किया। देशद्रोही के बाद हास्यरस की दूसरी पुस्तक चक्कर क्लब भी १९४३ में ही प्रकाशित कर दी। १९४३ के अंत में कहानियों का तीसरा संग्रह 'ज्ञानदान' प्रकाशित किया। दस्तकारी और लिखना दोनों चलते रहे। १९४४ के आरम्भ में चौथा कहानी संग्रह 'अभिशप्त' और पांचवां कहानी संग्रह 'तर्क का तूफान' भी प्रकाशित हो गये। अगस्त १९४५ में बौद्धकालीन उपन्यास 'दिव्या' प्रकाशित हुआ। छठा कहानी संग्रह 'भस्मावृत चिनगारी' १९४६ में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् १९४७ में यशपाल का चौथा उपन्यास 'पार्टी कामरेड' प्रकाशित हुआ। पांचवा उपन्यास 'मनुष्य के रूप' मार्च १९४९ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद १९४९ जून में ही एक उपन्यास (अनुवाद) 'पक्का कदम' भी प्रकाशित हो गया। उसी वर्ष के अंत में सातवां कहानी संग्रह 'फूलो का कुर्ता' प्रकाशित हो गया।

१९५० में यशपाल का आठवां कहानी संग्रह 'धर्मयुद्ध' और हास्यरस के लेखों की पुस्तक 'बात-बात में बात' प्रकाशित हुई। १९५० में यशपाल ने काफी लिखा, इसलिये १९५० में उनकी पुस्तकें 'चीनी कम्युनिस्ट पार्टी' और 'राम राज्य की कथा' प्रकाशित हो गयीं। १९५१ में नवां कहानी संग्रह 'उत्तराधिकारी' और दसवां कहानी संग्रह 'चित्र का शीर्षक' और विचारात्मक निबन्धों की पुस्तक 'देखा-सोचा-समझा' भी प्रकाशित हुई और क्रांतिकारी जीवन की आपबीती 'सिंहावलोकन' का पहला भाग भी प्रकाशित हो गया। १९५२ में 'सिंहावलोकन' का दूसरा भाग और तीन एकांकी नाटकों का संग्रह 'नशे-नशे की बात' प्रकाशित हो गये। उस वर्ष दिसम्बर में यशपाल पहली बार यूरोप गए। स्विटजरलैंड, आस्ट्रिया, रूस और इंग्लैंड में चार मास बिताने के बाद वह मई १९५३ में लौटे और उनकी पुस्तक 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' जून में प्रकाशित हुई। १९५४ में यशपाल की केवल एक पुस्तक 'तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूं' प्रकाशित हो गयी। १९५५ में 'सिंहावलोकन' का तीसरा भाग और बारहवां कहानी संग्रह 'उत्तमी की मां' प्रकाशित हुए। इसी समय उन्होंने पर्ल बर्क के उपन्यास 'पैवेलियन आफ विमेन' का अनुवाद 'जनानी ड्योढ़ी' एक प्रकाशक के लिये किया। १९५५ जून में यशपाल दूसरी बार काबुल की राह रूस गए। रूस के भिन्न-भिन्न स्थानों में साढ़े तीन चार मास रह फ़िनलैंड, स्वीडेन और इंग्लैंड होते हुए वह अक्तूबर के अन्त में भारत लौटे। अभी उनका उपन्यास 'अमिता' छप रहा है, जो मार्च १९५६ तक प्रकाशित हो जाने की आशा है। उसके साथ-साथ यशपाल द्वारा अनूदित एक उपन्यास 'चलनी में अमृत' छप रहा है।

यशपाल की कुछ पुस्तकों के चार-चार पांच-पांच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। निर्वाह का एकमात्र साधन लिखना है। उनकी रचनाओं के अनुवाद मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, मलयालय में काफी

हुए हैं, बंगला, उर्दू और सिंधी में कुछ कम। कुछ कहानियों के अनुवाद रूसी, फ्रेंच और चेक भाषा में हुए हैं। अभी उनकी लिखने की इच्छा समाप्त नहीं हुई।

यशपाल के साहित्यिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक पहलुओं से लिखा जा सकता है। अनेक कसौटियों से उनके साहित्य की परख और जांच कर उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। साहित्यिक अथवा कलाकार के कृतित्व या सृजन का ऐसा भी पहलू है जिसके लिए कोई कसौटी निश्चित नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध में परिचय से ही कुछ कहा जा सकता है। साहित्यकार यशपाल के दूसरे पहलुओं को अन्य पारखियों के लिए छोड़ कर मैं उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ही कुछ कहूं तो अधिक उचित होगा। यशपाल के सम्बन्ध में मेरे कुछ कहने-लिखने से पक्षपात-पूर्ण प्रशंसा का सन्देह कुछ लोगों को हो सकता है। किन्तु स्वयं मुझे इससे ठीक उल्टी आशंका है। कहावत है — "अपने नौकर और पत्नी के सामने किसी का बड़प्पन नहीं टिक पाता।"

अधिकांश लोगों के विचार में यशपाल रूप-रंग से कलाकार नहीं जान पड़ते। वह कलाकारों के विशेष ढंग के केश, दाढ़ी-मूंछ नहीं रखते अथवा विशिष्ट पोशाक धारण नहीं करते। न उनके बातचीत करने के ढंग में स्वर या भाव-भंगी और मुद्रा में कोई विशेषता या आकर्षण जान पड़ता है। उनकी पोशाक साधारण कारोबारी लोगों जैसी और बातचीत के ढंग में कुछ रूखा कोरापन, बात को जल्दी समाप्त कर देना है। बातचीत में आग्रह और अनुनय की अपेक्षा है सीधे तर्क का प्रयोग। यशपाल की चिरपरिचित और हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की एक कार्यकर्ता सहयोगी प्रसिद्ध दुर्गा भाभी प्रायः यशपाल के बातचीत के ढंग से चिढ़कर कह बैठती हैं, "तुम तो खामुखा कलाकार बन बैठे हो। पैदा तो पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट बनने के लिए ही हुए थे।" ऐसे ही एक अवसर पर यशपाल दार्जिलिंग गये थे। उनके वहां जाने पर एक साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। गोष्ठी का समय पाँच बजे संध्या और स्थान एक लायब्रेरी निश्चित किया गया था। जिस सज्जन ने गोष्ठी का आयोजन किया था वह यशपाल को गोष्ठी में ले आने के लिए साढ़े चार बजे अतिथि के ठहरने के स्थान पर चले गए। यशपाल मकान पर थे नहीं, इसलिए वह सज्जन प्रतीक्षा में बैठे रहे। यशपाल दार्जिलिंग के हाट-बाज़ार में घूमते हुए पांच बजे लायब्रेरी में पहुँच गए। उस समय दस-बारह व्यक्ति वहां एकत्रित थे। कुछ आपस में बातचीत कर रहे थे और कुछ पत्र-पत्रिकाएं पढ़ रहे थे। यशपाल भी एक पत्र या पत्रिका उठाकर पढ़ने लगे। कुछ लोग और आ गए और इस तरह लगभग पैंतीस-चालीस व्यक्ति हो गए। यशपाल को बुलाने गए उनके परिचित सज्जन अब तक न लौटे थे। जब साढ़े पांच भी बज गए तो लोग प्रतीक्षा से उक्ता गए और बोले—"यशपाल जी नई जगह आए हैं, सम्भवतः घूमने-फिरने निकल गए होंगे। इसलिए उन्हें बुलाने गये सज्जन भी नहीं लौट पाए। उनके आने की आशा छोड़ कर गोष्ठी विर्सजित की जाय।"

यह सुन कर यशपाल उठ खड़े हुए और बोले— "सज्जनो, मैं तो यहां ठीक पांच बजे से बैठा हूं। हां, मुझे बुलाने गए सज्जन अवश्य नहीं लौटे हैं। जगह और समय बता दिया गया था तो बुलाने जाने की क्या आवश्यकता थी?"

उपस्थित लोगों में से कुछ लोग कहकहा लगा कर हँस पड़े और एक बोले— "बैठे तो आप अवश्य देर से हैं, परन्तु हमें क्या अनुमान था कि कोई कलाकार सामने बैठा है! आपका दुबला, लंबा

शरीर, सूट और मौन से तो यही अनुमान हुआ कि जिन्ना साहब एकांत सेवन के लिए चुपचाप बम्बई से दार्जिलिंग में आ गए हैं। आप नहीं बोले तो हम लोगों ने भी आपके मौन में विघ्न डालना उचित नहीं समझा।"

अस्तु, गोष्ठी आरम्भ हो गई। उपरोक्त घटना से यशपाल के रूप-रंग, पोशाक और व्यवहार शैली का अनुमान किया जा सकता है।

यशपाल की आयु का विचार यदि छोड़ दिया जाय तो अपने समकालीन साहित्यिकों में उनका रचना-काल सब से छोटा है। विद्यार्थी जीवन के दो-तीन वर्ष बाद ही वह क्रांतिकारी आन्दोलन के सिलसिले में फ़रार हो गए थे। तीन वर्ष गुप्त जीवन बिताया और सात वर्ष जेल में रहे। १९३८ में वह सरकार बदल जाने के कारण जेल से रिहा हुए और उन्होंने 'विप्लव' मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। विप्लव के अधिकांश लेख वह स्वयं ही लिखते थे और इन्हीं लेखों के परिणामस्वरूप 'विप्लव' एक लोकप्रिय पत्र बन गया था। यह समय यशपाल के साहित्यिक जीवन का पत्रकार-काल कहा जा सकता है। अंग्रेज़ी सरकार को 'विप्लव' सह्य नहीं हुआ और उसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। विप्लव का संपादन करते हुए भी यशपाल निबन्ध, कहानी, उपन्यास आदि लिखते रहे। इतने समय में ही उनकी पुस्तकों की संख्या, अनुवादों को मिलाकर, चौंतीस है। अनुवाद केवल चार हैं। तीस पुस्तकें मौलिक हैं।

इतनी शीघ्रता से और इतना लिखने के कारण उनके साहित्य के प्रशंसकों ने उनके लिखने के ढंग और आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में विचित्र-विचित्र अनुमान लगा लिये हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह रात भर लिखते हैं और दिन में सोते हैं और किसी से मिलते-जुलते नहीं। कुछ का अनुमान है कि यशपाल बिना दूध और चीनी के चाय के पचास प्याले पीते हैं और लिखते जाते हैं। कुछ कहते हैं कि यशपाल दिन भर में एक सौ सिगरेट और सिगार पी-पी कर अपनी चेतना को प्रखर करते हुए लिखते रहते हैं। किन्तु वास्तव में यशपाल का कोई ऐसा असाधारण व्यवहार नहीं है। यह ठीक है कि कई बार उन्होंने रात-रात भर जाग कर लिखा है। बरसात की गर्म रातों में, जब लैम्प पर पतंगे बरसते रहते हैं, यशपाल बैठकर लिख सकते हैं। तब उन्हें रात में दो-ढाई बजे भूख लगती है। उस समय यदि मेरी आँख खुल जाय तो मैं इनके लिए एक प्याला चाय, कोई फल या खाने की चीज़ दे देती हूं। परन्तु वह इस समय किसी को जगाना पसन्द नहीं करते। स्वयं उठकर चाय बना लेते हैं और कुछ खाने के लिए ढूंढ लेते हैं और फिर लिखना जारी रहता है।

किसी से न मिलने या बहुत एकांतप्रिय होने की धारणा भी ठीक नहीं है। व्यवसाय के सम्बन्ध में उनकी बात बहुत संक्षिप्त और दो टूक होती है। नए परिचितों से तो बात शिष्टता से परन्तु संक्षेप से ही करते हैं लेकिन घर के आदमियों या परिचितों से बातचीत में समय की पाबन्दी अधिक नहीं निभ पाती। लेखक या कलाकार प्रायः लिखते समय विघ्न पड़ जाने से क्षुब्ध हो जाते हैं और उनके विचारों की शृंखला टूट जाती है। वे एक रचना को एक ही बैठक में निर्विघ्न पूरा करना पसन्द करते हैं। किन्तु यशपाल का कोई ऐसा नियम या प्रकृति नहीं। बहुत बार वह एक ही बैठक में एक कहानी अथवा रचना को पूरा कर डालते हैं परन्तु यदि आवश्यकता पड़ जाय, जैसे कि प्रायः पड़ ही जाती है, तो वह लिखते-लिखते उठ कर आने वाले व्यक्ति से घड़ी आधी घड़ी बात-चीत करके या किसी आदमी

को मिलने के लिये जाकर और लौट कर फिर लिखने लगते हैं। उनके विचारों या कल्पना का सूत्र तुरन्त जुड़ जाता है।

लेखकों या कलाकारों के लिए मूड, भावावेश अथवा प्रेरणा की बड़ी भारी समस्या रहती है। ऐसी मानसिक स्थिति के बिना वे सृजन कर नहीं सकते। यशपाल के लिये मूड बनने-बिगड़ने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वह अधिकांशतः विचारों से लिखते हैं, भावोद्रेक से नहीं। प्रकट करने योग्य विचार होने पर उन्हें लिखने का मूड बना लेने में कठिनाई नहीं होती। वे किसी समय भी लिख सकते हैं। लिखते-लिखते दूसरे काम भी कर सकते हैं और फिर लिखने के काम को पूरा कर सकते हैं। ऐसा भी हुआ है कि उन्होंने दिन भर में दो कहानियां लिखा दी हों; कभी सप्ताह में तीन कभी महीने में तीन या चार और कभी तीन महीने तक एक भी नहीं। यशपाल स्वयं भी लिखते हैं और बोल कर भी लिखवाते हैं, क्योंकि इस तरह समय की बचत हो जाती है।

यह कल्पना कर लेना भी ठीक नहीं होगा कि यशपाल अपने विचारों को मशीन की तरह सदा नपे-तुले ढंग से पेश कर लेते हैं या अपने विचारों में कभी भी उलझते या खो नहीं जाते और न वह अपने सृजन-कार्य का आदि-अंत मेज-कुर्सी पर बैठकर अनुशासित सैनिक ढंग से ही निबटा देते हैं। ऐसा तो हुआ है कि कोई विचार आया और उसे तुरन्त कहानी का रूप दे दिया गया; परन्तु ऐसा भी होता है कि विचार अथवा कथानक की कल्पना मस्तिष्क में उबलती रहती है। ऐसी अवस्था में यशपाल साथ चलते-चलते मौन हो जाते हैं। कोई बात कहने पर हाँ-हूँ से उत्तर देते जाते हैं। उनके कदम तेज हो जाते हैं और वह साथ चलने वाले से कुछ आगे बढ़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में भोजन के समय भी नमक-मिर्च की न्यूनाधिकता की ओर उनका ध्यान नहीं जाता। स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वह अपनी बात में खोए या उलझे हुए हैं।

अनेक लेखकों अथवा कहानीकारों का कहानी-उपन्यास गढ़ने का अपना-अपना ढंग है। कुछ लेखकों के लिए विशेष घटनाएं अथवा विशेष चरित्र ही प्रेरणा का स्रोत होते हैं। परन्तु यशपाल की प्रेरणा का स्रोत अधिकांशतः कोई विचार होता है। जो विचार आकर्षक अथवा ध्यान देने योग्य जान पड़ता है उसके लिए वह विश्वास-योग्य घटना की कल्पना कर लेते हैं और घटना के लिए अनुकूल परिस्थितियों की, और घटना के लिए उपयोगी पात्रों की। इस पृष्ठभूमि में प्रश्न यह उठेगा कि यशपाल अधिकांश में कल्पना से लिखते हैं अथवा जीवन से। पहली नजर में तो यही जान पड़ेगा कि यशपाल का प्रधान क्षेत्र कल्पना है। उनके लिखे बारह कहानी-संग्रहों और पांच मौलिक उपन्यासों में बहुत ही कम स्थानों में वास्तविक रूप में घटित घटनाएं मिलेंगी। परन्तु यशपाल का कहना है कि कल्पना कभी जीवन के यथार्थ से विच्छिन्न और क्षुब्ध नहीं हो सकती। यशपाल द्वारा कल्पित सभी घटनाओं के बीज सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक यथार्थों से ही लिए गए हैं और उन्हें जीवन के यथार्थ की भूमि में बो कर संगृहीत अनुभवों के जल से ही सींचा गया है। इसलिए यशपाल की कहानियों और उपन्यासों में यथार्थ का समन्वय काल्पनिक क्रमों से कर दिया जाने पर भी मूलतः वह यथार्थ ही है।

क्योंकि यशपाल जीवन के सभी क्षेत्रों अथवा समस्याओं से सम्बन्धित विचारों को अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाते हैं, इसलिए उन्होंने सामाजिक जीवन के सभी स्तरों से सम्बन्धित घटनाओं अथवा समाज के सभी स्तरों के पात्रों की कल्पना की है। इनमें सम्पन्न उद्योगपति से लेकर

अपना अंग बेचकर पेट पालने वाली भूखों मरती वेश्या, ब्रह्म के शाश्वत तत्त्व और केवल रोटी के ग्रास को ही परम लक्ष्य समझने वाले पात्र तक आ गये हैं। ऐसे भिन्न भिन्न पात्रों का चित्रण यशपाल सचाई से इसलिए कर सकते हैं क्योंकि वह अपनी कल्पना की सूक्ष्मता के माध्यम से उन पात्रों की भावना को आत्मसात् कर सके हैं। इसीलिए वह महाऋषि नीड़क के शब्दों में ब्रह्म को प्राप्त करने में ही जीवन की सार्थकता की भाषा, विश्वासोत्पादक शैली में बोल सकते हैं और अठन्नी में अपना शरीर बेचने के लिये व्याकुल कोकिला की भाषा भी। यशपाल की कल्पना की सफलता के उदाहरणस्वरूप 'देशद्रोही' उपन्यास की ओर संकेत किया जा सकता है। इस उपन्यास में उन्होंने मध्य एशिया और अफगानिस्तान के उन प्रदेशों की प्रकृति और सामाजिक रीति-रिवाजों का वर्णन किया है, जिन्हें उन्होंने कभी नहीं देखा। महापंडित राहुल सांकृत्यायन इन स्थानों से परिचित हैं। 'देशद्रोही' को पढ़कर उन्होंने कहा था कि आँखों देखकर भी उन प्रदेशों का वर्णन और अधिक स्वाभाविक रूप से नहीं किया जा सकता था। डा० रामविलास ने देशद्रोही की आलोचना करते हुए लिखा था कि यशपाल की कल्पना की प्रशंसा करते हुए भी हम कहेंगे कि यदि यशपाल ने उपन्यास का देश अपना देखा-सुना स्थान ही चुना होता तो उन्हें और अधिक सफलता मिलती, प्राकृतिक और सामाजिक चित्रण और अधिक सजीव हो सकते थे, जैसा कि उनकी कहानी 'या साईं सच्चे' में हुआ है। यशपाल ने उन पर की गई आलोचनाओं का उत्तर देते समय एक बार लिखा था कि 'या साईं सच्चे' कहानी में वर्णन किया गया प्रदेश भी मेरा देखा हुआ नहीं है। यदि मैं डा० रामविलास की सीख पर चलता तो मैं देशद्रोही, या साईं सच्चे और दिव्या तो लिख ही नहीं सकता था; डा० रामविलास के आराध्यदेव तुलसीदास भी रामचरितमानस न लिख पाते।

यशपाल अपनी कल्पना में अपने पात्रों से इतना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं कि वह उन्हीं की भाषा बोलने लगते हैं। इसीलिये दिव्या, ज्ञानदान और दास धर्म जैसी रचनाओं में उनकी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता के कारण पौराणिक काल की हो गयी है। 'मनुष्य के रूप' जैसी रचनाओं में होटल के छोकरों और ड्राईवरों का चित्रण करते समय उनकी भाषा सड़क और रेलवे स्टेशन पर बोली जाने वाली भाषा बन जाती है। और ग़मी की खुशी, पीर का मजार और दूसरी नाक जैसी कहानियों में मुसलमान पात्रों का चित्रण करते समय उनकी भाषा को उर्दू-प्रधान कहा जा सकता है। यशपाल को संस्कृत या फारसी के तत्सम शब्दों से कोई मोह नहीं है। वह भाषा को भावों की अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं। उनके विचार में भाषा जितने व्यापक रूप में और जितनी सरलता से समझी जा सके, उतनी ही अच्छी है।

यशपाल की रचनाओं का आधार विचार रहते हैं, यह कह देने से तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है कि यशपाल की सम्पूर्ण रचनाएं सप्रयोजन हैं। 'कला कला के लिये' अथवा 'स्वान्तः सुखाय' लिखने की बात में यशपाल को विश्वास नहीं है। उनका कहना है कि सुन्दर पदार्थ से भिन्न सौंदर्य का कोई पृथक अस्तित्व नहीं हो सकता। सौन्दर्य पदार्थ में ही समाहित रहता है। वह पदार्थ का ही गुण होता है। इसी प्रकार जीवन से पृथक कला का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। कला जीवन का एक गुण-मात्र है। उस गुण की प्राप्ति और वृद्धि का यत्न जीवन को सार्थक और समृद्ध बनाने के लिये ही किया जाता है। इसलिये कला की आराधना बिना प्रयोजन के नहीं हो सकती। कला की आराधना का एकमात्र प्रयोजन मानव जीवन का विकास और उसकी सम्पन्नता ही हो सकता है। यशपाल के विचार में स्वान्तः सुखाय को

लक्ष्य मानकर जब कलाकार समाज की उपेक्षा करके अन्तर्मुखी होकर अपने में ही समा जाना चाहता है तब वह आत्महत्या कर लेता है। जब कलाकार अपने आपको समाज का अंग मानकर समाज की अनुभूति को अपना लेता है, समाज के सुख को अपना सुख मान लेता है, अपने व्यक्तित्व को समूह में रचा देता है तो उसका स्वान्तः सुखाय सामाजिक हित का प्रतिनिधित्व करने लगता है। तभी वह समाज की जिह्वा या समाज की आत्मा का इंजीनियर कहलाने का अधिकारी हो सकता है। यशपाल के विचार में कलाकार का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को अपना लेना उस समाज के प्रति विश्वासघात है, जिसने उसे बनाया है।

साहित्यिक प्रयोजन के प्रश्न को कुछ और गहराई से सोचना आवश्यक है। यशपाल ने अपने लेख 'मैं कहानी कैसे लिखता हूं' में लिखा था कि कहानी लिखने का प्रयोजन सौन्दर्य रच सकने का संतोष भी है। जिन वस्तुओं और धारणाओं के प्रति हमारे मन और संस्कारों में सहानुभूति, श्रद्धा और आकर्षण हो, वे सभी हमारे लिये सुन्दर होती हैं। उदाहरणतः सहानुभूति का सौंदर्य, सत्परायणता का सौन्दर्य, निःस्वार्थ सेवा के लिये बलिदान हो जाने का सौन्दर्य। ऐसे सौन्दर्य से रंजित घटनाओं को अपने ज्ञान या अनुभवों के आधार पर गढ़ने का प्रयोजन समाज को ऐसा सौन्दर्य प्रदान करने की इच्छा ही है। इसके साथ ही समाज से असुन्दर को दूर करने के प्रयत्न का प्रयोजन भी समाज को सुन्दर बनाना ही है। इस प्रयोजन से समाज की व्यवस्था में उत्पन्न हो गये अंतर्विरोधों की ओर ध्यान दिलाना भी कला का प्रयोजन है। यशपाल के हास्यरस के लेख संग्रह 'न्याय का संघर्ष' की भूमिका में स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा था, "इन लेखों में लेखक ने कलम की नोक से आत्म-विस्मृत समाज को गुदगुदा कर जगाने की चेष्टा की है और समाज को करवट बदलते न देखकर कई जगह अपनी कलम की नोक समाज के शरीर में गड़ा दी है।" आचार्य जी के ये शब्द यशपाल के साहित्य के प्रयोजन और शैली का बहुत सच्चा परिचय हैं।

यशपाल के साहित्य को विचारप्रधान, प्रयोजनपूर्ण मान लेने पर उसे आज कल प्रगतिशील कहलाने वाले साहित्य की श्रेणी में ही रखना पड़ेगा। इस विषय में पाठकों और लेखकों (केवल एकाध को छोड़ कर) में मतभेद भी नहीं है कि यशपाल न केवल प्रगतिशील हैं बल्कि प्रगतिशीलों में प्रमुख हैं। इसी लिये अनेक प्रगतिशील साहित्यिक सम्मेलनों का सभापतित्व भी उन्होंने किया है। आज के साहित्य में प्रगति का तत्त्व अभी तक विवादास्पद है। किस विचार को प्रगतिशील माना जाय? प्रगतिशील पक्ष के विरोध में दूसरा पक्ष आदर्शवादी साहित्य का माना जाता है। यशपाल के विचार में प्रगतिशील तत्त्व की पहचान है—मानव समाज का विकासशील होना। समाज अपने अनुभवों से और परिस्थितियों के प्रभाव से अपने जीवन-निर्वाह के साधनों और व्यवस्था में परिवर्तन करता जाता है। समाज की जैसी जीवनप्रणाली और व्यवस्था होती है वैसी ही समाज की विचारधारा होती है। हमारे विचार, नैतिकता, मान्यताएं अथवा आदर्श जीवन की प्रणाली का परिणाम ही होते हैं। हमारी मान्यताएं अथवा आदर्श हमारे जीवन के क्रम और व्यवस्था को निश्चित नहीं करते बल्कि जीवन के क्रम और व्यवस्था का परिणाम होते हैं, इसलिए मानव समाज अपनी विचारधारा और आदर्श को निश्चित करने में स्वतन्त्र है। प्राचीन आदर्शों के प्रति मोह के कारण हम उनकी दुहाई तो देते रहते हैं परन्तु अपनी आवश्यकताओं के अनुसार आदर्शों को बदलते भी

जाते हैं। प्राचीनकाल का राजसत्ता का आदर्श, वर्णव्यवस्था का आदर्श, स्वामी-सेवक के सम्बंध का आदर्श और सम्मिलित कुटुम्ब का आदर्श आज हम निबाह नहीं सकते। उनका स्थान आज जनतंत्रवादी आर्थिक समता और स्त्री-पुरुष के समान अधिकार के आदर्शों ने ले लिया है। आज हम राजनैतिक प्रजातंत्रवाद को अपनाकर आर्थिक जनतंत्र प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। प्रगतिवाद किसी भी आदर्श को अथवा कार्यक्रम को शाश्वत और चरम लक्ष्य नहीं मान सकता। प्रगतिवाद का पथ समाज के विकास के मार्ग में आने वाले अंतर्विरोधियों को दूर कर नये समन्वय के आदर्श के लिए प्रयत्न करता रहेगा। प्रगतिवाद आदर्शों की उपेक्षा नहीं करता, वह मानव समाज के लिए परिस्थिति और समय के अनुकूल आदर्शों को बनाने की मांग करता है और इस अधिकार का दावा करता है।

साहित्य के प्रगतिवादी पक्ष पर प्रचारात्मक अथवा प्रचारपूर्ण होने का दोष लगाया जाता है। प्रगतिवाद के वकील की हैसियत से यशपाल का कहना है कि साहित्य कभी विचारहीन नहीं हो सकता। साहित्य तो भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति है। भावनाओं की अभिव्यक्ति करना ही उनका प्रचार करना है। इसलिए संसार भर का, और सभी युगों का साहित्य प्रचारात्मक ही रहा है। जिन मान्यताओं को हम स्वीकार कर चुके हैं, जो परम्परागत होने के कारण हमें मानवीय प्रकृति और स्वभाव का अंग जान पड़ती हैं, साहित्य द्वारा उन मान्यताओं का समर्थन करना हमें प्रचार नहीं जान पड़ता। इसके विपरीत जब प्रगतिवादी समाज में उत्पन्न हो गये अंतर्विरोधों के विश्लेषण की मांग करता है अथवा उन्हें हटाने की मांग करता है या कोई नया सुझाव देता है तो हमें प्रचारात्मक साहित्य जान पड़ता है। उदाहरणात: हमें हनुमान की राम-भक्ति स्वामी-भक्ति के धर्म का प्रचार नहीं जान पड़ती; हमें सत्यवान के पुनर्जीवन के लिये सावित्री का तप करना और यमराज को परास्त कर देना पतिव्रत धर्म का प्रचार नहीं जान पड़ता और न ही सत्यनिष्ठ महाराज हरिश्चन्द्र का अपने पुत्र का श्मशान में दाह करने से पूर्व कर के रूप में अपनी पत्नी से भी आधी धोती फड़वा लेने का आदर्श कर चुकाने के धर्म का प्रचार जान पड़ता है। इसकी तुलना में जब हम समाज के सम्पूर्ण धन को किसान-मज़दूर के श्रम का फल बताकर किसान-मज़दूर के लिये स्वामी वर्ग के समान भाग की माँग करते हैं तो वह समाजवादी विचारधारा का प्रचार जान पड़ता हैं। आज जब हम स्त्री को पुरुष के समान ही आर्थिक अधिकार देने अथवा तलाक का अधिकार देने की बात करते हैं या दलित-अछूत वर्ग को सम्पूर्ण सामाजिक अधिकार देने की बात करते हैं तो ये बातें नये विचारों का प्रचार जान पड़ती हैं।

क्योंकि यशपाल अपने परम्परागत रूढ़िवाद की आलोचना करते हुए जीवन के नए आदर्शों को ग्रहण करने का समर्थन करते रहे हैं, इसलिए बहुत से लोगों ने उन पर भारतीय संस्कृति की उपेक्षा करने और पश्चिमी संस्कृति पर मोहित होने का लांछन भी लगाया है। यशपाल का विचार है कि संस्कृति और ज्ञान भौगोलिक रूप और जातीय सीमाओं में बँधी रहने वाली वस्तुयें नहीं हैं। उनका विकास जीवन के भौतिक रूप और क्रम से होता है। यदि हमें अपने समाज के विलास के लिए पश्चिम में पहले विकसित वैज्ञानिक और औद्योगिक साधनों को अपनाना आवश्यक है तो इस प्रकार के जीवन की प्रणाली से उत्पन्न होने वाली व्यवस्था और जीवन की शैली से भी हम परहेज़ नहीं कर सकेंगे। नवीन विचारधाराओं और ज्ञान को अपना लेने से हमारी संस्कृति का क्षय नहीं होगा अपितु समृद्धि ही होगी। किसी भी विकासशील समाज की संस्कृति सदा एक रूप नहीं रह सकती। सजीव समाज की

संस्कृति प्रवाहशील नदी के समान होती है, जिसमें प्रतिक्षण नया जल बहता रहता है परन्तु उससे नदी का नाम और अस्तित्व नहीं बदल जाता। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में नये विचारों, ज्ञान और साधनों को सम्मिलित कर लेने से हमारी संस्कृति की राष्ट्रीयता का क्षय नहीं हो जायगा। उसमें जितनी भी संस्कृतियों से कुछ लेकर मिला लिया जायगा उतनी ही वह समृद्ध होगी।

साहित्य के प्रगतिशील पक्ष की कठिनाई यह है कि उसे समाज के मानसिक अभ्यास से आगे चल कर नये सुझाव देने पड़ रहे हैं।

प्रगतिशील पक्ष की ओर से उपरोक्त सफाई देने के पश्चात् यशपाल यह भी कहते हैं कि प्राचीन परम्पराओं और मान्यताओं का समर्थन करने वाले साहित्यिकों की अपेक्षा प्रगतिशील पक्ष को कला की ओर भी अधिक कठिन साधना करना आवश्यक है। क्योंकि उनका उत्तरदायित्व समाज के प्रति बड़ा है और कार्य कठिन है तथा समाज के लिये कल्याणकारी है। यदि प्रगतिशील विचारों का समर्थन करने वाली कोई रचना पाठकों को रुचिकर नहीं जान पड़ती, केवल प्रचार-मात्र जान पड़ती है तो इसे वह लेखक की असफलता समझते हैं। कहानी अथवा उपन्यास की सफलता की कसौटी यशपाल के विचारों में यह है कि उसे सुनकर श्रोता को और पढ़कर पाठक को विश्वास हो जाय कि यह काल्पनिक रचना नहीं बल्कि वास्तव में घटी घटना है। यशपाल की साहित्यिक सफलता का आधार यही रहा है कि उनकी लिखी कहानी अथवा उपन्यास को पाठकों ने सदा सच्ची घटनाएँ ही समझा है। यश-पाल कल्पना से कथानक की रचना करते समय उस कथानक को जिरह से वकील की तरह जाँचते भी जाते हैं कि उसकी सचाई में शंका के लिये कोई गुंजाइश तो नहीं रह गयी है? उतनी ही सतर्कता इस बात की भी रखते हैं कि रचना अपना प्रयोजन पाठक के सामने स्पष्ट रूप से रख सके।

यशपाल की साहित्यिक सफलता की कसौटी यही मानी जा सकती है कि उनकी पुस्तकों के परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित न किये जाने पर भी थोड़े समय में चार-चार पांच-पांच संस्करण हो चुके हैं। इस सफलता का रहस्य उनकी कल्पना की प्रखरता और शैली के चुटीलेपन में है। जो लोग उनके विचारों से सहमत नहीं वे भी उनकी कला का लोहा मानते हैं। उनके उपन्यास 'दिव्या' के बारे में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा था — "लेखक ने जादू की छड़ी घुमाई है, जिससे रसिक पाठक कला के सम्मोहन के वशीभूत हो जाता है।" और उनकी कहानियों के विषय में गुप्त जी ने लिखा था— "विधाता ने लेखक को मुक्तहस्त होकर प्रतिभा और शक्ति दी है। हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता ही रहा, राम कृपा से अब वह देने योग्य भी हो गया है। यह शक्ति हिन्दी को ऐसी ही रचनाओं से मिल रही है।" गुप्त जी ने यशपाल की कहानी 'हलाल का टुकड़ा' को प्रसिद्ध उपन्यासकार कुप-रिन के सम्पूर्ण उपन्यास 'यामा दि पिट' से भी अधिक मार्मिक और सफल बताया है। भगवत शरण उपाध्याय ने अपनी आलोचना में यशपाल के उपन्यास 'देशद्रोही' के वर्णनों को टॉलस्टाय के उपन्यास 'वार ऐंड पीस' से अधिक सारगर्भित समझा है। प्रसिद्ध कवि बच्चन ने 'पिंजरे की उड़ान' की पहली कहानी पढ़कर ही कहा था—"इस एक ही कहानी को पढ़ने के बाद मुझे इससे अधिक मार्मिक कहानी की न इच्छा है और न ही आशा।"

यशपाल ने रोचक छोटी कहानियां-उपन्यास तो लिखे ही हैं किन्तु ऐसे भी पाठक हैं जो उनके निबन्ध संग्रह 'देखा-सोचा-समझा' में कहानी और उपन्यास से भी अधिक रस पाते हैं। यशपाल ने

अभी तक केवल तीन एकांकी नाटक लिखे हैं। आल इंडिया रेडियो के डायरेक्टर जनरल श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने कुछ वर्ष पहले हिन्दी नाटकों के संबंध में रेडियो पर अपने विचार प्रकट करते हुए इन नाटकों को हिन्दी साहित्य में स्थायी देन बताया था। इन तीनों नाटकों—'नशे-नशे की बात', 'रूप की परख' और 'गुड बाइ दर्दे दिल'—का अभिनय भी कई स्थानों पर हो चुका है। इस ओर यशपाल ने केवल प्रशंसा और सराहना ही नहीं पायी है। कुछ वर्ष पहले जब वे 'जनयुग' में स्थायी रूप से प्रति सप्ताह चुटकियों से भरा हास्य रस का स्तम्भ लिखा करते थे। रूढ़िवादी लोगों ने उनकी कलम की चुभन से व्याकुल होकर उन्हें हाथ तोड़ देने की धमकी के पत्र भी लिखे थे। यशपाल ने इन पत्रों को भी अपनी सफलता समझा। उन्होंने सान्त्वना पायी थी कि उनकी बात की उपेक्षा न की जा सकी। जो लोग आज उनकी बातों से चिढ़ कर क्रोधित हो रहे हैं, किसी दिन विचार करने के लिये भी बाध्य हो जायँगे।

उनकी रचनाओं के अनुवाद भारत की प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओं में हुए हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि हिन्दी से दूसरी भाषाओं में अनूदित होने वाली रचनाओं में यशपाल की रचनाओं की संख्या सब से अधिक ठहरती है। भारत से बाहर की भाषाओं में उनकी कुछ-एक रचनाओं का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी और चेक भाषाओं में भी हो चुका है। उनके लिखने का क्रम अब भी निर्बाध है। उनका नया उपन्यास 'अमिता' और एक अनुवाद 'चलनी में अमृत' इसी मास प्रकाशित हो रहे हैं और वर्ष समाप्त होने से पूर्व दो नयी पुस्तकें पूरी करने की योजना है।

लखनऊ | प्रकाशवती पाल

श्री यशपाल की माता प्रेमदेवी जी
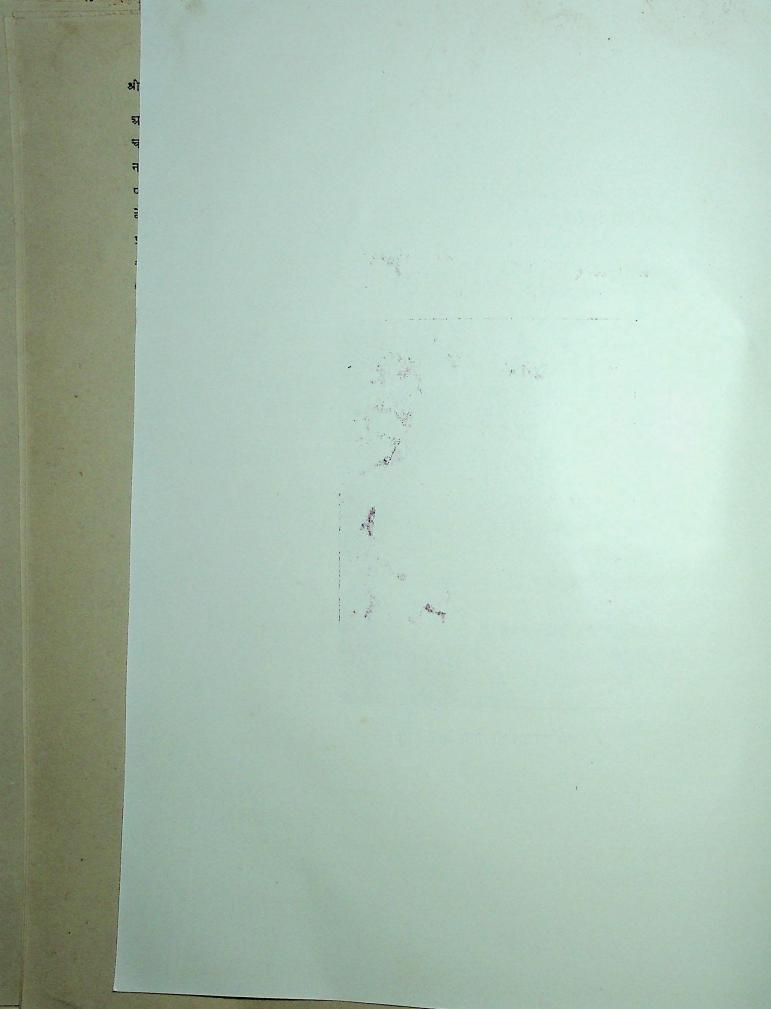
व्यक्तित्व के निर्मायिक तत्व

किसी भी साहित्यिक की कृतियों का मूल्यांकन करने से पूर्व उन परिस्थितियों का परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी होता है, जिनमें रहकर अथवा जिनसे प्रभावित होकर उसने साहित्य-रचना की हो। दूसरे शब्दों में किसी भी साहित्यकार के कृतित्व को भली-भाँति समझने के लिये उसके व्यक्तित्व के निर्मायिक तत्वों का अध्ययन अत्यावश्यक है। श्री यशपाल के साहित्य में दीखने वाली उग्रता और विद्रोह की भावना के लिए उनके जीवन-अनुभव और विशिष्ट संस्कारों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

(१)

यशपाल का सौभाग्य कहिए कि उनका जन्म ऐसी माता की कोख से हुआ जो अपनी संतान को सफल और आदर्श बनाने के लिए कांगड़ा के पहाड़ी इलाके को छोड़ कर पंजाब के लू से तपने वाले मैदानों में आर्य कन्या पाठशालाओं की नौकरी करके निर्वाह कर रही थीं। यशपाल के अपने कथनानुसार, "इस नौकरी से माँ को कुछ उद्देश्य या परमार्थ के कर्तव्य की पूर्ति का भी संतोष होता था।"

यशपाल के पूर्वज मूलतः काँगड़ा-निवासी थे, इसलिए वह मूल रूप से अपने को पहाड़ी बताया करते हैं। कांगड़ा में जायदाद अथवा सम्पत्ति के नाम पर इनके पिता के पास दो-चार सौ गज भूमि और एक कच्चे मकान के अतिरिक्त और कुछ न था। इनके पिता हीरा लाल साधारण कारोबारी व्यक्ति थे। उनकी एक छोटी सी दुकान थी और वह बिना हिसाब रखे रुपया कर्ज़ पर दिया करते थे, जिसे वह प्रायः गुप्त रखते थे। इनकी माता एक अच्छे परिवार से थीं; उनके पूर्वज शायद ग्राम चौरासी के राजाओं के राजमंत्री रह चुके थे। पंजाब में रहने वाले उनके कुछ सम्बंधियों के आर्यसमाज के प्रभाव में आ जाने क कारण उन लोगों के प्रोत्साहन से यशपाल की माता भी कुछ पढ़-लिख गई थीं। अपने पति की आर्थिक स्थिति असंतोष-जनक होने के कारण उन्होंने मैदानी इलाके में आकर नौकरी कर ली थी। ऐसा करना उनकी भावी संतान के लिये श्रेयस्कर ही सिद्ध हुआ अन्यथा ठीक सम्भव था कि यशपाल का जीवन भी कांगड़े के दूसरे गरीब खत्री नौजवानों की तरह पीठ पर गठड़ी में दुकान बांधे स्थान स्थान पर भटकते अथवा किसी बड़े नगर में जाकर कोई छोटी-मोटी नौकरी करके कटता।

(२)

सात-आठ वर्ष की आयु में इनकी माता ने इन्हें स्वामी दयानंद के आदर्श-अनुकूल आर्य धर्म

का तेजस्वी और ब्रह्मचारी प्रचारक बनने की आशा में गुरुकुल कांगड़ी भेज दिया। वहाँ इन्हें गुरुकुल के आचार्यों के नियंत्रन में रहना पड़ता; नंगे पाँव या खड़ाऊँ पहन कर चलना, काठ पर सोना, सख्त सर्दी में सूर्योदय से पहले ठंडे पानी से नहाना, भोजन के बाद अपना लोटा-थाली स्वयं मांजना, किसी दुकान या स्त्री का मुख न देख पाना आदि कड़े प्रतिबंध थे तो असुविधाजनक परंतु यशपाल पर इनका प्रभाव हितकर ही पड़ा। इसी अभ्यास के बल पर वह जीवन में आगे चल कर आने वाली कठिनाइयों को सहज-स्वभाव ही झेलने योग्य हो सके।

गुरुकुल में इन्हें जिस बात ने विशेष आकृष्ट किया, वह थी वहाँ के वातावरण में अंग्रेज़ों तथा विदेशी शासन के प्रति विरोध की भावना। अंग्रेज़ों के प्रति घृना का बीजारोपण यशपाल में बहुत छोटी आयु में हो गया था। चार या पांच वर्ष की आयु होगी। इनकी माता युक्तप्रांत के किसी कस्बे में अपने एक सम्पन्न सम्बंधी के यहाँ ठहरी हुई थीं। उनके निकट ही एक बंगले में एक अंग्रेज़ परिवार रहता था। एक दिन योंही उन लोगों की मुर्गियों को छेड़ने पर अंग्रेज़ महिला ने शिशु यशपाल को 'गधा' अथवा 'उल्लू' ऐसी कोई गाली देकर मारने की धमकी दी। प्रत्युत्तर में यशपाल ने भी धमकी में ही जवाब दिया। इनकी इस हरकत की शिकायत इनके सम्बंधी के पास की गई, परिणामस्वरूप इन्हें खूब मार पिटी। स्वभावतः ही इससे यशपाल के शिशु हृदय में अंग्रेज़ों के प्रति चिढ़ पैदा होगई, जो आगे चलकर इन्हें ब्रिटिश विरोधी बनाने में सहायक सिद्ध हुई।

गुरुकुल में दी जाने वाली शिक्षा का तत्त्व था—संसार में सम्पूर्ण ज्ञान का मूल वेद हैं, कोई देश या जात वेदों की ऋचाओं का गान करने वाले आर्यों से श्रेष्ठ नहीं। अतीत काल में आर्यों का सम्पूर्ण संसार पर राज्य था; वैदिक धर्म में शिथिलता आ जाने के कारण आर्यों का पतन हो गया, इसी कारण इस देश में मुसलमानों का और फिर अंग्रेज़ों का राज्य हो गया परन्तु आर्य लोग शीघ्र ही उन्नति करके संसार में फिरसे आर्य-साम्राज्य स्थापित करेंगे आदि। शायद इस शिक्षा का ही फल था कि उस उम्र में ही इन्हें निश्चय-सा होगया कि एक दिन हम (भरतीय) अंग्रेज़ों को मार भगायेंगे।

अपनी आरम्भिक क्रांतिकारी भावना का विश्लेषण करते हुए यशपाल ने सिंहावलोकन के प्रथम भाग में विद्रोह और साहस की दीक्षा का श्रेय आर्य समाज की शिक्षा को ही दिया है। यह बात यशपाल पर ही लागू नहीं होती, अपितु भगत सिंह और कतिपय अन्य क्रांतिकारी भी आर्यसमाज की प्रगतिशील चेतना की ही देन थे। क्षिशा-प्रचार, विशेषतः स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार, विधवा-विवाह, जन्म से वर्ण-व्यवस्था की धारणा को तोड़ने और अछूत समझी जाने वाली जातियों के लिए मनुष्यता के अधिकारों की मांग आर्य समाज आंदोलन के प्रमुख भाग थे। इन प्रगतिशील भावनाओं का स्वाभाविक परिणाम विदेशी दासता से असंतोष भी हुआ। सामाजिक प्रगति के पथ पर कदम रखने वाले व्यक्ति राजनैतिक दृष्टि से सचेत हुए बिना नहीं रह सकते। आर्य समाज द्वारा सामाजिक सुधार की चेतना फैलने के साथ-साथ ही विदेशी शासन के विरोध की चेतना भी फैलने लगी। यहाँ यह बतला देना असंगत न होगा कि आर्यसमाज का प्रभाव क्षेत्र बहुत करके उत्तरी भारत और उसमें भी विशेष रूप से पंजाब और इसके साथ लगता इलाका ही रहा है। परिणामस्वरूप यहाँ के प्रायः सभी राजनैतिक कार्यकर्त्ता—लाला हरदयाल, अम्बाप्रसाद सूफी, लाला लाजपतराय आदि—आर्य समाजी विचार स्वतंत्रता द्वारा प्रभावित थे।

(३)

गुरुकुल के जीवन में यशपाल को दूसरा जो महत्वपूर्ण अनुभव हुआ, वह था इनका गरीब होने के कारण सहपाठियों में हीन समझा जाना। यशपाल की माता साधारण अध्यापिका थी। उन दिनों उनका वेतन २०-२५ रुपये से अधिक क्या होगा ? अतः गुरुकुल में यशपाल की निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। गुरुकुल में सब विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार का नियम था परन्तु सम्पत्ति के आदर की भावना वहाँ भी पहुँच जाती थी। यह पता लग जाने पर कि यशपाल निःशुल्क पढ़ता और रहता है, सहपाठी इस बात पर इनका तिरस्का-सा करने लगे। यह अनुभूति उस समय भी इन्हें असह्य जान पड़ती थी।

वहाँ सातवीं कक्षा में पहुँच कर यशपाल बहुत बीमार हो गये। इन्हें प्रबल संग्रहणी हो गई थी। प्रबंधकों की ओर से इनकी चिकित्सा के सभी सम्भव उपाय किए गए। इलाज के लिए देहरादून भी भेजा गया परंतु स्वास्थ्य ठीक न हो सका। बीमारी कारण बहुत कमज़ोर हो जाने के कारण जाड़ों में इन्हें साधारण नियम के अतिरिक्त विशेष गरम कपड़े दिये जाते और पौष्टिक भोजन के रूप में मक्खन, मलाई आदि की अलग से व्यवस्था की जाती। इसपर इनके सहपाठी प्रायः ताने कसते—वाह वाह, यह एक तो मुफ्त रहता है, दूसरे सब लोगों से अधिक मक्खन, मलाई खाता है।" ऐसी दशा में ये वाक्य इन्हें तीर से चुभते। शिशु यशपाल उन चीज़ों को अरुचिकर बतलाकर लेने से इनकार करता तो सुनने को मिलता—"अपने घर पर कभी खाया हो तो अच्छा लगे !" सम्भव है घर पर अपने साधनों से निर्वाह करने का अवसर होने पर निम्न मध्यम श्रेणी के आत्मसम्मान की भावना को उतनी ठेस न पहुँचती परंतु गुरुकुल में समता की भावना और अधिकार के अनुभव हो चुके थे अतः ग़रीबी के कारण तिरस्कार पाने का प्रभाव इनके मस्तिष्क पर गहरा पड़ा।

(४)

गुरुकुल में बहुत बीमार हो जाने पर इनकी माता इन्हें वहाँ से लाहौर लिवा लाईं और यहाँ डी० ए० वी० स्कूल में भरती करा दिया। तब इनकी आयु १४ वर्ष की थी और ये ७वीं कक्षा में पढ़ते थे। यहाँ आकर मामूली इलाज और जलवायु की तब्दीली के कारण ये शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। रौलेट बिल विरोधी आंदोलन के दिनों में ये लाहौर में थे; उसके शीघ्र ही बाद इन्हें फिरोज़पुर छावनी के सरकारी स्कूल में दाखिल करवा दिया गया, जहाँ से इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा फ़र्स्ट डिवीज़न में पास की और स्कूल में प्रथम रहे।

अपनी स्कूल की पढ़ाई के दौरान में यशपाल थोड़ा-बहुत सार्वजनिक कार्य भी करते रहे। असहयोग आंदोलन के दिनों में इन्होंने लजवंत नामक एक और विद्यार्थी के साथ मिलकर फ़िरोज़पुर छावनी में विदेशी कपड़ों की होली जलाई। उन दिनों आप छोटी छोटी सभाओं में लैक्चर भी दिया करते। उन सभाओं में भाग लेते समय अक्सर लाल रंग का कोट पहने रहते थे। कई बार तो लोग आग्रह द्वारा लालकोट वाले का भाषण सुना करते थे। उन दिनों आपके पास केवल वही कोट था। उन्हीं दिनों ये आर्यसमाज की ओर से अछूत बालकों की पढ़ाई के लिए खोली गई एक रात्रि पाठशाला में भी काम करते। इसके लिए इन्हें प्रतिदिन शाम को दो मील का रास्ता तै करना पड़ता

और रात्रि को वापसी के समय उतना ही रास्ता फिर तै करना पड़ता। मैट्रिक की परीक्षा दे लेने पर तो यशपाल सक्रिय रूप से कांग्रेस का काम करने लगे, इनका कार्यक्रम साथी कार्यकर्त्ताओं के साथ देहातों और कस्बों में घूम घूम कर कांग्रेस का प्रचार करना था।

मैट्रिक पास कर लेने के बाद कालेज की पढ़ाई का प्रश्न उठा। इनकी माता का प्रबल आग्रह था कि यशपाल वहाँ नये खुले रामसुखदास कालेज में दाखिल हो जायँ। ऐसा करने से इन्हें स्कूल की ओर से दो वर्ष के लिये छात्रवृत्ति तो मिलती ही, कालेज वाले भी वज़ीफ़ा देने को तय्यार थे। परन्तु यशपाल किसी सरकारी या अर्धसरकारी कालेज में पढ़ने को तय्यार न हुए। विचार हुआ कि इन्हें लाहौर के 'नेशनल कालेज' में पढ़ने भेज दिया जाय। नेशनल कालेज की शिक्षा व्यावसायिक दृष्टि से उपयोगी नहीं थी। माँ को उसके लिए अधिक उत्साह भी नहीं था, क्योंकि माँ की इच्छा यशपाल को उच्चशिक्षा प्राप्त वकील बनाने की थी। नेशनल कालेज की शिक्षा पाने के लिए किसी प्रकार की छात्रवृत्ति या आर्थिक सहायता की आशा भी नहीं की जा सकती थी। तथापि जैसे कैसे इनकी माता ने इन्हें लाहौर भेज दिया।

(५)

नेशनल कालेज में इनका परिचय भगत सिंह और सुखदेव से हुआ। शीघ्र ही इनमें घनिष्ठता बढ़ गई। यहीं भगत सिंह और यशपाल ने मिलकर अपना जीवन देश को अर्पण करने की प्रतिज्ञा की। कालेज की पढ़ाई के साथ-साथ ये लोग डैनब्रीन की 'माई फ़ाइट फ़ार आइरिश फ्रीडम', मैज़िनी और गैरीबाल्डी की जीवनियां, फ्रांसीसी क्रांति का इतिहास, वोल्टेयर और रूसो के रूढ़िविरोधी क्रांतिकारी विचार, रूसी क्रांतिकारियों के वृत्तांत, 'वीराफिगनर', 'क्रौपोटकिन' आदि के अतिरिक्त भारत में सत्याग्रह से भिन्न देश की स्वतंत्रता के लिए किए गए प्रयत्नों की परिचायक पुस्तकें—सान्याल दादा की आपबीती 'बन्दी जीवन' आदि—बड़े शौक से पढ़ा करते।

पंजाब नेशनल कालेज की स्थापना का उद्देश्य कांग्रेस के कार्यक्रम द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति के लिए काम करने वाले योग्य कार्यकर्त्ता तय्यार करना था अतः वहाँ के वातावरण में राजनैतिक प्रवृत्तियों को छिपाने की आवश्यकता नहीं थी। कालेज के प्रोफ़ैसरों, जिनमें अधिकांश अच्छे राजनैतिक कार्यकर्त्ता भी थे, की विचारधारा का प्रभाव विद्यार्थियों के विचारों पर काफी पड़ता। इनमें भारतीय इतिहास और राजनीति के अध्यापक प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी कोशिश रहती थी कि विद्यार्थी इतिहास को श्रुति-स्मृति मानकर केवल विश्वास द्वारा ही न अपनाते चले जायें बल्कि तर्क और खोज के दृष्टिकोण से अध्ययन करें। उनकी कक्षा में अनेक प्रकार के विषयांतरों पर भी वाद-विवाद हो जाता था, जैसे आस्तिकता-नास्तिकता, आत्मवाद और भौतिकवाद। उनका दृष्टिकोन विद्यार्थियों को बहुत ही सुलझा हुआ जान पड़ता था। इसलिए जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों का एक गिरोह उनके चारों ओर इकट्ठा होने लगा, जिसे भविष्य में तय्यार हो जाने वाले क्रांतिकारी दल की पृष्ठ-भूमि कहा जा सकता है।

कालेज में डेढ़ वर्ष बीतते-बीतते सुखदेव और भगत सिंह निश्चित रूप से क्रांतिकारी बन चुके थे। यशपाल उन दिनों दो वर्षों का कोर्स एक वर्ष में पूरा करने के लिए घोर परिश्रम कर रहे थे। ये अपने साथियों में लेखक के रूप में प्रसिद्ध थे।

भगत सिंह और सुखदेव प्राय: कॉलेज से ग़ायब रहने लगे थे। इस समय दल के संगठन की बात कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगी। लाहौर में हिन्दुस्तान प्रजातंत्र दल (एच० आर० ए०) का एक पर्चा बलराज के हस्ताक्षरों से बाँटा गया। यशपाल इसमें सहयोग देने के साथ साथ अपनी कॉलेज की पढ़ाई भी जारी रखे हुए थे। माँ की जमा-पूँजी प्राय: खर्च हो जाने के कारण अब अपने जीवन-निर्वाह के लिए इन्होंने नेशनल स्कूल में पढ़ाना भी शुरू कर दिया था।

उन दिनों गान्धी जी द्वारा चलाए गए सत्याग्रह की विफलता से ये लोग क्षुब्ध थे। द्वारकादास लाइब्रेरी से पुस्तकें निकलवा कर रूस सम्बन्धी साहित्य के अध्ययन से इनका झुकाव समाजवाद की ओर होने लगा था। इस उद्देश्य से गुप्त संगठन का कार्य-क्षेत्र तय्यार करने और जनता में उग्र राष्ट्रीय भावना जगाने के लिये नौजवान भारत सभा की स्थापना की गई। नौजवान भारत सभा के कार्यक्रम में जनता में क्रांतिकारी आंदोलन के लिए सहानुभूति उत्पन्न करना भी था। भगत सिंह, सुखदेव, भगवतीचरण, धन्वन्तरी, एहसान-इलाही, सोंढी और यशपाल सभा का कार्यक्रम निश्चित करने से लेकर जलसा करने के लिए दरियां ढोने और बिछाने तक का सभी काम करते थे।

भगवतीचरण नेशनल कालेज में यशपाल आदि से दो वर्ष आगे थे। यशपाल का उनसे विशेष परिचय एच० आर० ए० और भारत नौजवान सभा के सिलसिले में हुआ। तब से लेकर भगवतीचरण की शहादत तक यशपाल का उनसे निकट संपर्क रहा।

भगवतीचरण की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। लाहौर में उनका अपना मकान था, बैंक में कुछ जमा-पूंजी भी थी। उनका विवाह चौदह पन्द्रह वर्ष की आयु में हो चुका था। इस पर भी वह अपनी पढ़ाई जारी रखे हुए थे। सार्वजनिक कार्य में रुचि होने के कारण पंजाब विश्वविद्यालय की इंटर की परीक्षा पास कर लेने पर वह नेशनल कालेज में पढ़ने लगे थे। उनकी पत्नी दुर्गा देवी ने भी पढ़ना शुरू कर दिया था। भगवतीचरण और दुर्गा देवी का राष्ट्रीय हित के लिए त्याग और बलिदान यशपाल के मस्तिष्क की अमिट स्मृतियों में से हैं।

* * *

सशस्त्र क्रांति के आंदोलन में यशपाल ने कौन कौन से महत्त्वपूर्ण काम किये, यह एक लम्बी कहानी है और कमो-बेश सभी इससे परिचित हैं, फिर भी यशपाल के त्याग और कर्तव्यनिष्ठा का सही रूप प्रस्तुत करने वाली दो-एक घटनाओं का उल्लेख यहाँ अनुपयुक्त न होगा।

वायसराय की ट्रेन के नीचे बम-विस्फोट का निश्चय कर लेने पर भगवतीचरण ने सुझाया कि बड़े-बड़े शहरों में समझदार लोगों के पड़ोस में बम बनाने और विस्फोटक काम करने की अपेक्षा किसी छोटे कस्बे में यह काम करना अधिक उचित होगा। इसके लिए दिल्ली के समीप 'रोहतक' में यह काम करने का निश्चय किया गया। योजना-अनुसार यशपाल वहाँ के एक वैद्य लेख राम का नौकर 'किसना' बनकर दवाइयाँ फूंकने अर्थात् बम का मसाला बनाने का काम करने लगे। 'किसना' देवदत्त जी (इनसे बम बनाने का नुसखा लिया गया था) की बताई विधि के अनुसार काम करने लगा। "एक तेज़ाब में शनैः शनैः दूसरा तेज़ाब मिलाते समय हिलाते रहकर मिश्रण को स्टोव पर उबालना और उसमें रासायनिक विधि से तीसरा तेज़ाब बूंद-बूंद डालते जाना। उबलते तेज़ाब के बर्तन से पीला धुआँ बहुत अधिक परिमाण में उठता था। बर्तन को छोड़कर दूर नहीं बैठा जा सका था क्योंकि मिश्रण को हिलाते रहना आवश्यक था।" तेज़ाब के इस पीले धुएँ के प्रभाव से 'किसना' के कुर्ता-धोती दो दिन में ऐसे जर्जर हो गये कि उन्हें जहाँ से

छुआ जाता कपड़े का टुकड़ा अलग होकर हाथ में आ जाता। हर दो दिन बाद नया कुर्ता-धोती लाते रहना सम्भव न था अतः काम करते समय कुर्ता-धोती छोड़ लंगोट बांधना शुरू कर दिया। बाहर आने-जाने के लिए लेख राम ने उसको दूसरा फटा-पुराना कपड़ा पहनने के लिए दे दिया।

यशपाल के अपने लिखे अनुसार कपड़े न पहनने से इस धुएँ का असर 'किसना' की त्वचा पर होने लगा। सारे शरीर का रंग हल्दी जैसा पीला पड़ गया। चार-पांच दिन बाद नहाते समय त्वचा से महीन झिल्ली-सी उतरने लगी, जैसी चौमासे में शरीर पर फूली हुई घाम फट कर झड़ने से उतरती है। इससे कोई कष्ट अनुभव न होता था। हाँ, धुएँ के कारण खाँसी और सिर दर्द की ही परेशानी बहुत होती थी।

'किसना' प्रतिदिन सुबह मासाले का एक घान या चढ़ाव पकाने के किए चढ़ाता। इसमें प्रायः चार घंटे लग जाते। तदुपरांत रासायनिक द्रव को ठंडा होने के लिए रख देना पड़ता ताकि उसके स्फटिक (क्रिस्टल) बन जायँ। इस बीच में वह कुछ देर के लिए दुकान पर काम करने चला जाता, दवाइयाँ कूटता, वैद्य जी को पंखा करता, उनके मित्रों के आने पर ठंडे कुएँ से ताज़ा पानी भर कर लाता, आदि।

दल के काम के लिए पैसे की तो हमेशा ही ज़रूरत रहती थी। इस सिलसिले कुछ आर्थिक सहायता पाने की आशा में यशपाल को प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता वीर सावरकर के बड़े भाई के पास दक्षिण में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन महानुभाव से इनका मामूली परिचय दिल्ली में हो चुका था।

बाबा साहेब ने बड़े स्नेह और प्रेम से यशपाल का स्वागत किया। यशपाल उनके राष्ट्र-प्रेम और स्वदेशी जीवन से तो बहुत प्रभावित हुए किन्तु बाबा साहेब की हिन्दु-राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी भावना उनकी समाजवादी क्रान्तिकारी भावना से मेल न खा सकी। ५० हज़ार रुपये के मिलने की सम्भावना भी उन्हें मि० जिन्नाह, जिन्हें यशपाल और उनके साथी निश्चित रूप से देश का हितैषी नहीं समझते थे, की हत्या के लिये प्रेरित न कर पाई।

दल की उस समय की कठिन आर्थिक परिस्थिति में इतनी बड़ी रकम की आशा मामूली बात नहीं थी। दल के सदस्य अपने राजनैतिक उद्देश्य के लिए मनी एक्शन (डकैती) अथवा जाली सिक्के बनाने में भी संकोच नहीं करते थे। डकैती में एकाध हत्या हो जाने की सम्भावना भी रहती ही थी। परंतु साम्प्रदायिक मतभेद से हत्या करना इन्हें देश हित या सर्वसाधारण जनता के हित और एकता के विरुद्ध लगा। यशपाल उसी दिन शाम की गाड़ी से लौट आये।

यशपाल फ़रार थे। पुलिस इनकी खोज में थी। उन्हीं दिनों कुछेक ग़लत फ़हमियों की बिना पर दल के नेता चन्द्रशेखर आज़ाद ने इन्हें गोली मार देने की सम्मति दे दी। इस प्रयोजन के लिये यशपाल को कानपुर बुलाया गया परन्तु भाग्यवश ये स्टेशन पर लिवाने के लिये आये साथियों के साथ न जाकर सीधे वीरभद्र तिवारी के मकान पर जा पहुँचे। वीरभद्र ने इनको दल के निश्चय की बात बता कर वहाँ से वापस चले जाने को कहा। सब कुछ सुनकर यशपाल बहुत दुखी हुए। प्रश्न प्राण रक्षा का नहीं था, सम्मान-रक्षा का था। इन्हें अधिक दुख इस बात का था कि फैसला करने से पहले दल ने इन्हें सफ़ाई का अवसर भी नहीं दिया था।

अब दोहरी मुश्किल आ पड़ी थी, एक तो पुलिस द्वारा पकड़े जाने की आशंका और दूसरे दल के सदस्यों की गोली से बचने की समस्या। ऐसी विकट स्थिति में कोई साधारण व्यक्ति जाने क्या कर

DELHI CONSPIRACY CASE

REWARDS

The rewards noted below are offered for the arrest of absconding accused in the Delhi Conspiracy Case (F. I. R. No. 436, dated 19th November 1930, Police Station Kotwali, under Sections 302/120-B, etc., I. P. C.)

Reward Rs. 1,500.

Lekh Ram Vaid, son of Kanhaya Ram, caste Brahmin, Mauza Dhing Sarai, District Hisar.

Description.—Age about 27/30 years, height about 5',6/7", strong build, sallow complexion, the letters LR or OM tattooed on one forearm, a scar on the stomach about the size of an eight anna piece.

YASHPAL.

Reward Rs. 3,000.

Yashpal, son of Hira Lal, Khatri of Nadhaun, Police Station Mirpur, District Kangra, lately of Wachhowali, Lahore City.

Description:—Age 23/24 years, height 5' 7", medium build, a boil mark on the left temple, the size of an eight anna piece; wears spectacles.

Reward Rs. 1,000.

Bishambhar Dayal, son of Basdeo, caste Brahmin, resident of Bahror, Alwar State.

Description:—Age about 18/20 years, medium height, wheat complexion, long face, thin nose slightly turned up, round eyes, broad forehead.

BISHAMBHAR DAYAL.

BHAWANI SINGH.

Reward Rs. 500.

Bhawani Singh, son of Captain Nathu Singh, resident of Garhwal.

Description:—Age 21/22 years, stout build, average height, fair complexion, broad forehead, incipient moustache, wears dhoti, coat and cap and looks like a Garhwali.

Reward Rs. 800.

Hazari Lal *alias* Pandey *alias* Sri Krishan *alias* Ram Babu *alias* Masterji.

Description:—Age 20/22 years, average height, thin build, athletic, sallow complexion, round face, wart on the right cheek, eczema marks on both palms, wears khaddar pyjama, short coat and Gandhi cap, parts his hair in the middle.

Reward Rs. 500.

Bhawani Sahai, son of Pt. Ram Chand of Rajgarh, Alwar State.

Description: Age 22 years, medium height, thin build, dark complexion, small eyes, small mouth.

SAMPURAN SINGH TANDON.

KASHI RAM.

RAM CHANDRA SHARMA.

Reward Rs. 1,500.

Sampuran Singh Tandon *alias* Asaf, son of Girdhari Lal, Khatri, Sehjdhar Sikh, resident of Kucha Acharayan, Lahore City, ex-Professor of the Ramjas College, Darya Ganj, Delhi.

Description: Age 22/23 years, average height and build, fair complexion, thin long face, slightly pockpitted, long nose.

Reward Rs. 500.

Kashi Ram, son of Kishen Lal, caste Khatri, resident of Hardoi, U. P.

Description: Age 28/29 years, stout build, average height, medium eyes, wheat complexion, round face, bold expression, broad forehead, clipped moustache, wears dhoti and coat, with or without cap.

Reward Rs. 300.

Ram Chandra Sharma, son of Pandit Ghasi Ram, of Sikandrabad and of Nahjurha dairy farm, Police Station Surajpur, District Bulandshahr.

Description: Tall, strong build, wheat complexion, long face, big moustaches (but clean shaved when last seen), wears horn-rimmed spectacles and khaddar clothing with Gandhi cap or pagri.

Reward Rs. 500.

Mst. Prakasho Devi *alias* Sarla, daughter of Baij Nath, Shahi Mohalla, Lahore City. She was abducted by Prem Nath.

Description:—Age about 18 years, fair complexion, medium height, round face, slim build, a mole on the cheek near the nose.

PRINTED BY THE MANAGER, GOVERNMENT OF INDIA PRESS, DELHI.

गुज़रता ? ठीक सम्भव था पुलिस का मुखबिर बन कर सभी को पकड़वा देता, परन्तु यशपाल ने ऐसा कोई विचार ध्यान में न आने दिया। इनके निकटतम साथी भगवती भाई शहीद हो चुके थे। भगत सिंह, सुखदेव आदि जेल की यातनाएँ झेल रहे थे। पंजाब के क्रांतिकारी कार्यकर्त्ता धन्वंतरी और सुखदेव राज इनके विरुद्ध थे। अतः ग़लत फ़हमी दूर करने के लिए अब वह अकेले ही रह गये थे। इन्द्रपाल और उनके साथियों से कुछ आशा थी परन्तु आतिशीचक्कर के फेर में वे भी शीघ्र ही गरिफ्तार हो गये। इन हालात में यशपाल ने जो साहस और संयम दिखाया, वह अपनी मिसाल आप है। यशपाल ने बड़ी निर्भीकता से दल के नेता चन्द्रशेखर आज़ाद के सम्मुख अपने विरुद्ध लगाये गये आरोप जानने तथा उनकी जाँच किये जाने की माँग की।

आज़ाद को क्रोध आ गया, उनकी आँखें लाल-अंगारा हो गईं परन्तु यशपाल ने बड़े धैर्य से अपनी सफ़ाई पेश की। अंततः आज़ाद को अपनी जल्दबाज़ी का एहसास हो जाने पर इनकी मुक्ति हुई। इससे यशपाल के प्रति आज़ाद का हृदय तो साफ हुआ ही साथ में उनका यशपाल पर विश्वास पहले से कहीं अधिक बढ़ गया। इस घटना के फलस्वरूप आज़ाद ने दल को भंग कर देने की घोषणा कर दी। दल भंग के समय उन्होंने सभी हथियार बिहार, युक्तप्रांत, पंजाब, दिल्ली, मध्यप्रांत-महाराष्ट्र और यशपाल के लिये बराबर-बराबर बाँट दिये। उस समय यशपाल किसी भी प्रांत के प्रतिनिधि नहीं थे परन्तु आज़ाद ने अपने निर्णय में इनको बराबर का हिस्सा देने के बाद एक बहुत अच्छा रिवाल्वर और भी दिया और खिन्न स्वर में कहा, "सोहन (आज़ाद इन्हें सोहन कहकर ही बुलाते थे) को हथियार देना लोगों को अनुचित लगेगा परन्तु मैं जो उचित समझता हूँ, कर रहा हूँ। दूसरे लोग जाने हथियारों का क्या करेंगे लेकिन सोहन ज़रूर उनका उपयोग करेगा।" दिल्ली छोड़ते समय आज़ाद ने यशपाल को बुलाकर कहा था, "सोहन, इस समय और कुछ नहीं हो सकता। यह तो निश्चय है कि अपनी जान बचाने के लिए पान-बीड़ी की दुकान खोल कर दिन नहीं कटेंगे। जब भी कुछ करने की बात सोचो, मेरा भरोसा करना।"

ये सब तो हुईं जेल के बाहर की बातें। पुलिस द्वारा पकड़े जाने और लम्बे कारावास या फाँसी की सज़ा की सम्भावना होने पर भी यशपाल किसी प्रकार विचलित नहीं हुए। जेल में डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस मि० बैनर्जी ने इन्हें मुख़बिर बन जाने के लिए अनेक प्रलोभन दिये। जब-तब परिवार और प्रकाशवती का ज़िक्र ले बैठते और इस तरह यशपाल के हृदय में परिवार-प्रेम जगाने की चेष्टा करते हुए साथ साथ यह भी संकेत करते जाते कि यदि वह सरकार को कुछ भेद बतला सके तो मुकद्दमा हटा लिया जा सकता है और रिहा होने के बाद वह विलायत जा सकता है। यह सब हो सकता था यदि यशपाल दूसरे नौजवानों का जीवन नष्ट करने वाले इस आंदोलन की रोक-थाम में सहयोग दे सकता!

यशपाल ने टका-सा उत्तर दे दिया परन्तु बैनर्जी इतनी आसानी से छोड़ने वाले नहीं थे। तीन-चार दिन बाद कहने लगे "आखिर हम अदालती कार्रवाई कब तक रुकवा सकते हैं? मामला एक बार अदालत में चला गया तो फिर उसे रफ़ा-दफ़ा करने या उसका रूप बदल देने की गुंजाइश नहीं रहेगी। अब सोच लेना चाहिए।"

यशपाल ने फिर से रुखाई से उत्तर दे दिया।

बैनर्जी ने एक प्रयास और किया। इस बार उन्होंने पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट पिल्डिड के यशपाल से

मिलने की बात भी कही । यशपाल ने उनसे मिलने की सहमति प्रकट कर दी । पिल्चिड नैनीताल से मिलने आ गये ।

पिल्चिड से औपचारिक बातचीत करने के बाद यशपाल ने कहा "आपको इतनी दूर से आने का कष्ट हुआ, उसके लिए खेद है । मुझे यही कहना है कि मि० बैनर्जी मुझसे मिलने न आया करें । सी० आई० डी० के अफ़सर मुझसे मिलने आते रहेंगे तो लोगों को मेरे सम्बंध में अच्छी धारणा नहीं होगी ।"

यशपाल के क्रांतिकारी जीवन की यह उग्रता और निर्भीकता इनके साहित्यिक कृतित्व में धरोहर बन कर आई जान पड़ती हैं । इनके साहित्यिक व्यक्तित्व को इनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व से जुदा करके नहीं देखा जा सकता । यशपाल की रचनाओं में इनके ऐसे ही उदात्त व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं ।

महेन्द्र

पटियाला

मैं इन से मिला

हीवेट रोड लखनऊ में साथी प्रेस का दरवाज़ा खटखटाने पर सबसे पहले एक ग्यारह-बारह वर्ष की बालिका आई। मुझसे उसने नाम-पता पूछा और भीतर चली गई। थोड़ी देर में उसने फिर आकर मुझे कुर्सी पर बैठने का इशारा किया और "बाबूजी अभी आते हैं" कहकर स्वयं भीतर चली गई। आठ-दस मिनट के बाद एक प्रौढ़ वयस्क महिला आकर ऑफिस की कुर्सी पर बैठ गई और उसने भी वही शब्द दुहराये, जो उस बालिका ने कहे थे। बग़ल वाली कुर्सी पर प्रसिद्ध क्रांतिकारी शिव वर्मा भी आ बैठे। महिला चिट्ठियों और फाइलों में उलझ गई। वह थोड़ी देर में ही मुझे किताबों की सार-सँभाल करती दिखाई दी! ऑफिस-मैनेजर का काम करने वाली यह महिला श्रीमती प्रकाशवती पाल (यशपाल की पत्नी) थीं। इस बात का पता मुझे तब चला जब यशपाल जी श्री शिव वर्मा की सामने वाली कुर्सी पर आ बैठे और मेरा परिचय कराया गया।

यशपाल जी को मैंने कई वर्ष पहले इलाहाबाद में देखा था। वे राहुल जी के सभापतित्व में होने वाले प्रगतिशील लेखक-सम्मेलन की उस बैठक का सभापतित्व कर रहे थे, जिसमें कथा-साहित्य की गति-विधि पर विचार किया गया था। उस समय दूर से ही मैंने उन्हें देखा था। सभापति-पद से उन्होंने कथा-साहित्य की प्रगति पर जो भाषण पढ़ा था, उसमें ऐसा खरापन और तीखापन था कि कुछ लोग, जो वहाँ बैठे थे, तिलमला उठे थे। यशपाल जी सहज भाव से ही वह बात कह गए थे, बिना संकोच या झिझक के; दूसरे क्या कहेंगे इसकी तनिक भी चिन्ता किये बिना। उनकी दृढ़ता और निर्भीकता का तो मैं तभी क़ायल हो गया था और मिलने के लिए अवसर की खोज में था कि इस वर्ष लखनऊ जाने पर उनसे भेंट करने और उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला। गेबरडीन की खाकी पेंट और बूट, शरीर पर नीले रंग की कमीज़, सफ़ाचट दाढ़ी-मूंछ, घनी भौंहें जो आधे से अधिक सफेद थीं, नंगा सिर, मुँह में सिगार; इस वेश में मुझे वे पुलिस-अफसर से दिखाई दिये। उनका चेहरा रौबीला और सबसे ज्यादा आतंकित करने वाली उनकी भौंहें हैं। आँखें उनकी बड़ी पैनी और दूर तक घुसने वाली हैं। जैसे ही मेरा साक्षात्कार हुआ कि वे बोले, "हमें आज ही कार्य समाप्त कर लेना है, चाहे कितनी ही देर हो जाय। समय मेरे पास कम है।"

बहुधा मेरा इण्टरव्यू लेने का ढंग यह है कि कम-से-कम दो सिटिंग में विस्तार से चर्चा हो पाती है, क्योंकि एक सिटिंग में केवल चलाऊ काम हो पाता है। यशपाल जी ने जब एक ही सिटिंग में कार्य समाप्त

करने की बात कही तो मैंने यह सोचकर सन्तोष कर लिया कि वे मेरे कार्य का महत्त्व जानते हैं और उसे पूरा कराए बिना न छोड़ेंगे।

अभी तक हम उनके ऑफिस में ही बैठे थे, लेकिन जब आने-जाने वालों ने हमारी बातचीत में विघ्न डालना आरम्भ कर दिया तो वे मुझे ऑफिस से मिले अपने ड्राइंग-रूम में ले गए। ड्राइंग-रूम आधुनिक साज-सज्जा की सामग्री से युक्त था। उसकी दीवारों पर लगे चित्रों ने मुझे विशेष आकर्षित किया। जिस समय मुझे बिठाकर यशपाल जी चाय के लिए भीतर कहने गए थे, उस समय मैं उन चित्रों को ही देखता हुआ उनमें खो गया था। यशपाल जी जैसे समाजवादी लेखक के ड्राइंग-रूम में उन भावनामय चित्रों की संगति का रहस्य मुझे पीछे चल कर तब मालूम हुआ जब उन्होंने मुझे बताया कि वे चित्रकारी भी करते थे, पर अब छोड़ चुके हैं। यही नहीं उनके कई सुन्दर चित्र तो भारत-कला-भवन काशी के व्यवस्थापक श्री रायकृष्णदास जी कला-भवन के लिए ले गए हैं। मेरा चित्र-कला का ज्ञान बहुत कम है, पर दूर से ही एक चित्र के रंग इतने स्पष्ट थे कि उनका प्रभाव स्थायी पड़ता था। यशपाल जी की वर्णन-शक्ति का रहस्य भी इन चित्रों ने मेरे समक्ष खोल दिया। उनका ड्राइंग-रूम प्रगतिशील लेखकों पर कला और संस्कृति के दुश्मन होने का आरोप लगाने वालों को अच्छा जवाब है। इससे उनकी कलाभिरुचि और संस्कारिता का भी पता चलता है।

चाय पीने के बाद साहित्य और अनुभवों की चर्चा आरम्भ हुई। यशपाल जी ने अपने बाल्य-जीवन का परिचय इस प्रकार देना आरम्भ किया—"मेरे परिवार का आरम्भिक स्थान काँगड़ा का पहाड़ी ज़िला है। मेरी शिक्षा आरम्भ में गुरुकुल कांगड़ी में हुई थी। मैं लगभग ७ वर्ष गुरुकुल में रहा हूं। मेरी माता मुझे वैदिक धर्म का तेजस्वी और ब्रह्मचारी प्रचारक बनाना चाहती थीं। बचपन में माता-पिता से दूर, आर्य समाजी अध्यापकों के नियन्त्रण में कई बरस तक कष्टकर संयम निबाहने की सुख-दुखपूर्ण कई बातें मुझे याद हैं। नंगे पांव या खड़ाऊँ पहनकर चलना, काठ पर सोना, सख्त सर्दी में सूर्योदय से पहले ठंडे पानी से नहाना और भोजन के बाद अपना लोटा-थाली स्वयं माँजना। इसके इलावा कभी किसी दुकान या स्त्री का मुख न देखना। सबसे अधिक उग्र स्मृति है गुरुकुल के वातावरण में अंग्रेज़ों तथा विदेशी शासन से विरोधी भावना की। उस उम्र में ही जाने किस प्रेरणा से हम लोगों को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि हम अंग्रेज़ों को अपने देश से मार भगायेंगे।

"गुरुकुल में सातवीं कक्षा में पहुँचकर मैं असाध्य रूप से बीमार हो गया। मुझे प्रबल संग्रहणी हो गई थी। चिकित्सा के सभी सम्भव उपाय बेकार हो गए। इलाज के लिए देहरादून भी भेजा गया लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। इस कारण मुझे सातवीं कक्षा में गुरुकुल छोड़ देना पड़ा। गुरुकुल छोड़ने से मुझे इसलिए और अधिक प्रसन्नता हुई कि मैं घर का गरीब था। हम दोनों भाइयों का खर्च एक अध्यापिका को मिलने वाले वेतन से चलता था। उन दिनों अध्यापिकाओं को बीस-पचीस रुपये मासिक ही मिलते थे। गुरुकुल में मुफ़्त शिक्षा पाता था, इसलिए मुझे प्रायः साथियों के ताने सहने पड़ते थे। अपनी गरीबी के लिए तिरस्कार पाने का मुझे गुरुकुल में बड़ा कटु अनुभव हुआ। मन में सोचता था यदि मैं खूब अमीर की सन्तान होता तो कितना आदर और सुख मिलता। इस प्रभाव से गरीबी के अपमान के प्रति मैं कभी उदासीन न हो सका।
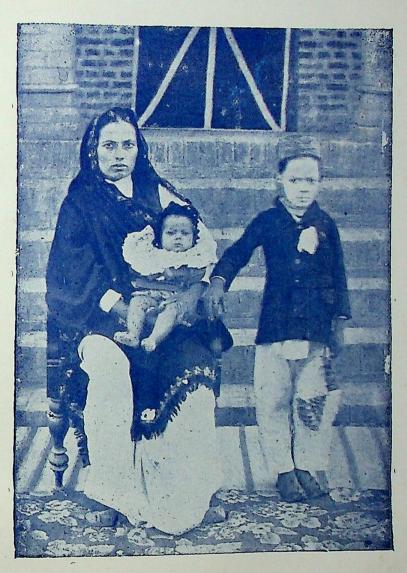
यशपाल, माता और छोटा भाई
सन् १६०८
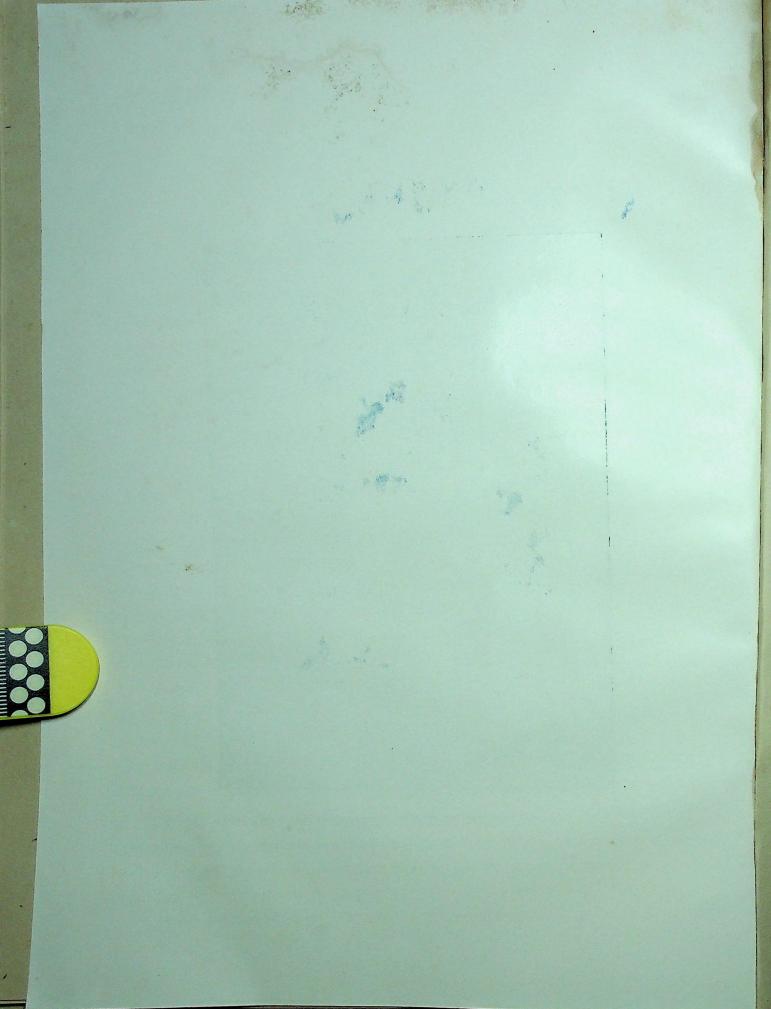
"गुरुकुल से लाकर मुझे डी० ए० वी० स्कूल लाहौर में भरती करा दिया गया। लाहौर में भाई परमानन्द जी, बालमुकुन्द और बलराज आदि की राजनैतिक गिरफ़्तारियों के कारण अत्यन्त भयानक आतंक छाया हुआ था। मैं 'आनन्दमठ' तथा 'अन्दमान की गूँज' आदि पुस्तकें गुरुकुल में ही पढ़ आया था। इसलिए लाहौर के वातावरण में मुझे उर्दू भाषा नहीं आती थी और अंग्रेज़ी भी कम ही जानता था। इसलिए सबसे पहले मैंने उर्दू सीखी ताकि मैं अखबारों के सम्पर्क में रह सकूँ। तब पंजाब में उर्दू में ही अखबार निलते थे। हिन्दी का प्रचार नहीं हुआ था। १९१९ में रौलेट-ऐक्ट आन्दोलन के बाद मैं फ़ीरोज़पुर छावनी में चला गया। उन दिनों मेरी माँ वहाँ आर्य कन्या पाठशाला में पढ़ाती थीं।

"सार्वजनिक कार्य की भावना से मैं आर्यसमाज-मन्दिर में जाने लगा। मुझे काफी वेद-मन्त्र याद थे और लैक्चर भी दे लेता था, इसलिए मैंने वहाँ अपना स्थान बना लिया। वहाँ मेरा परिचय एक सहपाठी लजवन्तराय से हुआ। लजवन्तराय के घर में पुस्तकें काफी बड़ी संख्या में थीं। 'चन्द्रकान्ता-संतति' और दूसरे जासूसी उपन्यास, रवि बाबू और शरत् बाबू के बंगाली उपन्यासों के अनुवाद, कुछ बंगाली क्रान्तिकारियों के चरित्र, प्रेमचन्द और सुदर्शन की पुस्तकें, 'स्त्री-सुबोधिनी' से लेकर 'सत्यार्थ प्रकाश' तक आर्यसमाजी साहित्य सभी मौजूद था। इन उपन्यासों और कहानियों को पढ़ने का प्रभाव यह हुआ कि मैंने एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया। करीब एक दस्ता काग़ज़ लिख डाले, फिर वह कहाँ गया, याद नहीं।

"प्रायः मुझसे पूछा जाता है कि मैंने लिखना कब शुरू किया या सबसे पहली कहानी कब लिखी थी। सबसे पहली कहानी मैंने दूसरे कई लोगों की तरह पांचवीं या छठी कक्षा में, गुरुकुल में पढ़ते समय लिखी थी। उस समय भी मुझे पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त दूसरी पुस्तकें विशेषतः इतिहास और कहानी पढ़ने की ओर रुचि थी। गुरुकुल में लिखने-पढ़ने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए अच्छा वातावरण था। ऊँची श्रेणी के विद्यार्थी रंग-बिरंगी स्याहियों से लिखीं और हाथ के बने चित्रों से सुसज्जित दो पत्रिकाएँ निकालते थे। उनमें से एक का नाम 'हंस' था। जयचन्द्र जी विद्यालंकार और सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार उस समय दसवीं कक्षा में पढ़ते थे और हाथ का लिखा दैनिक 'अगुआ' प्रकाशित करते थे। हम लोगों ने भी एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली। उसमें मेरी 'अँगूठी' शीर्षक कहानी प्रकाशित हुई। उस कहानी को ऊपर की कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों ने खूब पसन्द किया, जिससे मुझे भरोसा हो गया कि मैं कहानी लिख सकता हूँ। उस कहानी के बाद मैंने लिखने का दूसरा प्रयत्न १९२० में किया।"

"लेकिन वास्तव में लिखने की प्रेरणा आपको किससे मिली और कब से आपकी चीजें पत्रों में छपने लगीं?"

"मेरी लिखने की ओर प्रवृत्ति तो आरम्भ से ही थी और सहपाठी मुझे लेखक कहने लगे थे। नेशनल कॉलिज में आने पर हमारे हिन्दी के अध्यापक, हिन्दी के जाने-माने कवि, नाटककार और उपन्यास लेखक पंडित उदयशंकर भट्ट थे। भट्ट जी की रुचि आधुनिक हिन्दी-साहित्य की ओर अधिक थी। उन्होंने मुझे कहानी लिखकर दिखाने के लिये उत्साहित किया, और यह भी आश्वासन दिया कि छपने लायक होगी तो वे किसी मासिक पत्रिका में सिफारिश कर देंगे। एक कहानी लिखकर उन्हें दिखाई।

यह कहानी उन दिनों बरेली से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'भ्रमर' में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी के सम्बन्ध में और कोई बात याद नहीं, अलबत्ता मेरा उत्साह ज़रूर बढ़ गया। मैं छोटे-छोटे गद्य-काव्य लिख-लिख कर कानपुर से प्रकाशित होने वाली 'प्रभा' और साप्ताहिक 'प्रताप' को भेजने लगा। इन लेखों के साथ भी भट्ट जी ने अपनी सिफ़ारिश भेजी थी। स्वर्गीय गणेशशंकर जी विद्यार्थी के जीवन-काल में 'प्रभा' और 'प्रताप' हिन्दी-जगत् में क्रान्ति के अग्रदूत थे। 'प्रताप' और 'प्रभा' में उन दिनों एक छोटा-सा कालम 'नहीं छापेंगे' शीर्षक के नीचे उन रचनाओं के नाम रहते थे, जिन्हें पत्र स्थानाभाव या निस्सार समझने अथवा अपनी नीति के विरुद्ध होने के कारण प्रकाशित न कर सकते थे। मैं 'प्रताप' और 'प्रभा' के नये अङ्को में, धड़कते दिल से पहले यही कालम देखता। इसमें अपनी रचना का नाम न पाने पर विषय-सूची देखता और वहाँ भी न पाने पर अगले अङ्क की प्रतीक्षा करता। उस समय लेख लौटाये जाने की आशंका मुझे बड़ी खलती थी। सौभाग्य की बात है कि मेरे वे छोटे-छोटे गद्य-काव्य 'प्रताप' या 'प्रभा' से कभी लौटाये नहीं गये। इसका एक कारण यह भी था कि वे रचनाएँ 'प्रभा' और 'प्रताप' की भावना के अनुकूल थीं अर्थात् उनमें व्यंजना और संकेत से रक्त का मूल्य देकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने की पुकार रहती थी।"

उनका सिगार समाप्त हो चुका था। इसलिए कुछ देर के लिए वे सिगार लेने के लिए चले गये। साथ ही चाय का एक-एक कप भी। चाय पीते-पीते ही उन्होंने कहा—"यह बहुत कम लोग जानते हैं कि सरदार भगत सिंह की भी साहित्यिक रुचि थी और उसे लिखने का बेहद शौक था। मैं हिन्दी में लिखता था और वह उर्दू में। कुछ दिन बाद स्थानीय उर्दू पत्रों में उसकी लिखी छोटी-छोटी चीज़ें प्रकाशित होने लगी थीं। सन् २४-२५ में हमने राष्ट्रीय भावना जागृत करने के लिये नाटकों का सहारा लिया। किसी लेखक के 'महाभारत' नाटक को 'कृष्ण विजय' नाम ले परिवर्तित करके हमने खेला। व्यंजना से अँग्रेज को कौरव और कांग्रेसियों को पांडव बना लिया। उसमें प्रहसन भाग भी जोड़ दिया। कुछ दिन यह शौक रहा। दो नाटक लाहौर में खेले। गुजराँवाला में प्रान्तीय कांग्रेस की कान्फ्रेन्स के अवसर पर 'भारत-दुर्दशा' नाटक खेला था। देहरादून में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर राजा भोज के दरबार में मैंने राजा भोज की भूमिका की थी। भगत सिंह भी नाटकों में भाग लेता था। सन् १९२५ में पंजाब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा आयोजित निबन्ध-प्रतियोगिता में जो तीन निबन्ध सर्वश्रेष्ठ समझे गए थे, उनमें दो मेरे और भगत सिंह के थे। क्रांतिकारी-आन्दोलन के आरम्भ के वे दिन मुझे याद हैं जब मैं एक बार खूब उग्र होकर बाद में साहित्यिक प्रयत्न में डूब जाने की इच्छा से दल (हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना, जिसके हम सब लोग सदस्य थे) के कार्य के प्रति शिथिल होने लगा था तो भगत सिंह और सुखदेव 'साहित्यिक' कहकर मेरा मज़ाक उड़ाने लगे थे। लेकिन जब १९२९ में इन दोनों की गिरफ्तारी के बाद मैं दुस्साहस के कार्य करने लगा तो भगत सिंह ने जेल से मुझे यह सन्देश भेजा था, "उसे कहो, कुछ दिन बैठकर पढ़े और कहानियाँ लिखे।"

यहीं मैंने पूछा—"जिस क्रान्तिकारी-दल के आप भगत सिंह, सुखदेव आदि के साथ सदस्य थे, उसमें आप किस प्रकार सम्मिलित हुए और क्या आपकी माता जी ने इस पर आपत्ति नहीं की ?"

यशपाल जी बोले—"मैंने आपसे कहा है कि गुरुकुल की शिक्षा ने मेरे भीतर अंग्रेज़ों के प्रति घोर घृणा का अंकुर जमा दिया था। १९२१ के असहयोग-आन्दोलन ने अन्य युवकों की तरह मुझे भी

खींच लिया। नेशनल-कालिज में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थे ही। हम सबके एक साथ हो जाने से हमें राष्ट्रीय कार्य करने की प्रेरणा मिली। मेरी माँ स्वयं पढ़ाई के कार्य से थकी होने पर भी चर्खा कातती थीं। मेरे विचारों में उसने कभी बाधा नहीं डाली। जब मैं नवीं कक्षा में था तभी फ़ीरोजपुर छावनी में अछूतों के किए खोली गई रात्रि-पाठशाला में स्वयं-सेवक की हैसियत से काम करता था। कुछ दिनों बाद जब वह कार्य अवैतनिक न चला और वैतनिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता हुई तो मुझे उस पाठशाला का हैडमास्टर बना दिया गया और वेतन आठ रुपये तय हुआ। स्कूल में पढ़ते हुए मैं यह कार्य करता था, माँ को तब ३० रुपये वेतन मिलता था। वे सात बजे पढ़ाने जातीं और हम दोनों भाइयों के लिए खाना बना कर रख जातीं। वे स्कूल से थकी-माँदी आकर बरतन माँजतीं, यह मुझे अच्छा न लगता, इसलिए मैं स्कूल जाने से पहले चौका-बरतन कर देता था। एक फर्लांग दूर से से पानी भी लाता था। मेरे इस व्यवहार से माँ को अपार सन्तोष होता था। इसलिए मेरे राष्ट्रीय कार्य में वे कभी बाधक नहीं बनीं। हाँ, कक्षाएँ पास करते जाने और कुछ बन कर दिखाने का आग्रह उनका अवश्य रहा।

पहले मैं कांग्रेस का अनुयायी था। विदेशी कपड़ों की होली जलाता था। माँ को भी कांग्रेसी-आन्दोलन से पूरी सहानुभूति थी, जब मैं फीरोजपुर शहर में जिला कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर में अवैतनिक कार्य के लिए गया तो वहाँ राजनैतिक पुस्तकें पढ़ीं और अंग्रेज साम्राज्यशाही द्वारा भारत के शोषण के विरोध की मेरी निष्ठा गहरी हो गई। दफ़्तर में कांग्रेस-कार्य के संचालक श्री नन्दगोपाल जी के प्रभाव से मुझे तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, मालवीय जी और गांधी जी आदि के लेखों और व्याख्यानों की पुस्तकों में रुचि हुई। स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द की पुस्तकें भी मैंने वहाँ पढ़ीं। इससे मुझे अपने राष्ट्र की बौद्धिक श्रेष्ठता का विश्वास हो गया। मैं काँग्रेस में जी-जान से जुट गया, लेकिन १९२१ के आन्दोलन को गांधी जी ने एकाएक स्थगित कर दिया तो मुझे कांग्रेस में विश्वास नहीं रहा। सोचा, 'गांधी जी संघर्ष से बराबर घबराते हैं और आध्यात्मिकता की बातें करते हैं युवक इस प्रवृत्ति से सन्तुष्ट नहीं हो सकते।' फल यह हुआ कि नेशनल कॉलिज में आने पर कॉलिज के प्रोफेसरों ने, जिनमें जयचन्द विद्यालंकार का नाम प्रमुख है, अध्ययनशील विद्यार्थियों के एक समूह को क्रांतिकारी कार्य करने को प्रोत्साहित किया। अधिकांश विद्यार्थी कॉलिज में राजनीति, अर्थशास्त्र और इतिहास ही पढ़ते थे। फारसी और संस्कृत भी पढ़ाई जाती थी। भगत सिंह भी संस्कृत पढ़ता था। सुखदेव और मैं एक ही कमरे में रहते थे। सत्याग्रह की विफलता के अनुभव के बाद इस समूह को डेनब्रीन की 'माई फाइट फॉर आइरिश फ्रीडम' मैजिनी और गेरीबाल्डी की जीवनियाँ, फ्रांसीसी क्रांति का इतिहास, बाल्तेयर और रूसो के रूढ़िवाद-विरोधी क्रांतिकारी विचार, रूसी क्रांतिकारियों की जीवनियाँ, 'वीरा फिगनर', 'क्रोपाटकिन' आदि और इसके साथ-साथ भारत में सत्याग्रह से भिन्न देश की स्वतन्त्रता के लिए किये गए प्रयत्नों का परिचय देने वाली पुस्तकें, जिनमें सान्याल दादा की 'बन्दी जीवन' और 'रौलट कमेटी की रिपोर्ट' प्रमुख हैं, पढ़ने को मिलीं। इसी बीच एक दिन भगत सिंह और मैंने रावी में नौका-बिहार करते हुए देश के लिए जीवन अर्पित करने की प्रतिज्ञा कर ली। आगे चल कर एक दल संगठित हुआ, जिसने क्रांतिकारी परम्परा को आगे बढ़ाकर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। मेरी 'सिंहावलोकन' नामक पुस्तक में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है।"

यह सब सुनकर यशपाल जी का वह व्यक्तित्व मेरी आँखों के सामने घूम गया, जिसकी ओर मेरा पहले कभी ध्यान नहीं गया था। अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया—"इसका अर्थ तो यह हुआ कि आप क्रांतिकारी पहले हैं और साहित्यकार पीछे ?"

उन्होंने कहा—"मैं अपनी राजनीतिक तथा साहित्यिक प्रवृत्ति को अलग-अलग नहीं समझता। वे मेरे लिए एक ही वस्तु हैं और एक ही लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हैं। इसलिए क्रांतिकारी जीवन-काल में भी साहित्य मेरे साथ बराबर रहा है। जेल में मैंने साहित्य की उपेक्षा नहीं की। मैंने फरारी के दिनों में लुई फिशर की 'लेनिन और गांधी' पुस्तक का रूपांतर किया था। जेल में बँगला, फ्रेञ्च, इटालियन और रशियन भाषाएँ सीखीं। 'पिंजरे की उड़ान' और 'वो दुनियां' की कहानियां प्रायः जेल की ही हैं। एक उपन्यास भी लिखा था। पहले मैंने अंग्रेजी में लिखना आरम्भ किया। फिर सोचा कि मुझे अंग्रेजों के लिए नहीं अपने ही देश के लोगों के लिए लिखना है। अंग्रेजों से मुझे क्या करना है ? यदि मेरी चीज अच्छी होगी तो उसका अंग्रेजी में अनुवाद स्वयं हो जायगा। मैंने पहले 'मकरीला' और 'पराई' आदि कहानियाँ प्रकाशित कराईं। उनसे मुझे प्रोत्साहन मिला। जेल से छूटने पर अस्वस्थ था तब छः महीने भुवाली में रह कर भी लेख और कहानियाँ लिखीं। उनकी भी तारीफ़ हुई, इसलिए लिखने का निश्चय किया और 'न्याय का संघर्ष' निबन्ध-संग्रह लिखा। जेल से बाहर आने पर मैंने लखनऊ में श्री सहगल के 'कर्म-योगी' में ७५ रु० मासिक पर नौकरी की। 'आपबीती' लिखने के प्रसंग को लेकर झगड़ा हो गया। १५ दिन की तनखाह तक उन्होंने मार ली। हारकर 'विप्लव' शुरू किया। जब विप्लव शुरू किया तब कुल ३०० रुपये हमारे पास थे। उनसे कागज और छपाई का काम चल सका था, वह भी एक ही अंक का। दूसरे के लिए तो केवल कागज खरीदने भर के लिए ही रुपया था। प्रकाशवती ने प्रथम अंक लेकर दौरा किया और ६०-७० ग्राहक बनाये और लगभग २५० रुपये इकट्ठे कर लिये। दूसरा अंक निकाला। 'विप्लव' चल निकला। १९४१ में मेरे गिरफ़्तार हो जाने से 'विप्लव' बंद हो गया। उस बीच मैंने 'दादा कामरेड' तथा 'मार्क्सवाद' आदि पुस्तकें लिखी थीं। १९४४ में छपाई में कठिनाई अनुभव करके एक ट्रेडिल खरीदी, फिर दूसरी ट्रेडिल खरीदी गई। १९४७ में दुबारा 'विप्लव' निकला। मेरे इस कार्य का उद्देश्य भी राजनीतिक चेतना जागृत करना था। मेरा और बहुत से लोगों का विचार है कि 'विप्लव' ने 'मार्क्सवाद' के प्रचार में ऐतिहासिक कार्य किया है। मैं साहित्य को साधन के रूप में मानता हूँ और मेरा ध्येय साहित्य द्वारा क्रांति की प्रवृत्ति और भूमिका तैयार करना ही रहता है।"

यशपाल जी जीवन-भर क्रांतिकारी रहे हैं और अब सोलह आने साहित्यिक हैं। इसलिए उनके पास कहने के लिए इतना अधिक है और इतना निराला है कि आठ घण्टे तक उनके पास बैठकर भी आप ऊब नहीं सकते। मैं भी उनके पास बैठकर अपने को प्रेरणापूर्ण और स्फूर्ति-सम्पन्न अनुभव कर रहा था और चाहता था कि उनकी कहानियाँ सुनता ही चला जाऊँ, पर उनके समय का ध्यान करके मैंने अपने काम की बातें पूछना ही उचित समझा। जब वे अपने साहित्यिक जीवन पर बातें कर रहे थे तब मैंने उनसे पूछा—'वे देशी-विदेशी लेखक कौन से हैं जिन्हें आप अधिक पसन्द करते हैं और जिनका आपके ऊपर विशेष प्रभाव है ?"

"विदेशी लेखक मैंने बहुत से पढ़े हैं। ७ वर्ष जेल में रहने से मुझे पढ़ने का बहुत अवसर मिला।

मैंने फ्रेञ्च, रशियन और इटालियन लेखकों की कुछ पुस्तकें मूल भाषाओं में पढ़ी हैं, अंग्रेजी अनुवादों से नहीं। वर्नाड शॉ के प्रति मुझे विशेष अनुराग नही है। उसमें विरोधाभास है, पर तर्क की गहराई नहीं है। किसी विषय की तह तक वह नहीं पहुँच पाता। इब्सन और हार्डी को मैंने काफी पढ़ा है। हार्डी में गहरी मार्मिकता है। गार्ल्सवर्दी मुझे सामाजिक चित्रण में निपुण जँचा है। शैली और विचारों में मुझे अनातोले फ्रांस ने बहुत प्रभावित किया है। 'थाया' को जेल जाने से पूर्व अंग्रेजी में पढ़ा था। जेल में उसे फ्रेञ्च में पढ़ा। उसके बाद उसका प्रेमचन्द्र जी कृत हिन्दी-अनुवाद पढ़ा। प्रेमचन्द्र जी के अनुवाद के विषय में यह बताना जरूरी है कि मेरे अनुमान में प्रेमचन्द्र जी फ्रेञ्च नहीं जानते होंगे। उन्होंने अंग्रेजी के अनुवाद से ही हिन्दी में अनुवाद किया है। परन्तु उनका अनुवाद अंग्रेजी अनुवाद से बेहतर है। इसका कारण यह है कि यह उपन्यास पूर्वी विचार-धारा का है और प्रेमचन्द जी पूर्वी विचार-धारा को 'थाया' के अंग्रेजी अनुवादक की अपेक्षा अच्छी तरह समझते थे। मैं विक्टर ह्यूगो के कथानकों के गठन का कायल हूँ। ग्रीबील दनंजियो की रोमांटिक प्रवृत्ति ने भी मुझे प्रभावित किया है। दाँते की 'डिवाइन कामेडी', बुकेशियो की कहानियाँ, मोपासाँ और बालजक की रचनाएँ भी मेरे लिए प्रिय रही हैं। रूसी लेखकों में मुझे टाल्स्टाय और तुर्गनेव पसन्द हैं। देशी लेखकों में बंकिम, रवीन्द्र और शरत् को मैंने मूल बँगला में पढ़ा है।"

"और हिन्दी में?"

"मेरे विचार में रांगेय राघव, अज्ञेय, सत्येन्द्र शरत्, शोभाचन्द्र जोशी, कन्हैयालाल कपूर आदि बँगला से अच्छा लिखते हैं। रांगेय राघव की 'कुम्हारों के मुहल्लों की कहानी' (पंच परमेश्वर) तो विश्व-साहित्य की चीज है। कविता में मुझे विशेष रुचि नहीं है। मैं उसकी जटिलता और रहस्य से परिचित हूँ। पन्त जी और बच्चन की आरम्भिक रचनाएँ मुझे अपेक्षाकृत स्वाभाविक और अच्छी लगी हैं। सामयिक राजनैतिक कविता लिखने वालों में नागार्जुन और केदार खूब लिखते हैं। मेरी राय में अच्छी कविता वह है जो सर्वसाधारण की जबान पर चढ़ जाय।"

यहाँ उन्होंने अपनी शिमला से पैदल कुल्लू-यात्रा की एक घटना सुनाई। उसमें उन्होंने बताया कि वे एक डाक-बँगले में ठहरे थे। वहाँ के खानसामा की ६ वर्ष की बच्ची डाक-बँगले में ठहरने वाले यात्रियों के मनोरंजनार्थ सिनेमा के गीत गाया करती थी। मैं जब वहाँ गया तो उसने 'गोरी मोहे गंगा के पार मिलना' वाला गीत गया। तब मैंने सोचा कि नगर की सभ्यता और हलचल से दूर एक सुनसान पहाड़ी-प्रदेश में यह सिनेमा के गीत की कड़ी इस बालिका के मुँह से गाई जा रही है तो यह इस गीत की सादगी और मार्मिकता के कारण। हिन्दी-कविता में सादगी के अभाव से जनता तक पहुँचने की शक्ति नहीं रही है।"

जब मैंने उनसे पूछा कि आप निरन्तर कैसे लिखते चले जा रहे हैं, तो वे बोले, "मैं अनुभव करता हूँ कि अमुक प्रश्न उठाया जाना चाहिए अथवा अमुक समस्या की ओर ध्यान देना आवश्यक है अथवा अमुक समस्या का मेरे विचार में यह उत्तर होना चाहिए और मैं अपने साथियों, अपने समाज को यह बात सुनाने या सुझाने की आवश्यकता अनुभव करता हूँ तो लिखना जरूरी हो जाता है। ऐसे प्रश्न, समस्याएँ और बातें मुझे इतनी अधिक दिखाई देती हैं कि लिखना मुझे सदा ही आवश्यक और स्वाभाविक

जान पड़ता है। कभी कुछ दूसरे कारण रुकावट डाल देते हैं तो नहीं लिख पाता हूँ वरना लिखना तो सदा ही चाहता हूँ। लिखना में अपना काम समझता हूँ। जैसे दूसरों के अपने काम हैं, मेरा काम लिखना है। मैं अपना काम न करूँ, यह मुझे अस्वाभाविक और अनुचित भी जान पड़ता है।"

"लेकिन आप लिखने के लिए सामग्री कैसे जुटाते हैं और कैसे लिखते हैं ?" मैंने उनके लिखने के ढंग के विषय में प्रश्न किया।

उन्होंने कहा—"उपन्यास के लिए तो केवल 'आइडिया' आना चाहिए, पात्र मैं स्वयं गढ़ लेता हूं। 'दिव्या' में मारीश और दिव्या द्वारा मैंने अपना दृष्टिकोण ही देना चाहा है। पृथुसेन, रुद्रवीर और स्थविर चीबुक दूसरे पक्ष की विचार-धारा को प्रकट करने के साधन हैं। इस उपन्यास का प्रतिपाद्य यह भी है कि समाज और व्यक्तियों की नैतिकता, भौतिक और आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम होती है। 'दिव्या' बिना रुके १५ दिन में रफ़ लिख ली थी और १५ दिन में उसे 'रीराइट' किया। इसी प्रकार मेरे नये अप्रकाशित उपन्यास 'नालन्दा' में इस बात की चर्चा का प्रयत्न है कि हम मुसलमानी आक्रमणकारियों से क्यों हारे ? मेरे विचार में हिन्दू-समाज का व्यक्तिवादी और आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही उत्तरदायी है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी लेखक की कोई कहानी पढ़ी और देखा कि वह कुछ व्यक्त करता चाहता है परन्तु ठीक से व्यक्त नहीं कर पाता, तो मैं उसी विषय पर कहानी लिखने का प्रयत्न करता हूं। कभी-कभी उस कहानी के 'आइडिया' से मिलता-जुलता 'आइडिया' सूझ जाता है, तब भी मैं कहानी लिखता हूं। पहले विषय चुनता हूं और विषय के अनुरूप कथानक, और कथानक की घटनाओं के अनुरूप पात्रों की कल्पना करता हूँ।

कहानी लिखने की प्रेरणा के लिए मुख्य स्रोत समाज के प्रति मेरा देय है। समाज का अंग होने के नाते अपने जीवन में या अपने आस-पास मैं जो अन्तर्विरोध देख पाता हूँ उसकी ओर विद्रूपमय लक्ष्य करने के लिए लिखता हूँ। कुछ हद तक मेरी चित्रकारी कर सकने की अतृप्त प्रवृत्ति का भी इसमें सहयोग है। कोई मार्मिक घटना या अभिव्यक्ति देख-सुन पाता हूँ, तो उसे शब्दों में चित्रित करने का यत्न करता हूँ। लिखते समय मैं सूत्र टूटने की कठिनाई अनुभव नहीं करता। अब मैं डिक्टेट कराना ज्यादा पसन्द करता हूँ। कहानी की सफलता मैं कथानक को विश्वास-योग्य बना देने में समझता हूँ। मैं मानता हूँ कि बिना देखे भी केवल पुस्तकों के आधार पर भौगोलिक परिस्थिति का विवरण दिया जा सकता है। 'दिव्या' और 'देशद्रोही' में जिन परिस्थितियों का चित्रण है वे इतिहास की पुस्तकों, एन्साइक्लोपिडिया तथा पठानों से बातचीत करके ही मैंने दी हैं। लिखने के लिए अच्छा फाउण्टेन पैन जरूरी है। कागज भी ऐसा तो होना ही चाहिए, जिस पर स्याही न फैले। बीच-बीच में सिगरेट-सिगार पीता जाता हूं। मैं पौधों का शौकीन हूँ, इसलिए थोड़ी देर लिखकर गमलों में चक्कर भी लगा लेता हूँ। लिखने के लिए टेबुल होना चाहिए, क्योंकि बिना उसके मैं पीठ में कष्ट अनुभव करके लिख नहीं सकता। लिखने के लिए कोई समय निश्चित नहीं है। ज़रूरत होने पर ही लिखता हूँ। लिखने से पहले सुस्ती दूर करने के लिए पढ़ता हूँ। आजकल रात में देर तक नहीं जागता। हाँ, कभी कभी ऐसा जरूर होता है कि रात को ९-१० बजे लिखने बैठता हूँ और ५ बजे तक लिखता हूँ। ऐसा जब कभी होता है तो मुझे रात में लगभग १ बजे के भूख लगती है। मेरी पत्नी इसके लिए चाय का सामान, स्टोव तथा कुछ खाने की चीज़ रख देती हैं, ताकि मुझे बिना किसी को जगाये क्षुधा शान्त करने की सुविधा रहे।"

हॉबी की बात चलने पर उन्होंने बताया, "पहले मुझे चित्रकारी का बड़ा शौक था, पर अब नहीं है। जेल में मैंने इसके लिए झगड़ा करके विशेष आज्ञा ले ली थी। आज्ञा इस शर्त पर मिली थी कि चित्र बना कर नहीं भेज सकता। उन्हें शायद आशंका थी कि मैं जेल का नक्शा बना कर बाहर भेज दूंगा और भागने की व्यवस्था कर लूँगा। चित्र मैं केवल भावात्मक और कल्पना से ही बनाता था। कभी प्राकृतिक दृश्य का अंकन (लेण्ड स्केप) नहीं किया। मेरे बनाये दो चित्र श्री रायकृष्णदास जी विशेष पसन्द आ जाने के कारण भारत-कला-भवन, काशी के संग्रहालय के लिए ले गए हैं। कुछ मित्रों ने झपट लिये। अब दो-तीन रह गए हैं। अब समय नहीं मिलता।

"दूसरी रुचि है पेड़-पौधे या फूल लगाने की। मकान में कच्ची जमीन नहीं है। गमलों में ही विचित्र पौधे इकट्ठे करता हूं। यहाँ तक कि कमरों में भी रखे रहता हूं। कमरे में एक-आध क्रोटन या पाम न हो तो मुझे सूना-सूना लगता है। अब तो मकान बहुत छोटा नहीं है, लेकिन जब जेल से छूटा था तो बहुत छोटे मकान में रहता था, वहाँ भी पेड़ भर लिये थे। जेल में भी इस काम में समय काटता था। लगेगा तो विचित्र, पर कुत्तों का भी शौक है। अब इसलिए नहीं पालता कि पिछले कुत्ते को कैंसर हो जाने के कारण स्वयं ज़हर खिलवा देना पड़ा था। उससे बीमारी फैलने की आशंका थी। यों मैं बहुत सख्त मिज़ाज आदमी समझा जाता हूं। अपने हाथों भी लोगों को गोली मार चुका हूं लेकिन उस कुत्ते को ज़हर दिलवाते समय उसके विश्वासपूर्वक खा जाने पर, आँखों में आँसू आ गए और अब फिर कुत्ता पालने की बात से उसकी याद आ जाती है। उसका नाम था 'बनी' और वह जात का था स्पेनियल। संगीत का ज्ञान नहीं है, पर सुनना पसन्द करता हूं। खाना खाने के बाद पक्का गाना सुनने में आनन्द आता है। यात्रा करने का मैं शौकीन हूँ। वैसे भी मैं बराबर घूमने जाता हूं। पहले उपन्यास, कहानी, यात्राओं और जीवनियों के पढ़ने का शौक था पर अब सैद्धान्तिक चीजें ही पढ़ने की रुचि है।"

थोड़ी देर रुक कर वे अपने स्वभाव के विषय में बोले, "मैं स्वभाव से समाज का असन्तुष्ट और सचेत अंग हूं। एक विरोधाभास है कि मैं साधन-हीन गरीब की वकालत करता हूं और वेश-भूषा, रहन-सहन में आई० सी० एस० या ऊँचे व्यापारी वर्ग का-सा व्यवहार करता हूँ। कुछ लोग जानते हैं कि जैसे सूट-बूट पहन कर मैं रहता हूं, हिन्दी-कलाकारों में शायद बच्चन के अतिरिक्त दूसरा नहीं रहता।

मेरे इस व्यवहार की मनोवृत्ति का आधार यह है कि मैं अपने आपको अब भी साधन-हीन श्रेणी का अंग समझता हूं और जीवन की सुविधा और शौक में विशेष अवसर और अधिकार-प्राप्त श्रेणी के कन्धे-से-कन्धा लगाकर अपनी दीनता का विरोध करना चाहता हूं। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि साधन-हीन श्रेणी को साधनों, सुविधा और शौक के बिना ही सन्तुष्ट बना रहना चाहिए। मेरे कपड़ों और खर्च करने के ढंग से अनेक लोगों को भ्रम हो जाता है कि मेरे बैंक-अकाउन्ट में एक लाख से क्या कम होगा? असल बात यह है कि बैंक की किताब में एक के अंक के आगे दो शून्य से अधिक कभी नहीं बढ़ पाते। दो-तीन बार तो बैंक शिकायत कर चुका है कि हिसाब कुछ रहता भी है?"

जब मैंने उनसे यह पूछा कि आपको अब तक की लिखी किन कृतियों से सन्तोष हुआ है ? तो उन्होंने कहा—"यह कहना बहुत मुश्किल है, फिर भी कहानियों की दृष्टि से 'उत्तराधिकारी' की कहानियाँ श्रेष्ठ हैं। क्योंकि इस समय तक यह मेरा अन्तिम संग्रह है। इसके बाद जो संग्रह प्रकाशित होगा, समय आने पर उसे बेहतर समझूँगा। उपन्यासों में 'दिव्या', 'देशद्रोही, 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड' और 'मनुष्य के रूप' सभी कुछ लिख कर मुझे संतोष मिला है। मेरी आदत है कि जिसे लिख कर मुझे सन्तोष नहीं मिलता, उसे मैं प्रकाशित नहीं कराता। 'राजेश्वरी' मेरा ऐसा ही उपन्यास है। उसे मै अभी दुबारा लिखूंगा।"

इधर यशपाल जी की कुछ कहानियों और उपन्यासों को लेकर न केवल प्रतिगामियों बल्कि प्रगतिवादियों में भी इस बात की चर्चा रही है कि वे अश्लीलता की ओर झुक रहे हैं। मेरे कानों में भी यह आवाज गूँजती रही है, यशपाल जी से मिलने का अवसर पाकर वह बाहर आना चाहती थी, इसलिए मैंने उनसे प्रश्न किया—"आपके ऊपर आज अश्लीलता का तथा पथ-भ्रष्टता का जो आरोप लगाया जाता है उससे आप कहाँ तक सहमत हैं ?"

उन्होंने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"मैंने कभी अश्लीलता को रुचि से नहीं अपनाया। मैं 'सैक्स' को विरोधाभास दिखाने का साधन बनाता हूं, जिसे न समझने के कारण कुछ लोग अश्लील कहते हैं। देखने की बात यह है कि उससे पाठक पर क्या प्रभाव पड़ता है? वह कहाँ पहुँचता है? जो लोग मेरे 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड' व 'देशद्रोही' पढ़कर कम्युनिस्ट बने हैं, वे ही आज मेरे ऊपर लांछन लगाते हैं कि मैं कम्युनिस्टों पर अनाचार का आरोप करता हूं। यदि मेरी पुस्तक का ऐसा प्रभाव होता तो वे इन पुस्तकों से कम्युनिस्ट-विचारों की ओर कैसे आकृष्ट होते ! इस तरह की बातों से मुझे तुर्गनेव के उपन्यास 'पिता और पुत्र' की बात याद आती है। इस पुस्तक में तत्कालीन क्रांतिकारियों की प्रवृत्तियों का चित्रण तुर्गनेव ने किया है। उस समय के अनेक क्रांतिकारियों ने इस पुस्तक को अपने ऊपर लांछन समझा, परन्तु पचास वर्ष बाद पुस्तक को क्रांतिकारी भावना के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और विकास का सबसे उत्कृष्ट चित्रण माना जाने लगा। मैं अपने उपन्यासों के उचित मूल्यांकन के लिए प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हूँ। (यशपाल ने हँसकर कहा) कम्युनिस्ट बन जाने के बाद अनेक व्यक्ति कम्युनिस्टों का चित्रण कम्युनिस्टों के आदर्श व्यक्ति के रूप में ही देखना चाहते हैं। वे यह भूल जाते है कि मैं पूंजीवादी समाज के मध्य वर्ग में पनपे व्यक्तियों का चित्रण कर रहा हूँ, जो बौद्धिक रूप से कम्युनिस्ट विचारधारा को ग्रहण करते हैं, परन्तु पूंजीवादी समाज के मध्यवर्ग की अनेक प्रवृत्तियाँ संस्कारों और अभ्यासों के रूप में लिये रहते हैं। स्वाभाविक कमज़ोरियों के बावजूद मेरे पात्र आदर्श के लिए लड़ते हैं। सैक्स समाज की असंगतियों को दिखाने का साधन है, लक्ष्य नहीं। 'धर्म-रक्षा' और ऐसी ही कुछ कहानियों में मैंने मिथ्या विश्वास पर जमी नैतिकता का खोखलापन दिखाने का यत्न किया है । न समझने वालों को यह अवश्य खलता है।"

यौन-प्रसंग की अधिकता पर खीझने वालों को लक्ष्य करके उन्होंने कहा–"मेरी रचनाओं में यौन-प्रसंग अधिक हैं, इसका प्रमाण अधिकांश पाठकों की सम्मति ही तो है। परन्तु हमारे समाज के अधिकांश पाठक स्वयं यौनाक्रांत—सेक्स रिडेन—हैं। जहां यौन साधारण स्थिति या अनुपात में है,

उन्हें अधिक दिखाई दे सकता है और जहाँ नहीं है, वहाँ भी दिखाई दे सकता है। बात उदाहरण से ही अधिक सुलझती है।" यह कहकर उन्होंने एक साहित्य गोष्ठी का उल्लेख करते हुए कहा—

"एक साहित्यिक गोष्ठी में मेरी रचनाओं पर बातचीत करने के लिए मुझे निमंत्रित किया गया था। पहला प्रश्न यही किया गया कि मैंने अपने उपन्यास 'दादा कामरेड' में नायक हरीश द्वारा नायिका को नग्न देखने की इच्छा क्यों प्रकट की है? क्या यह स्वभाविक और उचित है?

"अवसरवश उस गोष्ठी में भिक्षु आनन्द जी भी उपस्थित थे। वे मुझसे पहले बोल उठे—'यदि यशपाल को आपत्ति न हो तो इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर मैं देना चाहता हूँ। यशपाल अपना उत्तर विस्तार पूर्वक दे सकते हैं। सन्यासी होने के नाते उपन्यास मेरा विषय नहीं है, परन्तु यशपाल के सभी उपन्यास मैंने पढ़े हैं, क्योंकि मुझे वे केवल विनोद का साधन नहीं, समस्यामूलक जान पड़ते हैं। 'दादा कामरेड' भी दो तीन बार पढ़ा है। उपन्यास को पढ़कर मेरे सामने कई प्रश्न उठे। उदाहरणतः सांप्रदायिक मतभेद होने पर रावर्ट और फ़्लोरा में से कौन अधिक नैतिक रहा? सांप्रदायिक असहिष्णुता अधिक नैतिकता है या सांप्रदायिकता की अपेक्षा सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास रखने वाले साथियों से नायक का पृथक् हो जाना उसके नैतिक बल का प्रमाण है या कायरता? राजनैतिक उद्देश्य से डकैती नैतिक है या अनैतिक? शैल का नैतिक कर्तव्य पिता की आशाएँ पूरी करना है या अपने सखा की, अथवा अपने राजनैतिक दल की। शैल ने एक बार गर्भ-पात करके अपने सामाजिक सम्मान की रक्षा की, दूसरी बार समाज की दृष्टि में अनधिकारी गर्भ को लेकर वह सिर ऊँचा करके खड़ी हो गई, यह उसका नैतिक पतन था या साहस? हरीश ने शैल को नग्न देखने की इच्छा प्रकट की, यह क्या क्रान्तिकारी के संयम के अनुकूल है?' आनन्द जी ने पूछा, 'इन सात प्रश्नों में से आपके सामने केवल यह अन्तिम प्रश्न ही क्यों उठता है। मुझे जान पड़ता है, आपका मस्तिष्क यौनाक्रान्त है, यदि मैं अधिकांश पाठकों के लिए ऐसी ही बात कहूँ तो क्या अनुचित या अयथार्थ होगा?"

"यह तो ठीक, लेकिन आप परम्परागत मान्यताओं से विद्रोह क्यों करते हैं?" मैंने कहा।

वे बोले—"एक आलोचक के रूप में जब मैं सोचता हूँ कि यशपाल परम्परागत मान्यताओं से विद्रोह क्यों करता है, तो उत्तर मिलता है कि यशपाल ऐसे समाज का अङ्ग है, जिसकी भौतिक परिस्थितियाँ, बाहरी प्रभावों से असाधारण तेजी से बदल रही हैं। हमारा समाज भौतिक अनुभव की कसौटी की उपेक्षा न कर सकने के कारण जीवन के भौतिक, आर्थिक परिवर्तनों को तो स्वीकार करता जा रहा है, परन्तु परम्परागत मानसिक अभ्यासों को, जिन्हें हम आदर्शों के रूप में पोसते आये हैं, उसी गति से नहीं बदल पा रहा। विपरीत इसके, समाज में ऐसी भी भावना दिखाई देती है कि हमारा भावी जीवन परम्परागत आदर्शों के अनुसार ढलना चाहिए, वर्ना हमारा समाज ह्रास की ओर जाने लगेगा"

आलोचक के रूप में मैं देखता हूँ कि यशपाल का उपर्युक्त धारणा से मौलिक भेद है। भेद की जड़ यह है कि यशपाल विचारों को समाज के जीवन-पथ का निर्देशक नहीं मानता। वह मानता है कि समाज का जीवन समाज के विचारों को ढाल देता है। विचारों का प्रयोजन है, समाज द्वारा स्वीकृत जीवन के क्रम को व्यवस्था और संयम में रखना। यशपाल जब समाज में होने वाले भौतिक, आर्थिक परिवर्तनों

को परम्परागत विचारों द्वारा बाधित पाता है तो परम्परागत मान्यताओं से विद्रोह करके नई मान्यताओं की मांग पेश करता है, जिनका सामाजिक आवश्यकताओं से समन्वय हो सके।

यशपाल का माध्यम प्रधानतः कहानी है इसलिए वह सामाजिक धारणाओं को घटनाओं के रूप में चित्रित करके सामाजिक जीवन के व्यवहार और परम्परागत मान्यता में विरोध की ओर संकेत करता है। साधारणतः यही बात उसकी सभी रचनाओं की प्रेरणा है।

कहानी के माध्यम से यशपाल सामाजिक समस्या के इस पहलू पर ही क्यों जोर देता है, इसका कारण उसके व्यक्तित्व के पनपने में पड़े प्रभावों में भी खोजा जा सकता है। पहली बात तो यह है कि वह एक उखड़े हुए निम्न मध्यवर्गीय परिवार की परिस्थितियों में पला है। उखड़े हुए परिवार के सामने समाज की परम्परागत मन्यताएँ तो रहती हैं परन्तु उन मान्यताओं के अनुसार सुव्यवस्थित और सन्तुष्ट जीवन-निर्वाह की सुविधाएँ नहीं रहतीं। ऐसा परिवार अपने व्यवहार और महत्त्वाकांक्षाओं के खोखलेपन को अनुभव करता रहता है।

उखड़े हुए निम्न मध्यवर्गीय परिवार की सन्तान सामाजिक जीवन के अन्तर्विरोधों को कैसे पग-पग पर देख सकती है, यह बात यशपाल के संस्मरणों (सिंहावलोकन) की कुछ मोटी-मोटी रेखाओं से झलक जाती है। परिवार की आर्थिक परिस्थितियों से मजबूर होकर भी विकास की महत्त्वाकांक्षा को छोड़ न देने से परिवार का बोझ पिता के कंधों से हटकर माता के कंधों पर आ जाना, यशपाल का बचपन में ही रूढ़िवाद-विरोधी तत्कालीन आर्यसमाजी प्रभाव में रहना, किशोरावस्था में एक दूसरे प्रकार के रूढ़िवाद यानी गुरुकुल में वैदिक धर्म की शिक्षा पाना और फिर सहसा लाहौर के वातावरण में शिक्षा पाना, यशपाल के पंजाब में आ गए, अपेक्षाकृत आधुनिक भावना अपनाये परिवार, और उसके सुदूर काँगड़ा की पहाड़ी घाटी में परिचित सम्बन्धियों के जीवन और विचारों की भिन्नताएँ ऐसी अवस्था में उसके सामने भौतिक जीवन की कसौटी के अतिरिक्त विश्वास-योग्य पथ-निर्देशक और कौन चीज रह सकती थी, इस प्रवृत्ति के कारण कांग्रेस के मार्ग से देश का काम करने का व्रत ले, जब अनुभव की कसौटी पर वह सार्थक न जँचीं, उसने बम और तमंचा लेकर सशस्त्र क्रांति के प्रयत्न में जान को जोखिम में डाल दिया। बात समझ में आ जाने पर वह बात को अधूरी नहीं रखना चाहता, क्योंकि उखड़े हुए परिवार की मौलिक प्रवृत्ति उसके स्वभाव और व्यवहार की नींव बन गई है, जिसे कहते हैं, 'गँवाने के लिए अपने दारिद्रय के अतिरिक्त कुछ है नहीं, पाने को अनेक आशाएँ।'

इसके बाद साहित्य से जीविकोपार्जन पर बात चली तो कहने लगे, "कठिनाई होती है। इसके लिए यदि अधिक लिखा जाय तो लेखक की रचनाएँ 'जर्नलिस्टिक' हो जायँगी। प्रायः पत्रों से पारिश्रमिक २० रुपये से ज्यादा नहीं मिलता। यद्यपि मैं कहानी के लिए ५०-६० रुपये से कम नहीं लेता। मेरा अपना प्रकाशन है, शायद इसलिए बिक्री से काम चल जाता है। साधारणतः हिन्दी में निर्वाह होना कठिन है।"

मैं बराबर देख रहा था कि श्रीमती प्रकाशवती अपने ऑफिस में व्यस्त थीं और इधर हम लोगों के लिए चाय आदि भिजवाने का भी ध्यान रख रही थीं। यशपाल जी कोई पुस्तक या फाइल माँगनी होती तो उन्हीं से कहते। यह सब देखकर मैंने यशपाल जी से कहा—"मुझे लगता है कि आपके निर्माण में पत्नी का बड़ा हाथ है?"

यशपाल बोले, "इसमें सन्देह की गुञ्जाइश नहीं कि मेरे लिए सुविधा से लिख सकने की परिस्थितियों का बहुत-सा श्रेय प्रकाशवती जी को है, नहीं तो सम्भवतः मेरा बहुत सा समय श्रौर शक्ति प्रकाशक ढूँढ़ने श्रौर रायल्टी के लिए प्रकाशकों के दरवाजे के चक्कर लगाते रहने में ही व्यय हो जाते। 'विप्लव' को सफल बनाने के लिए इन्होंने जो यात्रा की थी वह तो मैं बता ही चुका हूं। श्रब भी श्रस्वास्थ्य या भीड़-भड़क्के के कारण लिखने में श्रसुविधा श्रनुभव करता हूं तो पहाड़ चला जाता हूं। तीन-चार महीने पहाड़ पर ही रह श्राता हूं। इस बीच प्रेस, प्रकाशन श्रौर बिक्री का सब काम प्रकाशवती ही सँभालती हैं। श्राज भी प्रबन्ध इन्हींके हाथ में है। ये प्रथम श्रेणी की श्रालोचिका हैं। बड़ी गहराई से किसी चीज को देखती हैं। मैं उनके निर्णय पर भरोसा भी बहुत करता हूं। पढ़ने का इन्हें खूब शौक है, पर समयाभाव से पढ़ कम पाती हैं। साहित्यिक होने पर भी लिखतीं कभी नहीं। यह श्रच्छा ही है, दोनों लिखते तो काम नहीं चल सकता था। जब वह प्रेस श्रौर प्रकाशन सँभालती हैं, मेरा कर्म केवल लिखना है। इसी कारण मैं निश्चिन्त होकर निरन्तर लिखता चला जा रहा हूँ।"

मैंने उनका पर्याप्त समय ले लिया था श्रौर श्रावश्यक बातें भी कर चुका था। यों उनसे बातें करते हुए कोई श्रादमी ऊब नहीं सकता, पर श्रपने श्रौर उनके समय का ध्यान रखकर बिदा लेना ही उचित समझा।

यशपाल जी की गिनती मैं उन लेखकों में करता हूँ जो हिन्दी की ख्याति को प्रेमचन्द जी के बाद श्रागे बढ़ाने में समर्थ हुए हैं। उनके लेखन का श्रपना ढंग है। वे विदेशी क्रांतिकारी लेखकों की परम्परा के भीतर श्रग्रदूत हैं श्रौर उनके दृष्टिकोण की व्यापकता तथा श्रनुभूति की सचाई बड़े-बड़े लेखकों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है।

श्रागरा — पद्म सिंह शर्मा कमलेश

मेरी दृष्टि में यशपाल

किसी अपने व्यक्ति के सम्बंध में सही-सही और न्याय की बात कह पाना बड़ा कठिन है। यहां या तो मनुष्य उस व्यक्ति में गुण और दोष जैसी कोई वस्तु अलग-अलग करके देखता ही नहीं और या देखते-देखते उनके साथ इतना हिल-मिल जाता है कि उसमें फिर छान-बीन की उसे कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। यही प्रश्न आज यशपाल को लेकर मेरे सम्मुख प्रस्तुत है।

आज से २० या ३० वर्ष पूर्व यदि मैं यशपाल के सम्बंध में कुछ लिखती तो सम्भव था इनके राजनैतिक जीवन की कुछ ओजपूर्ण घटनाओं को लेकर बहुत सी बातें लिख देती। इसके बाद इनका सहित्यिक जीवन आरम्भ होता है। आज का यशपाल साहित्यकार है, सजीव कलाकार है, जिसे सम्मानित करने का यह आयोजन हो रहा है। यशपाल की सराहना और प्रशंसा में यह अवसर बहुत कुछ कहने का है किन्तु मेरी उलझन तो यह है कि मैं कहूँ तो क्या कहूँ ? मेरे सम्मुख तो यशपाल केवल यशपाल ही है। जिस दृष्टि से इनके प्रशंसक और अनुयायी इन्हें देखते हैं, मेरे लिये वह सम्भव ही नहीं। इसलिये इनके सार्वजनिक कार्यों का ब्योरा मैं कुछ नहीं दे रही।

३२ वर्ष का परिचय दुःख-सुख और अँधेरे-उजाले का मेल-जोल क्या आज मुझसे यशपाल की प्रशंसा करा सकता है ? और ऐसा करना भी तो मानो आपस के नैकट्य को कुछ हल्का-सा बनाता है। यशपाल के बाहरी बड़प्पन को मैं वह स्थान दे ही नहीं सकती जो और लोग देते हैं किन्तु मैं इनके व्यक्तित्व को बहुत कुछ समझती हूँ—औरों की अपेक्षा अधिक—और मैं उस व्यक्तित्व का आदर करती हूं।

यशपाल के राजनैतिक साहस, इनकी रचनाओं और इनकी विचार-धारा की सराहना करना मेरा काम नहीं।

इनकी ऐसी किसी असाधारण प्रतिभा की अनुभूति से प्रभावित हो कर मैंने इनसे परिचय प्राप्त नहीं किया था। मैंने इनके अल्हड़ दिनों के आरम्भिक, भावुक और छायावादी लेख भी पढ़े हैं और आज की तर्क-संगत ठोस रचनाएँ भी। जो मनुष्य 'दिव्या' जैसे ऐतिहासिक उपन्यास की रचना इतने सम्पूर्ण और अलंकृत रूप में, अपने नित्य के सिगरेट और सिगार के धुआँधार और सर गर्म वातावरण में बैठकर इतने तटस्थ और कर्मठ रूप से कर सकता है, वह निश्चय ही साधारण क्षमता का व्यक्ति नहीं। फिर भी, इस विषय में मनुष्य की कसौटी या उसकी परख के लिये मेरा दृष्टिकोण भिन्न है। मैं आदर करती हूँ उस व्यक्ति का, जिसने जीवन के संघर्षों को अपना अनुयायी बनाकर चलना सीखा है; जो जीवन के प्रतिकूल

प्रवाहों और प्रपातों में अविचलित रूप से चलना और उनमें घुस कर तैरना और पार होना जानता है। मैं उसे ही ऊँचे दर्जे का मनुष्य और कलाकार मानती हूँ, जो निर्भीक भाव से खड़ा होकर संसार को निरंतर के हाहाकार और निराशा से बचाता है। किसी उमड़े हुए जन-प्रवाह का नेता, कोई व्यक्ति विशेष अथवा ऊँचा आदर्शवादी हो सकता है किन्तु यह प्रवाह और आदर्श दोनों ही क्षणिक होते हैं।

यशपाल के जीवन में त्याग और तपस्या जैसा कोई आडम्बर नहीं। वह संसार के आकर्षणों का भी यथोचित आदर करते हैं किन्तु केवल भ्रम और भूल से ही परिस्थितियों के उपासक अथवा दास नहीं। इनका व्यक्तित्व जहाँ तक मैं समझ पाई हूँ वास्तविक ज्ञान से पूर्ण एक सांसारिक कर्मयोगी का है। व्यर्थ की आदर्श-पूर्ण बातों और बाहरी विडम्बनाओं से दूर, ऐसा व्यक्ति स्वयं अपने पथ का अभिभावक होता है। इनके विचार सुलझे हुए, स्पष्ट और स्वतंत्र हैं। यशपाल की रचनाएँ कवि की कोमल कल्पनाओं का मधुर और मादक झोंका नहीं बल्कि मानव की पीड़ा छू पाने का इनका यह सजग और सफल प्रयास है। देश की दरिद्रता और समाज के कोढ़ को मिटाने के लिए ये हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। इस क्षेत्र में ये ठोस वास्तविकता को ही मान्यता देते हैं। स्वभाव और व्यवहार से तो यशपाल देश के किसान और मज़दूर वर्ग के नेता होने योग्य नहीं किन्तु विचारों और विश्वासों में यह उसी वर्ग का युग-परिवर्तन चाहते हैं। इससे भी अधिक यह कहना ठीक होगा कि यशपाल समाज के उस अंग के पथ-प्रदर्शक हैं, जो अपनी अर्धचेतना के कारण अधिक अव्यवस्थित और भ्रष्ट है। यह वह मध्यम वर्ग है, जो तन न ढक पाने पर लज्जा अनुभव करता है और जो भूखा रह कर भरे पेट का राग गाता है।

यशपाल के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण वह सापेक्ष अथवा निरपेक्ष रूप से संसार को रहने-योग्य सुन्दर बनाने में योग देती हैं। मनुष्य के आदर्श और जीवन की वास्तविकता का यहाँ एक अनूठा समझौता है।

यशपाल स्वभाव से विनोद-प्रिय भी हैं और कटुभाषी भी। इसे इनका 'पहाड़ी खरापन' कहा जा सकता है। आराम की सभी वस्तुएँ जुटाने में इन्हें विशेष रुचि है किन्तु आराम—जिसे आराम कहा जाता है—वह इनके भाग्य में नहीं। इनके काम का कोई निश्चित समय नहीं। किसी भी घड़ी यह अपनी कलम घिसते पाये जाते हैं। आसानी से इन्हें 'ओवर टाइम' काम करने वाला मज़दूर कहा जा सकता है। ये परिश्रम से नहीं थकते। यदि कोई कार्य अनिच्छा से इन्हें करना पड़े तो इनका मुँह सूख जाता है, दुनियादारी और व्यावहारिकता के नाते यदि कभी कहीं जा फँसे तो वहाँ इनका दम घुटने लगता है। स्वभाव में अधिक नरमी नहीं किन्तु अनावश्यक गर्मी भी नहीं। किसी भी बात पर तर्क इन्हें सर्वमान्य है। छोटी से छोटी वस्तु को भी, उसी क्षण अपने लिए प्राप्त कर लेने की तत्परता और बचपन भी इनमें हैं और बड़ी से बड़ी वस्तु अथवा बहुत ही प्रिय वस्तु से, आवश्यकता पड़ने पर, क्षण भर में विमुख हो जाना भी इनके लिए साधारण बात है। इनके जीवन में आसक्ति, अनुरक्ति और शक्ति का विरक्ति के साथ अद्भुत संगम अथवा समन्वय है।

दुर्गा देवी बोहरा

लखनऊ

श्री यशपाल का प्रगतिशील व्यक्तित्व

मैने अपने एक मित्र से, जो हाल ही में गुरुकुल से शिक्षा समाप्त कर लौटे थे, पूछा—"गुरुकुल के स्नातक जब वहाँ से निकल कर आते हैं तो दुनियादारी में बिलकुल कोरे होते हैं। लेकिन कुछ ही महीनों में वे दुनियादारी की इतनी बातें सीख जाते हैं कि बड़े-बड़े दुनियादारों के कान कुतरने लगते हैं! इसका क्या कारण है?"

उस मित्र ने उत्तर दिया, "असल में बात यह है कि जब वे गुरकुल से बाहर आते हैं तो उनका पेट बिलकुल खाली होता है, इसलिये यहाँ आने पर उन्हें जो कुछ भी मिलता है, उसे तुरन्त पचा जाते हैं।"

यह उदाहरण इसलिये अप्रासांगिक नहीं क्योंकि यशपाल का पहला जीवन भी गुरुकुल में ही बीता और वहाँ से बाहिर आते ही उन्होंने कई क्षेत्रों में क्रांतियाँ पैदा कर दीं जो बहुत हद तक, उनके इसी प्रकार के व्यक्तित्व की देन कही जा सकती हैं।

यों किसी के व्यक्तित्व पर कुछ कहना उस समय तक कठिन है जब तक कि उस व्यक्ति से कोई निकट सम्पर्क न रहा हो; लेकिन स्वयं श्री यशपाल ने भी भारत के एक कोने में बैठकर, सुदूर देश-विदेशों की, वज़ीरी, अफ़गान, रूसी आदि कई अनदेखी जातियों और वहाँ के निवासियों का सामूहिक और वैयक्तिक चित्रण किया है ही; तब आपने साहित्य द्वारा जाने-पहिचाने श्री यशपाल जैसे महान लेखक के व्यक्तित्व-चित्रण का, अध्ययन पर आधारित यह प्रयास संभवतः अनुपयुक्त न होगा।

सामान्यतः श्री यशपाल का व्यक्तित्व अपने में एक असाधारणता या जटिलता लिये है। उन पर कई प्रकार के साये पड़े हैं। एक ओर गुरुकुल के शान्त जीवन की छाया है तो दूसरी ओर रहस्य-रोमांच-पूर्ण क्रांतिमार्ग और उनके साहित्यक व्यक्तित्व पर उसका स्थायी प्रभाव। जीवन की इसी बहुरूपता के कारण आलोचकों ने उन्हें कई दृष्टियों से देखा है। उनका व्यक्तित्व राजनैतिक क्रान्तिकारी के रूप में आरम्भ हुआ जिसमें उन्होंने सामाजिक और साहित्यिक क्रान्ति को जन्म दिया। दूसरे शब्दों में उनके जीवन का लक्ष्य ही क्रान्ति रहा है!

आज श्री यशपाल कट्टर मार्क्सवादी हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा, इसी विचारधारा को लक्ष्य

बना कर लिखा। उनके समूचे साहित्य उपन्यास, कहानी और निबंध में मार्क्सवाद की ही प्राणप्रतिष्ठा की गई है।

गांधीवाद की उन्होंने कटु आलोचना की है। "गांधीवाद की शवपरीक्षा" उनकी एक विशेष कृति है। 'मार्क्सवाद' में उन्होंने अपने सिद्धांनों को हिंदी-भाषी जनता के सामने बड़े सरल और रोचक ढंग से रखा है।

राजनीति और समाज में उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को छोड़ साहित्य-पक्ष को लें तो यहाँ भी उन्होंने हमें एक क्रान्तिकारी के रूप में ही दर्शन दिए। तब उनकी रचनाओं में उग्रता अधिक थी! वह प्रगतिशील लेखक के रूप में हमारे सामने आए। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने यह अनुभव किया कि केवल यथार्थवाद को महत्त्व देने से ही समाज को लाभ कम और हानि अधिक हो सकती है इसलिए उन्होंने आदर्शवाद के महत्त्व को भी पहचाना और उनकी रचनाओं में उत्तरोत्तर इस प्रकार की प्रगति देखी गई।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में दो प्रगतिवादी लेखकों को आलोचकों के कटु कटाक्षों का शिकार होना पड़ा। पहले हैं श्री राहुल सांकृत्यायन और दूसरे श्री यशपाल हैं। राहुल जी ने अपनी विदेश-यात्रा के अनुभव और शास्त्रीय परिशीलन के आधार पर प्रगतिवाद के क्षेत्र में पग रखा था और श्री यशपाल ने अपने राजनैतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के आधार पर। जीवन के कटु अनुभवों के कारण उन्होंने अपने समाज तथा संस्कृति से भी विद्रोह कर दिया। गांधीवाद की वात जाने दीजिए। उन्होंने अपने प्राचीन साहित्य के अध्ययन के आधार पर कुछ ऐसी चीज़ें समाज के सामने रखीं जो आलोचकों ने सहन न कीं। विश्व के किसी भी भाग में सदा सभी देवता ही पैदा नहीं हुए। थोड़े से पथभ्रष्ट लोगों को लेकर उनका नग्न चरित्र समाज के सामने रखना हमें सह्य नहीं। यद्यपि श्री यशपाल को आलोचकों की आलोचना का शिकार होना पड़ा लेकिन उन्होंने कभी किसी बात को छिपाने का यत्न नहीं किया भले ही इसे कोई उनका दोष समझे या गुण। जिन क्रान्तिकारियों ने उनके दल से द्रोह किया, उन्हें भी उन्होंने आड़े हाथों लिया लेकिन उनका नामोलेल्ख करने में उन्हें संकोच ही करना पड़ा।

[देखिए 'सिंहावलोकन' भाग ३

गुरुकुल से आने के बाद श्री यशपाल नेशनल कालेज में रहे। वहाँ उनका सम्पर्क भगत सिंह आदि क्रान्तिकारियों से हुआ। यहीं से उनका राजनैतिक जीवन आरम्भ हुआ और वह हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ के सम्पर्क में आए। इस संस्था ने अपने घोषणा पत्र 'बम का दर्शन' में अपना लक्ष्य यों स्पष्ट किया था—"...क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार में संघर्ष ही नहीं है। हमारी क्रान्ति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण व्यवस्था है। इस क्रान्ति का उद्देश्य पूंजीवाद को समाप्त करके श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना और विदेशी तथा देशी शोषण से जनता को मुक्त करके आत्मनिर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषकों के हाथ से शासन-शक्ति लेकर मज़दूर श्रेणी के शासन की स्थापना ही है।"

अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आज जनकल्याण के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किया है, उसका उक्त घोषणापत्र से विशेष अन्तर नहीं है। इस विचारधारा के पोषक श्री यशपाल ने यदि गांधीवाद का

खंडन करके मार्क्सवाद का पोषण किया तो इसमें हमें कोई अन्तर नहीं करना चाहिए। मार्क्सवादी जिन उपायों से सामाजिक क्रान्ति लाना चाहते हैं, गांधीवादी इसे स्वीकार नहीं करते। लेकिन 'पंचशील' के सिद्धान्तों की विद्यमानता में मार्क्सवाद और गांधीवाद के लिए सह-अस्तित्व का अवसर मौजूद है। श्री यशपाल द्वारा गांधीवाद का विरोध किये जाने के बावजूद हम श्री यशपाल में एक महान व्यक्ति और साहित्यकार के दर्शन पाते हैं। लेखक के लिए क्रान्तिकारी होना आवश्यक ही है। समाज यदि उसे उपयुक्त समझता है तो उसके सिद्धातों को अपना लेता है। आज भी श्री यशपाल का व्यक्तित्व इसी लक्ष्य को लेकर प्रगतिशील है।

सुदर्शन

जालन्धर
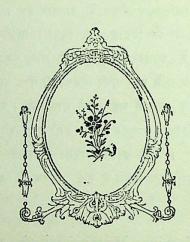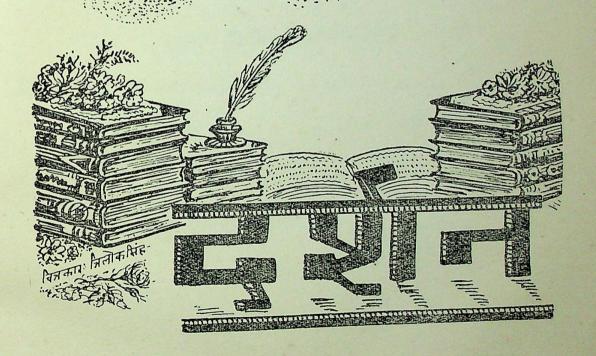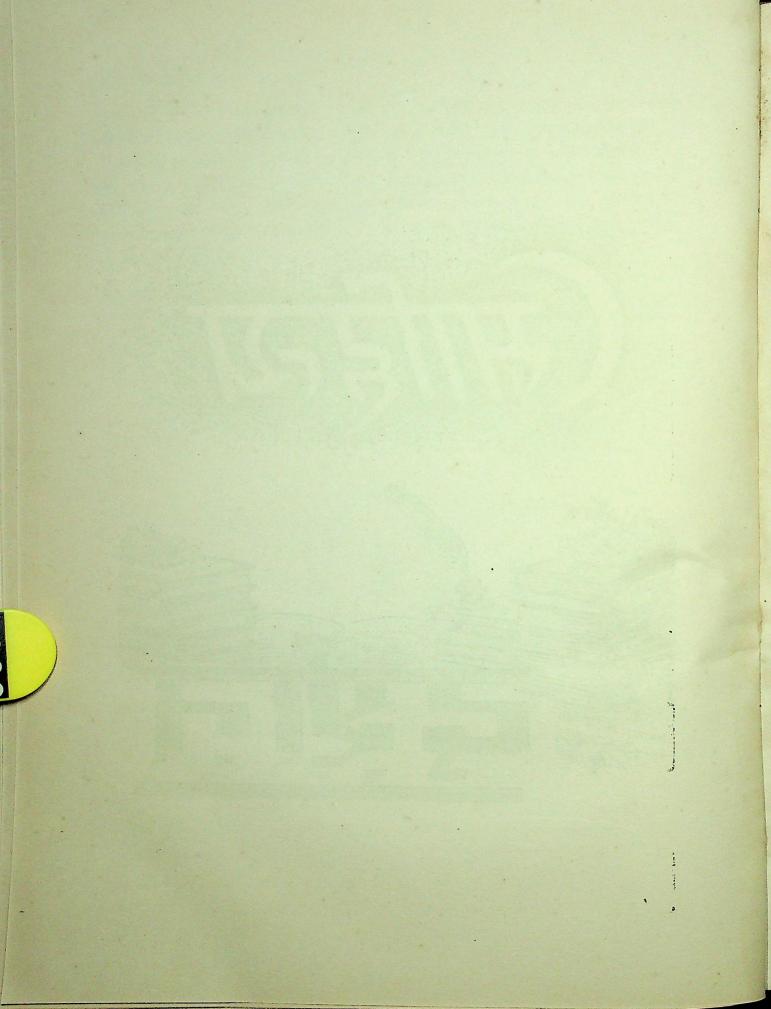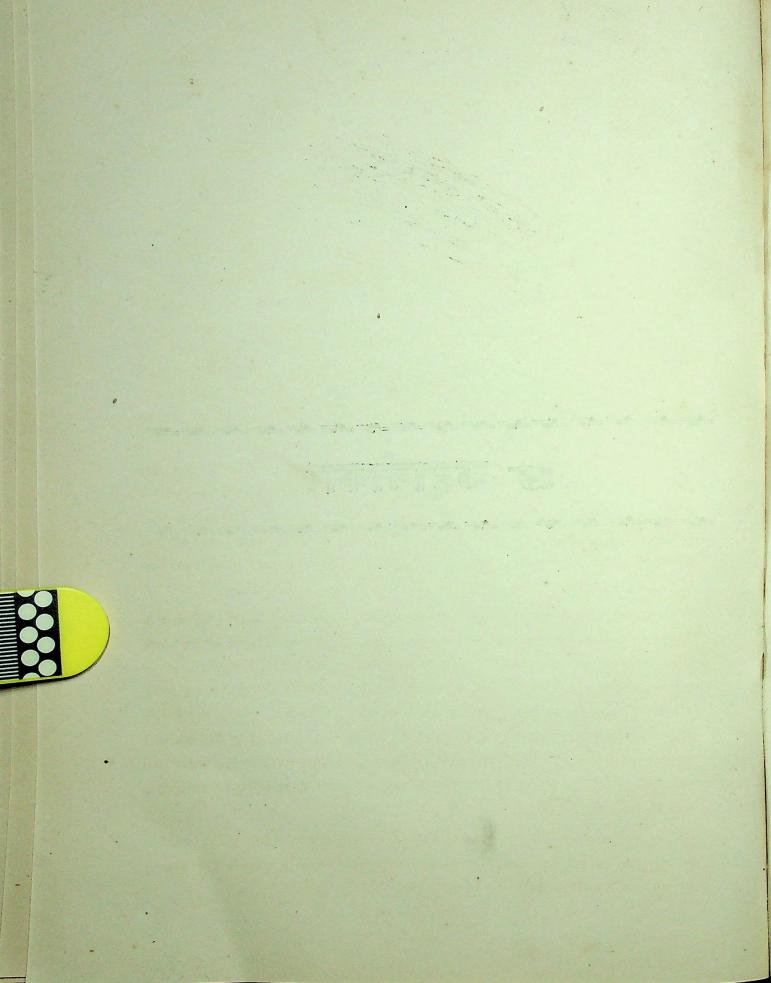
साहित्य

कहानीकार

कहानीकार यशपाल

हिन्दी के सुपरिचित साहित्यकार यशपाल के अनेक रूप हैं, जीवन में भी और साहित्य में भी। जिस सबलता सजगता से वे पिस्तौल चलाते रहे, उससे अधिक सबलता और सजगता का परिचय उन्होंने कलम चलाने में दिया है। वे एक ही साथ एक सी सफलता से कहानी, उपन्यास, निबन्ध, रेखाचित्र, नाटक और जाने क्या क्या लिख लेते हैं; पर इन अनेक रूपों में उनका कहानीकार का रूप ही अत्यधिक सफल है।

सन् ४० से लेकर सन् ५५ तक के अपनी साहित्य साधना के पन्द्रह वर्षों में उन्होंने अपने बारह कहानी संग्रहों में लगभग डेढ़ सौ कहानियाँ हिन्दी साहित्य को दी हैं। अनेक जाने-माने कहानीकारों के रहते यशपाल प्रेमचन्द के पश्चात हिन्दी के सबसे सशक्त कहानीकार हैं। प्रसिद्ध आलोचक श्री शान्ति प्रिय जी द्विवेदी के शब्दों में, "प्रेमचन्द के बाद यशपाल सही माने में जनसाधारण के लिये हिन्दी कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी रचनायें एक ओर साहित्यकों के लिये है तो दूसरी ओर जन-साधारण के लिये। एक शब्द में यशपाल प्रेमचन्द की तिरोहित प्रतिभा की तरुण शक्ति हैं।"

यशपाल की कहानियों की पहली बड़ी विशेषता है उनके वस्तु-संचय का विस्तार। उन्हें जीवन के अनेकानेक पहलुओं की सूक्ष्म और साधारण पकड़ और पहचान है। जिस प्रकार प्रेमचन्द का क्षेत्र झोंपड़ी से लेकर महलों तक और खेत की मेंडों से लेकर नगर की सड़कों तक है, उसी प्रकार यशपाल में भी एक ओर पहाड़ी जीवन की झांकियाँ हमें अल्मोड़ा, नैनीताल, कुल्लू और काश्मीर की घाटियों में घुमा देती हैं और आधुनिक सभ्यता से दूर वहाँ के अशिक्षित, शोषित पर सहज मानवीय गुणों से युक्त मनुष्यों के दर्शन कराती हैं तो दूसरी ओर आधुनिक सभ्यता के अभिशाप और वरदान से पीड़ित, हर पग पर अविश्वासी वंचक और विवश नागरिक जीवन के चित्र देखने को मिलते हैं। आधुनिक समाज के जितने अधिक रूपों और समस्याओं का स्पर्श यशपाल ने किया है, उतनी व्यापकता, उतना फैलाव प्रेमचन्द के बाद हिन्दी के किसी भी कहानीकार में नहीं है।

उनकी दूसरी बड़ी विशेषता है समाज के प्रति उनकी चौकसी और ईमानदारी, और इस सामाजिक ईमानदारी को निभाने में उन्होंने कभी चूक नहीं की। उन्होंने जो कुछ लिखा है, समाज के लिये लिखा है, और समाज से लेकर लिखा है।

यशपाल ने अपने को मुख्यतया मध्यवर्ग के विभिन्न स्तरों पर ही केन्द्रित किया है। कभी वे निम्नवर्ग की ओर भी झुकते हैं पर वहाँ उनका मन रमता नहीं; वे इधर-उधर झांक कर वहाँ से वापस चले आते हैं। इस प्रकार उनकी अपनी सीमायें हैं। कथावस्तु का चयन समाज के व्यापक भाग से करके भी उनकी कहानियों में मिल-मजदूरों और कृषकों की समस्यायें नहीं आतीं; यहीं वे प्रेमचन्द की परम्परा से कुछ अलग जा पड़ते हैं। उनकी कहानी पहाड़ की चोटियों में घूमी ज़रूर है पर वह धान के खेत-खलिहानों, नदी के कछारों, चरागाहों और अमराइयों में नहीं गई, कारखानों और बस्तियों के अस्वस्थ वातावरण में जाने से वह रुकी है। अक्सर वे नगर की सड़कों, गलियों, टाऊनहाल, सिनेमा, स्टेशन और अस्पताल का ही अधिक चक्कर लगाते हैं।

उनकी पहाड़ी जीवन की सुन्दर कहानियाँ हिन्दी की अमूल्य निधि हैं। एक तो पहाड़ों का उनका जन्म और जीवन, पहाड़ी जीवन के उनके व्यक्तिगत अनुभव और फ़रारी के दिनों में उन प्रदेशों का पर्यटन—इन सबसे उन्हें पहाड़ी जीवन के रीति-रिवाजों और उसकी परम्पराओं के साथ ही उसकी विवशताओं का भी सूक्ष्म ज्ञान है और इस दृष्टि से वे हिन्दी कथा साहित्य में बे-जोड़ हैं। पहाड़ों की मूक वाणी को अपनी कलम में उतार कर वे स्वयं धन्य हो गये हैं। इस जीवन के सम्बन्ध में उनकी पच्चीस-तीस कहानियाँ हैं, जिन्हें उनके कहानी साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उनके पहले ही कहानी संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' की दो कहानियाँ 'प्रेम का सार' और 'पहाड़ की स्मृति' मुझे कभी नहीं भूलतीं। दो पहाड़ी रमणियों के प्रेम की अनन्यता की परिचायक ये कहानियाँ अत्यन्त हृदयग्राही हैं। एक पहाड़िन अपने परदेश गये प्रेमी फज्जा की तीस वर्ष से प्रतीक्षा कर रही है और न जाने कब तक करती जायगी? पहाड़ी जीवन से सम्बन्धित कुछ और कहानियाँ हैं—या साईं सच्चे, तूफान का दैत्य, दूसरी नाक, फूलो का कुर्ता, मतिराम की बहादुरी, पुलिस की दया, विश्वास की बात, मंगला, कोकला डकैत, उत्तराधिकारी, अंग्रेज का घुघरू, जीत की हार, पीर का मजार, पहाड़ की स्मृति, प्रेम का सार, आतिथ्य, डरपोक काश्मीरी आदि। ये कहानियाँ एक नयापन और ताजगी लिये हुये हैं और कलाकार की सहृदयता की प्रतीक हैं।

विषय की दृष्टि से हम यशपाल की कहानियों का वर्गीकरण विस्तार से न कर संक्षेप में 'रोटी' और 'सेक्स' से सम्बन्धित दो वर्गों में करते हैं। स्वयं यशपाल जी मौजूदा पूँजीवादी सभ्यता की अव्यवस्था और गतिरोध को शिश्नोदर का चीत्कार कहते हैं। आधुनिक युग रोटी और सेक्स के महत्व को मान चुका है और यशपाल की कहानियों में रोटी और सेक्स की समस्यायें अपने विभिन्न रूपों में चित्रित हुई हैं। गंगा प्रसाद पाण्डेय के शब्दों में, "विश्व जीवन की विपन्नता और राष्ट्रीय जीवन की दरिद्रता के फलस्वरूप आज भारत शोषित वर्ग के साथ अपनी रक्षा का उपाय, समाजवाद की सामूहिक और समतामयी भावधारा में टटोल रहा है। यशपाल का कथा साहित्य इसी ओर प्रयत्नशील है।" अर्थात् एक ओर उनकी कहानियों का मूल केन्द्र द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, जिसमें समाज का अध्ययन सर्वहारा और पूँजीपति को दृष्टि में रखकर किया गया है। दूसरी ओर पुरातन नैतिकता और परम्परा की कटु आलोचना करते हुए स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को लेकर कहानियाँ लिखी गई हैं। इस प्रकार रोटी और सेक्स—सामाजिकता के लपेट में उनके मूल प्रेरणास्रोत हैं और उनका मूलाधार व्यापक और सार्वजनिक है।

उनकी आर्थिक (रोटी) समस्याओं वाली कहानियाँ तो पर्याप्त सफल हैं और इसे प्रायः उनके कटु आलोचक भी मानते हैं पर इनकी सेक्स-प्रधान कहानियों की सबसे अधिक आलोचनायें हुई

हैं और समीक्षकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विवादास्पद मत उपस्थित किये हैं। उनकी धर्मरक्षा, आतिथ्य, प्रतिष्ठा का बोझ आदि कहानियों को लेकर काफी कहा-सुनी हुई है। किसी ने उन्हें फ्रायड का शिष्य कहा, किसी ने प्रच्छन्न नग्नतावादी। समस्या तब और भी जटिल हो जाती है जब एक ओर साम्य-वादी कहलाने वाले आलोचक उनकी कटु आलोचना करते हैं तो दूसरी ओर समाजवादयुक्त शास्त्रीय आलोचक वर्ग उन्हें कम्यूनिस्ट कह अपनी पूर्वमान्य धारणाओं के अनुसार उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करते हैं।

यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि हमने पक्षपात, पूर्वनिश्चय, भ्रान्ति और दलबन्दी के कारण यशपाल की प्रतिभा का समुचित समादर नहीं किया। यशपाल का विरोध और उपेक्षा की गई। इस मनोवृत्ति के पीछे पूर्व धारणा बनाकर चलने की प्रवृत्ति है। नहीं तो उन्होंने नारी-समस्या पर एक से एक सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। 'दुखी दुखी', 'हलाल का टुकड़ा', 'आबरू', 'गँडेरी' जैसी कहानियाँ अत्यन्त सफल हैं। यशपाल ने मध्यवर्ग की नारी को मुख्य रूप से लिया है, जो कहने को तो गृहस्वामिनी है पर यथार्थ में है बन्धनों में जकड़ी हुई रूढ़ियों से ग्रस्त बच्चे पैदा करने की मशीन मात्र। 'कुछ समझ न सका', 'अपनी चीज', 'जबरदस्ती', 'अगर हो जाता', 'छलिया नारी', 'रिजक' आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। इस प्रकार समाज में नारी की विभिन्न प्रकार की स्थिति से लेखक भली-भाँति परिचित है। उसने स्कूल अध्या-पिका, मजदूरिन, वेश्या, मध्यवर्ग की गृहस्वामिनी, कॉलेज छात्रा आदि की समस्याओं और विवशताओं को सहानुभूतिपूर्ण और आलोचनापूर्ण दृष्टियों से देखा है।

रोटी और सेक्स की समस्या से सम्बन्धित कहानियों के अतिरिक्त यशपाल की सबसे बड़ी विशेषता हैं जर्जर, रूढ़िपूर्ण एवं गलित समाज की मान्यताओं पर व्यङ्गपूर्ण तीखा आघात और प्रतिक्रियावादी घातक परम्पराओं का विरोध। प्रत्येक रूढ़िगत मान्यता प्रायः असंबद्धता पैदा करके विरूप हो जाती है और फिर वह मनुष्य को आगे बढ़ाने के बजाय पीछे खींचती है। कभी वह वरदान स्वरूप भले ही रही हो पर आज वह अभिशाप हो उठी है। उनके विभिन्न कहानी संग्रहों की ये कहानियाँ ऐसे ही सामाजिक और धार्मिक नियमों, जीर्ण आस्थाओं और अज्ञानपूर्ण विश्वासों पर आघात करती हैं। 'मनु की लगाम', विश्वास की बात', 'हिंसा', 'परलोक', 'मजहब', 'तूफान का दैत्य', 'या साईं सच्चे', 'भाग्य चक्र,' 'डायन,' 'जादू के चावल' 'समाधि की धूल', 'भगवान किसके', और शम्बूक जैसी कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

यशपाल जी को कहानी कहना भली प्रकार आता है। कहानी के रचनाशिल्प में उनको अच्छी सफलता मिली है। सच तो यह है कि उनकी रचनाओं में अनुभूति, अभिव्यक्ति तथा भाषा के विचार से प्रेमचन्द जी की रचनाओं से भी अधिक सरलता, स्वाभाविकता, सरसता और मार्मिकता है। आधुनिक कथाकारों में बहुत से मनोविज्ञान का प्रदर्शन करते हैं और सहज को जटिल बना देते हैं। यशपाल जी गूढ़ से गूढ़ अनुभवों को भी सरल कर देते हैं। यशपाल ने प्रेमचन्द की परम्परा में परिमार्जन कर पात्रों की वास्त-विकता को कलात्मक ढंग से सँवारा है। प्रेमचन्द जी की कहानियों में इतिवृत्तात्मकता और सब कुछ कह देने की प्रवृत्ति है, जबकि यशपाल की कहानियों में कसावट और पैनापन है। उनकी अधिकांश कहानियों के कथानक छोटे और कसे हुए हैं, तीन या चार पेज की कहानियाँ जैसे 'दुखी-दुखी', 'अस्सी बटा सौ', 'काला आदमी', 'दुख का अधिकार', 'तीस मिनिट' आदि कहानियों के कथानक बहुत कसे हुए हैं। ये कथानक

प्रायः बिखरे हुए नहीं होते। चलते-चलते हम एक झलक पाते हैं और आगे बढ़ जाने पर उस झलक के प्रभाव के विषय में सोचने लगते हैं। ऐसे कथानकों में जीवन के एक-दो कार्य-संकेतों से कार्य चला लिया गया है। ऐसी कहानियों में कथानक अपूर्ण से लगते हैं पर उनमें कलात्मक आग्रह बहुत है।

इन लघुतम कथानकों की अपेक्षा बड़े कथानकों की कहानियों की संख्या अधिक है और ये प्रेमचन्द की कहानियों की तरह ही वर्णनात्मक हैं। ये कहानियाँ व्यापक जीवन संघर्ष और मनुष्य के कार्यों और कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन के प्रकाश में लिखी गई हैं। कथानक लम्बे-लम्बे, इतिवृत्तात्मक और पूर्ण परिणति तक के हैं। उनके निर्माण में कभी-कभी महीनों-वर्षों की घटनाओं के विवरण और कार्य-व्यापार सम्बद्ध हुए हैं। 'मिट्ठो के आँसू', 'जाब्ते की कारवाई', 'अमर', 'डिप्टीसाहब', 'हलाल का टुकड़ा', 'नीरस रसिक', 'प्रायश्चित्त', 'मक़ील', 'दासधर्म', 'एक सिगरेट', 'पराई' आदि कहानियों के कथानक इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। जैसे 'मिट्ठो के आँसू' कहानी के ग्यारह पृष्ठों में लेखक ने गजमोक्ष मन्दिर के पुजारी सुदामा से एक फूल बेचने वाली 'मिट्ठो' के साथ अवैध संबंध का वर्णन किया है; रात्रि में मन्दिर में मिट्ठो की उपस्थिति को एक भक्त आराध्यदर्शन मान लेते हैं और इस मन्दिर और पुजारी दोनों का सम्मान लोगों की दृष्टि में बढ़ जाता है। बस इसी तथ्य के लिए इतना बड़ा बन्धन बाँधा गया है। ऐसी कहानियाँ उनके बाद के तीन कहानी संग्रहों 'उत्तराधिकारी', 'चित्र का शीर्षक' और 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ' में अधिक हैं, जबकि पहले की कहानियों में कथानक का गठन अधिक सफल है उसमें चुस्ती है। परवर्ती कहानियों में सरल ढंग से कथा-वर्णन करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। कुछ कहानियों के कथानक लम्बे होकर भी कहानी कला की दृष्टि से सफल हैं।

यशपाल को प्लाट गढ़ने में आसाधारण सफलता मिली है। उन्हें कोई एक बात कहनी होती है तो उसी के अनुकूल वह पात्र और परिस्थितियों का निर्माण कर लेते हैं। कहानी का मुख्य आधार भी घटनाओं के वर्णन में नहीं, बल्कि घटना के चुनाव और क्रमिक निर्वाह में होता है। घटना का चुनाव यदि श्रेयस्कर और कलात्मक हुआ तो कहानी के सभी अन्य तत्त्व अपनी सम्पूर्णता के साथ अपना निखार पा लेते हैं। यदि घटना का चुनाव ही स्वयं में शिथिल, निर्बल या निरर्थक हुआ तो कला का सारा ज़ोर और परिश्रम भी कहानी को सजीव बनाने में असफल रहेगा। श्रेष्ठ कहानी का प्रमुख गुण घटनाओं की सार्थकता है। यशपाल की कहानियों के कथानक दोनों प्रकार के हैं अर्थात् कहीं तो घटनायें उद्देश्य के अनुकूल हुई हैं और कहीं वे ऐसी नहीं हो पाईं। ऐसे स्थलों पर बिना कोई गहरा प्रभाव छोड़े ही कहानी समाप्त हो जाती है।

यशपाल की कहानियों की विषय-वस्तु और मूल-प्रतिपाद्य तो यथार्थ पर आधारित रहता है पर प्रसंगोद्भावना प्रायः काल्पनिक होती है अर्थात् वे चेखव स्कूल में न आकर ओ हेनरी या मोपासा स्कूल में आते हैं। दूसरे शब्दों में उनकी कहानियां उद्देश्य-प्रधान हैं और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिस प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण वे करते हैं यह यथार्थ न होकर भी यथार्थ-सी लगती हैं और इस परिस्थिति में अतिरंजना का पुट देकर वे प्रभाव को और अधिक बढ़ाने का प्रयास करते हैं। 'सोमा का साहस', 'पाँव तले की डाल', 'अस्सी बटा सौ' कहानियाँ ऐसी ही हैं।

कभी कभी यशपाल की कहानियों में वर्णन और इतिवृत्त बढ़ जाता है, जैसे 'चित्र का शीर्षक' कहानी संग्रह में 'साहू या चोर' कहानी।

यशपाल एक ही उद्देश्य और समस्या को स्पष्ट करने के लिए कई कहानियाँ लिखते हैं और समस्या को कई पहलुओं से देखने का प्रयास करते हैं। प्रायः वे दो विरोधी चरित्रों या परिस्थितियों को सामने रख कर अपनी अनेक कहानियों में विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

अपनी कहानियों में अपने वैयक्तिक जीवन का स्पर्श देने का प्रयास यशपाल प्रायः करते हैं और 'मैं' शैली का प्रयोग करते हुए जहाँ भी सम्भव होता है कहानी के तीन चार पात्रों में से एक पात्र वह स्वयं बनने को तैयार रहते हैं। जैसे वे कहानी स्वतंत्र नहीं छोड़ना चाहते। इस वैयक्तिक स्पर्श के कारण कहानियाँ अधिक हृदयग्राही और सरस हो गई हैं।

उनकी कहानियों का आदि-अन्त बहुत ही कलात्मक ढंग का होता है और इस दृष्टि से वे समसामयिक कथाकारों में सबसे अधिक सफल हैं। जैसे कबड्डी का खिलाड़ी झुकने का नाट्य किसी ओर करे और छू दे किसी दूसरे को, वैसे ही यशपाल की कहानियों का आरम्भ और अन्त होता है। पाठक का हृदय किसी परिणाम को सोचता रहता है किन्तु इस आकांक्षा के प्रतिकूल वह दूसरा अंत देख कर चौंक उठता है। वे अपनी कहानी का पूरा मोह अंत तक की पंक्तियों के लिए सुरक्षित रखते हैं।

अपनी कहानियों में वे काव्यात्मक और इतिवृत्तात्मक दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं और उसमें व्यङ्ग और विनोद का बड़ा तीखा पुट रहता है।

अपनी लगभग डेढ़ सौ कहानियों द्वारा यशपाल ने हिन्दी-कहानी को नई गति दी है। समाज की बदली हुई आवश्यकता के अनुकूल उन्होंने भूमिका तैयार की है और युग-जीवन के प्रति वह सदैव जागरूक रहे हैं। उन्होंने सामयिक समस्याओं पर आघात किया पर ध्वंस के लिए नहीं, उसमें निर्माण का स्वर है। उनकी करुणा निष्फला नहीं है, उनका आक्रोश बे-मतलब नहीं।

इधर बीते पन्द्रह वर्षों से उनकी गति कभी मन्द नहीं पड़ी। पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः उनकी कहानियाँ और लेख प्रकाशित होते रहे हैं। उनकी रचनाओं से युग को प्रेरणा मिली है। उनकी रचनाओं का सन्देश आगे प्रगति के लिए आवश्यक है। उनसे इसी प्रकार के उत्तरोत्तर पुष्ट साहित्य के पाने की पूर्ण आशा है।

सुरेशचन्द्र तिवारी

बनारस

कथा-शिल्पी यशपाल

कहानी मानव जीवन की अनन्त समस्याओं का कलात्मक भाषा में चित्रण है। वह मानव के अन्तस्तल से उद्भूत भावनाओं की चित्रमयी लिपि है। वह उस कठोर सत्य, उस अनावृत वास्तविकता, एक चिर-अनुभूत यथार्थता की स्वीकृति है, जिनसे मानव का संघर्ष सदा से होता आया है।

कहानीकार की सफलता केवल उसकी सरल भाषा, घटनाओं को एक सूत्र में पिरोने, मनोरंजकता और औत्सुक्य को उत्तरोत्तर परिवर्धित करने, कल्पना-जगत में उड़ाने भरते हुए उड़कर स्वप्नों को मूर्त रूप देने में नहीं, अपितु उसकी उस शक्ति में है, जिसके द्वारा वह मानव का वास्तविक चित्र चित्रित कर उसे मानव मात्र की समवेदना का पात्र बनाता है। जिस कहानी के पढ़ने या सुनने से अपने आपको भूलकर यह अनुभव होने लगे कि यह कहानी वास्तव में अपनी ही कहानी है, अपनी ही उमंगों और भावनाओं का साक्षीकरण है, अपने ही अन्तस्तल में उठने वाली तरंगों का ज्वार-भाटा है, वही वास्तव में कहानी है। संक्षेप में जब मानव 'जग बीती' को 'आप बीती' और 'आप बीती' को 'जग बीती' अनुभव करने लगे, उसी अवस्था में कहानी और कहानीकार की सफलता समझनी चाहिये।

श्री यशपाल जी हिन्दी के उन गिने-चुने कहानीकारों में हैं, जिनकी कला उपर्युक्त कसौटी पर शत प्रतिशत खरी उतरती है। आपने कठोर सत्य की पृष्ठभूमि के सहारे यथार्थता के धरातल पर अपनी कहानी-कला को विकास का अवसर दिया है। आपकी कहानी अनावश्यक शब्दाडंबरपूर्ण भाषा, कृत्रिम आवरण-पूर्ण विचार, एवं मिथ्या परंपराओं की नीहारिका से आच्छादित नहीं। आपने अपनी कहानियों में कहीं भी यह प्रयास नहीं किया कि उनमें अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता, पूर्वीय तथा पश्चिमीय दर्शन एवं साहित्य के गंभीर अध्ययन, अथवा अन्य किसी प्रकार की योग्यता का परिचय दिया जाय। आपकी रचनाएँ जनसाधारण की थाती हैं। वह मानव मात्र की अमूल्य निधि हैं।

श्री यशपाल जी के १२ के लगभग कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें किसी एक को दूसरे से श्रेष्ठ बताना बहुत कठिनाई है। 'अभिशप्त', 'वो दुनिया', 'ज्ञानदान', 'पिंजरे की उड़ान', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत चिन्गारी', 'फूलो का कुर्ता', 'धर्मयुद्ध', 'उत्तरधिकारी', 'चित्रों का शीर्षक', 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ', 'उत्तमी की मां'—इन सभी संग्रहो में आपकी कला का निखरा हुआ रूप पाया जाता है। किन्हीं साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर किसी साहित्यकार की कला का मूल्यांकन

करना सर्वथा अन्याय ही नहीं अपितु असंगत भी है; विशेषतः श्री यशपाल जी का जो विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति के प्रेरक ही नहीं अपितु स्रष्टा भी हैं, जो मानव की प्रत्येक विचारधारा का विवेचन परम्परा या दार्शनिक धरातल पर न कर ठोस तथ्यों के आधार पर करते हैं। उनकी प्रत्येक कहानी इसी कठोर सत्य के चित्रण के लिए लिखी गई है। आपके विचारों को साम्यवादी या फ़ायड द्वारा प्रभावित कहकर टालना विश्व को वास्तविकता के समक्ष जान-बूझ कर आँखें बन्द कर लेना है।

जीवन के इस स्वाभाविक सत्य की अभिव्यंजना 'दिव्या' उपन्यास के मौरिश की भाँति 'ज्ञानदान' नाम की कहानी में ब्रह्मचारी नीड़क ने इस प्रकार की है :—

> नर्मदा का बहने वाला प्रवाह ही उसका जीवन है। यदि प्रवाह की गति का अवरोध कर इसे उद्गम की ओर प्रवाहित करने की चेष्टा की जाय तो ? यदि यह नदी प्रवाह को दुःख समझकर गति-निरोध द्वारा प्रवाह से मुक्ति प्राप्त करना चाहे ? × × × जीवन की इच्छा को ही तुम निर्बलता समझती हो शायद ब्रह्मचारिणी। उसे वासना का नाम दे अपनी संपूर्ण शक्ति का हनन करने का यत्न करती हो। तुम दुःख को सुख और सुख को दुःख मानने का यत्न कर यह भूल जाती हो कि जीवन क्या है ?

इस अवतरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यकार के अन्तस्तल में परम्परा और रूढ़िवाद, जिसे दर्शन या शास्त्र का नाम दिया जाता है, के प्रति कितनी विद्रोह-भावना है। यशपाल जी की कला इस विद्रोह का चित्रण करके ही समाप्त नहीं हो जाती अपितु वह विप्लव द्वारा नवीन युग का निर्माण करने को भी प्रेरित करती है, क्योंकि आपकी प्रतिभा विश्लेषण प्रधान है। आपने भारतीय समाज के परंपरागत घुन का, जिसे हम आत्मतुष्टि के लिए समन्वय की भावना कहते हैं, प्रबल विरोध किया है। भाग्य को आप और कुछ नहीं केवल विवशता और मानसिक क्लीवता कहते हैं। आपका विश्वास है कि जब तक प्राचीन निवृत्ति-प्रधान धारणाएँ समाज में विद्यमान रहेंगी तब तक समाज का उद्धार नहीं हो सकेगा।

यहां आपकी सभी कहानियों का परिचय देना सम्भव नहीं इसलिए केवल 'अभिशप्त', 'ज्ञानदान' 'वो दुनिया' तथा 'भस्मावृत चिन्गारी', इन चार संग्रहों की कुछ चुनी हुई कहानियों की कलात्मकता का दिग्दर्शन कराना अभीष्ट है। 'अभिशप्त' कहानी संग्रह में १५ कहानियां हैं। इनमें 'दास धर्म' नामक कहानी में कहानी कला के सभी तत्त्व विद्यमान हैं। घटना-प्रसंग इतना प्रवाह-पूर्ण है कि अन्त तक पाठक उसके साथ ही बहता चला जाता है। यवन सार्थवाह आन्द्रेकस और उसकी युवा पत्नी दीमा का भारत के यशस्वी सम्राट सीमुक सातवाहन के द्वारा पकड़े जाने पर क्या हाल हुआ, इसका रोमांचकारी वर्णन इसमें किया गया है। कहानी के ये शब्द, "दास का केवल एक धर्म है, प्रभु सेवा ! जिसकी उपेक्षा करने के कारण दोनों पति-पत्नियों के शरीर मत्त गज के पांव तले कुचले जाकर राजप्रासाद के खंभों की शोभा बढ़ाने लगे।" दास-प्रथा की अमानवीयता पर एक करारी चोट है।

इसी संग्रह की दूसरी कहानी में गरीबी, रोटी या पेट की समस्या के कारण संभव बीभत्स काण्डों का चित्रण किया गया है। पांच बरस के बच्चे ने अपने नन्हे भाई का गला घोंट कर उसकी हत्या कर डाली, लखनऊ के अमीनुद्दौला पार्क में उसी तरह जलसे होते रहे, बाजे बजते रहे, विलासी पूंजीपति

अपनी प्रेयसी गणिका से एक रात का सहवास पाने के लिए लाखों रुपये बहाते रहे, पर उस हत्या का कारण जानने की फुरसत किसी को न मिली। मिले भी क्यों? गरीब मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है। कहानी समाज की उस घृणित व्यवस्था को बदल देने की प्रेरणा देती है जो मानव को कीड़े और पतंगे से अधिक तनिक भी महत्व नहीं देती। 'छलिया नारी' कहानी मानव की पशुता और नारी की विवशता का जीवित-जागृत निदर्शन है। 'नन्दो' और 'विनोदसिंह' कोई काल्पनिक पात्र नहीं, बल्कि हमारे प्रत्येक परिवार में परंपरा की लीक पीटने वाले ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं।

आपके दूसरे संग्रह 'ज्ञान दान' की पहली कहानी, जिसके नाम पर संग्रह का नामकरण किया गया है, हमारी प्राचीन ज्ञान-चर्चा का खोखलापन खोल कर रख देती है। हमारे समाज में युवा साधक नीड़क और सिद्धि के रूप में संसार को माया और भ्रम कहकर उसका तिरस्कार करने वाले ऐसे हज़ारों व्यक्ति जायँगे जो बाद में उसी वासना के शिकार हो जाते हैं, जिसे वे बन्धन का कारण मानते हैं।

कहानी के अन्तिम शब्दों में कितना कठोर सत्य झलक रहा है—"क्या कभी समाधि में तल्लीन होकर तुम कभी इतनी आत्मविस्मृत हो सकी थीं जितनी इस संपूर्ण रात्रि में?"—सिद्धि को ग्रीदा को अपनी बाँहों में ले उसके अधमुँदे नेत्रों में नेत्र गड़ा कर नीड़क ने मुस्कराते हुए पूछा। उत्तर में सिद्धि ने कहा था—"आर्य! सत्य कहते हैं।"

इस संग्रह की दो कहानियां 'पराया मुख' और 'अपनी चीज़' कला और भाव दोनों की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। इन दोनों में नारी के चरित्र का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। समाज में नारी को देवी कहने से ही उसका आदर नहीं बढ़ जाता, यदि हम उसे अपने घर के पिंजरे में छटपटाते पंछी के समान बाहर निकलने की आज्ञा नहीं देते। परन्तु वही पुरुष जो नारी पर इतना कठोर शासन करता है अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए नारी का नारीत्व भी अर्पण करने में झिझकता नहीं।

'वो दुनिया' संग्रह की १२ कहानियों में जीवन की विषमताओं और अतृप्त आकांक्षाओं का चित्रण किया गया है। 'वो दुनिया' कहानी के इन शब्दों में कितना विद्रोह उमड़ रहा है—

> समाज का रक्त रुपये का रूप धारण कर सब काम चलाता है। समाज के शरीर में कीड़े पड़ गये हैं। ये कीड़े मुनाफा खाते हैं, समाज के रक्त को मुनाफे के रूप में अपनी तोंद में भरते चले जाते हैं और समाज का शरीर रक्तहीन होकर निश्चेष्ट होता जाता है। × × × ये कीड़े समाज के शरीर को टाइफाइड, तपेदिक, कोढ़ या पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, तानाशाही से ग्रस्त किये हैं। इन मुनाफा बनाकर चूस लेने वाले कीड़ों को दूर करना ही होगा।

'भस्मावृत चिन्गारी' संग्रह की १५ कहानियाँ नारी-समस्या और समाज की अन्य कुरीतियों के प्रति कठोर व्यंग से भरपूर हैं। इस संग्रह की भूमिका में श्री यशपाल ने कला के विषय में इस प्रकार लिखा है—

> यदि कला में जीवन की समस्या का आना दोष है तो फिर कला का प्रत्यक्ष रूप है क्या? कलाकार के भाव और कल्पना जीवन के अनुभवों की भूमि पर ही खड़े हो सकते हैं। प्रश्न है, कला में प्रकट जीवन का रूप किस समस्या का संदेश देता है? भाव शून्य, संदेश शून्य कला को क्या हम कला कह सकते हैं?

कला का यह विवेचन हमारे पूर्वोक्त कथन की पुष्टि करता है। 'भस्मावृत चिन्गारी' एक कलाकार के जीवन-संघर्ष की दर्दभरी कहानी है। कलाकार संसार की विषमताओं और ठोकरों से जूझता हुआ कला की साधना करना चाहता है परन्तु दुनिया उसे उस संघर्ष का चित्रण करने से भी वंचित करने का प्रयास करती है। मानवता का वास्तविक चित्र इस प्रकार अधूरा रह जाता है।

'मोटर वाली और चाय वाली', इस कहानी में नारी के स्वभाव का नैसर्गिक चित्रण इन शब्दों में किया गया है, "यह मोटर वाली और कोयले वाली सब एक हैं। इनका देवता पैसा है, प्रेम नहीं।'

इस संग्रह की 'जहां हसद नहीं' कहानी पूर्वोक्त कथन से नारी-चरित्र का विरोध दिखाती है। एक अनपढ़ नारी सआदत के लिए प्रेम ही सब कुछ है। वह इस प्रेम की वलि-वेदी पर अपना जीवन हँसते-हँसते न्योछावर कर देती है।

इन थोड़ी सी कहानियों का विवेचन यहाँ निदर्शन रूप में ही किया गया है। यद्यपि श्री यशपाल की कला उत्तरोत्तर विकासशील है तथापि उनके मूल-भूत सिद्धान्तों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। वे जो चीज़ समाज की पूर्ति के लिये हानिकारक समझते हैं, उसका चित्रण करने में ज़रा भी झिझकते नहीं। समाज, धर्म, जाति, परिवार किसी का भी अंकुश उनकी कलम को सत्य का चित्रण करने से रोक नहीं सकता। साम्यवादी, मार्क्सवादी आदि शब्दों का प्रयोग कर उनके विचारों को जकड़ा नहीं जा सकता। आज भारत स्वतंत्र है। उसे ऐसे ही साहित्यकारों की आवश्यकता है जो जनता का प्रतिनिधि बन कर उसे उचित मार्ग दिखा सकें। इस दिशा में श्री यशपाल उदीयमान साहित्यकारों के लिये प्रकाश स्तम्भ हैं।

जालंधर

दुर्गादत्त मेनन

प्रगतिशील कहानीकार यशपाल

आज के साहित्य-समाज में कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो केवल अखबारी पब्लिसिटी ले कर लेखक बन गए हैं पर ऐसे लेखकों का जीवन कुछ समय का ही होता है, जैसे ही अखबारी पब्लिसिटी मिलनी बन्द होती है, लेखक का नामो-निशान मिट जाता है। या फिर कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो समाज की अस्वस्थ परिस्थितियों के साथ जीते हैं। जब तक वे अस्वस्थ परिस्थितियाँ विद्यमान रहती हैं, उनका बोल-बाला रहता है, किन्तु इन परिस्थितियों के परिवर्तित होने के साथ ही या तो लेखक खत्म हो जाता है या उसका महत्व कम हो जाता है। इस श्रेणी में कई लेखकों के नाम गिनाए जा सकते हैं, जो समय तथा परिस्थितियों के अनुसार अपने को न ढाल सके और परिणामस्वरूप भोर के तारे की तरह शनैः शनैः तिरोहित हो गए। किन्तु इसके विपरीत श्री यशपाल की गणना उन स्वतः सिद्ध साहित्यकारों में की जाती है जो अपने कठोर परिश्रम और निरन्तर तपस्या के बल-बूते पर महानता को प्राप्त हुए। यशपाल ने अपने खून-पसीने से अपने यश को पाला-पोसा है और इसीलिय आज उनका यश उन्हें पाल रहा है।

यशपाल को हिन्दी के चोटि के लेखकों में ला खड़ा करने में उपन्यासों की अपेक्षा उनकी कहानियों का हाथ अधिक है। निःसंदेह 'मनुष्य के रूप' और 'दिव्या' हिन्दी साहित्य को बहुत बड़ी देन है परन्तु यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि जहाँ 'मनुष्य के रूप' और 'दिव्या' में मनुष्य के कुछ रूप मिलते हैं, वहाँ उनकी हर कहानी एक रूप या अनेक रूप प्रस्तुत करती है। यशपाल की कहातियों के पात्र आज से कई बरस पहले भी विद्यमान थे, आज भी विद्यमान हैं और आने वाले सैंकड़ों वर्ष तक उनके बदलने की कोई सम्भावना नहीं। उनकी कहानियों का वातावरण भी ऐसा है जो समाज में अर्से से चला आ रहा है और जो मनुष्य के साथ ही बदलेगा। यशपाल को इस बात की अनुभूति है कि मनुष्यों को बदलते शताब्दियाँ लग जाती हैं, वह मानव स्वभाव को भली-भाँति जानते हैं और उन्होंने वातावरण तथा पात्रों को कहानियों में ढालने से पहले उनका गहरा अध्ययन किया है। उर्दू के महान कथा शिल्पी मंटो, फ्रांस के प्रथम कोटि के कहानीकार, मोपासाँ और अंग्रेज़ी के सुविख्यात लेखक टॉमस हार्डी की तरह यशपाल ने ज़िन्दगी को बहुत नज़दीक से देखा है, ममुष्य को उसके असली रूप में देखा है। यही कारण है कि वह अपने पात्रों के साथ बोलते हैं और उन्हें कल्पना के ताने-बाने में ज्यादा न फैलाकर जैसे का तैसे पेश कर देते हैं।

यशपाल प्रगतिशील लेखक हैं। यों तो हिन्दी का हर नया लेखक प्रगतिशील होने का दावा करता है, किन्तु उनमें से अधिकांश को सामाजिक शक्तियों की गतिविधियों का अध्ययन नहीं होता और उनमें समाज की आवश्यकताओं की चेतना नहीं होती। परन्तु यशपाल सही मानों में एक प्रगतिशील लेखक हैं, जो समाज की नब्ज़ को अच्छी तरह पहचानते हैं, उन्हें समाज की आवश्यकताओं की चेतना है, वह उसका विरोध करने के लिए ही विरोध नहीं करते। उन्हें जीवन का कटु अनुभव है। वह किसी को उसकी बुराई या त्रुटि के लिए गाली नहीं दे देते, क्योंकि कि वह जानते हैं कि कोई त्रुटि, बुराई अथवा अभाव या तो मनुष्य का स्वभाव होगा या फिर विशेष परिस्थितियों के कारण ही मनुष्य वह बुराई करने पर मजबूर हुआ होगा। ये परिस्थितियाँ क्या हैं और क्यों पैदा हुई, इसका चित्रण यशपाल ने अधिकारपूर्वक किया है।

समाज की रूढ़िवादी प्रवृत्तियों के साथ युद्ध करते हुए भी यशपाल को अपनी प्राचीन संस्कृति व सभ्यता से उत्कट प्रेम है। वह अपने देश की गौरवशाली परम्पराओं को आज के समाज के अनुसार बनाना चाहते हैं। वह वर्तमान समस्याओं से अनभिज्ञ नहीं हैं, लेकिन साथ ही संस्कृति एवं सभ्यता का विकास भी चाहते हैं। 'फूलो का कुरता' इसका जीता-जागता उदाहरण है। भूमिका में लेखक कहता है, "आज यह साहित्य बन रहा है, जिसमें व्यभिचार के लिए सफाई दी जाती है। यह हमारी संस्कृति का आधार बनेगा। हमारा जीवन कितना छिछला और संकीर्ण होता चला जा रहा है। स्वार्थ के बावलेपन की छीना-झपटी और मारोमार हमें बदहवास किए दे रही है। मनुष्य की उस मानवता, नैतिकता और स्थिरता को हम खो चुके जिसका विकास हमारे आत्मद्रष्टा ऋषियों ने संकीर्ण सांसारिकता से मुक्त हो कर किया था। स्वार्थ की पट्टी आँखों पर बांध हम भारत की आत्मज्ञान संस्कृति के परम शान्ति के मार्ग को खो बैठे हैं। क्या पेट और रोटी ही सब कुछ है? इससे परे मनुष्य की मनुष्यता, संस्कृति और नैतिकता कुछ नहीं?"

यशपाल वर्तमान नैतिकता के खोखलेपन को नंगे रूप में पेश करके उच्च नैतिकता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। प्रपंचपूर्ण नैतिकता के बंधन तोड़ते हुए भी यह सीमा के भीतर रहते हैं। 'धर्म रक्षा' और 'प्रायश्चित' उनकी ऐसी कहानियाँ हैं जो रूढ़िवादी शिक्षा-प्रणाली, तथा कथित धर्म रक्षकों और नैतिकता के ठेकेदारों पर करारी चोट है। ब्रह्मचर्य का नाम जपने वाले मन से कितने ब्रह्मचारी होते हैं, इसका चित्रण बड़ी खूबी से किया गया है। 'धर्म रक्षा' यशपाल की सर्वोत्तम कहानियों में से एक है। यौन-विश्लेषण (Sex-analysis) की दृष्टि से यह कहानी किसी भी उच्चकोटि के यूरोपीय लेखक की इस प्रकार की कहानी की तुलना में रखी जा सकती है। इन कहानियों में यशपाल ने एक कुशल सर्जन (Surgeon) की तरह समाज के सड़ते नासूरों का निदान (Diagnose) किया है। हर घड़ी नैतिकता का उपदेश देने वाले तथा अपने आपको प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और धर्म का रक्षक समझने वाले हर समाज में, हर देश में, पाए जाते हैं। ये लोग बदलते समय के प्रवाह को रोकने का प्रयत्न करते हैं। समय की नियमित घड़ी की सुइयों को उल्टा चलाना चाहते हैं। और इसका जो परिणाम होता है, वह हमारे सामने है। जिस बात को जितना दबाया जायगा, उसके प्रति कौतूहल और जिज्ञासा उतनी ही तीव्र होती चली जायगी। आखिर अवसर पा कर बांध टूट जाता है और तथाकथित 'महात्माओं' का पोल खुल जाता है। परिवर्तित परिस्थितियों में परिवर्तन से मुँह मोड़ने का परिणाम कितना भयंकर हो सकता है,

लेखक ने इसको अपनी कहानियों में अच्छी तरह दिखाया है। क्या वर्तमान समय में वह पुरानी शिक्षा-
प्रणाली व नैतिकता स्थापित करने का वह ढंग कायम रह सकता है ? इसका उत्तर भी लेखक ने बड़ी
कुशलता से दिया है।

एक सच्चे प्रगतिशील लेखक की तरह यशपाल की रचनाएँ विशेष कर कहानियाँ समाज की
गंदगी और बुराइयों को उनके सही रूप में पेश करती हैं। आज के समाज का छिछलापन और खोखलापन
'गवाही' और 'सोमा का साहस' में बड़ी खूबी से दर्शाया है। नकली बाबुओं तथा हिन्दुस्तानी मेम साहबों
के साथ-साथ मध्यम वर्ग के दिखावे एवं कृत्रिम जीवन की तस्वीरें खींचने में यशपाल को विशेष
सफलता मिली है। इस क्षेत्र में वह किसी देश के अच्छे से अच्छे कलाकार से टक्कर ले सकते हैं। 'हलाल
का टुकड़ा' में एक वेश्या का जैसा चित्रण हुआ है और 'एक राज़' में नौकर को जिस रूप में पेश किया गया
है, वे अपनी मिसाल आप है। लेखक ने खामुखाह पाठक की किसी कमज़ोरी का फायदा उठाकर
सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश नहीं की, बल्कि उसकी सफलता का रहस्य यह है कि वह किसी भी चीज़
को उसके प्राकृतिक रूप में पेश करने की क्षमता रखता है और इस कला द्वारा पाठक पर स्थायी प्रभाव
छोड़ जाता है। उसके पात्र समाज से लिए गए जीते-जागते पात्र हैं। यशपाल की कहानियों के अधिकांश
पात्र अपने सम्बन्धित वर्ग के प्रतिनिधि हैं 'गवाही' का नायक वकील वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है,
'महादान' के सेठ जी समूचे पूँजीपतियों के प्रतिनिधि हैं। 'औरत' की औरत नारी-समाज की और 'खुदा की
मदद' का हीरो उबेद समूचे ईमानदार भोले-भाले देहातियों का प्रतिनिधि है। इसी प्रकार 'फूलो का
कुरता' की फूलो मनुष्य के परंपरागत ज्ञान और संस्कृति की प्रतीक है।

कहानीकार यशपाल नारी को समानाधिकार देने के समर्थक हैं। उनके अपने शब्दों में, "आज
हमारे समाज का आधा भाग नारी समाज भी आज के कठिन संघर्ष में अपने आर्थिक, राजनैतिक और
सामाजिक दायित्व को समझे, केवल पुरुष के कंधे पर बोझ ही न बनी रहे।" यशपाल अच्छी तरह
जानते हैं कि आज की नारी, विशेषकर भारतीय नारी कितनी विवश है और उसे समाज की कितनी
ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जो उसकी उन्नति की राह में चट्टान बन जाती हैं। लेखक
उसकी कमज़ोरियों को भी खूब जानता है लेकिन चाहता है कि आज की नारी पुरुष के साथ कंधे से
कंधा मिला कर चले। हम स्त्रियों को आज़ादी देने की बात करते हैं, लेकिन उन्हें कितनी आज़ादी
मिली है, यह 'ज़बरतस्ती' से उद्धृत इन पंक्तियों से स्पष्ट है—"स्त्रियों के लिए आज़ादी का मतलब
उनके प्यार हैं, पति हैं, बच्चे हैं, परन्तु यह सब क्या सोच समझ कर उसकी इच्छा से होता है ?
उन्हें जिस दड़बे में बन्द कर दिया, वहीं अण्डे, बच्चे देने लगीं !"

यशपाल स्वयं क्रांतिकारी रहे हैं और अब भी हैं। अतएव उनकी रचनाओं में सर्वत्र क्रांति की
छाप दिखाई देती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में राजनैतिक समस्याओं का भी सफल सामंजस्य बैठाया
है। कुछ रचनाओं में स्वयं क्राँतिकारी यशपाल के दर्शन होते हैं। तब राष्ट्र की आत्मा, उसका संघर्ष
और उसकी आकांक्षाए रचनाओं में बोलती-सी प्रतीत होती है। पूँजीवाद के अन्तिम युग का विरोध
कुछ रचनाओं में झलकता है। चूंकि यशपाल स्वयं स्वतंत्र-संग्राम से सम्बन्धित रहे हैं, इस लिए जहाँ
कहानियों का कथानक क्रांतिकारी है, वहाँ उसे ऐसा रंग देने में यशपाल यथार्थता की पराकाष्ठा पर हैं।
यहाँ भी सफलता का कारण यह है कि वास्तविकता में कल्पना को अधिक स्थान नहीं
दिया गया।

यशपाल की कहानियों की अन्यान्य विशेषताओं में एक यह भी है कि वह पाठक की दिलचस्पी अन्त तक कायम रखते हैं। यही नहीं कुछ कहानियों का अन्त पाठकों की कल्पना पर छोड़ देना ही उन्हें अमर कर गया है। 'पराया सुख' का एक वाक्य "सिगरेट कम्पनी वाला वह बाबू कितना सज्जन था परन्तु उसने उसे सदा इनकार ही किया" और '८०/१००' का अन्तिम वाक्य "सभी किसी न किसी की बहन होती हैं" कहानी की जान हैं। ऐसे वाक्य देर तक कानों में गूँजते रहते हैं।

यशपाल की कहानियों में व्यंग तो अत्यधिक मात्रा में है, लेकिन कहीं कहीं साफ-सुथरे हास्य की पुट देने में भी वह माहर हैं। 'मनुष्य', 'बदनाम', 'कानून', 'प्रतिष्ठा का बोध', 'आतिथ्य' आदि कहानियाँ जहाँ पाठकों को हँसाए बिना नहीं रहतीं, वहाँ ये व्यंग से भी ओत-प्रोत हैं। 'कानून' हमारे कानून पर बहुत ज़बरदस्त चोट है और 'बदनाम' एक प्रेमी का अच्छा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। यशपाल का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह समाज के फोड़ों को छेड़ते समय रुलाते हैं तो हँसाते भी हैं। कई बार पाठक कहानी पढ़कर आत्म ग्लानि से सिर झुका लेता है; बस यही लेखक की सफलता है।

यशपाल की भाषा में मंजी लेखनी का प्रवाह है। वह शब्दों से काम लेना खूब जानते हैं। भाषा को वह एक कुशल कारीगर के औज़ारों की तरह प्रयोग करते हैं। उनकी कई कहानियाँ बहुत उत्कृष्ट बन गई हैं तो इसका एक कारण यह भी है कि वह शब्दों को चलाना और उनसे हथौड़े की तरह चोट करना जानते हैं। यशपाल ने कहीं कहीं भाषा से हथौड़े का काम लिया है तो कहीं कहीं गुदगुदाया भी है। यथा "इस पत्र को सुनकर मैं केवल इतना ही समझ सका कि रानी के मायके में उसकी भाभी, बहन या अन्य कोई प्रसव की महाभयंकर और मुबारिक परिस्थिति में है।" (एक राज़)। लेखक शब्द जाल बुनकर पाठकों को उसमें फँसाता नहीं है अपितु उस जाल से कुछ पकड़ कर पाठकों को देता है।

यशपाल को प्रकृति से, मुख्यतया पहाड़ों से, विशेष अनुराग है। उनकी अनेक कहानियों की पृष्ठभूमि और वातावरण पहाड़ों का है। सम्भवतः उन्होंने ये कहानियाँ वहीं जा कर लिखी हों। 'गुडबाई दर्दे दिल', 'पुरुष भगवान', 'इस टोपी को सलाम', 'पहाड़ का छल', 'हिंसा', 'पहाड़ की स्मृति', 'चित्र का शीर्षक', 'फूल की चोरी', 'एक राज़', '८०/१००', 'ज़िम्मेदारी', 'पराया सुख', 'दो मुँह की बात' आदि कहानिताँ मंसूरी, डलहौज़ी, शिमला, नैनीताल, शिलाँग आदि स्थानों से सम्बन्धित हैं। हरियाली, डूबते सूर्य, फूल, पेड़-पौधों पर यशपाल मुग्ध हैं। वह चाहते हैं कि इस नगरों की दुनिया से कहीं दूर पहाड़ों और झरनों पर चला जाए, जहाँ चारों ओर उपयुक्त प्रकृति की स्वाभाविक शोभा बिखरी हो।

अन्त में कहना चाहूँगा कि यशपाल उन लेखकों में से हैं जो एक बार अच्छी चीज दे कर भविष्य में उससे भी उत्तम कृति देना चाहते हैं, जो कला को उसके शिखर पर देखना चाहते हैं—उस व्यापारी की तरह नहीं, जिसकी एक चीज़ चल निकले तो वह घटिया चीज़ों के निर्माण पर उतर आता है बल्कि उस व्यापारी की तरह, जो प्रत्येक नई चीज़ पहली से अच्छी इसलिए बनाता है कि बाजार में उसकी 'साख' सदा बनी रहे।

सत सोनी

दिल्ली

यशपाल की कहानियों में प्रगतिवादी दृष्टिकोण

कला की दृष्टि से ऊँचे स्तर की कहानियाँ यशपाल ने लिखी हैं पर उनका उद्देश्य केवल मात्र सुन्दर कलाकृति का स्रष्टा होने की आत्म तुष्टि पाना भर नहीं है। वे कहानी को सामाजिक वस्तु मानते हैं और समाज के व्यापक वातावरण को ऐसे ढंग से प्रस्तुत करने में कहानी की सफलता समझते हैं, जिससे पाठक पर कोई प्रभाव डाला जा सके, उसे कोई प्रेरणा दी जा सके। पाठक पर प्रभाव डालने की बात रहते हुए भी यशपाल की कहानियों में वयोवृद्ध लोगों के-से उपदेश नहीं हैं। जीवन की समस्याओं को और घटनाओं को ही ऐसे ढंग से चित्रित किया जा सकता है, जिससे वे प्रेरणादायक बन सकें—उनकी कहानियाँ इस बात का उदाहरण हैं।

जिन समस्याओं को यशपाल की कहानियों में अंकित किया गया है, उनका सम्बन्ध चाहे मजदूरों और मिल मालिकों से हो, किसानों और ज़मींदारों से हो या फिर वेश्याओं और गृहिणियों से हो, नगर से हो या गाँव से, सब के पीछे आर्थिक अभाव प्रायः बीज रूप में विद्यमान रहता है। आर्थिक सम्पन्नता को इतना महत्व देना स्पष्टतया ही जीवन के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण का परिचय देता है।

भौतिक जीवन में विश्वास होना प्रगतिवादी (पारिभाषिक अर्थ में) होने के लिए सबसे पहली कसौटी है। यशपाल की कहानियों के अनेक पात्र आर्थिक अभावों की चक्की में पिसते दिखाई देते हैं। उनकी 'सन्यासी' कहानी का पात्र नरदेव अपने पाँचवें बच्चे के पैदा होने से पूर्व ही अपनी पत्नी को प्रसव पीड़ा में कराहती छोड़ घर से चला जाता है, क्योंकि वह ६० रु० मासिक वेतन में गुजारा नहीं कर पाता। 'नई दुनिया' में कुन्दन लाल माथुर के पिता की मृत्यु का कारण भी पैसे का अभाव है। बेचारा माथुर अपने रोगी पिता के लिए दवाई तक न ला सका। 'आदमी का बच्चा' कहानी में माली का बच्चा सदा के लिए अपना रोना बन्द कर देता है, क्योंकि उसे दूध नहीं पिलाया जा सका और न ही कोई वस्तु खिला कर उसकी प्राण-रक्षा की जा सकी। 'अभिशाप' में पांच वर्ष का बच्चा अपने नवजात भाई का गला घोंट देता है, क्योंकि माँ ने आटे का घोल उसे न देकर छोटे बच्चे को दे दिया। 'आदमी या पैसा' कहानी में 'झरना' ड्राईवर के गन्दे बालों से पसीने की दुर्गन्ध आते रहने पर भी उसकी सेवा करती है, इसलिए कि वह उसे पैसे देता है, जिनसे वह अपना पेट पालती है। ये सब रोटी-कपड़े की समस्या से घिरे पात्र हैं। वे सपरिवार कीड़ों की तरह अपने जीवन को, गन्दी कोठड़ियों में रह कर थोड़ा-बहुत अस्वच्छ अन्न खा कर शारीरिक और मानसिक कष्टों को सहते हुए, बिता देते हैं।

इस बात के लिए दोषी ठहराया जा सकता है समाज को; क्योंकि आज समाज की व्यवस्था ऐसी है कि सारी शक्ति आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कुछ व्यक्तियों के हाथों में है। वे जिस प्रकार चाहते हैं अभाव—ग्रस्त लोगों का शोषण करते हैं।। इसी का नाम पूंजीवाद है, जिसकी व्याख्या करते हुए यशपाल ने लिखा है—

> इस समाज में परिश्रम की शक्ति असहाय है और सब शक्ति पूंजी की ही है। आज का सिद्धान्त है पूंजी की वृद्धि के लिए पूंजी कमाओ। लाला और लाला की बिरादरी के देसी-विदेसी लोग अपने संचित परिश्रम यानी पूंजी के ज़ोर पर दूसरों के उपार्जित परिश्रम को मुनाफे के रूप में छान कर जमा करते जाते हैं। [वो दुनिया, पृष्ठ ११६

इस पूंजीवादी समाज में रहने वाले लोगों को प्रगतिवादियों के अनुसार मुख्यतया दो भागों में बाँटा जा सकता है—एक परिश्रम करने वाले किसान-मज़दूर और दूसरे अपनी पूंजी के बल पर उनके परिश्रम का लाभ उठाने वाले पूंजीपति। 'साहू और चोर' कहानी का नौजवान इसी ओर संकेत करता हुआ कहता है, "धन तो वास्तव में मेहनत करने वाले किसान और मज़दूर ही पैदा करते हैं। शेष सब व्यवसाय उस धन को पैदा करने वाले के हाथों से अधिक से अधिक मात्रा में हथिया सकने की चतुरता ही है। एक तरीका साहू का है दूसरा चोर का।"

मज़दूर वर्ग की दशा का चित्रण यशपाल की कई-एक कहानियों में मिलता है। किसानों का चित्रण न होने और मज़दूरों का चित्रण होने का कारण शायद यह है कि लेखक को किसानों का सम्पर्क प्रायः प्राप्त न हुआ हो जब कि शहरों में रहने के कारण मज़दूरों के जीवन से वे भली-भाँति परिचित रहे हैं। 'नई दुनिया' मिल-मज़दूरों और मिल-मालिकों के झगड़े की कहानी है। मज़दूर मिल की आमदनी में अपना हिस्सा चाहते हैं; मिल-मालिक एक बड़ी मशीन ला कर साढ़े तीन सौ मज़दूरों को नौकरी से अलग कर देते हैं। शेष मज़दूरों ने हड़ताल करदी; मिल के दरवाज़े के आगे वे धरना मार कर बैठ गए। मिल वालों की क्रूरता यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने दरवाज़े के आगे लेटे मज़दूरों पर से लारियां गुज़ार दीं। कहानी में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार पूंजीपति ग़रीबों को आतंकित करके वश में लाने का प्रयत्न करते हैं। इसमें केवल ऊँच और नीच की विषमता ही नहीं है वरन् उस विषमता को दूर करने या बनाए रखने के लिए सन्नद्ध दो वर्गों का संघर्ष भी है।

ऊँच और नीच की विषमता को चित्रित करने वाली एक दूसरी कहानी 'दास धर्म' में एक दास को अत्यन्त करुण परिस्थिति में प्रस्तुत किया गया है। जिस दास की यह कहानी है, उसका नाम दास बनने के पूर्व आन्द्रेकस था और उसकी पत्नी का नाम था दामा। व्यापार के उद्देश्य से जिस काफिले में वे भारत आ रहे थे उसे आन्ध्र के जल-दस्युओं ने लूट लिया। आन्द्रेकस और दामा आन्ध्र राजमहल में सेवा के लिए नियुक्त कर दिए गए। दामा सुन्दरी थी; उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा दिलवा कर महाराज के प्रमोद की वस्तु बनाया गया और आन्द्रेकस ने महाराज के अंगरक्षक की पदवी पा ली। एक रात दामा का नृत्य समाप्त हो चुका था। शराब में मस्त राजा चारपाई पर लुढ़क गया। उसके अंगरक्षक आन्द्रेकस ने अपनी पत्नी दामा को एकांत में पाकर आलिंगन में बांध लिया। महाराज की आँखें झपकीं। यह दृश्य देख कर उनकी आँखों में खून उतर आया—महाराज के प्रमोद की वस्तु को एक दास छुए,

यह कैसे हो सकता है ? परिणाम यह हुआ कि आन्द्रेकस और दामा दोनों को मत्तगज के पाँव तले कुचलवा दिया गया । इस कहानी में पति-पत्नी को विवश दास-दासी के रूप में प्रस्तुत कर यशपाल ने बड़े मार्मिक ढंग से 'स्वामी धर्म' और 'दासधर्म' की विषमता को चित्रित कर दिया है ।

ठीक ऐसा ही मार्मिक चित्रण 'गुडबाई दर्दे दिल' में है । इस कहानी का एक पात्र रणजीत मंसूरी की एक सड़क पर रिक्शा में बैठा हुआ चढ़ाई की ओर रिक्शा ले जाने वाले कुलियों को धीरे रिक्शा चलाने के कारण डाँट बतलाता है । सहसा सांस फूलने से एक कुली सड़क पर गिर गया और पल भर में उसने दम तोड़ दिया । रिक्शासवार रणजीत को सहानुभूति तो क्या होनी थी, उसने रिक्शा का किराया भी न दिया और दूसरी रिक्शा में बैठ कर गन्तव्य स्थान को चला गया । ऐसा दिल है आज पैसे वालों का ! 'शम्बूक' शीर्षक एक दूसरी कहानी में धार्मिक पृष्ठभूमि दे कर भगवान के मुख से यह कहलवा कर कि "स्वामी और ब्राह्मण का वचन ही न्याय है" कहानीकार ने व्यंग्य रूप से उच्चवर्ग के सामर्थ्य की ओर संकेत किया है और साथ ही प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों के प्रति व्यंग्य भी कसा है ।

जीवन में अपना शौक पूरा करने की सामर्थ्य निम्न वर्ग में नहीं है । इसीलिए 'हवाखोर' कहानी में घोड़ेवाला गोबिन्द अपने ग्राहक से कहता है—"मुझे केवल रोटी का शौक है......मैं हवाखोर नहीं ।" गोविन्द के इन शब्दों में भूखे सोने वाले परिवारों का गम्भीर क्षोभ व्यक्त होता है ।

बड़े कहलाने वाले लोग अपने अधीन नौकरों से अपने लिए कितने कुत्सित कार्य करवाते हैं और फिर अवसर पड़ने पर कैसे अपने सेवकों को ही आगे करके फँसवा देते हैं, इसका यथार्थ चित्रण 'नमक हलाल' कहानी में देखने को मिलता है । भदई को राजा साहब की वासना-पूर्त्ति के लिए एक स्त्री उठाने के लिए भेज दिया जाता है । काम कठिन था; उस स्त्री के पति और कुछ दूसरे सम्बंधियों के साथ लाठियों से लड़ाई हुई । भदई ने अपना काम तो पूरा कर दिया पर उसे कई चोटें लगीं और उस स्त्री का पति मारा गया । राजा साहब इस दुष्कर काम के हो जाने से बड़े प्रसन्न हुए परन्तु जब भदई को खून के दण्ड में फाँसी का हुक्म हुआ तो राजा साहब लाचार थे !

ऊपर जिन कहानियों का उल्लेख किया गया है उनके अतिरिक्त भी ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें कई स्थानों पर "भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे" (आदमी का बच्चा) और "पिटने के लिए ही भगवान ने हमें छोटा बनाया है" (भगवान किस के) आदि वाक्य इस बात की घोषणा करते हैं कि जहाँ निम्नवर्ग के लोग अपने छोटेपन से कातर हैं वहां बड़े लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं । यही तो समाज की विषमता है ।

वस्तुतः पिसते रहने में कसूर पिसने वालों का नहीं है; समाज की व्यवस्था का है, जिसे पूँजीपतियों ने अपने काबू में कर रखा है । ऐसी स्थिति को यदि सिर झुका कर स्वीकार कर लिया जाय तो इसका अर्थ होगा कि जीवन की यातनाओं का चक्कर चलने दिया जाय, जिसमें समाज का एक बड़ा भाग—जो परिश्रम कर सकता है, धरती का सीना चीर कर सोना निकाल सकता है—पिसता रहे और मानव-जीवन अधिक से अधिक दुःखमय, निराशामय और शिथिल बनता चला जाय । समाज की इस स्थिति का चित्रण करते हुए यशपाल ने अपनी एक कहानी 'वो दुनिया' में लिखा है—

सामने फुटपाथ पर एक गधा पड़ा रहता है। उसके मालिक धोबी ने उसे बेकार समझ कर छोड़ दिया है; उसी प्रकार भगवान इस संसार से निराश हो चुके हैं। उस गधे के शरीर में कीड़े पड़ गए हैं और उसका शरीर उन कीड़ों के उपयोग के लिए ही हो गया है। इसी तरह इस समाज और संसार में भी कीड़े पड़ गए हैं। ये कीड़े अपना शरीर मोटा करने के लिए समाज को खाए जा रहे हैं।

इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि समाज विरोधी परिस्थितियों का मुकाबिला करे। इस बात को 'हवाखोर' कहानी का पात्र नारायण इस तरह कहता है—"प्रकृति अपनी सब शक्तियों से मनुष्य के प्राणों पर निर्मम आघात करती है फिर भी मनुष्य अपने जीवन की रक्षा करता ही है। ऐसे ही समाज की परिस्थितियाँ मनुष्य के मनुष्यत्व को हर कदम पर प्रताड़ित करती हैं फिर भी उसे मनुष्य बने रहने का यत्न करना है।"

यह यत्न किस प्रकार का होना चाहिए, इसके लिए अलग-अलग धारणाएँ हो सकती हैं। इस सम्बंध में एक निश्चित मत अध्यात्मवादियों का है, जो इस संसार की यंत्रणा से बचने के लिये इस संसार को भ्रम समझ इससे आँख फेर लेने का उपदेश देते हैं। यह निश्चय ही जीवन की वास्तविकता से पलायन है और अपनी असमर्थता की मूक स्वीकृति है। प्रगतिवादी इस मार्ग का अनुगामी नहीं। क्यों नहीं, इसका उत्तर यशपाल ने अपनी कहानी 'वो दुनिया' में इस प्रकार दिया है—

> यदि जीवित रहना है तो जीवन को भ्रम समझ कर उसके प्रति ईमानदारी कैसे निभाई जायेगी ? जीवन के संघर्ष में पराजय स्वीकार कर आत्मा रूप में 'अहं' को कैसे बलवान बनाया जा सकेगा ? यदि मैं ऐसा करने का यत्न करूँ भी, जीवन के सत्य को माया भ्रम के आवरण में ढँक कर इस संसार से मुक्त हो भाग जाने में ही अपनी सफलता समझ लूँ, तो इससे 'मनुष्य' का कल्याण किस प्रकार हो सकेगा ?...संसार को दुखमय समझ उससे मुँह मोड़, उससे मुक्ति पाने की चेष्टा करना व्यक्तिगत उपाय है। में यदि वैराग्य की अफीम खा कर इस दुनिया से मुक्त भी हो जाऊँ तो शेष संसार तो मेरे साथ ही समाप्त हो नहीं जायेगा ?

इसका अर्थ यह है कि समाज को सामूहिक रूप से सुधारने की आवश्यकता है और उसके लिए सामूहिक प्रयत्न अपेक्षित हैं। यही प्रगतिवादी दृष्टिकोण है और इसी की अभिव्यक्ति यशपाल की अनेक कहानियों में मिलती है। हमारे दुःखों का मूल कारण एक प्रकार से यही है कि हम अपने आपको केवल व्यक्ति के नाते मानते हैं। यह व्यक्ति किसी समष्टि का अंग है, इस ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। 'काला आदमी' कहानी में कांस्टेबल के ये शब्द "कोई अपने को गाली दे सुसरे का सिर फोड़ दें ! काले आदमी की क्या गाली ?" इसी बात को व्यक्त करते हैं।

सामूहिक आँदोलन करके प्राप्त क्या करना है, इस विषय में 'इसी सुराज के लिए' कहानी का क्राँतिकारी कामरेड निरंजन कहता है, "हम चाहते हैं सब लोगों के लिए बाइज्जत रोजी कमाने के लिए बराबर मौका। सब लोग मेहनत करने का मौका पाएँ और अपनी इज्जत की कमाई खाएँ। पेट भरने के लिए किसी को अपना जिस्म बेचना न पड़े। मेहनत करने वालों का पंचायती राज हो।" निरंजन के ये शब्द स्पष्ट रूप में साम्यवादी या समाजवादी विचारधारा को व्यक्त करते हैं।

प्रगतिवादी लेखकों की लेखनी प्रायः समाज के दलित, शोषित और पीड़ित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हुई इसी वर्ग के कठघरों में बन्द हो जाती है। इन कठघरों से बाहर भी कोई स्थान है, जहाँ प्रकृति का स्वच्छन्द वातावरण है और जहाँ रहने-वाले लोग उन्मुक्त और मस्त जीवन बिताते हैं, इस ओर उनका ध्यान प्रायः नहीं जाता। यशपाल जी के सम्बंध में ऐसी बात नहीं है। उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं है। इस बात का प्रमाण यह है कि जहाँ उन्होंने निम्नवर्ग के लोगों, उनके गन्दे घरों और बच्चों को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है, वहाँ उच्चवर्ग से सम्बन्धित पात्रों की भी कमी नहीं। वे पात्र केवल इसलिए नहीं लाए गए कि उनको निम्नवर्ग के पात्रों की तुलना में लाकर उनकी कुत्सित और घृणित बातें ही दिखाई जायँ और इस प्रकार पाठक को उनके विरुद्ध भड़काया जाय। 'चार आने', 'शिकायत' और 'शहन-शाह का इन्साफ' आदि कहानियों के उच्चवर्गीय पात्र ऐसी बातों से सर्वथा मुक्त हैं। इनके जीवन को कहानीकार ने स्वाभाविक रूप में ही प्रस्तुत किया है। इसका अर्थ यह है कि यशपाल का उच्चवर्ग के लोगों से विरोध नहीं बल्कि उनकी बुराइयों से है। जहाँ लेखक को ये बुराइयाँ दिखाई देती हैं, वहीं उन्हें वह यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर देता है और फिर अपनी कहानी के अन्दर पात्रों के माध्यम से उन पर चोट भी कर देता है। वस्तुतः प्रगतिशीलता का अर्थ ही यह है कि जो बातें—ग़लत-धारणाएँ और रूढ़ियाँ—समाज को जर्जरित कर रही हैं, उनको समाप्त करके नवीन और स्वस्थ दृष्टिकोण का सूत्रपात किया जाय।

प्रगतिवादी साहित्यकारों पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है—यशपाल पर यह आरोप लगाने वाले लोगों की संख्या भी कम नहीं है—कि वे यथार्थ के नाम पर अपनी रचनाओं में अश्लील वातावरण प्रस्तुत करने में मानसिक संतोष की अनुभूति करते हैं। यशपाल के विषय में यह कहना कि अश्लील चित्र उपस्थित करने में उन्हें प्रसन्नता होती होगी, ठीक नहीं जँचता, क्योंकि जहाँ तक कहानियों का सम्बन्ध है उनमें प्रायः अश्लील वातावरण का अभाव है। वातावरण को कहीं भी यशपाल ने सहज श्लीलता के स्तर से गिरने नहीं दिया। हाँ, आदर्शवाद की झोंक में अस्वाभाविक बनाने का प्रयास भी उन्होंने नहीं किया। इसी कारण उनकी कहानियाँ रोचक एवं स्वाभाविक हैं।

कहानियों के क्षेत्र में यशपाल की लेखनी ने जो साधना की है वह वास्तव में स्तुत्य है। एक स्वस्थ, स्वाभाविक मानवीय भावधारा को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रकट किया है और इस तरह उनकी कहानियाँ आज के युग-जीवन का सही प्रतिनिधित्व करती हैं।

पटियाला

कृष्ण कुमार
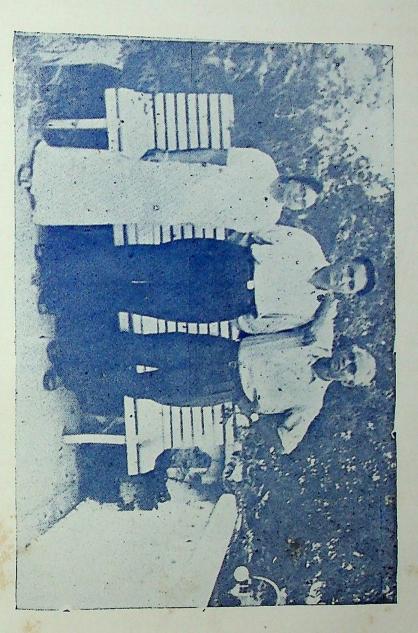
श्रीमती प्रकाशवती पाल, अलीकुरबानोव-डिप्टीमिनिस्टर ताजिकिस्तान और श्री यशपाल कृष्णसागर के किनारे
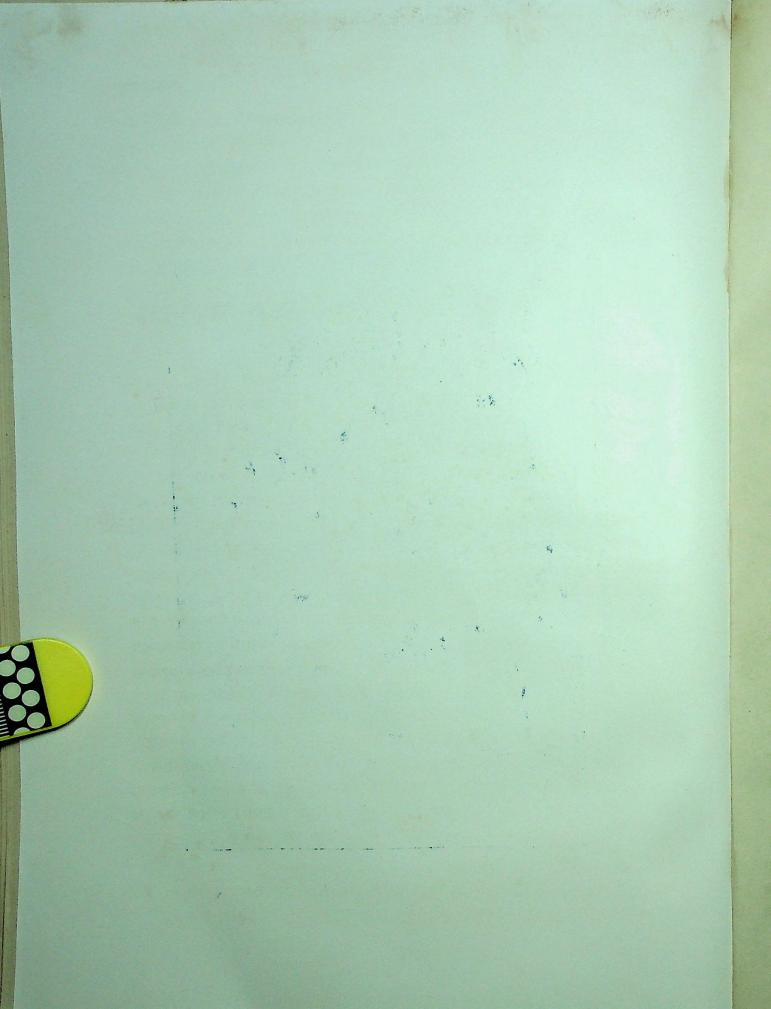
मनुष्य जीवन का चितेरा-कहानीकार यशपाल

पत्थर से फूट कर निकलने वाली जलधारा को रूप परिवर्तन के अनुसार नदी, नद आदि का नाम दिया जाता है, परन्तु अपने प्रति दिए गए इन नामों की सार्थकता-सिद्धि के लिये उसे किन-किन कठिन मार्गों से होकर आगे बढ़ना पड़ा है, अपने जीवन में क्या-क्या कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं, इसका हम केवल अनुमान ही कर सकते हैं और यदि कहीं अनुमान में सफल हो जाते हैं तो हमारे मुँह से एक बार ही आनन्दोल्लास के शब्द निकल पड़ते हैं। ठीक इसी तरह श्री यशपाल के हम कई भिन्न भिन्न रूप देखते हैं—क्रांतिकारी, उपन्यासकार, निबंधकार, नाटकटकार, कहानीकार आदि, परन्तु इस स्थिति तक पहुँचने के लिये उन्हें किन-किन परिस्थितियों से जूझना पड़ा है इसका भी हम अनुमान ही तो कर सकते हैं। परन्तु जब हम यशपाल के इन साहित्यिक स्रोतों के मूल में एक मनुष्य का रूप देख पाते है तब उसी एक झलक से हम अपने को कृतकृत्य एवं सफल समझते हुए उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। वास्तव में यशपाल ने जीवन की कितनी ही अछूती और असामान्य समस्याओं को देखा और चित्रित किया है, उन सबके मूल में एक मनुष्य का रूप ही काम करता चला आया है। यह सब कुछ हम उनकी कृतियों में प्राप्त कर सकते हैं और वह भी इसलिये कि यशपाल उस पत्थर से फूट कर निकलने वाली जलधारा की तरह अनेक नाम धारण करते हुए भी अपने 'मनुष्य' से दूर नहीं गए हैं; या कह लीजिए कि उन्होंने अपने निज के मनुष्य को 'मनुष्य' से दूर नहीं जाने दिया। जीवन के मूल-भूत सिद्धान्तों और उनके परिणामों तक ही तो मनुष्य की दृष्टि जा सकती है, जीवन में क्या सत्य है और क्या असत्य, इसकी मीमांसा करने का साहस या अधिकार मनुष्य के वश से बाहर की बात है। वह एक निश्चित-सी धारणा बना कर, किसी एक कल्पित विश्वास के आधार पर चाहे किसी भी वस्तु को सत्य या असत्य मानने और मनवाने का दावा भले ही करता रहे, परन्तु उसका यह कल्पित विश्वास या धारणा भी तो स्थिर नहीं। आज का सत्य कल के जीवन का असत्य बन जाता है और कल का असत्य आज का या भविष्य का सत्य भी बन सकता है। मनुष्य जीवन की इयत्ता यहीं तक है। इसीलिये लेखक यशपाल अपने निज के मनुष्य द्वारा मनुष्यों में ही हिलमिल पाया है, उनके साथ हँसा है, रोया है और गाया है।

यशपाल अपने उपन्यासों और निबंधों आदि में भी मनुष्य जीवन के दर्शन करवाते हैं, परन्तु मेरा ध्यान उनकी कहानियों की ओर है जिनमें मैं उन्हें मनुष्य-जीवन का दर्शक देख पाता हूँ। वह दर्शक यथार्थ की

धरती पर अपने डग बढ़ाता आया है। यदि कहीं कहीं वह थोड़ा उड़ा भी है तो उस पक्षी की तरह जो थोड़ी दूर अपना दाना-पानी लेने चलता है परन्तु घोंसले का ध्यान रख कर। वह हरी-भरी धरती छोड़ कर नील-गगन के चक्कर नहीं काटता। इसलिये यशपाल के उपन्यासों की तरह कहानियों में भी वही संदेश है, वही पुकार है।

मनुष्य के किस रूप को यथार्थ समझा जा सकता है? जिन लोगों के बाह्य रूप को हम देख पाते हैं क्या उनके आंतरिक रूप को जानने में हम धोखा तो नहीं खाते? अवस्था-विकार से शरीर-विकृति हो सकती है तो परिस्थतियों से मन की विकृति भी हो सकती है। इसीलिये यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि किसी भी व्यक्ति के जीवन की यथार्थता कहाँ है? हाँ कलाकार अपने कौशल से उसका थोड़ा अस्पष्ट-सा आभास हमें दे देता है। यह भी हम तभी जान पाते हैं यदि हमारी दृष्टि भी सूक्ष्म हो। यशपाल ने अपनी कहानियों में ऐसे ही कुछ संकेत दिए हैं जो बरबस पाठक को उन अस्पष्ट-सी रेखाओं के भीतर झाँकने को बाधित करते हैं, जिन में मनुष्य का ढाँचा हैं, स्पन्दन है और गति है। यशपाल की दृष्टि मनुष्य जीवन की उस सब से बड़ी समस्या की ओर गई है, जिसे हम 'भूख' कहते हैं। इस एक 'भूख' शब्द से मेरा अभिप्राय इसके व्यापक अर्थ में हैं, जो कहीं अतृप्त लालसाओं का लिबादा ओढ़ कर, उसकी पूर्ति के लिये अपनाए गए साधनों के रूप में प्रकट होती है और कहीं पद की लालसा के रूप में। किसी भी बदले की भूख, बैर की भूख, संपत्ति की, प्यार की, अधिकार की, संहार की या फिर आहार की—कहने से अभिप्राय सभी तरह की भूख के रूप में प्रकट होने वाली भूख ही तो समस्या है इस इन्सान की, और इन्सान से भी आगे बढ़ कर देवता कहलाने वाली सत्ता की। इसी भूख के कारण ही तो देव-दानव युद्ध हुए, राम-रावण शक्ति का संघर्ष हुआ और महाभारत का संग्राम हुआ।

यशपाल इसी भूख के चित्र कई रूपों में पेश करते हैं। कहीं वकील के माध्यम से कहीं सेठ के माध्यम से, कहीं राष्ट्रीयता के माध्यम से तो कहीं शरणार्थी, चोर बाज़ारी, और वफ़ादारी के माध्यम से। 'महादान', 'वफ़ादारी की सनद' और 'कम्बलदान' में मानव-जीवन की यह भूख कई रूपों में उपस्थित होती है। 'महादान' में टल्ली मल का एक ओर चावल खरीद कर चोर बाज़ारी में पैंसठ-सत्तर रुपए मन के भाव से बेचने की भूख और दूसरी ओर अकाल के मारे हुए गरीब लोगों में एक बोरी चना बाँट कर दानी बना रहने की भूख ही तो काम करती दिखाई देती है। अकाल से पीड़ित धड़ाधड़ मर रहे हैं, लोग बिना कफ़न और लकड़ी के नंगी लाशें छोड़ कर जा रहे हैं, ऐसी दुरवस्था में टल्लीमल का श्मशान में लकड़ियों का ढेर लगवा कर मुनीम से यह कहना कि "उनके होते हुए किसी 'बेचारे' की मिट्टी की दुर्गति क्यों हो" भले ही इसमें कितना भी व्यंग्य छिपा हो, चाहे नैतिकता या आदर्श का पतन व्यंजित हो, परन्तु मनुष्य-जीवन की भेड़ के रूप में भेड़िया बने रहने की प्रवृत्ति ही तो अधिक स्पष्ट झलकती है।

मनुष्य का एक रूप यह भी है कि वह किसी जीवन के लिये दूसरे का विनाश भी कर सकता है; वह फूलों को मुर्झाता देख कर आँसू बहा सकता है और अपने निज के पुत्र के मरने पर हँस भी सकता है। इन सब में बीज रूप में छिपी रहती है वही भूख। 'वफ़ादारी की सनद' में अंग्रेज़ों के प्रति विद्रोह होने की ख़बर मिलने पर स्टेशन पर गाड़ी चढ़ने के लिये तैयार वंशीधर आने वाली भीड़ का नेतृत्व करने

लगता है। इसीलिये न कि उसकी राष्ट्रीयता प्रदर्शन की भूख प्रबल थी परन्तु इस एक भूख के पूरा होते ही दूसरी चमक उठी—अंग्रेज़ी सिपाही आए, गाँव भर को तंग किया तब वंशीधर की कायरता अपने पूर्वजों की इज्ज़त का बुर्क़ा ओढ़ कर अंग्रेज़ों की वफ़ादारी का रूप ले बैठी और इसी वफ़ादारी की भूख में वंशीधर ने गफ़ूरा मतई और कान्ह सिंह को पकड़वा दिया। मनुष्य-जीवन का एक पहलू यह भी तो है ही। यह अलग बात है कि कहीं वह अपनी इस भूख को पूरा करने के लिये साधारण-सी परिस्थिति खोजता है और कभी स्वयं परिस्थितियों के आ उपस्थित होने पर भी उसे दबाए रखता है, उन से टक्कर लेता है। यशपाल मनुष्य-जीवन के इस सिद्धान्त को उपरोक्त कहानी में अच्छी तरह झलका पाए हैं। 'कम्बलदान' में प्रशंसा की भूख मिसेज़ बलूरिया को कम्बलदान के लिये बाधित कर देती है, दूसरी ओर सेठ तोरिया वाला को अपनी कोठी पर कंबल न बाँटे जाने से उत्पन्न क्षोभ से बदला लेने की भूख पुलिस को, जिस किसी भी तरह वहाँ भेज कर कम्बल लेने वाले गरीबों को पकड़ कर शरणालय भेज कर शांत होने में लगी थी। मनुष्य-जीवन के इन अनोखे और परस्पर विरोधी चित्रों में रंग भरने का काम यशपाल ने अच्छी तरह किया।

मनुष्य जीवन की गाड़ी के दो पहिये स्त्री और पुरुष में एक नैसर्गिक आकर्षण ही तो कील की तरह फँस कर उन्हें संसार-यात्रा के योग्य बनाए हुए है। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि इसी स्वाभाविक आकर्षण को समाज अपने कल्पित अनुशासन या नियमों के आवरण में छिपा रखने का प्रयत्न करता है। सोये हुए ज्वालामुखी की तरह मनुष्य-जीवन की यह यथार्थ प्रकृति सत्य का आह्वान सुन कर जाग पड़ती है, मचल पड़ती है, उस समय वह समाज द्वारा निर्मित सभी तर्क, ज्ञान अथवा नीति के कृत्रिम बंधन तोड़ कर इठलाती नदी के प्रवाह की तरह अपना रास्ता आप बना लिया करती है। इस चुंबक और लोहे के बीच सूखे ज्ञान या अंधविश्वास की लकड़ी की दीवार खड़ी करने वाले उस प्रवृत्ति को यौन-वासना का नाम देते हैं और इसे मनुष्य जीवन के लिये घातक सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु यह निश्चित है कि सृष्टि का मूलभूत सिद्धान्त यही है। जीवन का स्रोत भी यही आकर्षण है। यशपाल ने अपनी कहानियों में जीवन के इस स्रोत का अवरोध आत्महत्या माना हैं। जाति-पाँति और ऐसी ही दूसरी बातें तो प्रबल आकर्षण के इस मदमस्त हाथी को बाँध सकने में कच्चा धागा ही बन पाती हैं, यह सब कुछ यशपाल अच्छी तरह जानते हैं।

'ज्ञान दान' का ब्रह्मचारी नीड़क एक ओर चिरन्तन, अविनाशी सुख की प्राप्ति पर प्रवचन करता सुनाई देता है—"मनुष्य जीवन पानी के बुलबुले की तरह संस्कारों की वायु के स्पर्श से ब्रह्म के अपार सागर में उठने वाला सारहीन जल-राशि का अंश मात्र है। इस बुलबुले का फिर से जल में मिल जाना ही मुक्ति है, चिर सुख है, परमपद है। यह सब कुछ वैराग्य और समाधि से संभव है, और वैराग्य या समाधि के लिये वृद्धावस्था की प्रतीक्षा करना अज्ञान है, मोह है, इसके लिये यौवन ही उपयुक्त है।" इसके साथ ही दूसरी ओर ब्रह्मचारिणी सिद्धि को एक बार देख लेने के बाद से नदी के किनारे बैठे उठती हुई लहरों के साथ-साथ मन में उठती हुई तरंगो के बहाव में बहते नीड़क को इस शाश्वत नियम स्त्री-पुरुष के आकर्षण की ओर चिन्तन करता पाते हैं—

"यह पशु-पक्षी, यह मछलियाँ, यह जीव-जन्तु अपने जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होना क्यों नहीं चाहते? इनका आत्मा परमात्मा से मिलना नहीं चाहता? क्या यह ब्रह्म का अंश नहीं? हो

सकता है यह अज्ञान और भ्रम के कारण दुख को दुख ना समझ पाते हों। शायद ये सभी वासना के दास हैं। परन्तु यदि वे वासना के दास हैं तो उनकी यह वासना उतनी ही स्वाभाविक है जितना कि उनका शरीर, ब्रह्म का अंश। फिर इनका शरीर या अस्तित्व भी तो ब्रह्म की इच्छा के अधीन है, वे उसकी इच्छा के विरुद्ध जा ही नहीं सकते, फिर यह मनुष्य ही उस ब्रह्म की इच्छा के विरुद्ध जाने का साहस क्यों करता है ? क्या मनुष्य की प्रवृत्ति उसकी इच्छा या वासना यह सब कुछ भी प्रकृति और ब्रह्म का विधान नहीं।''

इसी समय नीड़क ने देखा था कि एक चील का जोड़ा अपने नैसर्गिक व्यापार में लगा था, और तभी से वह जीवन के उद्देश्य-चिन्तन में लीन हो गया। इसके बाद नीड़क ने जीवन के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए सिद्धि को उत्तर दिया था, ''जीवन के वंशानुक्रम को बनाए रखना ही सृष्टि का सबसे प्रधान कार्य है'' और फिर सचमुच ही नीड़क और सिद्धि इस प्रधान कार्य की सुव्यवस्था में प्रवृत्त हो गए थे। भला क्यों ? इसीलिये न कि यह नियम शाश्वत है, चिरन्तन है। नीड़क के मस्तिष्क में उठने वाली 'क्यों' ने इस आकर्षण का रहस्य सामने लाकर उसे वास्तविक जीवन की ओर प्रवृत्त किया। इसी प्राकृतिक आकर्षण को मनुष्य जीवन में एक विशेष स्थान देते हुए यशपाल ने 'भाग्यचक्र' की सृष्टि की है। अमला और नन्द सिंह के आकर्षण में प्रांतो की सीमाएँ बाधक नहीं, जाति-पाँति या समान धर्म आदि कुछ भी तो बाधक नहीं। वह तो पुकार है मनुष्य जीवन की। बंगाली होते हुए भी पंजाबी नन्द सिंह से अमला ने प्यार किया। उसके साथ भागने तक का बीड़ा उठाया, परन्तु कृत्रिम बंधनों के सूखे काठ की दीवार इस चुंबक और लोहे के बीच आकर उन्हें इस नैसर्गिक आकर्षण से रोक लेती है चाहे थोड़ी देर के लिये ही सही। अमला और नन्द सिंह को भी इसी ऊँच-नीच व्यवस्था ने पृथक् कर डाला, चाहे उसके इस परिणाम के साथ-साथ अन्य परिणाम भी सामने आये परन्तु एक बात तो निश्चित है कि मनुष्य-जीवन की इस शाश्वत धारा का वेग चलता रहा है और चलता रहेगा।

मनुष्य-जीवन में एक ओर सबसे बड़ी और सबसे छोटी चीज़ है, दुर्बलता। यह दुर्बलता मन की, शरीर की, पैसे की, रूप-रंग, आकार और आचार सभी तरह की हो सकती है। परिस्थितियों के कारण इसकी संज्ञाएँ भिन्न भिन्न हो सकती हैं, परन्तु उनका मूल रूप वही रहता है। इसी का नाम बदल कर हम मजबूरी भी कह सकते हैं। परिस्थितियों के ताने-बाने में उलझा कर यही मजबूरी कभी कभी मनुष्य से वह काम करवा देती है जिसे देवता या राक्षस भी नहीं कर पाते। आज का युग तो है ही मजबूरी का। आज के मनुष्य का जीवन उसकी ही दुर्बलताओं के ढाँचे पर खड़ा परिस्थितियों की अनुकूल या प्रतिकूल स्थिति में उसे ही पुकारता चला आ रहा है, इसीलिए वह मनुष्य 'मनुष्य' है केवल इन्सान है। यशपाल की कहानियों में हमें इस दुर्बलता या मजबूरी का बहुत व्यापक रूप मिलेगा, परन्तु यहाँ दो चार कहानियों से ही काम चल सकता है।

'दुख का अधिकार' में फुटपाथ पर खरबूज़े बेचती स्त्री के प्रति लोगों की घृणा अनेक तीखे और व्यंगपूर्ण शब्दों में प्रकट होती हैं, क्योंकि कल उसका जवान लड़का खरबूजे तोड़ता मर गया, और आज वह उन्हीं खरबूज़ों को बेचने बाज़ार में ले आई। इससे किसी का धर्म टूट सकता है, किसी का ईमान बिगड़ सकता है, मगर कौन जानता है उस बूढ़ी मां के हृदय में उठने वाले ज्वार-भाटे को, जो इकलौते

बेटे की मृत्यु के बाद उसके बच्चों और बीमार बहु के लिए दवा-दारू और भूख के कारण उठ खड़ा हुआ है ? कौन जानता है कि उसकी मजबूरी क्या है ? उस राख की ढेरी के नीचे किस चिता के अंगारे छिपे पड़े हैं ? शायद कोई नहीं । क्योंकि दूसरी ओर भी तो धर्म की मजबूरी है, ईमान की मजबूरी है, जाति की, समाज की और रूढ़िवाद की मजबूरी है ।

'गवाही' में ज्ञानचन्द्र भ्रष्टाचार के विरोध में होता हुआ भी, रात के समय स्त्री के साथ दूसरा शो देखकर लौटते हुए कोई लफंगा समझा जाने के कारण या जान बूझ कर पुलिस द्वारा लफंगा समझ लिए जाने पर स्त्री-सहित थाने ले जाया जाता है और वहाँ उसे रिश्वत के तौर पर दो अंगूठियाँ देनी पड़ती हैं । यह इसीलिये न कि वह मजबूर है, सामाजिक बंधनों से वह दुर्बल है अपनी पुकार जनता तक पहुँचाने के लिये । शायद उसके दिल में भी तूफ़ान मचता है, विद्रोह की आँधी उठती है । वह भी चाहता है इस अन्यायपूर्ण शासन को बदल दिया जाय परन्तु न जाने कौन कौन-सी मजबूरियाँ उसे दाएँ-बाएँ से घेर कर वैसा न करने के लिए संकेत करती रहती है ? आज हर मनुष्य के जीवन में ऐसी ही तो मजबूरियाँ हैं जो उसके हृदय में उठने वाली चीख़ को ओठों तक लाकर बन्द कर देती हैं । वह घुट घुट कर मर जाना चाहता है, इसलिए कि वह दुर्बल है, मजबूर है ।

'आबरू' में शिवनाथ एक स्त्री द्वारा सिगरेट पिलाने का अनुरोध करने पर उसे न जाने क्या-क्या समझ बैठता है—कुलटा, वेश्या—परन्तु उसकी भी कुछ मजबूरियाँ हैं, कुछ मानव-जीवन की दुर्बलताएँ हैं, जो उसे घृणित कहे जाने वाले पथ पर घसीट लाई हैं । हाहाकार तो उसके मनमें भी उठता है पर उसे कौन देख पाता है ? भावों का उतार-चढ़ाव उसे भी झिंझोड़ता है परन्तु उसने भी जीवन बिताना है । इन 'अनमोल' प्राणों को लेकर रहना है । इन्हीं मजबूरियों में तो उसका अपनापन छिपा मिलता है । 'भगवान का खेल' में भी ऐसी ही मजबूरियाँ हैं जो एक नारी को नौकर होने और परिस्थितियों के कारण नौकरी छोड़ने के लिए बाधित करती हैं । आज का मानव-जीवन खेल रहा है एक खिलौना बनकर इन मजबूरियों के हाथ में कठपुतली-सा, किसी भी परिस्थिति की डोर में बँधा बंदर-सा । वह लहरों की तरह उठकर समय की चट्टान से टकरा जाना चाहता है, आगे बढ़कर किनारा तोड़ देना चाहता है । परन्तु लाचार है, परिस्थितियों का वेग उसे कहीं से कहीं ला पटकता है । यशपाल इस रहस्य को जानते हैं, समझते हैं और चित्रित कर उसे दिखा देना चाहते हैं मनुष्य के जीवन का वास्तविक चित्र, उसकी वास्तविक तस्वीर ।

मनुष्य जीवन में 'अहं' का महत्व भी कम नहीं । न जाने यह अहंभावना सृष्टि के किस क्षण से इस मानव के साथ लिपटी चली आ रही है ! भले ही इसका रूप सात्विकता के पर्दे में छिपा रहे या धर्म के दम्भ में परन्तु एक निश्चित तथ्य के अनुसार यह इन्सान को इन्सान बनने के लिए प्रेरित करती रहती है । मानव परास्त नहीं होना चाहता । वह जानता है कि परिस्थितियों की टक्कर सहनी पड़ेगी, पता नहीं उसमें उसकी अवस्था क्या हो; फिर भी वह संघर्ष करता है, उनसे लड़ता है—जीवन के लिए, अपने अस्तित्व के लिए । यशपाल ने अपनी कहानियों में जीवन के इस शाश्वत संदेश की सशक्त अभिव्यक्ति की है । 'कुछ समझ न पाया' में व्यास की अहंभावना की टक्कर है उर्मिला के 'अहं' से । उर्मिला के प्रति कुछ व्यक्त किए गए भावों से उर्मिला का 'अहं' चोट खाए साँप की तरह फुफकार उठता

है। भले ही बाद में उसका रूप कोमल बन गया हो, परन्तु रहा वह उस के साथ ही है। 'साग' नामक कहानी में यशपाल ने इसी 'अहं' को जाति-गत घृणा और सत्ता-गत घृणा के रूप में चित्रित करने का यत्न किया है। अपने देश या स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले राष्ट्रीय विद्रोही की लाश को ज़मीन में गाड़ कर उस पर साग उगा कर शासकों के भोजन के लिए परोस देने की बात में कुटिल मनुष्य के हृदय में छिपे घृणित राक्षसी अभिमान की झाँकी प्रस्तुत की गई है।

किसी भी काम को नीच कहें अथवा उच्च, मानव के साथ चिपटी हुई यह 'अहं' की भावना सदा उसे उस ओर प्रवृत्त करती है। महाभारत में दुर्योधन के जल में थल और थल में जल का भ्रम खा जाने पर द्रौपदी की हँसी क्या थी? और भरी सभा में द्रौपदी के वस्त्र उतार कर उसे नंगा करके देखने-दिखाने की बात में क्या था? यही 'अहं' ही तो था। दूसरी ओर लाचार बैठे पाण्डवों की मौन मुद्रा में वही ऊपर कही मजबूरियाँ ही तो छिपी थीं। इसके साथ ही बाद में कुरुक्षेत्र के मैदान में न्याय और अन्याय का बहाना करके दो भाइयों के परस्पर युद्ध में यही अहं तो नंगा हो कर नाच उठा। 'कामायनी' का मनु श्रद्धा से रूठ कर चला गया। इड़ा से भी उसने अधिकार की बात कही। प्रजा से भी उसे जूझना पड़ा, इसलिए न कि वह चिपटी हुई अहं' की भावना उसे कुछ दूसरी बात नहीं करने देती थी इसी भावना को यशपाल ने अपनी कहानियों में दर्शाया है।

रूस के प्रसिद्ध लेखक 'गोर्की' का विश्वास था—मनुष्य की आत्मा में ईश्वर का अस्तित्व है, दूसरे शब्दों में मनुष्य स्वयं ईश्वर है। कानून मनुष्य से नीचे की वस्तु है; यह धर्म और जाति-पाँति का भेद भाव 'मनुष्य' की प्रतिस्पर्धा में हल्के हैं, ओछे हैं। यशपाल अपनी कहानियों में मनुष्य की इसी परिभाषा को व्यक्त करते हैं। उनके संदेश में मनुष्य-जीवन को अपने अन्तर्जगत और बाह्य जगत का स्वमी बनकर आगे बढ़ने की पुकार है। कामायनी का मनु देव सृष्टि के ध्वस्त खंडहरों पर फिर से श्रद्धा के सहारे एक नई जीवन सृष्टि का निर्माण करने में सफल होता है। चाहे उसे कितनी भी उलझनें आती हैं परन्तु अन्त में उसके उस 'मनुष्य' की विजय होती है, जो हिमगिरि से भी ऊँचे आसन पर बैठा है। यशपाल भी इसी 'मनुष्य' का चित्रण करना चाहते हैं। मानव प्यार चाहता है, मगर बाह्य परिस्थितियों की चट्टान उसे रोकती है। परन्तु यह सब क्षणिक है, अंतिम विजय मनुष्य की है।

किसी भी युग का कलाकार अपने युग की ज्वलंत समस्याओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह चारों ओर के धुँधले वातावरण में छिपे उस मनुष्य की, उसकी मनुष्यता की मशाल लेकर आगे बढ़ता है। वह अपने युग की समस्याओं का जो समाधान देता है वह किसी भी महान् राजनीतिज्ञ के समाधान से अधिक गहरा, अधिक स्थायी और अधिक सम्पूर्णता लिए होता है। इसीलिए उसे लड़ना पड़ता है—समाज से, समाज की परिस्थितियों से, न्याय और अन्याय के जाल से, सम्भव-असम्भव और उचित-अनुचित से। यशपाल ने अपनी कहानियों में इसी तत्त्व को अपनाया है। वह कल के मनुष्य-जीवन के लिए निर्मित उद्भावनाओं को अपने 'क्यों' के तर्क से छिन्न-भिन्न कर देना चाहते हैं। वह पुराने मापदण्ड को इस 'क्यों' से बदल देना चाहते हैं; और अपनी कहानियों में उनका यह प्रयत्न स्पष्ट ही झलक पाता है।

हमारी आज की पीढ़ी मनुष्य-जीवन की यात्रा की एक कड़ी है, परन्तु हम उस युग में अँगड़ाई ले रहे हैं, उस युग में कदम उठाना चाह रहे हैं जबकि अभी पुरानी दुनिया मरी नहीं और भविष्य की दुनिया के ढांचे पर अभी मांसलता या परिपुष्टि के कोई चिन्ह नहीं दीख पड़ रहे। हमारे पीछे वह मद्धम सा प्रकाश है जो मिटने को है और हमारे सामने वह सूर्य का प्रकाश है जो अभी भविष्य की परिस्थितियों की चट्टान के पीछे से पूरी तरह चमक नहीं पाया। हमारा अतीत बूढ़ी और शांत दृष्टि से 'यथापूर्व' बने रहने की बात कहता है, परन्तु भविष्य उस प्राचीन को—जिसमें मनुष्य को 'मनुष्य' न समझा जाकर कुछ और समझा गया—ध्वस्त कर अपनी ओर बढ़ने का संकेत करता है। स्वर्ग के नंदन वन के देवताओं की मृत्यु हो रही है और खेतों-खलिहानों के देवता झाँक रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में साहित्य हमें जिस जीवन का दर्शन करवाना चाहता है निश्चय ही वह मनुष्य जीवन है। इसे यशपाल ने एक कलाकार के नाते अच्छी तरह पहिचाना है, परखा है। अतीत और भविष्य के दानव और देवता के युद्ध में उलझे इस मनुष्य को मनुष्य रखने का प्रयत्न यशपाल की कृतियों में पूरी तरह मिलता है। उनके उपन्यास, निबंध और कहानियाँ सभी इसी ओर संकेत कर रहे हैं।

पटियाला

ओंप्रकाश 'आनन्द'

यशपाल की कहानियों के नारी-पात्र

प्रगतिशील लेखक यशपाल की लेखनी ने सदैव समाज के उन वर्गों का प्रतिनिधित्व किया है जो सदा पीड़ित और पददलित रहे हैं। विशाल शोषित समाज का एक अंग है—युग-युग के अन्याय और अत्याचार की शिकार, प्रेम और ममता की अवतार नारी। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" की उक्ति प्रशंसनीय है किन्तु नारी के वास्तविक जीवन से उसकी संगति कब थी ? कौन जाने ! इसीलिए यशपाल की कहानियों में अन्याय और अत्याचार की शिकार नारी के दर्शन होते हैं। नारी के प्रति लेखक की सहानुभूति जहाँ-तहाँ उमड़ आई है। भोली-भाली सरल ग्राम-बालाओं से लेकर नगर की सुशिक्षित और चतुर स्त्रियों तक की समस्याओं का अंकन उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। यों यशपाल के नारी पात्रों में विविधता होने के साथ साथ एक महान साम्य भी है—नारी हृदय का साम्य—जो छोटे-मोटे अन्य भेदों को दूर कर उनके शाश्वत रूप को प्रस्तुत करता है।

निर्बल को जीवित रहने के लिए एक सबल सहारे की आवश्यकता होती है। इसीलिए लता तरु के गले लिपटी है; सरिता सागर का सम्बल पाने के लिए मचलती है। तरु के गले लिपट कर लता का अपना स्वतंत्र अस्तित्व कुछ भी नहीं रहता; सागर में मिल कर सरिता अपने आपको मिटा डालती है—परन्तु उन्हें इसी में सन्तोष है। कारण यह कि इस प्रकार उनका अस्तित्व नष्ट नहीं होता बल्कि दूसरे के साथ मिलकर अधिक महान बन जाता है। नारी के हृदय की निर्बलता भले ही स्वाभाविक हो अथवा परिस्थितियों द्वारा आरोपित परन्तु उसे भी एक सबल सहारे की आवश्यकता पड़ती है यह निर्विवाद है, और निश्चय ही वह सहारा है पुरुष ! इसके बिना तो दुनिया की ठोकरें खा खाकर जीवित रह सकना भी उसके लिए कठिन हो जाता है। इसीलिए यशपाल के नारी पात्रों को हम सदा ही एक सहारे की खोज में निकले पाते हैं। वे तितली वन कर विविध पुष्पों का रसास्वादन करना नहीं चाहतीं परन्तु जल से निकाली हुई मछली की भान्ति तड़प-तड़प कर प्राण दे देना भी उन्हें अभीष्ट नहीं। उन्हें सहारा चाहिए ! बस एक सहारा !! जिसे पाकर वे जी सकें।

यशपाल की कहानियों के नारी पात्रों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—नागरिक पात्र और ग्रामीण पात्र। इन दोनों प्रकार की नारियों में ही हमें तथानुरूप गुण पलिक्षित होते हैं। नागरिक नारियों में पढ़ी-लिखी अध्यापिकाओं, सोसाइटी गर्ल्ज़, वकीलों-मैजिस्ट्रेटों तथा अन्य

बड़े आदमियों की पत्नियों, वार वनिताओं, सरल एवं भोली अल्हड़ युवतियों से हमारा परिचय होता है। इन सब के द्वारा ही लेखक ने नारी वर्ग का यथावसर स्वाभाविक चित्रण किया है।

'निर्वासिता' की नायिका इन्दु उच्च-शिक्षा और उच्च-पद प्राप्त होते हुए भी अपने जीवन के लिए कोई सहारा केवल इसलिए न पा सकी क्योंकि वह सुन्दर न थी। जीवन के इस अभाव को उसने अपने गहन और विशद अध्ययन द्वारा पूरा करना चाहा। अपनी लिखी इतिहास की छः पुस्तकों पर सुनहरे अक्षरों में अपना नाम और उनमें से दो पर नाम के पीछे पी-एच० डी० (Ph. D.) छपा देख कर सफलता और सन्तोष के विश्वास से उसका मन सान्त्वना पाता। विद्वत् समाज में उसका इतना आदर-मान भी कम सन्तोष का विषय न था। "परन्तु ....मालिक। दुनिया क्या ऐसे ही चलती हैं। कोई पेड़ पौधा, पशु और क्या इन्सान सदा एक सा ही थोड़े बना रहता है! ..... पुराने से नया पैदा होता है। सिलसिला आगे चलता है।' 'माली के इन शब्दों ने उसके मस्तिष्क में एक भीषण तूफान ला दिया। उसके हृदय में भी इच्छा उत्पन्न हुई कि वह अपने को मिटा कर सृष्टि का सिलसिला आगे चलाए। धैर्य और सन्तोष के मिथ्या बाँध भावों के एक प्रवाह में ही वह गए। इन्दु नारी-सुलभ लज्जा और संकोच को त्याग कर प्रौढ़ावस्था के उस सम्भ्रान्त विद्वान ग्रंथकार को जिसके साथ उसका परिचय भी कुछ अधिक नहीं था, स्पष्ट शब्दों में ही कह डालती है "......मैं......मैं सन्तान चाहती हूँ।" नारी की स्वाभाविक इच्छा सन्तान। और उसके पास से भग्नाश लौटने पर पुरुष वर्ग के प्रति उसके हृदय में कितना विक्षोभ उत्पन्न हुआ? केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है?

इसी वर्ग की एक और स्त्री 'अगर हो जाता' की मिस सविता के रूप में मिलती है। कहानियों की एक पत्रिका में अपना ही वर्णन पढ़कर वह पागल हो उठी। "बाहों में दबा ली जाने की बात" से उसका रोम रोम सिहर उठा। "उसकी उंगली पकड़ कर सुन्दर शिशु के चलने की बात" से उसकी छाती गर्व से उभर आई। वह छत्रछाया के रूप में सहारे के लिए कभी धोखा न देने वाली बाँह की खोज में निकल पड़ी। मस्तिष्क में उठते ज्वार ने उसे उचित और अनुचित का ज्ञान भी न रहने दिया भावनाओं का प्रवाह शिथिल पड़ जाने पर यद्यपि वह "ओफ़ बच गई" कहकर सान्त्वना प्राप्त करती है परन्तु 'अगर हो जाता' तो भी उसे अप्रिय न लगता, क्योंकि वह सब स्वाभाविक ही तो था।

परन्तु सहारा प्राप्त कर सकने की इच्छा का स्वागत समाज ने सदैव अनादर और भर्त्सना से ही किया है। इन्दु को होटल से निकल जाना पड़ा। अपनी जान पर खेल कर नन्हीं बच्ची की जान बचाने वाली सोमा की अवहेलना भी इसीलिए हुई क्योंकि उसने अपने बुड्ढे पति का त्याग कर एक सबल सहारा ढूँढ लिया था। वही सोमा जिसके साहस की प्रशंसा करते हुए स्त्रियाँ अघाती न थीं इस बात का पता चलते ही उस पर भाँति-भाँति के आरोप गढ़ने लगीं। मानो पल भर में ही सोमा में दुनिया भर की बुराइयां समा गई हों।

'तर्क का तूफान' की लता को 'सोसाइटी गर्ल' तो नहीं कहा जा सकता परन्तु अपने दुःखों का बोझ हल्का करने के लिए वह महफ़िलों में जाने से घबराती भी नहीं। एक एक करके कई कई गाने सुनने पर भी उसे कभी थकान या अनिच्छा का अनुभव नहीं हुआ। इन गीतों में उसकी आन्तरिक वेदना ही द्रवित होकर बह निकलती है। अवध बाबू ने अजाने में ही उसके हृदय में आकर एक तूफान

खड़ा कर दिया, जिसकी रौ में बह कर स्वयं ही उसके पास जा पहुँची। अवध के घर का ज़ीना चढ़ते हुए वह अपने को धिक्कार रही थी—"वह कैसे और क्यों वहाँ आ मरी।" इसका उत्तर स्वयं उसके चकराते हुए मस्तिष्क ने दे दिया—"आए बिना रहती कैसे ?" उसका हृदय भय से काँप रहा था...... परन्तु हृदय के सूनेपन की अपेक्षा कँप-कँपी की इस पीड़ा में कितयी सान्त्वना थी ?"

'जादू के चावल' कहानी में दो स्त्रियाँ हैं— मेहर और मिस जिम। मेहर ने जमील के प्रति आत्म समर्पण कर डाला परन्तु जमील हॉस्पिटल की नर्स मिम जिम के प्रति आकर्षित हो गया। मेहर के लिए जमील उसकी जिन्दगी है परन्तु मिस जिम के लिए तो वह उसके बहुत से चाहने वालों में से एक हैं। क्या मिस जिम को हम मेहर के शब्दों के 'छिनाल' कह सकते है ? इसका उत्तर जिम ही देती है—"तुम अपनी जिन्दगी चलाने के लिए मुहब्बत बताएगा तो तुम छिनाल नहीं। हम कुछ नहीं माँग कर मुहब्बत देगा तो छिनाल है। हमारा इतना आदमी मुहब्बत करने वाला है। हम कभी किसी से एक पैसा की परवाह नहीं करता।" जिम के इन शब्दों में लेखक ने नारी की पराधीनता पर एक गहरा व्यंग किया है किन्तु फिर भी मेहर के आत्मत्याग को 'सराहनीय' न कहकर और क्या कहा जा सकता है ?

निस्वार्थ आत्मसमर्पण करने वाली एक और भोली भोली बाला है 'डायन' की सुर्जू जिसने अपने पहाड़ी नौकर को ही अपना हृदय दे डाला। सुख वैभव, कुल मर्यादा को लात मार कर वह अपने प्रेमी के साथ उसके घर पहाड़-भाग गई। परन्तु जब उसे पुन्दना (उसका प्रेमी) के अतिरिक्त उनके भाइयों की पत्नी बनने के लिए विवश किया गया तो उसने आत्महत्या कर ली। वह केवल एक प्रबल सम्बल चाहती थी जो दुनिया की कठोर ठोकरों से उसकी रक्षा कर सके, शरीर का रस लूटने वाले बहुत से लोलुप मधुपों की आवश्यकता उसे नहीं थी।

इन सबसे बढ़ चढ़ कर है 'भाषा' कहानी की प्रमिला जो हृदय के उद्गारों को कभी प्रकट भी न कर पाई और मरे हृदय से ही अपने मन के राजा से मौन विदा लेकर उससे कहीं बहुत दूर चली गई। जब तक मि० लाल और प्रमिला एक दूसरे के निकट रहे दूर से ही एक दूसरे को देखकर ही जी हल्का कर लेते थे—परस्पर बोल सकने के साधन नहीं थे। परन्तु अब जब वह दोनों बिछुड़ गए तो उनकी मनोस्थिति क्या होगी "कबूतर से उसकी कबूतरी छिन चुकी थी तो क्या कबूतरी से उसका कबूतर नहीं छिन गया था ? गाड़ी चढ़ती हुई प्रमिला लाल को देखकर थोड़ा लड़खड़ा गई थी। उसके पिता ने 'ए ई जे सावधान' कहकर मानो उसे किसी गहरे गढ़े में गिरने से बचा लिया।

नागरिक स्त्रियों में तो कुछ ऐसी भी हैं जिनकी परिस्थतियाँ और समस्याएँ पूर्णतया भिन्न हैं। ये हैं उच्च और सम्पन्न वर्ग की स्त्रियाँ। इन्हें जीवन के लिए प्रत्येक सुख सामग्री सहज प्राप्य है अतः कुछ इधर-उधर की सोचने का काफी अवकाश भी प्राप्त हो जाता है। घर वालों पर अधिकार किस ढंग से जमाया जाए ? पति को कैसे प्रसन्न रखा जा सकता है ? सन्तति-निरोध के लिए क्या उपाय प्रयोग में लाना चाहिए ? किस स्त्री का चरित्र कैसा है ? समकक्ष सहेलियों में अधिक प्रतिष्ठा किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है ? इत्यादि बातें उनके चिन्तन का विषय हैं। उनमें अपने उद्देश्य को जैसे तैसे पूरा कर लेने की क्षमता है।

यशपाल की कहानियों की वारवनिताओं का चित्रण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं वे अपने प्रति बिल्कुल ईमानदार हैं। 'आदमी या पैसा' की 'भरना' 'खुले' शब्दों में स्वीकार करती है कि वह सब कुछ पैसे के लिए करती है—पैसा चाहिए उसे अपना पेट पालने के लिए उसे इस बात की चिन्ता नहीं कि यह पैसा किसी गंवार मोटर-ड्राइवर की जेब से मिलता है या सुसभ्य कहे जाने वाले किसी पत्र-सम्पादक या प्रोफेसर की जेब से। ये वेश्याएँ किसी भी दृष्टि से भले घरों की अन्य स्त्रियों से कम नहीं। अन्तर केवल इतना है कि परिस्थितियों ने इन्हें अपना शरीर बेचने के लिए विवश कर रखा है।

ग्रामीण नारियों का चित्रण करते समय तो यशपाल जी की लेखनी और भी अधिक सहानुभूति-पूर्ण हो उठी है। पैसा कमाने के लिए मैदानी इलाकों में गए या सेना में भर्ती हुए पहाड़ी युवकों की युवा पत्नियाँ किस प्रकार एक अभिशप्त-सा जीवन व्यतीत करती हैं ? उन्हें पग-पग पर अपमान सहना पड़ता है। उन्हें भोजन कम पर भाड़-फटकार अधिक मिलती है। इस पर भी वे जैसे कैसे अपने जीवन के दिन व्यतीत किए जाती हैं। परन्तु जब उन्हें घर से निकाल ही दिया जाता है तो विवश कोई दूसरा सहारा ढूँढती हैं। यशपाल के ग्रामीण-नारी-पात्र प्रायः एक सी ही समस्याओं में दिखाई देते हैं उनमें परस्पर समानता भी बहुत है— मानी, दमती और मंगला कितनी मिलती जुलती हैं ?

मानी का पति हरसि साढ़े पांच बरस बाद जब लाम से लौटा तो उसने मानी की गोद में दो वर्ष का एक बच्चा देखा। वह क्रोध से भल्ला उठा। माँ ने समझाया भी—"अब वह सब जाने दे...तू भी तो ऐसे वक्त चला गया ! उसकी जवानी का अन्धड़ था। कौन नहीं जानता बरसात की पहली आन्धी में पेड़ गिरा ही करते हैं। अब ढंग से निभा। लड़का है तो जवान भी होगा। अब तेरा ही है...।" परन्तु हरसि कहाँ मानने वाला था। उसने मानी को घर से निकाल ही तो दिया और तब मानी को सहारा मिला जुहार का।

दमती का पति भी फौज में नौकर था। दमती को भी घर वालों के दुर्व्यवहार का शिकार बनना पड़ा। आखिर एक दिन सिग्रेट पीने के अपराध में उसे घर से निकाल दिया गया। पति की खोज में वह छावनी की ओर चली। रास्ते की प्रत्येक आपत्ति का सामना करते हुए वह अपने पति के पास जा रही थी। परन्तु जब उसके पति ने उसे अपने घर बसाने से इन्कार कर दिया तो वह भी मनहर के साथ चल दी।

'मंगला' कहानी की नायिका मंगला की कहानी अधिक करुणापूर्ण है। घर वालों के दुर्व्यवहार से तंग आकर उसने जोगन बनने की सोची। इसी उद्देश्य से अपने हाली शेरुआ की सहायता से वह भाग निकली। शेरुआ के आश्वासन पर उसी की होकर रहने को मान गई। परन्तु समाज को यह सहन न हो सका। जेल और अदालत की हवा खा लेने के पश्चात् उसे फिर निस्सहाय छोड़ दिया गया। "हाय ! तो मैं अब कहाँ जाऊं ?" मंगला का यह प्रश्न दलित नारी मात्र का प्रश्न है जिसका कोई भी उत्तर समाज के पास नहीं है। उसने मेहतर गुलाब को अपनाया; परन्तु एक कुलीन ब्राह्मणी मेहतर के घर रहे, इसे समाज कब सहन करने वाला था ? बेचारी का वह सम्बल भी छिन गया। चारों ओर से

बहिष्कृत मंगला के लिए संसार भर में अब कोई भी सहारा नहीं। उसे कहाँ सहारा मिलेगा ? 'मंगला' का समाज से सीधा प्रश्न है।

ग्रामीण नारियों में ही है अनुराग त्याग और बलिदान की मूर्ति नाजू। उसने तिलोक सिंह को चाहा, तो सच्चे मन से आत्मसमर्पण भी कर डाला। आवेश में आए हुए तिलोक सिंह ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया; चाकू से उसका पेट चीर डाला। परन्तु नाजू फिर भी उसी की रही। उस पर चल रहे मुकद्दमे में उसने उसके खिलाफ गवाही न देकर उसे दण्डित होने से बचा लिया।

अदालत से निकलते हुए तिलोक सिंह की ओर वह टकटकी बाँध कर देखने लगी और उसके अपनी ओर देखने पर अपनी गोद के बच्चे को उसे दिखाने के लिए बढ़ा कर चूम लिया और मुस्करा दी। मानो उस मौन भाषा में ही तिलोक सिंह को समझा दिया—यह तेरी ही निशानी है जिसे सीने से लगाए हूँ। ऐसे अनेक आकर्षक चित्र यशपाल की कहानियों में प्रायः जहाँ-तहाँ मिल जाएँगे।

इस प्रकार की मनोदशाओं के चित्रण में लेखक की दृष्टि अत्यन्त पैनी रही है। कहानियों में यथा स्थान उनकी मानसिक उथल-पुथल का वर्णन तो किया है ही इनके साथ-साथ उनकी मनोवृत्तियों का मार्मिक विश्लेषण है। नारी प्रायः अपने सन्मुख किसी-दूसरी नारी की प्रशंसा नहीं सुन सकती; विशेषतया जब उसका अपना सामाजिक स्तर प्रशंसित नारी से ऊँचा हो। 'सोमा का साहस' कहानी में जब सभी लोग सोमा की प्रशंसा कर रहे थे तो मिसेज़ गुई से यह सहा न जा सका। उसने तुरन्त बड़े ढंग से उसकी पुरानी कहानी सुना कर सभी को उससे विमुख कर दिया।

नारी अपनी व्यक्तिगत धारणाओं से प्रतिकूल कुछ भी देखना नहीं चाहती। इसी से विद्या ने माँ से अपने बड़े भैय्या की बात कह दी और माँ ने घर आए महमानों को अपमानित तक कर दिया। 'औरत' की नायिका ने अपनी विश्वासपात्र नौकरानी रितिया को पल भर में ही घर से बाहर निकाल दिया। ऐसी ही कुछ नारी-सुलभ स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अंकन यशपाल ने बड़ी सफलता से किया है।

नारी के प्रति इतनी अधिक सहानुभूति रखने वाला लेखक कभी-कभी उस पर व्यंग्य-विद्रूप भी कर बैठता है। उदाहरणार्थ भाषा कहानी की पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—"वृद्ध मोशाय के साथ वृद्धा पत्नी थीं जिनके सिर पर सुहागचिह्न सिन्दूर की लाल सड़क शायद आयु के हिसाब से चौड़ी होती चली गई थी। नारियल के तेल से चिकने उनके अधपके काले सफेद केशों में सिन्दूर का महत्त्व ही अधिक था। साथ में थी एक बीस बाईस बर्ष की युवती; बहुत संयत भाव में आंखें झुकाए चलने वाली; कुछ दबी हुई-सी। माँ की भान्ति उसके सिर पर सिन्दूर की लाल झण्डी नहीं चमकती थी जिसका अर्थ होता है—इधर रास्ता बन्द है।"

किन्तु अधिकतर यशपाल जी के लिए नारी सहानुभूति की पात्र है।

यशपाल जी ने सभी नारी पात्रों को अनुराग, त्याग, सेवा, बलिदान, उद्यम, साहस, कर्त्तव्य-ज्ञान इत्यादि गुणों से विभूषित किया है। उनकी कहानियों की नारियाँ बड़ी से बड़ी आपत्ति का सामना भी बड़े धैर्य के साथ करती हैं। हम कभी-भी उनके पाँव भय से लड़खड़ाते हुए नहीं देखते। अपने

भाग्य का तत्काल निर्णय करने वाली सहज बुद्धि उनके पास है। वे कर्तव्यपालन करना जानती हैं तो अपने अधिकारों के प्रति भी काफी जागरुक हैं। इन पर किसी प्रकार की आँच आने पर ये प्रतिकार भी ले सकती हैं। यशपाल जी दृष्टि में नारी अपना सर्वस्व हार कर भी अन्त में विजयी हो जाती है। 'हार की जीत' की ताजू और 'मेरी जीत' की नायिका इसके उदाहरण हैं। उनके सन्मुख एक सिद्धान्त है—"स्त्री यदि जीतना चाहती है तो उसका उपाय है हारते चले जाना।"

पटियाला

प्रो० ज्ञानचन्द्र एम० ए०

उपन्यासकार यशपाल

प्रेमचंद-परवर्ती उपन्यास-साहित्य में यशपाल का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद की परम्पराओं और विचारधारा (मानवतावादी दृष्टिकोण) को बल देने वाले उपन्यासकारों में यशपाल के प्रमुख स्थान का समर्थन यशपाल की रचनाएँ 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप', आदि करती हैं।

यशपाल वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ जनवादी कलाकार हैं। उनके उपन्यासों की कथावस्तु का सम्बन्ध शोषित जनता से है। यशपाल के उपन्यासों में दरिद्रता के अभिशाप से उत्पीड़ित जनता का करुण चीत्कार और हाहाकार सुनाई देता है। यशपाल जी ने अपनी एक पुस्तक की भूमिका में लिखा है—

> हमारा जीवन कितना छिछला और संकीर्ण होता जा रहा है। स्वार्थ के बावलेपन की छीना-झपटी और मारोमार हमें बदहवास किए दे रही है। मनुष्य की उस मानवता, नैतिकता और स्थिरता को हम खो चुके हैं, जिसका विकास हमारे आत्मद्रष्टा ऋषियों ने संकीर्ण सांसारिकता से मुक्त होकर किया था। स्वार्थ की पट्टी आँखों पर बाँध कर हम भारत की आत्म-ज्ञान की संस्कृति के परम शांति के मार्ग को खो बैठे हैं। क्या पेट और रोटी ही सब कुछ है? इससे परे मनुष्य की मनुष्यता संस्कृति और नैतिकता कुछ नहीं हैं?

यशपाल के पात्रों के हृदय में उनकी यही विचारधारा लहरें मार रही हैं। उनमें आत्मज्ञान, संस्कृति, नैतिकता के प्रति आकर्षण और प्रेम है पर धन के अभिशाप से अभिशप्त समाज में उनको आगे बढ़ने के लिए मार्ग नहीं है। परन्तु यशपाल के पात्र सतत संघर्ष करना भी खूब जानते हैं। अभाव, उत्पीड़न, दमन और सीमाएँ अपनी शृंखलाओं में उन्हें नहीं बाँध पाती। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि यशपाल अपने देश एवं समाज की विकासोन्मुख शक्तियों तथा तीव्रगति से परिवर्तनशील परिस्थितियों को पहचानने में सफल सिद्ध हुए हैं। वे समाज के किसी विशिष्ट दोष या दुर्गुण को लेकर ही उसका रहस्योद्घाटन नहीं करते। उनकी दृष्टि समाज के दोषों को पहचानने में समर्थ है। दासता, सामाजिक-विषमताएँ आर्थिक बंधन, असंगतियाँ और असमानताएँ उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं अभावों और विषमताओं से पीड़ित मानव-समाज के जाने पहचाने व्यक्ति उनके पात्र बन गए हैं। उनके पात्र हमारे दैनिक जीवन में मिलने वाले व्यक्तियों से भिन्न नहीं है। कथावस्तु और पात्रों का चयन यशपाल ने आज के समाज से किया है। ये पात्र और यह कथानक पूर्णरूपेण यथार्थ हैं और वास्तविक

जगत के हैं। इसीलिए ये हमारे मर्म को प्रभावित किए बिना नहीं रहते हैं। सच बात तो यह है कि यशपाल एक ईमानदार कलाकार हैं। वे समाज, साहित्य और व्यक्ति के प्रति अपना उत्तरदायित्व भली प्रकार समझते हैं। इसीलिए उनका साहित्य समाज और व्यक्ति के विषय में प्राप्त सच्ची अनुभूतियों की ही अभिव्यक्ति है।

साहित्य समाज का दर्पण माना गया है। यशपाल का साहित्य समाज की गति-विधि का द्योतक है। स्वतंत्रता-संग्राम में क्रांतिकारियों, जनवादियों और मजदूरों के योगदान और प्राणाहुतियों की जितनी विस्तृत गाथा यशपाल के उपन्यासों से मिलती है उतनी सामग्री हिन्दी के सम्पूर्ण उपन्यासों से भी एकत्र नहीं की जा सकती है। उनके उपन्यासों से समाज और व्यक्ति के संघर्षों का सच्चा विवरण प्राप्त होता है। यशपाल में इस प्रकार का व्यौरेबार विवरण प्रस्तुत करने की अद्भुत शक्ति है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारा आलोच्य उपन्यासकार भ्रमणशील व्यक्ति है। अनुभव प्राप्त किए बिना वह किसी विशेष प्रवृत्ति या मनोवैज्ञानिक तथ्य का चित्रण नहीं करता है। इधर प्रायः ५ वर्षों से यशपाल की कहानियों में पहाड़ी जीवन का चित्रण बहुत पढ़ने को मिलता है। यह वर्णन इतना यथार्थ इसलिए है कि वर्ष के प्रायः ६-७ महीने वे पहाड़ों पर घूम-घूम कर अपने सृजनात्मक साहित्य के लिए सामग्री एकत्र करते रहते हैं। हिन्दी का कौन दूसरा उपन्यासकार इस दृष्टि से विषय चयन करता है।

यशपाल की चेतना हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों की तुलना में अधिक जाग्रत है। उसका प्रमुख कारण यह है कि उनको अपनी धारणाओं पर दृढ़ विश्वास है। चाहे वह साहित्य हो या व्यावहारिक जीवन—सर्वत्र वह सत्यता और यथार्थ का पालन करते हैं। उनके पात्रों पर इस भावना की छाया सहज रूप में देखी जा सकती है। सतत् संघर्ष करते-करते और जीवन की विकृतियों को सहन करते-करते उनमें जो आत्मनिष्ठा उत्पन्न हो गई है, वह भी उनके पात्रों के चरित्र में झलकती रहती है।

यशपाल को जितनी सफलता वर्त्तमान जीवन के चित्रण में मिली है उतनी ही अतीत की अभि-व्यंजना में भी।उनकी 'दिव्या' इस कथन का समर्थन करती है। 'दिव्या' ऐतिहासिक उपन्यास है। यशपाल जी इतिहास (अतीत की कथा) को श्रद्धा, और अंधविश्वास की सामग्री नहीं मानते वरन् वे उसे विश्लेषण की वस्तु मानते हैं। उनके शब्दों में "इतिहास विश्वास ही नहीं विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्य का अपनी परम्पराओं में आत्मविश्लेषण है।" 'दिव्या' में लेखक ने इसी दृष्टि से कथा के रूप को बनाया-सँवारा है। लेखक ने इसमें तत्कालीन समाज के वर्गपरक रूप को व्यक्त किया है। इस उपन्यास में अनेक समस्याएँ आई हैं जो तत्कालीन समाज के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक हैं। वर्ग-संघर्ष, वर्ग-प्रियता, वर्ग-शोषण और वर्ग-चेतना के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। इसके बीच-बीच में उपन्यासकार के व्यंग्य पठनीय हैं। वर्ग-संघर्ष के चित्रण में लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रधान है।

डा० रामविलास शर्मा ने एक स्थान पर लिखा है "यशपाल के पात्र जनजीवन के प्रतिनिधि नहीं है। वे उस वर्ग के लोग हैं जिनके लिए सेक्स और आत्मपीड़ाएँ ही समस्या प्रधान हैं।" इस सम्बन्ध में भी दो शब्द कह देना आवश्यक है। 'दादा कामरेड' से लेकर 'मनुष्य के रूप' तक यशपाल ने जिन-जिन पात्रों का निर्माण किया है, वे सभी पूर्णरूप से जन-जीवन के प्रतिनिधि हैं। उनमें मानवों

जैसी संघर्ष, स्वाभिमान, सेक्स, तथा अन्य प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। वे हमारे समाज के-से व्यक्ति हैं। उनकी प्रवृत्तियाँ कहीं पर अपरिचित नहीं लगती हैं। मेरा विचार है कि यशपाल जी ने बड़े परिश्रम के साथ समाज से ऐसे चित्रों को एकत्र किया है। एक सच्चे प्रगतिशील की भाँति यशपाल जी नारी और पुरुष की स्वाधीनता के पक्षपाती हैं।

त्रिलोकी नारायण दीक्षित

लखनऊ
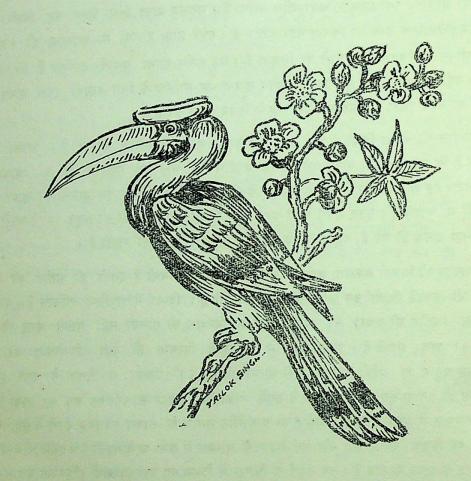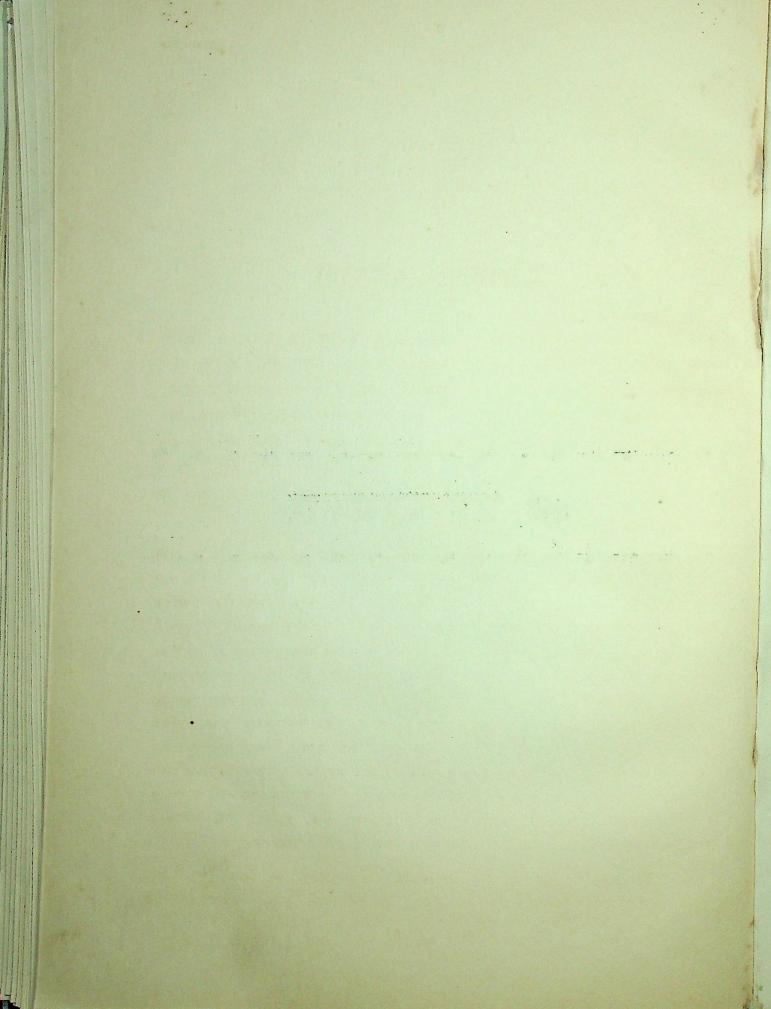
☞ उपन्यासकार

उपन्यासकार यशपाल

पंजाब के उन साहित्यकारों में, जिन्होंने आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य के विभिन्न अङ्गों की श्री-वृद्धि करते हुए हिन्दी भाषा की सेवा की है, श्री यशपाल का नाम ससम्मान लिया जा सकता है। इनका साधना-क्षेत्र पद्य न हो कर गद्य है और इन्होंने गद्य साहित्य के उपन्यास, कहानी, निबन्ध और जीवनी आदि अङ्गों की यथेष्ट पूर्ति की है। अब तक आपके सात उपन्यासों, बारह कहानी-संग्रहों, आठ निबन्ध-संग्रहों तथा तीन भागों में एक आत्मकथा का प्रकाशन हो चुका है। आपके मौलिक उपन्यास हैं 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या', 'मनुष्य के रूप' और 'पार्टी कामरेड'। प्रस्तुत लेख में 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या' और 'मनुष्य के रूप' नामक उपन्यासों के आधार पर आप की उपन्यास कला का विवेचन किया गया है।

उपन्यास कला की दृष्टि से यशपाल जी को उपन्यास क्षेत्र में यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है। इनके उपन्यासों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) राजनैतिक और सामाजिक उपन्यास तथा (२) ऐतिहासिक उपन्यास। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' और 'पार्टी कामरेड' राजनैतिक तथा सामाजिक उपन्यास हैं और 'दिव्या' ऐतिहासिक उपन्यास है। राजनैतिक उपन्यासों के लिखने में प्रेमचन्द जी के बाद यशपाल का ही नाम आता है। प्रेमचन्द जी ने पहले-पहल उपन्यासो को राजनैतिक समस्याओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। उनके पश्चात् जैनेन्द्र की 'सुनीता' में क्रान्तिकारी विचारों की थोड़ी सी झलक अवश्य दिखाई दी, परन्तु इससे उन्हें राजनैतिक उपन्यासकार नहीं कहा जा सकता। इसलिये प्रेमचन्द जी के पश्चात् यशपाल को ही राजनैतिक उपन्यासकार मानना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। हाँ, दोनों की राजनैतिक विचार-धारा में और दृष्टिकोण में महान अन्तर है। प्रेमचन्द गान्धी जी की विचार-धारा और कार्यक्रम के समर्थक थे और 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'प्रेमाश्रम' आदि में आप ने उन्हींके विचारों तथा कार्यक्रमों का प्रतिपादन किया है, परन्तु यशपाल समाजवाद के समर्थक हैं और 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', आदि में उसी का प्रतिपादन करना चाहते हैं तथा 'आकाश में गरजने वाली बिजली की तरह मजदूरों की शक्ति को क्रान्ति के तार में' पिरोना चाहते हैं।

'दादा कामरेड' में इन्होंने हिंसात्मक विप्लव तथा सशस्त्र डकैतियों का विरोध किया है और जन-आन्दोलन का समर्थन किया है। हरीश जेल से भागा हुआ क्रान्तिकारी युवक है और एक गुप्त पार्टी

से सम्बन्ध रखता है, जिसका नेता 'दादा' नामक व्यक्ति है। पार्टी के कार्यक्रम के सम्बन्ध में हरीश का पार्टी के अन्य सदस्यों से मतभेद हो जाता है, क्योंकि वह डकैतियों तथा राजनैतिक हत्याओं को छोड़कर जन-आन्दोलन द्वारा देश की शोषित जनता के लिये आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त करना चाहता है। परिणामस्वरूप उसे पार्टी छोड़नी पड़ती है। पार्टी के अन्य सदस्य उसे शूट करने का निश्चय करते हैं, परन्तु वह शैला के सहयोग से बच जाता है तथा अख्तर, शैला, रफ़ीक, कृपाराम आदि से मिल कर मिल-मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व करता है और सफल होता है, परन्तु डकैती के झूठे अपराध में गिरफ़्तार होता है और फाँसी का दण्ड पाता है। इस राजनैतिक क्रान्तिकारी की कहानी के साथ-साथ सामाजिक क्रान्तिकारिणी शैला की कहानी भी चलती है। वह स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध में स्वतन्त्रता की समर्थक है।

'देशद्रोही' में गान्धीवादी कार्यक्रम की अपेक्षा समाजवादी कार्यक्रम को अधिक उपयोगी सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है और उसके लिये एक अभागे जीवन की व्यर्थता की कहानी को अपनाया गया है जो कई नाच नाचता है, कई भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में से होता हुआ परिणाम पर पहुँचना चाहता है, परन्तु अन्त में 'धूर्त', 'देशद्रोही', 'बदमाश' आदि उपाधियाँ पाकर भूख, प्यास, पीड़ा और ज्वर के प्रबल उत्ताप से अपने प्राण छोड़ देता है।

'मनुष्य के रूप' में वर्तमान सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए वर्तमान व्यवस्था के प्रति विद्रोह दिखाया गया है और सामाजिक भेद-भाव से उत्पन्न होने वाले जीवन तथा भावना-सम्बन्धी परिवर्तनों को चित्रित किया गया है।

'दिव्या' ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें बौद्ध-कालीन कथानक के आधार पर सर्वदेशीय और सर्वकालीन सामाजिक मान्यताओं तथा उनसे पड़ने वाले कुप्रभावों का दिग्दर्शन कराया गया है।

इन सभी कथानकों में लेखक ने अनेक कहानियों की संयोजना की है और उन्हें सफलतापूर्वक परस्पर संगठित किया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रायः यह दोष पाया जाता है कि उनमें मुख्य तथा प्रासंगिक कथाओं में उचित संगठन नहीं हो पाया और वे अलग-अलग चलती हुई प्रतीत होती हैं। परन्तु यशपाल ने यथासम्भव इस दोष से बचने का प्रयत्न किया है और उन्हें अपने प्रयत्न में यथेष्ट सफलता भी मिली है। उदाहरणार्थ 'दादा कामरेड' में मुख्य कथा है क्रान्तिकारी हरीश की और गौण कथा है सामाजिक रूढ़ियों की विरोधिनी शैला की। उपन्यासकार ने हरीश और शैला को एक दूसरे का प्रेमी तथा सहायक बना कर दोनों कथाओं को परस्पर इस प्रकार मिलाया है कि उन्हें अलग-अलग करना कठिन प्रतीत होता है। उल्टे दोनों के संगठन से कथानक में अधिक सरसता तथा स्वाभाविकता आ गई है। यशोदा और राबर्ट-नैन्सी की कथाएँ प्रासंगिक कथाएँ हैं। मूल कथा के साथ उनका सम्बन्ध तथा विच्छेद भली-भाँति हुआ है। संगठन के अतिरिक्त रोचकता और सम्भवता भी यथेष्ट है। हाँ, कहीं-कहीं स्पष्टता अवश्य है और वह कदाचित् लेखक की यथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण आ गई है। 'देशद्रोही' में अनेक छोटे-छोटे कथानकों को जोड़ा गया है और बहुधा एक ही कहानी को विभिन्न परिस्थितियों में बिभिन्न रूपों में उपस्थित किया है। डाक्टर खन्ना परिस्थितियों के बदलने के साथ विभिन्न बदलते हुए रूपों में हमारे सामने आता है। 'देशद्रोही' की कथावस्तु कई दृष्टियों से अनुपम है।

उसमें कल्पना तथा वातावरण-चित्रण के लिये बहुत गुंजाइश है। रोचकता और आकर्षण उसमें यथेष्ट मात्रा में है। असम्भवता भी नहीं है। 'मनुष्य के रूप' का कथानक 'देशद्रोही' की अपेक्षा अधिक स्पष्ट, संगठित तथा स्वाभाविक है। प्रेमचन्द के 'ग़बन' के समान 'देशद्रोही' का कथानक भी संक्षिप्त तथा सुसंगठित है। इसमें स्वाभाविक विकास भी अपेक्षाकृत अधिक है। 'दिव्या' का कथानक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर खड़ा किया गया एक कल्पना-चित्र है जिसकी मुख्य घटनाएँ तथा पात्र सभी काल्पनिक हैं। लेखक का कहना है—"दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। कला के प्रति अनुराग से लेखक ने काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है।" कथानक 'दिव्या और पृथुसेन का प्रेम' तथा 'रुद्रधीर और उसके सहचरों के षड़यन्त्र' नामक दो उपकथाओं के संयोजन से निर्मित किया गया है जिसमें निर्वाह, रोचकता, संगठन और सम्भवता आदि गुणों का सुन्दरता से निर्वाह किया गया है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यशपाल जी को यथेष्ट सफलता मिली है। इनके पात्र दो भागों में विभक्त हो सकते हैं—व्यक्तित्व-प्रधान पात्र और प्रतिनिधि पात्र। उनके व्यक्तित्व का विकास अच्छा बना है। बद्री बाबू, बी० ऐम०, यशोदा, सोमा, दिव्या आदि प्रतिनिधि पात्र हैं, जो किसी-न-किसी वर्ग अथवा विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैसे यदि अधिक सूक्ष्मता से देखा जाय तो प्रतीत होता है कि उपन्यासकार ने व्यक्तित्व-प्रधान पात्रों को भी प्रतिनिधि पात्रों के रूप में ही पेश करने का प्रयत्न किया है। इन पात्रों का विकास स्वाभाविक ढंग पर हुआ है तथा इनका मानसिक विकास और जीवन-परिवर्तन का विश्लेषण कलात्मक दृष्टि से बहुत अच्छा हुआ है। 'देशद्रोही' में राज का चरित्रचित्रण भी उल्लेखनीय है। उसमें जितने भी परिवर्तन दिखाए गये हैं वे आकस्मिक न हो कर मनोवैज्ञानिक आधार पर हैं। हाँ, डा० भगवान दास खन्ना का चरित्र स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं हो सका। लेखक ने उसका भी यथासम्भव थोड़ा-बहुत मानसिक विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

देश-काल और वातावरण का चित्रण करने में उपन्यासकार को बहुत सफलता प्राप्त हुई है और उसके सभी उपन्यास इस बात का पुष्ट प्रमाण हैं। 'दादा कामरेड' में हड़ताल का वर्णन अत्यन्त सजीव है। 'देशद्रोही' में वातावरण का चित्रण अत्यन्त सफल बना है। कल्पना और अध्ययन के आधार पर ही लेखक ने वज़ीरस्तान और रूस के कुछ प्रदेशों, वहाँ के लोगों, रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों, धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं, स्त्रियों की चेष्टाओं, भावनाओं तथा वेश-भूषा आदि का जो चित्रण किया है वह जहाँ एक ओर अत्यन्त आकर्षक तथा यथार्थ बना है वहाँ दूसरी ओर लेखक की वातावरण और प्रकृति को सजीव कर देने की क्षमता को भी प्रकट करता है। 'दिव्या' में पहुँच कर उसकी यह क्षमता और भी अधिक बढ़ जाती है और वह वेश-विन्यास रीति-नीति, आचार-विचार, वातावरण को अत्यन्त सतर्कता से अङ्कित करता हुआ प्रतीत होता है। 'मधु पर्व', 'धर्मस्थ-प्रासाद', 'वेश्याओं का चतुर्मार्ग', 'शरत्-पूर्णिमा के अवसर पर मल्लिका देवी के प्रासाद में 'रुद्रधीर' आदि का चित्रण अत्यन्त सजीव और प्रभावोत्पादक है।

जैसा कि उनके उपन्यासों से सूचित होता है यशपाल जी कला को जीवन-कल्याण तथा जीवन-निर्माण के लिए स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि उनके सभी उपन्यास सोद्देश्य हैं और सभी में उन्होंने अपने किसी-न-किसी राजनैतिक अथवा सामाजिक विचार को अभिव्यक्त किया है। इस दृष्टि से उन्होंने वस्तुतः हिन्दी के उपन्यास-साहित्य के उस क्षेत्र की पूर्ति की है, जो प्रेमचन्द के पश्चात् अब तक अछूता पड़ा था। 'दादा कामरेड' में उन्होंने हिंसात्मक विप्लव की व्यर्थता तथा साम्यवाद की उपयोगिता सिद्ध करने का यत्न किया है। हरीश कहता है—"अब हमारी सम्पूर्ण शक्ति डकैतियाँ करने में और कुछ राजनैतिक हत्याओं में काम आई है। परन्तु हमारा उद्देश्य तो यही नहीं। हमारा उद्देश्य तो है इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उनके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना। × × × हम सौ पचास आदमी तो स्वराज्य ले नहीं सकते। स्वराज्य तो जनता का संयुक्त प्रयत्न ही ला सकता है और हम जनता से इतनी दूर हैं। × × × हमें अपना टेक्नीक (तरीका) बदलना चाहिये।" इस राजनैतिक उद्देश्य के अतिरिक्त 'दादा कामरेड' में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में सामाजिक रूढ़ियों का भी विरोध किया गया है। शैला कहती है—"क्या मनष्य हृदय का स्नेह केवल एक व्यक्ति पर समाप्त हो जाना जरूरी है?" राबर्ट और नैन्सी के प्रसंग में लेखक ने आधुनिक प्रेम के स्वरूप को भी दिखाने का प्रयत्न किया है।

'देशद्रोही' में लेखक व्यंग्य-चित्रण करता है। कहीं-कहीं तो वह पूरा राजनैतिक इतिहास कार ही बन जाता है और कथानक को जैसे राजनीति के सिद्धान्तों के प्रतिपादन का माध्यम मान लेता है।

'दिव्या' में लेखक का उद्देश्य है समाज द्वारा निर्मित मिथ्या मान्यताओं का भण्डाफोड़ करना तथा उनके दुष्परिणामों को दिखाना। अभिजातवंशीय तथा दासवंशीय और ब्राह्मण तथा बौद्धों के संघर्ष के द्वारा लेखक ने ऐसी मान्यताओं का भण्डाफोड़ किया है और मारिश चार्वाक को अपने विचारों का प्रवक्ता बनाया है। वह अनीश्वरवादी दार्शनिक है और केवल प्रत्यक्ष जगत् में विश्वास रखता है। उसका कहना है—"दुःख की भ्रांति में भी जीवन का शाश्वत क्रम इसी प्रकार चलता है। वैराग्य भीरु की आत्मप्रवंचना मात्र है। जीवन की प्रवृत्ति प्रबल और असन्दिग्ध सत्य है"। न केवल विचारों से ही वरन् घटनाओं से लेखक ने सफलतापूर्वक अपने सिद्धान्तों का समर्थन किया है। दिव्या ब्राह्मणश्रेष्ठ धर्मस्थ की प्रपौत्री है, किन्तु उसका प्रेम दासपुत्र पृथुसेन से हो जाता है। हृदय का आवेग जातीय भेद-भावों को स्वीकार नहीं किया करता। परन्तु समाज की मिथ्या मान्यताएँ प्रेमी और प्रेमिका के मिलन तथा विवाह-बन्धन में बाधक बनती हैं। परिणामस्वरूप उसे लाज के मारे घर छोड़ने पर विवश होना पड़ता है और दास-जीवन की यन्त्रणाओं को सहन करना पड़ता है। 'मनुष्य के रूप' में भी मनुष्यनिर्मित मान्यताओं के प्रति असन्तोष और वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति प्रच्छन्न विद्रोह की भावना को प्रकट किया गया है जिनके कारण सोमा जैसी लजीली और स्नेहशील स्त्रियों को भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं जो अन्त में उन्हें वेश्या बनने के लिए विवश कर देते हैं। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं ने नारी को इस प्रकार से जकड़ रखा है कि वह या तो पत्नीरूप में सुरक्षित रह सकती है और या वेश्या-रूप में। फिर मनुष्य का उसके प्रति कभी-कभी ऐसा दुर्व्यवहार देखने में आता है जिससे वह केवल राक्षस प्रतीत होता है। पहाड़ी प्रदेशों में स्त्रियों की दुर्दशा, कामुक पुरुष की असहाय स्त्रियों के प्रति

कुचेष्टाएँ; पूंजीपतियों की नीतिहीनता आदि का चित्रण लेखक ने इसी बात की पुष्टि के लिए किया है। इस सामाजिक समस्या के अतिरिक्त लेखक ने इस उपन्यास में भारतीय पुलिस की धाँधली और सन् १९४२ के आन्दोलन में उसके द्वारा किए गए अत्याचारों, गत युद्ध में भारतीय सैनिकों के जीवन, आज़ाद हिन्द फौज की अवस्था, साम्यवाद के सिद्धान्तों तथा कार्यक्रमों और फिल्मी जीवन की बुराइयों आदि पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है।

कलात्मकता की दृष्टि से उपन्यासकार ने उत्तरोत्तर प्रगति की है। 'दादा कामरेड' में जितना ध्यान उसका राजनैतिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में है उतना अपनी कृति को कलात्मक बनाने की ओर नहीं है 'देशद्रोही' में भी यह बात बराबर देखने में आती है। लेखक अपने आप को पात्रों से अलग नहीं रख सका। 'दिव्या' में पहुँच कर लेखक की कलात्मकता अत्यन्त सराहनीय हो गई है। इसमें उसने अपने सिद्धान्तों का निरूपण भी अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया है। इसमें अंकित व्यंग्यात्मकता भी अत्यन्त कलात्मक है। चित्रित वर्णन भी अत्यन्त रोचक तथा सफल है। बाह्य प्रकृति के साथ अन्तः प्रकृति का सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण किया गया है। भाषा की दृष्टि से 'दिव्या' अधिक कलात्मक है। लेखक ने वर्णनों के लिये जयशङ्कर प्रसाद के समान सशक्त और संस्कृत के तत्सम शब्दों से परिपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है जिससे उनमें काव्यमयता-सी आ गई है। 'मराली का आत्म-समर्पण' को प्रस्तुत करते हुए लेखक लिखता है—"दिव्या, हिम श्वेत वस्त्रों में वेदी पर आई। उसकी कोमल, सुगोल बाहुओं से भीने श्वेत उत्तरीय के छोर मराली के पंखों के रूप में फैल रहे थे। मराली खोज की मुद्रा में उद्विग्न और, चिन्ताशील थी। नेपथ्य में राजहंस का ऋतु कालीन आह्वान सुनाई दिया। टोह पाकर मराली उत्साहित, हो उठी। उत्साह और उमंग पर फड़फड़ा कर वह आह्वान की दिशा और स्थान खोजने के लिए चली और वधिक के जाल में फँस गई।" अंशुमाला और मारिश के मथुरा में प्रथम समागम का चित्रण करते हुए लेखक कहता है—

> अंशुमाला मूल्यवान परन्तु उपेक्षा से धारण किये अत्यन्त शुभ्र वस्त्र पहने अलिन्द में प्रस्तुत हुई। उसके शरीर पर कोई आभूषण न था, एक पुष्प भी नहीं। अलस उदासीनता में, उपेक्षित शुभ्र वस्त्रों से फूटी पड़ती अपने शरीर की कमनीयता के प्रति वह इस प्रकार निरपेक्ष थी जैसे वह उसके वश का विषय नहीं।
>
> पल्लव ओष्ठों के क्षीण स्फुरण से उदास मुख पर शिष्टाचार की मुस्कान लाने का प्रयत्न कर, हाथ जोड़ अंशुमाला ने निवेदन किया—"जनपदकल्याणी देवी रत्नप्रभा की अनुचर नर्तकी अंशुमाला आर्य अभ्यागत का अभिवादन करती है।"
>
> मारिश अंशु की ओर अपलक दृष्टि लगाए था। सहसा उसकी स्मृति जाग उठी। शुभ्र वस्त्रधारी संकुचित, उदास नर्तकी के पीछे उसे तीन वर्ष पूर्व देखा व्यथित मराली का नृत्य अधर में दिखाई देने लगा।

मराली नृत्य, जीवन के अनुभवों से त्रस्त दिव्या का बाँहें फैला कर मारिश की ओर बढ़ना, बृध आदि द्वारा दिव्या अपहरण आदि स्थल यथेष्ट नाटकीयता लिए हुए हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कथावस्तु, चरित्रचित्रण, वातावरण, कलात्मकता आदि की दृष्टि से यशपाल जी को अपने उपन्यासों में यथेष्ट सफलता मिली है और इनके उपन्यास इनकी उत्तरोत्तर प्रगति की सूचना देते हैं। हिन्दी के उपन्यास-सहित्य को समृद्ध बनाने में इनकी साधना स्तुत्य है और आशा है कि भविष्य में वह और भी उत्तमोत्तम उपन्यास हिन्दी साहित्य को दे सकेंगे।

रत्नचन्द्र शर्मा

करनाल

यशपाल के उपन्यास : विकास-रेखा का धरातल

विशाल-भारत (कलकत्ता) में यशपाल की जब पहली रचना 'मक्रील' प्रकाशित हुई, तो हिन्दी साहित्य के एक उज्ज्वल नक्षत्र ने कहा था, "इस कहानी के लेखक (यशपाल) का भविष्य उज्ज्वल है।"

उपर्युक्त भविष्यवाणी यशपाल के प्रारम्भिक-लेखन-काल के दशक में ही अक्षरशः सत्य सिद्ध हो गई। आधुनिक समय के हिन्दी-साहित्य के महारथियों में एक शक्ति बन कर आज यशपाल साहित्य-संसार में विचर रहे हैं।

यशपाल ने उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध और जीवन-सम्बन्धी सभी विषयों पर बहुत कुछ लिखा है। इस निबन्ध की परिधि में, मैं उनके उपन्यासों पर विचार व्यक्त करने तक ही सीमा मान कर चला हूँ।

यशपाल की गणना प्रेमचन्दोत्तर-युग के उपन्यासकारों में की जाती है। इस दौर के उपन्यासों में हम समाज के नवीनतम मानदंडों की स्थापना और प्राचीन आदर्शों व परम्पराओं के निर्मूलन की प्रवृत्ति पाते हैं।

यशपाल के उपन्यासों की विशेषता है—तात्कालिक समस्याओं का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण, अपना दृष्टिकोण, निज की शैली।

यशपाल के प्रारम्भिक उपन्यासों में साम्यवादी सिद्धान्तों का तीव्र उद्घाटन था, क्रमशः उनकी कृतियों में नैसर्गिक-सौन्दर्य ने बहुत तेज़ी के साथ उभार लिया; कृति का रूप निखर उठा। उनके उपन्यासों को पढ़ते हुए मन उल्लसित होता है और निश्चय ही यशपाल के उपन्यासों में सजग-जीवन एवं सचेत-भावना की सुरसरि प्रवहमान हुई है। उनका अनुभव-क्षेत्र जितना विस्तृत है,... अन्य हिन्दी उपन्यासकारों में उसका हम अभाव पाते हैं। उनकी कलम का लोहा विरोधियों को भी मानना पड़ता है क्योंकि यशपाल में निर्बाध जीवन-परिस्थितियों के चित्रण की बहुत अधिक क्षमता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्रेमचन्द के बाद यशपाल ही एक ऐसे उपन्यासकार हैं, जिनमें प्रेमचन्द जैसी जागरूक वर्णन-शैली की चमक दिखाई देती है।

जहाँ तक उनके उपन्यासों में दृष्टिकोण का प्रश्न है वह उनके क्रान्तिकारी जीवन-इतिहास से प्रभावित है। यशपाल की विचारधारा स्पष्ट है—एक विशेष राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक सिद्धान्त-प्रवाह को, जिसे वह उचित मानते हैं, उन्होंने अपनी कला का माध्यम बनाया है। यशपाल ने महापंडित राहुल साँकृत्यायन की भाँति जनवादी या मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया है। यशपाल का मन निर्मल है उन्हें जो कुछ कहना है, वह सीधे ढंग से कहते हैं।

यशपाल के सम्बन्ध में बूर्ज्वा पंथी साहित्यकारों के दो प्रबल दोषारोपण प्रसिद्ध हैं— (१) यशपाल समाजवाद के खुले प्रचारक हैं और (२) नारी के प्रति उनका विचार अशोभनीय है। इस संबंध में मेरा आग्रह तो आलोचकों से इतना ही है कि वह लेखक को अपने दृष्टिकोण से नहीं, लेखक के दृष्टिकोण से ही समझें और नापें। प्रथम विचार के लिये हम यशपाल के निम्न अवतरण को लेते हैं:-

> प्रस्तुत पुस्तक [मार्क्सवाद] न समाजवाद का प्रचार करने के लिये लिखी गई है, और न समाजवाद के कीटाणुओं का ध्वंस करने के लिये। यह केवल परिचय-मात्र है। जिसका उद्देश्य गहरे विचार और अध्ययन की प्रवृत्ति पैदा करना है।
>
> [मार्क्सवाद, भूमिका

स्पष्ट है कि लेखक यशपाल समाजवाद को दूसरों पर जबर्दस्ती लादना नहीं चाहते; प्रत्युत वे पाठक के साथ मिल कर, युग के महान् दार्शनिक मार्क्स के सिद्धान्त-दर्शन की रोशनी में, अपने समाज और जीवन को परखना चाहते हैं। इस बात को मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि यशपाल मार्क्स से प्रभावित हैं; पर मेरा आग्रह तो यहाँ इतना ही है — यशपाल मार्क्सवादी ही नहीं है, और भी बहुत कुछ है। वे हठधर्मी या आग्रही नहीं हैं।

दूसरे विचार के लिये यशपाल के नर-नारी विषयक दृष्टिकोण को समझने के लिए इस सूत्र को ध्यान में रख लेना पर्याप्त होगा —

"विवाह का अंत मैत्री है :"

इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द की मान्यता थी "प्रेम का अंत विवाह है।"

रही अश्लीलता की बात कि अश्लीलता क्या है ? उस रचना को अश्लील कहा जा सकता है, जो मनुष्य की यौन इच्छाओं को इस बुरी तरह उभारे कि नैतिक दृष्टि से व्यक्ति और समाज दोनों के लिये हानिकर हो। यह बात सत्य है कि पवित्रता और उत्कृष्टता की बुनियाद, स्त्री-समाज के चारित्र्य पर ही अवलम्बित है। जिस वर्ग या समाज की स्त्रियाँ निरन्तर अपने आदर्श से च्युत होती जाती हैं, वह वर्ग, समाज आज नहीं तो कल, एक दिन नष्ट हो जायगा; अधिक नहीं तो पथ-भ्रष्ट तो अवश्य हो ही जायगा। प्रतिक्रियावादी स्कूल के कई आलोचक यशपाल के जिन प्रसंगों को अश्लील बताते और सिद्ध करते हैं, आज का सचेत बौद्धिक-समाज का सदस्य उन प्रसंगों को अश्लील मानने से परहेज करता है।

नारी-चित्रण की वस्तुस्थिति यह है कि यशपाल जीवन का भौतिक विश्लेषण करने में अत्यन्त पटु हैं। नारी एवं पुरुष के जीवन का मूल्य वे मर्यादा की कसौटी पर यदा-कदा कसते हुये भी, केवल प्रश्न करके ही रह जाते हैं कि नारी का क्या अपना कोई व्यक्तित्व नहीं ? क्या उसका मानसिक संतोष कोई मूल्य नहीं रखता ? इन प्रश्नों की पहेलियों के अन्तराल में ही यशपाल की कला का प्रस्फुटन होता है। यह

श्रीमती प्रकाशवती पाल, श्री यशपाल, जेना और एलेस्सान्द्रा सोची सैनीटोरियम की क्लब में

के हमारे परम्परागत विचार, बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रहे हैं। इस तथ्य की ओर संकेत करने के लिये मैंने उन वास्तविकताओं की कल्पना की है, जो परम्परागत आदर्शों और नित्य जीवन के क्रम में वैषम्य प्रकट करते हैं। × × × × मेरा अभिप्राय है कि समाज यह अनुभव करे, कि धर्म सम्बन्धी प्राचीन धारणाएँ आज बेमौसमी बीज की तरह हमारे सामाजिक-जीवन के खेत में केवल कूड़ा-कबाड़ ही पैदा कर रही है; और मौसमी बीज को या जीवन में सफलता दे सकने वाली विचारधारा को, सफलता से पनपने का अवसर नहीं दे रहीं।

वर्मा: क्या मैं पूछ सकता हूँ कि जिसे आप काल्पनिक वास्तविकता कहते हैं, उसमें कल्पना अधिक है या वास्तविकता अधिक है ?

यशपाल: वर्मा जी, मैं आपकी इस चुटकी का स्वागत करता हूँ; क्योंकि इससे कल्पना की गम्भीरता के नीचे से वास्तविकता खिलखिला उठी है। अभिप्राय मेरा यह है कि मैं केवल वास्तविक अनुभवों के आधार पर कल्पना में अनुभवों को दोहराता हूँ। मेरा ज्ञान स्वप्न के आधार पर नहीं, भौतिक अनुभव के आधार पर बना है। मैं कल्पना में अनुभवों को इसलिए दोहराता हूँ कि आपको सुझा सकूँ कि अमुक अनुभव ने किस विचार को जन्म दिया था, या उस अनुभव ने किस परम्परागत विचार के विरोधाभास को प्रकट किया है। कहिए इसे भाव-कल्पना कहेंगे या वास्तविकता का विश्लेषण ?

अश्क: क्या आप अपने कथन के समर्थन में अपने उपन्यासों से कोई उद्धरण दे सकते हैं ?

यशपाल: मैं सोचता हूँ मुझे इसमें कोई कठिनाई न होगी। आप एक उदाहरण 'दिव्या' से ले लीजिये। पृष्ठ २२१ पृष्ठ २२४ और दूसरा उदाहरण आप मेरे 'मनुष्य के रूप' से ले लीजिये पृष्ठ ७९ पृष्ठ ८१।"

[प्रतीक; वर्ष ३ संख्या १, पृष्ठ १२ से १४ और १५

यशपाल ने अपने उपन्यासों को आस-पास के जीवन और उसकी परिस्थितियों को लेकर लिखा है, और जीवन के प्रवाह में रहकर दिशा ग्रहण करते हुए, अपने उपन्यासों में समाज को दिशा देने की चेष्टा की है।

यशपाल ने अपने काल के सामाजिक और राजनीतिक जीवन के जो यथार्थ चित्र उत्कीर्ण किये हैं; उनको झुठलाने का साहस नहीं किया जा सकता।

यशपाल के उपन्यासों में प्राकृत-यथार्थ (आरम्भ में मार्क्सवादी और उससे प्रभावित प्रगतिवादी साहित्य में जिस यथार्थ का विस्तार से चित्रण और निरूपण हुआ) कुछ अधिक सूक्ष्म और कलात्मक रूप धारण करके सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य में आया। आलोचकों के शब्दों में इस प्रवृत्ति को हम रोमांटिक-यथार्थवाद कह लेते हैं। यशपाल के सही अध्ययन के लिये उनके प्रमुख उपन्यासों पर एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा—

दादा कामरेड

शरद् बाबू के 'पथेर दावी' (जिसमें क्रान्तिकारियों के जीवन और आदर्शों को स्पष्ट किया गया है) और जैनेन्द्र कृत 'सुनीता' (जिसमें एक आदर्श पुरुष का खाका खींचा गया है) उपन्यासों को पढ़ लेने के बाद, यशपाल के 'दादा कामरेड' को पढ़ना श्रेयस्कर रहेगा।

प्रस्फुटन कहीं-कहीं तो इतना मनोहारी एवं मार्मिक है, कि पाठक के दिल पर ज़ोर से ऐसी ठेस देता है, कि वह भीषरा-यथार्थवाद की निर्दय कठोरता पर कराह उठता है। यशपाल वस्तुस्थिति को ज्यों-की-त्यों रखने वाले कलाकार हैं।

यशपाल की उपन्यास-कला को समझने के क्रम में, लेखक द्वारा अपने उपन्यासों के बारे में स्वयं प्रकट किये गए विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। अज्ञेय, अश्क, भगवतीचरण वर्मा और यशपाल के मध्य हुई आकाशवाणी (ए. आई. आर.) गोष्ठी में किए गये प्रश्नोत्तरों में यशपाल का 'उपन्यासों के स्वर' विचार प्रस्तुत है —

भगवतीचरण वर्मा : यशपाल जी, 'मनुष्य के रूप' और 'दिव्या'—आपके इन दो उपन्यासों में जो शैली कथावस्तु तथा अन्य ऐसे ही भेद हैं; उनको ध्यान में रख कर, मै आपसे यह पूछना चाहूँगा कि उपन्यास से आपका क्या अभिप्राय है ?

यशपाल: वर्मा जी, उपन्यास से मेरा अभिप्राय है समाज की विचार-धारा और विचार-धारा के आधार में तारतम्य को प्रकट करना। उपन्यास में जिन घटनाओं की हम कल्पना करते हैं, वे स्थान और पात्रों के परिवर्तन से प्रायः घटती ही रहती हैं। साधारणतः विश्वास यह किया जाता है, कि विचार समाज के जीवन क्रम को निश्चित करते हैं। इस दृष्टिकोण को हम आइडियलिज़्म या आदर्शवाद कहते हैं। सामाजिक घटनाओं को उपन्यास के परीक्षण-पात्र में रख कर दिखाने का अभिप्राय यही रहता है कि इन घटनाओं से विचारों के जन्म के क्रम को प्रकट किया जाय। इसे हम भौतिकवाद कहते हैं। इस विरोधाभास को दूर करने का प्रयोजन यह है कि हम विचारों को समाज का शाश्वत बन्धन न मान बैठें, बल्कि सामाजिक जीवन में इस सत्य को अनुभव करें कि हमारा अपना जीवन ही हमारे विचारों को जन्म देता है। हमारी विचार-धारा—हमारे जीवन की परिस्थितियों का परिणाम है। हमारी विचार-धारा हमारे बन्धनों की शृंखला न बन कर हमारे जीवन में बदलती परिस्थितियों से उसी प्रकार के आदर्श और विचारों को जन्म दे सकती थी, और 'मनुष्य के रूप' में सोमा और मनोरमा भिन्न परिस्थितियों में पलने के कारण भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से जीवन में सफलता समझाती हैं।

* * *

विचारों को उपन्यासों में प्रधानता देनी चाहिये और समस्याओं के विश्लेषण को प्रोत्साहित करना चाहिये, परन्तु हमारा पाठक प्रायः समस्याओं की मीमांसा के लिए उपन्यास नहीं पढ़ता। हमारा यह दृष्टिकोण हमारे उपन्यासों को विचार-मूलक बनाकर उन्हें पाठकों के लिये बोझिल तो नहीं बना देता ?

* * *

वर्मा: यशपाल जी, क्या आपने भी अपने 'मनुष्य के रूप' में अश्क जी की तरह प्रतिदिन की वास्तविकता का ज्यों-का-त्यों चित्रण किया है, अथवा अपने सामने कोई उद्देश्य रखा है ?

यशपाल: नहीं वर्मा जी, मैंने वास्तविकता के प्रति ईमानदारी निबाहने के लिये वास्तविकता का चित्रण नहीं किया है। मुझे आधारभूत वास्तविकता तो यह दिखाई देती है कि सामाजिक-व्यवस्थ

दादा कामरेड में राजनतिक सिद्धांत और रोमांस दोनों का सम्मिश्रण हुआ है। कांग्रेस के अहिंसात्मक-आन्दोलन के साथ-साथ अप्रकट रूप में चलने वाले क्रान्तिकारियों के विप्लवकारी आन्दोलन का सही, सजीव-चित्र उपस्थित किया गया है। दादा कामरेड के पात्र 'हरीश' और पार्टी के मध्य उत्पन्न मतभेद के कारण, 'हरीश' को गोली से उड़ा देने के निश्चय के रूप में हम पार्टी की अनुशासन-व्यवस्था की दृढ़ता का परिचय पाते हैं; और 'दादा' के रूप में 'भारतीय स्वातंत्र्य के विप्लवकारी अजेय योद्धा चन्द्रशेखर 'आज़ाद' और 'हरीश' के रूप में स्वयं 'यशपाल' दिखलाई पड़ते हैं। रेलवे में खलासी का कार्य करने वाले मुस्लिम परिवार का चित्र तो अत्यन्त दयनीय है, जिसके प्रति सहानुभूति उमड़ती है। उसकी गरीबी और ग़लत प्रवृत्ति के कारण—उस बेचारे से घूस ऐंठी जाती हैं, उसकी बहू बेटियाँ ली जाती हैं, तथा वह स्वयं शराब की लत के कारण अपने जीवन को विवश बना लेता है। मज़दूरों की हड़ताल का चित्रण भी बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है।

'हरीश' को फाँसी हो जाने के बाद हरीश का गर्भ लिये शैला का 'दादा' की शरण पाकर चल पड़ने की घटना भारतीय-समाज की पारिवारिक एवं सामाजिक दूषित मर्यादाओं के प्रति विद्रोह का अच्छा रूप प्रस्तुत करती है। आधुनिक-आलोचना-पद्धति के अनुसार यशपाल के उपन्यासों में यथार्थवाद के अन्तर्गत प्रकृतवाद [नेचुरलिज़्म] के तत्व हैं। यशपाल के दृष्टिकोणानुसार 'रति' मध्यवर्गीय विचाराधारा की तरह संगोपन की वस्तु नहीं है। साहित्य में रति-स्वातंत्र्य का चित्रण उनकी दृष्टि में निषिद्ध विषय नहीं है।

'दादा कामरेड' में हरीश का शैला से उसके शारीरिक नग्न-सौंदर्य को देखने का प्रस्ताव करना, परम्परा-रूढ़िगत दल-दल में फँसी बुद्धिवादिता को अखर सकता है, पर जहाँ तक मनोविज्ञान-विश्लेषण-सिद्धान्त का प्रश्न है, यशपाल का चित्रण सही है।

शैला के पिता के रूप में, समाज की प्राचीन रूढ़ियाँ तथा मान्यताएँ छटपटाती रह जाती हैं, शैला हरीश का गर्भ लेकर निर्भीक भाव से दादा कामरेड के साथ चली जाती है;

देशद्रोही

'देशद्रोही' एकदम साम्यवादी विचारधारा प्रधान उपन्यास है। उपन्यास के पढ़ने से भारतीय पाठकों को सरलता के साथ 'मार्क्सवादी' दर्शन का परिचय प्राप्त हो जाता है।

"देशद्रोही' का नायक डा० भगवानदास खन्ना विभिन्न देशों की सैर करता हुआ, भारत में साम्यवादी पार्टी के [१९४२ के] कार्यक्रम और सिद्धांतों से संबंधित हो, अंत में अपने को बलिदान कर देता है।

पार्टी कामरेड

'पार्टी कामरेड' उपन्यास 'दादा कामरेड' और 'देशद्रोही' की अपेक्षा प्रौढ़ रचना है।

'पार्टी कामरेड' में पदुमलाल मावरिया नामक लफंगा लखपती, गीता नामक कम्युनिस्ट लड़की के सहयोग से, धीरे-धीरे अपना सुधार करते हुये, अन्त में अपने को बलिदान कर देता है। यही कथा इस लघु उपन्यास में अंकित है।

दिव्या

'दिव्या' ऐतिहासिक उपन्यास है। इस रचना को सामने रख कर निःसंकोच कहा जा सकता है कि दिव्या उपन्यास में यशपाल ने अतीत की जिन बातों को, जिस तरह यथार्थ रूप में चित्रित किया है, उसकी टक्कर में हिन्दी साहित्य के उपन्यास में दो एक उपन्यास ही ठहर पाते हैं।

'दिव्या' में उपन्यासकार ने बौद्धकालीन-भारत की सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सरल किन्तु विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इतिहास के सम्बन्ध में यशपाल का कहना है, "इतिहास विश्वास की नहीं विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्य की अपनी परम्परा में आत्म-विश्लेषण है।"

'दिव्या' हिन्दी-साहित्य का सर्वप्रथम उपन्यास है, जिसमें तत्कालीन समाज के वर्गपरक स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक ऐतिहासिकता का प्रश्न है, कथानक और पात्र सभी कल्पना की सृष्टि हैं। इतिहास की किसी घटना से सीधा कोई संबंध नहीं है। पर जिस बौद्ध-कालीन युग की कथा कल्पना द्वारा रची गई है उसके यथार्थ वातावरण तथा देश-काल आदि के चित्रण में उपन्यासकार पूर्ण सफल हुआ है। इस संबंध में यशपाल का अपना विचार है:—

> दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति एवं गति का चित्र है। कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर, यथाथ का रंग देने का प्रयत्न किया है। जिस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आधार लेखक ने लिया है, वह है—भारत का बौद्ध-कालीन युग।

'दिव्या' में ब्राह्मण श्रेष्ठ धर्मस्थ की पौत्री 'दिव्या' का प्रेमी-हृदय जाति-बंधन का तिरस्कार कर दास-पुत्र पृथुसेन की ओर बढ़ जाता है। परन्तु समाज-निर्मित मिथ्या मान्यताओं के कारण 'गर्भ' उसकी लज्जा का विषय बन जाता है। समाज की परम्परागत मान्यताओं के कारण, दिव्या को संघ तथा राज्य के आश्रय से निराश होकर दासी-जीवन की यंत्रणाओं को सहना पड़ा। इस प्रकार के प्रसंगों के माध्यम से यशपाल ने तत्कालीन धार्मिक-आडम्बर, वर्णभेद एवं दासों के क्रय-विक्रय आदि की रूढ़िगत परम्पराओं का सजीव रूप में वर्णन कर, अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक कुप्रथाओं पर ज़ोरदार प्रहार किया है।

हमारा अतीत निर्दोष नहीं था—यह बात कटु सत्य है। इस बात की पुष्टि के लिये 'दिव्या' के इस अवतरण को ध्यान से हृदयंगम कर लेना पर्याप्त है:-

> दास-दासियों का थोक व्यापारी 'प्रतूल' बेचारी दिव्या को 'भूधर' के हाथ इसलिए बेच देना चाहता है—गर्भिणी दासी (दिव्या) का सौंदर्य दिन-दिन घटेगा, जिससे भविष्य में इससे किसी गहरे लाभ की संभावना जाती रहेगी—गोधन और अश्व धन नहीं, मनुष्य का ही व्यापार करता हूं। उसकी जाति देखते हो......पर्यंक पर पली है। द्विज कन्या है। मित्र! गर्भिणी......और वह भी प्रथम गर्भ, तिस पर भी दीर्घ-यात्रा। यदि फिसल गई तो बीस मुद्रा भी गये।

'दिव्या' ऐतिहासिक प्रवृत्ति का उपन्यास है, जिसमें इतिहास और कल्पना का प्रवाह समान रूप से है।

पात्रों की दृष्टि से दिव्या का 'पृथुसेन' एक कायर और यशलोलुप व्यक्ति है। 'धर्मस्थित' एक वीतरागी महात्मा है। भट्टारक 'रुद्रधीर' एक कुटिल, धूर्त और अभिमानी ब्राह्मण है। चार्वाक और मारिश का चरित्र-चित्रण तो बहुत ही सुन्दर रूप में व्यक्त हुआ है। दिव्या कलात्मक दृष्टि से यशपाल का उत्कृष्ट उपन्यास है।

मनुष्य के रूप

दिग्गज-साहित्यकों को यशपाल के उपन्यासों में राजनीतिक उग्रता प्रायः खटकती रहती है पर वह बात 'दिव्या' और 'मनुष्य के रूप' में भी नहीं खटकी, क्योंकि इसमें बहस और विवाद नहीं हैं।

'मनुष्य के रूप' में यदि राजनीति खटकती नहीं है, तो इसका कारण यह है, कि पात्रों को घटनाओं की माला में पिरोने से पूर्व समकेन्द्र कर लिया गया है। विवेचन विवाद से नहीं वर्णन से है, लेखक के उपदेशक के रूप में नहीं, घटनाओं के वर्णनों में है। यशपाल घटना या बात को अपने ढंग से पाठक के सामने रख, स्वयँ छिपे रहते हैं। सोद्देश्य कहानी लिखने का सफल ढंग और क्या हो सकता है? इसीलिये 'मनुष्य के रूप' पाठक की कल्पना की मुठ्ठी में लेकर भी केवल विनोद की ही चीज नहीं है। लेखक का अन्तर्निहित प्रयोजन सामयिक राजनीतिक झगड़ों के बावजूद मानवता के परिवर्तनों की ओर संकेत करना है। उपन्यास की कहानी और शैली में आक्रोश की अपेक्षा, वेदना का पुट अधिक उभरा हैं।

यशपाल के पहले उपन्यासों में मूल आधार कल्पना का वैचित्र्य रहा है, और विकास-धरातल के इस छोर पर आकर उपन्यासकार 'मनुष्य के रूप' में, यह आधार प्रकट यथार्थ की अन्तरंग परीक्षा बन गया है।

दिल्ली–६

बालमुकुन्द मिश्र

एण्टन चेखव और यशपाल

किसी भी साहित्य की परम्परा में भिन्न प्रवृत्तियों की शृंखलाएँ जुड़ती आई हैं और जहाँ भी आत्म-सचेतन, सजग कलाकार अपने सनातन हृदयावेगों और व्यापक अंतरनुभूतियों को मानव-समूह की सांस्कृतिक-चेतना के साथ समन्वित कर देता है ; उनके दुःख-सुख, उत्थान-पतन और जीवन-मरण में अपने अस्तित्व तक को भूल जाता है—वहाँ साहित्य का यह ग्राह्य रूप पाठकों पर जादू का-सा प्रभाव डालता है । उसकी आत्मा का इतिहास—स्वतः-स्फूर्त और जाग्रत होने के कारण—जनवर्ग की आत्मा का इतिहास बन जाता है ।

उन्नीसवीं शती में रूस की क्रान्तिकारी धरती पर जिस प्रकार चेखव ने युग-सापेक्ष आह्वान पाकर सामाजिक-एकत्त्वबोध की रक्षा के लिए विराट् क्रान्ति के स्वप्न देखे थे और आगे बढ़कर अपनी शक्तिशाली, प्रखर लेखनी से संकटकालीन संघर्षमय परिस्थितियों में पिटती मानवता का प्रतिनिधित्व किया था—उसी प्रकार भारत की इस नवीन सांस्कृतिक जागरण-वेला में सभ्यता के घातप्रतिघात ने जन-मानस में जो उत्साह और नव-चेतना जगा दी है, उसके फलस्वरूप यशपाल जैसे कलाकारों के भी प्राण स्पंदित हो उठे हैं । अनुभूति-प्रवणता एवं कला की दृष्टि से यशपाल चेखव से कुछ निम्न-स्तर पर होते हुए भी उसी की भाँति नवीन-संस्कृति के स्वप्न-द्रष्टा एवं वृहत्तर मानव-क्रान्ति के संदेशवाहक हैं । दोनों के शोधक मस्तिष्कों में एक-सी विह्वलता, प्राणों में एक-सी कचट और चिंतन एवं विचारधाराओं के विकास-क्रम में अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है ।

मानवता की पृष्ठभूमि

वर्त्तमान विश्व-क्रान्ति का निर्दिष्ट लक्ष्य मनुष्य को अविचार और दासता के बंधन से मुक्त करना है, अविकल रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्य आंक कर उसके सिद्धान्त और कर्म के मध्य जो गहरी रेखाएँ खिंच गई हैं—उसका समाधान एक ऐसे विश्वास में खोजना है, जो उसके अंतर में कर्म की शक्ति और साहसपूर्ण जीवन-धारण करने की नूतन चेतना जगा सके । मानव की चरम-मुक्ति एक ऐसी मानसिक-अवस्था में सुनिश्चित हो सकती है, जो उसकी आत्मा की दृढ़ता को भय के ऊपर, उसकी शालीनता को निषेधों के ऊपर और उसके व्यक्तित्व-मूलक मूल्यों को जीवन के तुच्छ उपकरणों के ऊपर विजयी बना सके । आज का मानव विषम परिस्थितियों, बहुरंगी द्वैत, जटिल-समस्याओं, भेदभाव, अनैक्य एवं

दुःख-क्लेशों के कारण अशांत, उद्वेलित और असंतुष्ट है। वह भौतिक प्रसाधनों के प्रलोभन में पड़कर आत्मनिष्ठा खो बैठा है और उसका मस्तिष्क, उसके नियंत्रण एवं अनुशासन से बाहर होकर, उसके अपने वक्ष पर ही निर्मम प्रहार करने को उद्यत है। एक ओर तो उसके अंतर का क्रन्दन बाहर फूट कर उसके मनोवेगों को मथना चाहता है, दूसरी ओर समाज की समष्टिगत-चेतना उसे अज्ञात दिशा की ओर उत्प्रेरित करके उसकी क्रियाशीलता पर भीषण कुठाराघात करना चाहती है। गणतंत्र में, जो इस समय एक प्रकार की अस्वस्थता मालूम हो रही है, उसका कारण है कि आज की पीड़ित और परेशान इन्सानियत विषाक्त और दमघोंटू व्यवस्था से बाहर आने को तड़प रही है। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति एक शक्तिशाली विद्रोही है और राष्ट्र एवं समाज की परिस्थितियों से विवश वह प्रतिक्षण अपनी बेबसी और दासता पर खून के आँसू बहा रहा है।

चेखव ने प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्म लेकर भी मानवता के निर्माण का दायित्व अपने कंधों पर लिया और व्यक्तिवाद के ऊपर समष्टिवाद को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। उसने अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता और गौरव को विश्व-हित के साथ एक करके देखा और सार्वभौम-शांति एवं मानव-भ्रातृत्व की भावना को व्यापक बनाने के लिये अपनी क्रियात्मक शक्ति को जागृति के साथ यथार्थ के रूपायन में तत्पर किया।

चेखव की कृतियों में गहरी स्वातन्त्र्य-भावना है। वह बुझते मस्तिष्क की भाव-चेतना को कुरेदता है। उसकी रचनाओं के प्रत्येक पृष्ठ पर स्वेच्छाचारी शासक, जमींदार और पूंजीपतियों के स्वार्थ से कुचले हुए रूसी-जनगण, महत्वाकांक्षी और धन-लिप्सुओं के यथेच्छाचार से असंतुष्ट तथा सामन्ती-हथकण्डों के मध्य पनपने वाली निर्धन जनता की बेबसी की करुण गाथा है। यथार्थ के ठोस धरातल पर अपनी जागरूक-चेतना और निरपेक्षा-बुद्धि से चेखव ने उन नर-नारियों के प्रति अपनी सबसे गहरी सहानुभूति व्यक्त की है, जो उच्च-वर्ग की दमन-नीति से त्रस्त हैं और घृणित, बर्बर जीवन के दलदल में फँस गए हैं। 'थ्री सिस्टर्स' (Three Sisters) में ट्यूजेनबाख नाम का एक पात्र कहता है—

> "समय आ गया है, कोई भारी दायित्व हमें मिला ही चाहता है। एक भयंकर ज़बर्दस्त तूफ़ान के आसार नज़र आ रहे हैं, जिसकी संभावना प्रतिक्षण है और जो इतना समीप है कि शीघ्र ही वह समाज की अकर्मण्यता, प्रमाद, मज़दूरों के प्रति उपेक्षा, उदासीनता और उसके घृणित शैथिल्य को अपने साथ उड़ाकर ले जाएगा। मैं काम करूंगा और पच्चीस-तीस वर्षों के भीतर सभी काम में जुट जाएँगे—हाँ, प्रत्येक ही।"

("The time has come ; something enormous is descending upon all of us ; a powerful, healthy storm is gathering ; it is coming, it is already near, and soon it will sweep our society clean of indolence, indifference, of contempt for labour, of rotten boredom. I shall work, and some 25-30 years later every man will be working. Every one.")

मध्य बिन्दु

चेखव की पैनी दृष्टि तत्कालीन निस्सत्त्व-संस्कृति एवं समाज-व्यवस्था की ऊपरी सतह को चीर कर उसके अन्तरतम तक पैठ जाती है और उसके भीतरी खोखलेपन को नग्न-रूप में हमारे नेत्रों के समक्ष

समुपस्थित कर देती है। पूंजीवाद के सबल ढांचे को जड़-मूल से नष्ट-भ्रष्ट कर देने का हिमायती चेखव इस बात को भली-भाँति जानता था कि जनता की आबरू का पानी उतर चुका है और स्वावलम्बन-पथ पर दृढ़तापूर्वक चलने की उनके लड़खड़ाते पैरों में सामर्थ्य नहीं है। उनका आत्म-तेज हीनता और निन्द्य दीनता के धुँधलके में मानों जा छिपा है। असंख्य दलितों और पीड़ितों की आशा-निराशा एवं हर्ष-विषाद को उसने निकट से अनुभव किया और उनकी दुर्दशा देख कर उसका हृदय तड़प उठा। ये प्रश्न बार बार उसके मस्तिष्क में कौंध जाते कि अधिकार मांगने से नहीं मिलते, वे साहस और प्राण-दान से ही बलपूर्वक प्राप्त किए जा सकते हैं। उसने आगे बढ़कर अपना हृदय खोलकर दिखा दिया। उनकी सुप्त-चेतना में आत्म-विश्वास और नवाकांक्षा की भावना जगाई और बुझते मानस में मुक्ति-कामना के ज्योतिर्मय स्फुलिंग-कणों को बिखेरा। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह कंटकाकीर्ण मार्ग पर साहस से आगे बढ़ा और लाखों नर-नारियों के साथ जन-कल्याण की साधना में रत हो गया। अपनी लेखनी की चोट से उसने मानवात्मा को जकड़ने वाले फौलादी पिंजरे की जड़ें हिला दीं और तीक्ष्ण विश्लेषणात्मक शैली से सोये राष्ट्र की मूर्च्छना को भंग कर दिया।

यशपाल भी चेखव की भाँति जनवादी कलाकार हैं। भारत की दरिद्र, अभिशप्त जनता के हाहाकार और चीत्कार ने उनके प्राणों में मर्मान्तिक टीस पैदा कर दी है, नित्यप्रति बढ़ते हुए असंतोष और अक्षमता ने उन्हें बेचैन बना दिया है। पीड़ा से छटपटाते प्रत्येक मानव के प्रति उनके दिल में दर्द की तड़प है, मोहब्बत का जोश है। अपनी एक पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, "हमारा जीवन कितना छिछला और संकीर्ण होता चला जा रहा है? स्वार्थ के बावलेपन की छीना-झपटी और मारोमार हमें बदहवास किए दे रही है। मनुष्य की उस मानवता, नैतिकता और स्थिरता को हम खो चुके हैं, जिसका विकास हमारे आतद्रष्टा ऋषियों ने संकीर्ण सांसारिकता से मुक्त होकर किया था। स्वार्थ की पट्टी आँखों पर बाँध हम भारत की आत्म-ज्ञान की संस्कृति के परम शांति के मार्ग को खो बैठे हैं। क्या पेट और रोटी ही सब कुछ है? इससे परे मनुष्य की मनुष्यता, संस्कृति और नैतिकता कुछ नहीं?"

यशपाल ने अपने देश की, समाज की उभरती हुई शक्तियों और आज की बदली हुई परिस्थितियों को पहचाना है। उन्होंने समाज के किसी एक पहलू पर प्रहार नहीं किया है, वरन् अपनी छलछलाती, पैनी, व्यंगपूर्ण शैली में उन अंतरंग उफनती हुई भावनाओं को बाँधा है, जो दासता, सामाजिक एवं आर्थिक असमानता और जीवन की असंगतियों को देखकर घृणा और जोश से तड़प उठती हैं। उनकी अदम्य प्रतिभा-शक्ति अंधकार में टटोलती हुई राह की अवरोधक-शक्तियों पर भीषण प्रहार करती चलती है और पतनोन्मुख समाज एवं सड़ी-गली, जर्जर संस्कृति की विकृति का पर्दा फ़ाश कर देती है।

कहना न होगा—एक ईमानदार कलाकार अपने आंतरिक विश्वासों के सत्य पर जीता है। उसकी चेतना औरों से अधिक जाग्रत होती है और अपनी विचारधारा के विरोधी तत्वों का वह डटकर मुकाबला करता है। यशपाल के शब्दों में, "प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रताड़ित और पीड़ित होकर भी तर्क द्वारा विवेक की जो भावना हममें जीवित रहती है—वही मनुष्यत्त्व का अवलम्ब है। सिसकती रहकर भी यदि वह जीवित रह सके तो आज अपना मनुष्यत्त्व खो रहे मनुष्य को वह कल 'मनुष्य' बना सकेगी।"

लोकायतन की ओर

यशपाल और चेखव को विदित है कि वे जनता का नेतृत्त्व कैसे करें—उनके मुमूर्षु-देह में पुनः प्राणों का संचार, उनकी रुधिर-विहीन नसों में नए रुधिर का प्रवेश, उनकी जीवन की टिमटिमाती लौ का फिर से प्रज्ज्वलन वे किन उपायों और अचूक प्रयोगों से कर सकते हैं। उन्होंने सच्चे क्राँतिकारी की भाँति ठोस तर्कों, अकाट्य प्रमाणों एवं निष्पक्ष दृष्टिकोणों को कलापूर्ण ढंग से समुपस्थित करके न केवल पुरुषों को वरन् नारियों को भी आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया और आगे आगे चलकर पथ-निर्देश करते हुए परम्परागत रूढ़ियों के संकीर्ण दायरे को तोड़ कर बाहर आने का उन्हें प्रशस्त मार्ग दिखाया। यद्यपि हमारे दृष्टिकोण से यशपाल की कृतियों में कहीं कहीं अधिक शृंगारिकता का प्रश्रय लेकर भारतीय वातावरण के प्रतिकूल नारी की विकृत वासनाओं को अत्युक्तिपूर्ण ढंग से उभाड़ा गया है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने भारतीय नारी की सुप्त-चेतना को जगाने में पर्याप्त योग दिया है। उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में कई स्थलों पर नग्न रोमांस होते हुए भी शालीनता का आवरण पड़ा है, जो लेखक की दृढ़ अंतर्धारणा, साहस और स्वतन्त्र संस्कारिता का परिचायक है। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या' और अभी हाल में ही प्रकाशित 'मनुष्य के रूप' में नारी के अंतर्जीवन की कठोर झाँकी है, जिनमें साथ ही उनकी विविध मानसिक स्थितियों का अभूतपूर्व विश्लेषण हुआ है। समाज की विषमताओं प्रवंचनाओं के प्रति उनकी मचलती भावनाओं में विस्फोटक विद्रोह है। अविराम संघर्ष और जीवन के विद्रूप सहते सहते उनमें जो एक आत्मनिष्ठा उत्पन्न हो गई है—वह उन्हें कण्टकाकीर्ण, स्वावलम्बन-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है और उन्हें आशा एवं उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देकर उनके मनोबल को ऊँचा बनाए रखने का प्रयत्न करती है। 'दादा कामरेड' में शैलबाला के ये शब्द, "अपने अस्तित्त्व को अनुभव करने की तृप्ति...अवरुद्ध भावना के लिए मार्ग...देखो तुम चाहते हो केवल शासन में क्रांति, परन्तु समाज की व्यवस्था के बन्धन में व्यक्ति के अवरुद्ध प्राण कैसे छटपटाते हैं।" उसके आंतरिक-विश्वास के सत्य को व्यक्त करते है। शैलबाला, चंदा, दिव्या और सोमा सभी में जीवन की तीखी कठिनाइयों से विशेषरूप से संघर्ष करने के कारण तीव्र भावनाएँ जग गई हैं, जो सब मर्यादाओं और लोक-लज्जा की मिथ्या प्राचीर को लाँघ कर उन्हें बाहर कूद पड़ने को विवश करती हैं। उपन्यास के अन्त में दिव्या मारिश का आश्रय ग्रहण करके जीवन के चरम सत्य को अपनाती है और पुरुषत्व की कर्मचपल, उद्बुद्ध चेतना अर्पित कर वह उससे उन अनुभूत सांसारिक सुख-दुःखों और विचारों का आदान-प्रदान चाहती है, जो हल्के सद्भाव में संभव नहीं और न जिसे सस्ती भावुकता का प्रदर्शन ही कहा जा सकता है। 'दादा कामरेड' की यशोदा, 'देशद्रोही' की चन्ना और 'मनुष्य के रूप' की सोमा गृहस्थी के महान् दायित्त्व को सँभाले हुए विवाहित नारियाँ हैं; वे अपने आप में सिमटी हुई अपने कर्तव्य-कर्म में तत्पर हैं, किन्तु दारुण परिस्थितियाँ उन्हें महत्त्वाकांक्षा और स्वतन्त्र-चिंतन से अनुकूल सागर की तरंगों में धकेल कर छोड़ जाती हैं। वे बाहर आने के लिए छटपटा उठती हैं और कुल-मर्यादा का उल्लंघन करके अपने अभिभावकों की इच्छा के विपरीत दूसरा मार्ग अपना लेती हैं। चेखव की 'दुलहिन' (The Bride) नामक कहानी की नायिका नाद्या भी साशा की प्रेरणा से विवश परिस्थितियों एवं बर्बरतापूर्ण संकुचित वातावरण से ऊब कर बाहर निकल पड़ती है और क्रांतिकारी कार्यों में अपना जीवन अर्पित कर देती है।

चेखव और यशपाल नारी के जीवन की त्रुटियों एवं उनकी चारित्रिक कमज़ोरियों को दिखाते हुए भी उनके प्रति उदार और संवेदनशील हैं। रूढ़ि-जर्जर संस्कारों में पली, समाज के अनुचित बन्धनों में जकड़ी, शरीर और मनोबल से हीन नारी में वे आत्म-चेतना जगाना चाहते हैं। 'देशद्रोही' में खन्ना चंदा से कहता है, "कुल के सम्मान के लिए तुम गल रही हो, अपने बलिदान से नारी-समाज के बन्धन दूर करने के लिए। एक घर से बढ़कर देश और मनुष्यता का ध्यान तुम्हें होना चाहिए।" चेखव की 'दुलहिन' नामक कहानी में भी ये ही भाव प्रतिध्वनित हो रहे हैं। साशा जीवन के कायाकल्प को ही श्रेयस्कर समझती है। 'माई लाइफ' (My Life) उपन्यास का एक पात्र कहता है, "हमे संघर्ष के उन तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है, जो अचूक,साहसपूर्ण और शीघ्र कामयाब होने वाले हों। यदि तुम वस्तुतः लाभदायक होना चाहते हो साधारण कार्यों की सीमित परिधियों को तोड़ कर बाहर निकलो और जनता को प्रभावित करने का प्रयत्न करो।"

("What we need here is other methods of struggle, strong daring, swift ! If you really want to be useful, then step beyond the narrow limits of commonplace activities and try to influence the masses at once !")

'चेरी ऑरचार्ड' (Cherry Orchard) में भी जीवन के पुनर्निर्माण का संकेत मिलता है "आगे बढ़ो ! हम अनायास उस चमकीले तारे की ओर बढ़ रहे हैं, जो हमारे सिर पर दूर चमक रहा है। सारा रूस हमारा उद्यान है।"

("Forward ! We are irresistibly moving towards the bright star which glows ahead, far away. Forward !...........The whole of Russia is our orchard.")

मानसिक धरातल

यशपाल और चेखव केवल वर्तमान के ही साधक नहीं, प्रत्युत् अपने अतीत गौरव पर भी गर्व करते हैं। एक कुशल कलाकार की भाँति वे नवीन भाव-सौंदर्य की सृष्टि के लिए उन्हीं कल्पना-चित्रों का प्रयोग करते हैं, जो जनता की चेतना का संस्कार बन चुकी हैं। युग के कटु एवं विषम संघर्षों से उद्भूत उनकी कृतियों में युग-युग की सौंदर्य-रेखाएँ भी उभर आई हैं। पुरातन आदर्शों और अपनी संस्कृति का गला उन्होंने कहीं नहीं दबोचा है, हाँ—उस आदर्श के पाखंड का पर्दाफ़ाश अवश्य किया है, जो उनकी समस्त चेतना और प्राणों को अवरुद्ध किए है। सत्य एवं यथार्थ को अपना कर वे सदैव मानवीय-एकता के सुन्दर स्वप्न देखा करते हैं और जीवन संघर्ष, बेचैनी और कन्धों पर रखा हुआ परतन्त्रता का असह्य भार उन्हें उज्ज्वल-भविष्य का प्रिय संदेश दे जाता है। प्रचण्ड अन्धड़ के कोलाहल के भीतर उन्हें कुछ और ही छिपा नज़र आता है—शांतिमय जीवन की खुशहाली, कलात्मक एवं साहित्यिक उन्नति। उनकी प्रखर दृष्टि गहरी पैठ कर जीवन का वास्तविक अर्थ खोज रही है और अतल गह्वरों में छिपे रहस्यों का उद्घाटन चाहती है। यशपाल की लड़खड़ाती दृष्टि कई बार अनजाने में तमसाच्छन्न गड्ढों से जा टकराई है, कभी सुदूर के दुर्भेद्य धुँधलके में पलकें झाँप लेती है, जिसके फलस्वरूप यथार्थवाद की ओर सहज झुकाव होते हुए भी 'दिव्या' उपन्यास और 'दास-धर्म' आदि कुछ कहानियों के कथानक, जो इतिहास पर आधारित हैं, अत्यधिक कल्पनापरक और भावच्छटा की निविड़

सघनता से ओतप्रोत हो गए हैं। गहरी निस्तब्धता में कोई कल्पित, आकर्षक चित्र ही सहज स्फुरण से गति की अबाधता और घटना-क्रम सूचित कर जाता है। कब कब की स्मृतियों को ढके हुए विस्मरण का आवरण सामने से हटकर हृदय-पटल पर अतीत के रंगीन चित्र अंकित कर जाता है और सहसा भावनाएँ उमड़ कर स्निग्धता और वातावरण की तरलता में सिहर उठती हैं। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' और 'मनुष्य के रूप' में लेखक भाषा की दुरूहता और भावों की उलझन में नहीं उलझा है, तो भी उसकी ठोस लेखनी न जाने किन भावनाओं से टकरा कर मनोवैज्ञानिक तथ्य को कोमलता से, किन्तु तेजी से, छू कर निकल जाती है। जीवन की साधारण से साधारण बातों को वह ग़ौर से कलम की नोक पर सही अंकन कर देता है, कहीं कहीं तो सधे हुए दो चार खरोचों से ही चित्र सजीव हो उठता है।

"मध्यान्ह-सूर्य के प्रचण्ड ताप से भूमि की रज धूसर ज्वालाओं के रूप में आकाश की ओर उठी आ रही थी। हू-हू करती संतप्त वायु आश्रय की खोज में बनों की ओर दौड़ी जा रही थी। उस विभीषिका में दारा अपने शाकुल को हृदय से लगाए, तवे की भाँति तपे पत्थर मढ़े पथ पर पुरोहित-गृह से निकल पड़ी। सूर्य के उत्तप्त बाणों से शाकुल की कोमल त्वचा बचाने के लिए दारा ने शिशु को अपने छिन्न, जीर्ण, मलिन उत्तरीय में लपेट लिया।" (दिव्या से)

"दीमा दासियों की पंक्ति में बैठी थी। उसके मूल्यवान् वस्त्र कुचले जाकर विश्री हो गए थे। उसके नयनों की मादकता कातरता में और मुख की त्वचा का इंगुर-भरा लावण्य भयार्त्त के उदासी पीलेपन में बदल गया था। दस्युओं ने उसके केशों की सुनहरी आभा दिखाने के लिए वेणी खोल लटों को कंधों पर डाल दिया। उसके वक्ष पर त्वचा की कमनीयता दिखाने के लिए उसकी कंचुकी का एक भाग फाड़ दिया गया।" (दास-धर्म से)

यद्यपि सामाजिक संघर्षों की चोट ने यशपाल की भावनाओं को आलोड़ित किया है, जिसके कारण उनकी अभिव्यक्तियों में कई स्थलों पर तीव्रता आगई है, तथापि मानस में विस्फोटक विद्रोह होते हुए भी वे अपने सृजन के प्रति तन्मय हैं, क्रांतमुख होते हुए भी निर्माणोन्मुख हैं और बुद्धिवादी होते हुए भी यथार्थ-युग के प्रांजल कलाकार हैं। बहिर्मुख प्रवृत्ति के होते हुए भी उनमें उत्कट उद्वेगशीलता है और अपनी कृतियों में बहिर्जीवन की प्रतिच्छाया अंकित करने पर भी उन्होंने अन्तर्द्वन्द्वों को आरोपित किया है। यह सही है कि वे वर्तमान् सामाजिक-विकृतियों एवं पतनोन्मुख परम्पराओं को देख क्षुब्ध हो उठते हैं, किन्तु इसके साथ ही वे अपनी कोमल-भावनाओं के प्रति भी सतर्क हैं और स्थूल-सौंदर्य के साथ साथ सूक्ष्म-सौंदर्य के भी द्रष्टा हैं। समस्त सृष्टि को अपनी क्रीड़ास्थली बनाने वाली उनकी विलक्षण प्रतिभा देश-काल की सीमाओं से ही टकरा कर नहीं रह गई है, वरन् भारत से दूर सोवियत रूस, अफ़गानिस्तान, गज़नी, समरकन्द तथा अन्य देशों के स्त्री-पुरुष, रीति-रिवाज वेष-भूषा रहन-सहन आदि के चित्र भी बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। उनकी कृतियों का टेकनीक नव्यादर्श का अनुयायी है, तथापि व्यापक समस्याओं और सामयिक शोषण, उत्पीड़न से ही उनके चित्त में संवेदना संचरित होती है, जिससे उनकी कल्पना-प्रवणता संकुचित परिधियो को तोड़ कर विशालतर अमरत्त्व की भूमिका में अवतीर्ण हो गई है।

वर्तमान् समाज-व्यवस्था-लब्ध अनुभूतियों पर आधारित यशपाल की छोटी कहानियाँ जीवन-सापेक्ष्य और समाज-सचेतन होने से कलाकार के अंतर्द्वन्द्वों और उसके अशांत मस्तिष्क की वेदना को

लेकर रूपायित हुई हैं, जिनमें जीवन को बहुत पास से देखने की चेष्टा की गई है। विश्व अथवा अपने देश में फैले हुए अनाचार, ढोंग, स्वेच्छाचारी-शासन और दमन-नीति के विरुद्ध उनकी सहृदयता विद्रोह करती है, जिससे कभी कभी संकुल-भावनाएँ विशृंखल होकर विचारों की तन्मयता में कुछ अव्यवस्थित और उखड़ी उखड़ी-सी लगती हैं तथा युग की समस्याओं से परिचित होकर भी उनकी रूप-रेखाओं को स्पष्ट नहीं कर पातीं। 'पिंजड़े की उड़ान', 'ज्ञान-दान', 'वो दुनियां', 'अभिशप्त', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत्त चिन्गारी' और 'फूलो का कुर्त्ता' आदि कहानी-संग्रह में सामाजिक-विद्रूप साहित्यिक-गरिमा के साथ प्रकट हुए हैं, जिनमें संसार-चक्र के साथ साथ अनवरत घूमने वाले व्यक्तियों की विभिन्न मनः-स्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। नव-संस्कृति के नवीन जीवन-प्रयोगों को यशपाल ने प्रगतिशील मानववाद में विकसित कर दिया है।

यदि हम निर्माण-कौशल के अन्य पहलुओं पर भी विचार करें तो चेखव यशपाल से श्रेष्ठ कलाकार सिद्ध होता है। उसमें एक कुशल कहानी-लेखक के सभी गुण विद्यमान् हैं और अपनी अभिव्यक्तियों पर पूर्ण नियंत्रण रख कर वह उन्हें अभीष्ट रूप-रेखाएँ देने में समर्थ हुआ है। अपनी छोटी छोटी कहानियों में लेखक ने जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्र खींचा है और प्रत्येक चित्र इतना सुन्दर और कजलापूर्ण बन पड़ा है कि अपना स्थायी प्रभाव पाठक पर छोड़ जाता है। चेखव की प्रतिभा ने अपने युग की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए तत्कालीन कथा-साहित्य को नाटकीय-संघात से नवीन विक्षेप-शैली प्रदान की है और जनता की धमनियों में क्रांति का रक्त संचरित करके नवीन सामाजिक व्यूह-रचना में अपनी समस्त शक्ति व्यय कर दी है। उसकी रचनाओं में कल्पना-तत्त्व कम और वस्तु तत्त्व अधिक है। ज्यों ज्यों बाहरी चमक-दमक की चकाचौंध मिटती जाती है, उनका अधिकाधिक प्रकृत-रूप निखरता आता है और भावों की व्यंजकता भीतरी गांभीर्य को प्रकट करती है।

जीवन के घात-प्रतिघातों ने चेखव के हृदय को स्तब्ध बना दिया है। व्यक्ति की इकाई में उसने त्रस्त मानवता की करुण-तस्वीर खींची है, जिसमें कभी न सांस लेने देने वाली गरीबी में डूबे और पूंजीवाद की अंध-शक्तियों के समक्ष सर्वथा असहाय रूसी मजदूरों, निर्धन स्त्री-पुरुषों, किसान एवं श्रमजीवी-वर्ग का यथातथ्य चित्रण किया गया है। चेखव ने अपने जीवन-काल में अनेकों बार यह विश्वास प्रकट किया है कि अर्वाचीन राष्ट्र किसी एक व्यक्ति एवं वर्ग-विशेष की नियामत नहीं है, प्रत्युत् प्रत्येक जाग्रत राष्ट्र में जनता ही वह क्रांतिकारी शक्ति है, जो पूंजीवादी-व्यवस्था की इमारत की ईंट-ईंट बिखेर कर ध्वंसावशेष पर शोषणमुक्त, स्वस्थ समाज की नींव रखेगी। इस पूंजीवादी-युग में वर्ग-संघर्ष नग्न रूप में प्रकट हो गया है और चेखव के दृष्टिकोण से मानव-समाज की रचना तभी संभव हो सकती है, जबकि व्यक्ति का सामाजिक एवं नैतिक स्तर पर्याप्त उन्नत हो और वह अपने व्यक्तिगत हर्ष-विषाद को वर्गीकृत स्वार्थों के उन्मूलन में आत्मसात् कर दे। गोर्की ने एक स्थल पर लिखा है, "अभीष्ट क्रांति लाने के लिये साहित्य ही एक प्रमुख अस्त्र है। उत्तरदायी लेखकों का कर्त्तव्य है कि वे उत्पीड़ित, शोषित-वर्ग को सावधान कर दें कि जिस गलाघोंटू-व्यवस्था के अधीन वे पीसे जाते हैं—उससे वे सख्त नफ़रत करना सीखें।"

चेखव ने जीवन की जटिलताओं और तात्कालिक घटना-क्रम के क्रियाशील सम्पर्क को उद्घाटित किया और नित्य परिवर्तनशील राष्ट्र एवं समाज के स्वाभाविक-विकास के रूपान्तर को प्रकट करने की

चेष्टा की । उसकी महान् शक्ति का परिज्ञान हमें उसकी घटनाओं और मानव-सम्बन्धों के वर्णन, चरित्र-चित्रण, शैली की सजीवता, शब्दों की सुडौलता और प्लॉट की सुन्दर गठन में होता है । 'दि सी गल' (The Sea Gull), 'दि चेरी गार्डन' (The Cherry Garden), 'इवनोव' (Ivanov), 'थ्री सिस्टर्स' (Three Sisters), 'अंकल वन्या' (Uncle Vanya) और 'माई लाइफ' (My Life) आदि उसकी प्रमुख कृतियों के कथानक युग की झंझावातों और लेखक के एकांत-हृदय के आंदोलन का विस्फूर्जन हैं, जिनमें स्वातन्त्र्य-भावना और स्वदेश-प्रेम भी कूट कूट कर भरा हुआ है । चेखव के पात्र सीधी-सादी, सजीव भाषा में अपने हृदय के भाव व्यक्त करते हैं और शनैः शनैः बात चीत के सिलसिले में रूस के प्रति अपने महान् दायित्व और प्रेम की घोषणा करते हैं । चेखव के एक घनिष्ठ मित्र ने अपने 'संस्मरण' में उसके सम्बन्ध में लिखा था—"उसके लेखों और समस्त कार्यों में रूसी-जनगण के युवा प्राण, कवित्त्व और हास्यपूर्ण आभा लिये, झलकते हैं । वह सरल व्यक्तियों और कला की सरलता को स्नेह करता है ।"

गोर्की को स्मरण था कि किस प्रकार लियो टालस्टॉय जैसे महान् कलाकार ने भी उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की थी, "तुम सच्चे रूसी हो, हाँ-हाँ एकदम रूसी" और एक वात्सल्य-भरी मुस्कराहट से उसने चेखव को गले लगा लिया था ।

चेखव ने कहानी-कला में भी अनेक नये प्रयोग किए हैं । कथानक के पुराने सांचों को तोड़ कर उसने उनका रुख बदला है, चरित्र-चित्रण को नवीन मनोविश्लेषण पद्धति से प्रस्तुत किया है और यथार्थ को सामाजिक व्यक्तित्त्व दिया है । चेखव के पूर्व के रूसी कलाकारों की रचनाओं में सच्चे जीवन की झलक न थी, उनकी प्रतिभा का विकास कलात्मक क्रांति में न होकर आदर्श के प्रतिष्ठान और आंतरिक-निष्ठा में मुखरित था, किन्तु चेखव का क्या उपन्यास, क्या नाटक, क्या छोटी छोटी कहानियाँ सभी समाज की उचित-अनुचित रीतियों का स्वच्छ दर्पण हैं, जिनमें लेखक की अनुभूतियों की स्वर-लिपि भी अंकित है । मानव-हृदय का अंतर्द्वन्द्व और उनकी सहजात प्रवृत्तियों का मर्मभेदी विश्लेषण, जो उसकी कहानियों में मिलता है—वह अनुपम है और उसी के कारण चेखव का नाम संसार के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों में लिया जाता है तथा रूस से दूर विदेशी लेखकों और कलाकारों पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा है ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चेखव और यशपाल दोनों ने ही जीवन के तल को स्पर्श किया है और उनकी सजग अभिव्यक्ति वस्तु-स्थिति में सधी-बँधी है । नित्य-जीवन के मार्मिक चित्र और आज के ह्रासोन्मुख समाज की दयनीय अवस्था के सजीव दृश्य विविध रूप-रंगों में कुशलता के साथ चित्रित किए गये हैं । वीभत्स मनुष्यत्त्व के अनाचार, अत्याचार को विष की घूंट की तरह पी कर उसे अपनी अंतः-साधना से उन्होंने अमृत बना कर प्रकट किया है । उनकी आंतरिक-आस्था जब भावनाओं के साथ उमड़ कर हृदय की कोमल स्निग्धता में फैल जाती है तो उससे कुछ असाधारण चमक आ जाती है, हृदय की मधुर पीड़ा की कराहट सुन पड़ती है और चिरंतनता सांस लेती नजर आती है । व्यष्टि के स्तर से ऊपर उठकर वे समष्टि की असीमता में रम गए हैं और वैयक्तिक-स्वार्थों को सामाजिक-परिणति देकर उन्होंने लोक-संघर्ष के लिये अपने अहं को विलय कर दिया है । निःसन्देह, चतुर्दिक् फैली घनी निराशा के अंधकार में वे ऐसी प्रकाश-रेखाएँ विकीर्ण कर रहे हैं, जो निरुपाय मानवता को एक नवीन दिशा की ओर

उत्प्रेरित करती हैं। मनुष्यत्त्व की परिपूर्णता के लिये, उसके सम्यक् विकास और उत्थान के लिये के प्रयत्नशील हैं और चटकीले, भड़कीले रंगों से पुती तथा कृत्रिम प्रकाश से जगमगाती आज की सभ्यता की मृग-मरीचिका की आसक्ति से वे छुटकारा पा चुके हैं।

वर्त्तमान् समय में मानवीय-संस्कृति अपनी सच्ची प्रगति में अवरुद्ध है और वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य जीवन-विकास का अभिप्रेत अंग होकर भी वांच्छित समादर प्राप्त नहीं कर रहा है। जीवन के मान मिट चुके हैं और जीवन का उद्देश्य, जीवन की सार्थकता, जीवन की महानता लुप्तप्राय हो गई है। सभ्यता का वाह्य कलेवर सुसज्जित होते हुए भी उसकी आत्मा निर्जीव है और इस बनावटी सभ्यता का मिथ्या गर्व खण्डित हो चुका है। चेखव और यशपाल की साधना का ध्येय परवश और संत्रस्त मानवता को आंतरिक जागरूकता का प्राणवान् संदेश देना है। उन्होंने एक निपुण चिकित्सक की भाँति अपनी अमर लेखनी से भयंकर रोग की अमोघ औषधि प्रदान की है और उसकी अमोघता के प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। चेखव ने लिखा है, "आह! यदि जीवन की नव्यता और सौंदर्य को शीघ्र पाया जा सके, जबकि तुम्हारी किस्मत से साहसपूर्वक और सीधे आँखें लड़ाये जाने की संभावना हो और यह अनुभव करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो कि तुम ठीक रास्ते पर हो, खुश हो और अपने को आज़ाद समझ रहे हो। इस प्रकार का जीवन शीघ्र या कुछ दिन बाद आने ही वाला है।"

("Ah, if it would only come-soon this new, clear life, when it will be possible to look square and boldly in the face of your fate and feel that you are right, feel cheerful, free! And this life will dawn sooner or later!")

चेखव और यशपाल श्रमिक-वर्ग की शक्तिशाली आवाज़ को बुलन्द करने वाले निर्भीक सेनानी हैं और वे पीछे पीछे नहीं, वरन् आगे आगे ललकारते हुए जनता में आत्म-विश्वास और स्वस्थ सामाजिक-विन्यास की भावना जगा रहे हैं। यद्यपि यशपाल में वयःप्राप्त, अनुभवी कलाकार चेखव की-सी परिपक्वता अभी नहीं आई हैं, तो भी वे कदम से कदम मिला कर उसी दिशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं और संकीर्णता को लाँघ कर जीवन के व्यावहारिक दृष्टिकोण को उत्तरोत्तर व्यापक बनाने का आदर्श स्थिर कर रहे हैं।

दिल्ली

शची रानी गुर्टू

उपन्यासकार श्री यशपाल और उनकी 'दिव्या'

श्री यशपाल सशक्त, साधिकार एवं प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार हैं। विधायक कल्पना, नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा, अन्तर्भेदी सूक्ष्म दृष्टि, जीवन के कँटीले मार्गों एवं अँधेरी वीथियों में संचरण से श्रमार्जित मीठे और कटु अनुभव, स्वाध्याय और यात्रा से संकलित इतिहास एवं लोकव्यवहार का ज्ञान—साहित्यकार के उचित सम्बल के रूप में उन्हें प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं। उनका साहित्य उनकी मानसिक पृष्ठभूमि के इस स्थिर आधार का साक्षी है। उनकी समर्थ एवं प्रेरक कला से ३४ रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं। इनमें गद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाओं ने प्रतिनिधित्व प्राप्त किया है। दादा कामरेड, मनुष्य के रूप, पक्का कदम, देश-द्रोही, दिव्या आदि उनके उपन्यास और अभिशप्त, वो दुनियाँ, ज्ञान-दान, पिंजड़े की उड़ान, तर्क का तूफान, भस्मावृत चिंगारी, फूलो का कुर्त्ता, धर्म-युद्ध, उत्तराधिकारी, चित्र का शीर्षक, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ आदि कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और नशे-नशे की बात नाम से एक नाटक भी। इसके अतिरिक्त मार्क्सवाद, चक्कर क्लब, न्याय का संघर्ष, बात-बात में बात, रामराज्य की कथा, देखा सोचा समझा, शोषक श्रेणी के प्रपंच, लोहे की दीवार के दोनों ओर आदि उनके राजनीतिक विचारों को स्वर देने वाली निबन्धात्मक कृतियाँ निकल चुकी हैं। सिंहावलोकन नाम से ३ भागों में इन्होंने अपने क्रांतिकारी जीवन की रामकहानी भी लिखी है।

राजनीतिक विचारों में यशपाल जी साम्यवादी हैं। इनके साहित्य के विचारपक्ष के उपजीव्य यही साम्यवादी सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन का स्पष्ट ध्येय इनकी कहानियों और उपन्यासों में परिलक्षित होता है। साहित्यिक दृष्टि से यशपाल जी यथार्थवादी हैं। कुछ आलोचक इन्हें प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा में सम्मिलत करते हैं। परन्तु इन दोनों मूल्यवादी कलाकारों के साम्य की सीमाएँ स्पष्ट हैं।

निस्सन्देह दोनों कलाकार हमारे समाज की सारहीन रूढ़ियों, अन्धविश्वासों एवं अवैज्ञानिक मान्यताओं को सामाजिक प्रकाश में लाकर जीवन के नवीन मूल्यों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। दोनों का उद्देश्य समाज की विषमताओं का विश्लेषण कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना है। दोनों ने समाज के दलितों, अभाव-ग्रस्तों, अत्याचार-पीड़ितों के संकट-जाल का अनावरण कर उनके लिए

समाज की संवेदना जुटाने का यत्न किया है। दोनों ने युग-युग से प्रताड़ित नारी के अधिकारों और समाज में उसकी स्थिति के प्रश्न को सशक्त स्वर दिया है। दोनों की चित्रण शैली में भी समानता है। अवसर के अनुकूल मनोवैज्ञानिक, नीतिपरक एवं दार्शनिक सूक्ति-प्रधान व्याख्यात्मक शैली का दोनों ने प्रयोग किया है। परन्तु इस साम्य की अपेक्षा दोनों का वैषम्य अधिक मौलिक है। समस्याओं के विश्लेषण और उनके समाधान के दृष्टिकोण में दोनों में महान् अन्तर है।

प्रेमचन्द जी हृदय-परिवर्तन से अथवा गाँधीवादी नीति से समाज में सुधार चाहते हैं। और उस सुधार में भारतीय नैतिक आदर्शों की रक्षा चाहते हैं। उनकी सुधार की भावना विद्रोह और क्रान्ति की भूमि तक नहीं पहुँचती। वे नवीन को लाना चाहते हैं, परन्तु प्राचीन को आमूल चूल विध्वंस करके नहीं। कुछ अंशों में वे प्राचीन का बौद्धीकरण चाहते हैं और कुछ अंशों में उसका सुधार। वे नारी को गृहलक्ष्मी के रूप में देखना चाहते हैं। उसके स्वच्छन्द प्रेम के प्रति वे पूर्णतः आशंकित हैं। विधवाओं की दीन दशा और वेश्याओं की करुण स्थिति से वे अत्यन्त व्याकुल हैं और पुनर्विवाह अथवा 'सेवा सदनों' में उनका कल्याण देखते हैं। स्वच्छन्द आत्मदान की अपेक्षा वे आंशिक रूप में वासनाओं के उदात्तीकरण में अथवा परितृप्ति के संयत साधनों में विश्वास रखते हैं। जीवन की परितृप्ति के लिए वे आचरण की निरंकुशता का आश्रय नहीं लेते। यथार्थ के नाम पर वे वासनाओं के नग्न-चित्रण के पक्ष में नहीं हैं।

यशपाल जी समाज में सुधार के स्थान पर क्रांति चाहते हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में वे फ्रायड के मानस-शास्त्र से अधिक प्रभावित हैं। यशपाल जी मानववादी हैं। मानव की नैसर्गिक महिमा में विश्वास रखते हैं। इसी विश्वास की भावना को स्वर देते हुए 'दिव्या' के प्राक्कथन में लिखते हैं—

> "मनुष्य भोक्ता नहीं, कर्त्ता है। संपूर्ण माया मनुष्य की ही क्रीड़ा है। मनुष्य से यदि कोई बड़ा है, तो वह है उस का अपना विश्वास, और स्वयं उस का रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख वह विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही वह उसे बदल भी देता है। लेखक की साहित्यिक प्रेरणा विधान को बदलने की मानव की इसी कामना और क्षमता में निहित है। उसकी कल्पना का मानव 'दिव्या' के पृथुसेन की तरह किसी अज्ञात दिशा और देश में जा अपने लिए नया स्थान, नया समाज और नया संसार बसाना चाहता है जहाँ मानव अपने जन्म के लिए दण्डित न हो, जहाँ वह अज्ञात-कर्मों के फल से विवश न हो, जहाँ उसे कर्म करने का स्वतंत्र अवसर हो, जहाँ उस का पुरुषार्थ और प्रतिभा अकुलीन पिता की सन्तान होने के कारण व्यर्थ न हो जाय।"

'दिव्या' के अतिरिक्त यशपाल जी ने अपने उपन्यासों के लिए कथानक वर्त्तमान समाज से ही लिए हैं। वर्त्तमान समाज की मध्यवर्गीय जन-चेतना के विभिन्न पक्षों पर उन्हों ने मुख्यतया आर्थिक दृष्टिकोण से विचार किया है। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, हमारे समाज की समस्त समस्याएँ, उनके अनुसार मूलभूत आर्थिक समस्या के ही विभिन्न रूप हैं। किसानों, मजदूरों, हरिजनों तथा नारी वर्ग की समस्याएं आर्थिक आश्रय की ही समस्याएँ हैं। इस आर्थिक विषमता के समाधान के लिए ही वे साम्यवादी समाज का निर्माण चाहते हैं। उपन्यासों में परिस्थितियों की योजना, एवं घटनाओं का विकास और संचालन अत्यन्त रोचक और प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। वर्णन शैली प्रसंग और परिस्थिति के

अनुसार सजीव, स्पष्ट और मोहक है। भाषा में प्रवाह है, वेग है, गति है और अर्थक्षमता है। प्रभाव में योग देने के लिए अन्तः और बाह्य प्रकृति के चित्रण के महत्व को स्वीकार किया गया है। उनके पात्रों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उनके पुरुष-पात्रों में बैरिस्टर हैं, डाक्टर हैं मोटर ड्राईवर हैं, सिनेमा जगत् में कार्य करने वाले अभिनेता हैं, फिल्म-कंपनियों और बसों के मैनेजर हैं, पुलिस के अधिकारी हैं, कुलाभिमानी पंडित, पुरोहित हैं, त्यागशील मिश्र हैं, शराबी, फक्कड़ और गुण्डे हैं, साधिकार सामंत और अधिकारहीन दास हैं, पूंजीपति और मजदूर-किसान हैं, कांग्रेसी हैं, कम्यूनिस्ट हैं, दार्शनिक हैं, कलाकार हैं और स्त्री पात्रों में नृत्य-संगीत-कला-विशारद नर्तकियाँ तथा अभिजात बालकाएँ हैं, दासियाँ हैं, कुलवधुएँ हैं, वेश्याएँ हैं, कुट्टिनियाँ हैं और फिल्मतारिकाएँ हैं। इस विशाल पात्र-समूह को स्पष्ट रेखाओं से अंकित करने की कलाकार की सामर्थ्य उस के व्यापक जीवन-अध्ययन और सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण है। उपन्यासकार ने समाज के दुर्बल और अनैतिक पक्ष को बहुत समीप से देखा है। आचार, नीति, कुलाभिमान और पवित्रता के मोहक आकार के नीचे छिपे हुए मानव के छल-छिद्र, कपट और व्यभिचार का अनावरण उस के प्रयास की सामान्य विशेषता है। निस्सन्देह अनावरण के इस प्रयास में नीति की रुढ़िगत प्रेरणा नहीं है। उपन्यासकार का मुख्य ध्येय पात्रों के प्रति सामाजिक अन्तःकरण में विद्रोह की भावना नहीं वरन् संवेदना की भावना भरना है। इसीलिए पात्रों के चित्रण में उसने उनकी विशिष्ट परिस्थितियों के चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया है। जीवन की आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं के परिणाम-स्वरूप मानसिक अनुताप, संघर्ष एवं परिवर्त्तन को अनुभव करते हुए पात्रों का उनको विवश करने वाली परिस्थितियों सहित यथातथ्य चित्रण करना ही उसका प्रमुख ध्येय है। इस चित्रण के प्रयास में रूढ़िगत नैतिकता और धार्मिकता की भावनाओं की चिन्ता से उसकी कला सर्वथा अप्रभावित है।

धर्म और नीति के प्रश्न युग-सापेक्ष प्रश्न हैं। इन दोनों का स्वरूप युग और समाज के अनुकूल परिवर्तित होता रहता है। जो आज से सौ पचास वर्ष पूर्व अधर्म दीखता था, आज उस को अपनाने में युग अपना धर्म समझता है। धर्म और नीति की आज की भावनाएँ भी आने वाले वर्षों में बदल सकती हैं। धर्म और नीति से परिस्थितियाँ बदलती हैं और इन परिस्थितियों को मानव बदलता है। मानव के आचरण का मूल्यांकन करते हुए उसकी उन परिस्थितियों का समुचित मूल्यांकन आवश्यक है जिनके कारण वह आचरण संभव होता है। इसके अभाव में कोई निर्णय न्याय्य नहीं कहा जा सकता। यशपाल जी ने अपने पात्रों को समुचित परिस्थितियों के परिवेश में रखने का सशक्त प्रयत्न किया है। इन परिस्थितियों के अनुरोध से पात्रों के उन क्रिया-कलापों एवं चेष्टाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या सुलभ हो जाती है जो पाप-पुण्य की रूढ़िगत परिभाषा के अनुसार नितान्त समुचित प्रतीत नहीं होते। इसी कारण इनके पात्र अपनी दुर्बलताओं के दायित्व से उन्मुक्त होकर जीवन की खाइयों और घिनौनी स्थितियों में भी हमारी सहानुभूति की याचना करते हैं

'दिव्या' यशपाल जी की सर्वोत्तम कृति है। इसमें उनकी कला के अपेक्षाकृत स्वस्थ और संयत स्वरूप के दर्शन होते हैं। कथानक की व्यवस्था, चरित्र-चित्रण, वातावरण, प्रभाव, शैली और उद्देश्य— प्रत्येक दृष्टि से यह उनके अन्य उपन्यासों की अपेक्षा प्रौढ़ और परिष्कृत कला की परिचायक है। इसके कथानक की पृष्ठभूमि में ईसा की दूसरी शताब्दी का हिन्दू-बौद्ध संघर्ष का सामन्ती युग है। युग के जन-जीवन के अनेक विध चेतना-प्रवाह सामाजिक, स्थितियाँ, आर्थिक विषमताएँ, मिथ्या कुलाभिमान के

शोषक मनोवैज्ञान, और उसके प्रति शोषित जनवर्ग की प्रतिक्रियाएँ—यह सब इस उपन्यास में सजीव, आकर्षक और द्रावक शैली में चित्रित किया गया है। 'उपन्यास का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है:—

दिव्या सागल नगरी के वयोवृद्ध महापंडित धर्मस्थ देवशर्मा की प्रपौत्री और जनपद कल्याणी राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या है। नृत्य-संगीत-कला-कौशल के परीक्षण के लिए गण-परिषद् के तत्वावधान में आयोजित एक विराट, प्रतियोगिता में उसने 'सरस्वती-पुत्री' की सर्वश्रेष्ठ उपाधि प्राप्त की है। इसी अवसर पर दास-पुत्र पृथुसेन 'सागल का सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। पृथुसेन, गणसंवाहक आचार्य प्रवर्धन का ज्येष्ठ पुत्र आचार्य रुद्रधीर, तथा सागल का सर्वश्रेष्ठ मूर्तिकार चारवाक मारिश—तीनों दिव्या के प्रणय के प्रार्थी हैं। परन्तु वह पृथुसेन को ही आत्म-समर्पण करती है। पृथुसेन विवाह का वचन देकर देश की सीमा पर युद्ध के लिए चला जाता है और विजयी होकर लौटता है। महत्त्वाकांक्षी पिता एवं वयोवृद्ध गणपति की प्रेरणा से पृथुसेन गणपति की पौत्री सीरो से विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है। इससे गर्भवती दिव्या को बड़ा आघात पहुँचता है। उसके लिए इस अवस्था में न घर में शरण है न बाहर। लज्जा और आत्मग्लानि की भावना से पराभूत हो कर वह धर्मस्थ के साधन-सम्पन्न प्रासाद को त्याग कर आश्रय की खोज में निकल पड़ती है। यहीं से उस के कष्टमय जीवन का आरम्भ होता है। सर्वप्रथम वह एक दास-विक्रेता के हाथ पड़ जाती है। वह उसे मथुरा के एक दास-व्यापारी भूधर के पास बेच देता है। वहाँ से उसे याज्ञिक पुरोहित चक्रधर अपने नवजात शिशु के सेवार्थ खरीद लाता है। पुरोहित के घर उसे जिस नारकीय यातना का अनुभव करना पड़ता है वह शब्दों की वर्णनसामर्थ्य से बाहर है। इस दुःखमय जीवन से अत्यन्त विकल होकर वह बौद्ध विहार में शरण के लिए प्रार्थना करती है, परन्तु भगोड़ी दासी को शरण देने में बौद्ध धर्म भी असमर्थ है। अन्त में निराश होकर वह आत्महत्या के लिए यमुना में कूद पड़ती है; परन्तु भाग्यहीनों को मृत्यु का भी सुख कहाँ? मथुरा की प्रसिद्ध नर्तकी रत्नप्रभा मूर्छित अवस्था में उसे जल-प्रवाह से निकाल लेती है और उसकी दीन-हीन अवस्था से करुणार्द्र होकर पुरोहित को उसकी रकम चुका देती है और उस अभागिन को अपनी शरण में ले लेती है। अंशुमाला के नाम से दिव्या रत्नप्रभा की नृत्य-संगीत-गोष्ठियों की शोभा और शृंगार बनती है; परन्तु आत्म-सम्मान के साथ। वह कला की काष्ठपुत्तलिका मात्र है। कलाप्रेमी रसिक उसकी कला से आत्मसन्तोष प्राप्त करते है, उसके शरीर से नहीं। वह केवल कला बेचती है, शरीर नहीं। मथुरा से राजनर्तकी मल्लिका उसे फिर से सागल ले आती है और कला की अधिष्ठात्री के सम्मानित पद पर उसे आरोपित करना चाहती है; परन्तु अभिजातवंशीया दिव्या का इस पद को सुशोभित करना समाज को सह्य नहीं। घोर निराशा में वह नगर के बाहर पान्थशाला में आश्रय लेती है। वहाँ रुद्रधीर, जो इस समय सागल का अमात्य है, पृथुसेन, जो पदच्युत होकर बौद्ध भिक्षु बन चुका है, तथा दार्शनिक मारिश—तीनों फिर से उसके सम्मुख आते हैं। अमात्य रुद्रधीर उसे अपने यहाँ महादेवी का प्रतिष्ठित पद प्रदान करने का प्रस्ताव करता है, भिक्षु पृथुसेन उसे संघ की शरण प्राप्त करने के लिए आमंत्रित करता है और चारवाक मारिश 'नारीत्व की कामना में अपना पुरुषत्व अर्पण करता है। वह आश्रय का आदान-प्रदान चहता है। वह नश्वर जीवन में संतोष की अनुभूति दे सकता है।...सन्तति की परम्परा के रूप में मानव की अमरता दे सकता है।' 'आश्रय दो आर्य' पुकारती हुई आश्रयहीन दिव्या उसे ही स्वीकार करती है।

प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे (Goethe) ने कहा था कि उपन्यास का नायक ऐसा होना चाहिये जिसने कष्ट सहन किया हो अथवा जिसमें कष्ट सहन करने की क्षमता हो।' दिव्या से अधिक पीड़ित और पाठक की सहानुभूति का परम अधिकारी पात्र और कौन होगा ? बहुत हद तक यह सहानुभूति दिव्या के अपने उदात्त चरित्र के कारण संभव हो सकी है। रत्नप्रभा के मोहक वातावरण में उसने जिस स्थिरता से अपनी रक्षा की है, जीवन के पाशविक स्तर से ऊपर उठने का यत्न किया है वह स्तुत्य है।

प्रभाव की दृष्टि से दिव्या एक सफल कृति है। प्रभावोत्पत्ति में उपान्यासकार की वर्णन सामर्थ्य और शैली ने, भाषाधिकार और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति ने पूर्ण योग दिया है। उपन्यास का आदि और अन्त दोनों प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक हैं। समुचित वातावरण जुटाने में लेखक सिद्ध-हस्त है। उपान्यास के आरम्भ में नृत्य-संगीत-कला तथा शस्त्र-कौशल की प्रतियोगिता का दृश्य सामन्तीय युगोल्लास का सप्राण चित्र है। धर्मस्थ देवशर्मा के प्रासाद का ज्ञानमय वातावरण—जहाँ ताम्र और रजत के पिंजरों में शुक-सारिकाएँ भी परस्पर होड़ में सूत्रों और परिभाषाओं का उच्चारण कर रही हैं—अत्यन्त सजीवता से चित्रित हुआ है। मधुशालाओं और पानगोष्ठियों के हल्के वातावरण का चित्र भी सजीवता पर अपेक्षाकृत संयम से अंकित किया गया है। आडम्बरग्रस्त परन्तु हृदयहीन पुरोहित चक्रधर के (दारा नाम से) दासी दिव्या की अवसादमय स्थिति का वर्णन वज्र के हृदय को भी द्रवित करने वाला है। ब्राह्मण वर्ग की सफल अभि-सन्धि के विवरण में अवसरोचित शैली में गति और वेग है। पान्थशाला का अन्तिम दृश्य अवसर और करुणा की गहरी रेखा समेटे हुए हैं। मनोभावों के वर्णन में भी उपान्यासकार ने बड़ी सूक्ष्मता का परिचय दिया है। एक उदाहरण देखिए—

"दिव्या क्षण पर्यङ्क पर, क्षण पीठिका पर बैठती, क्षण कक्ष में और क्षण बाहर उद्यान में ठहरती। उसे कहीं चैन न था। पल-पल वह तृषा अनुभव कर छाया से जल माँगती और जल पात्र समीप रख घूँट मारना भूल जाती।" मानसिक उद्वेग का कितना कलात्मक वर्णन है।

चरित्रों में दिव्या के अतिरिक्त बौद्ध स्थविर चीवुक, दिव्या की दासी छाया और उसकी अम्मा तथा रत्नप्रभा, पृथुसेन आदि के चरित्र भी सप्राण हैं और वे अपना व्यक्तित्व लिए हुए हैं। शैली में प्रेमचन्द की तरह उपन्यासकार ने स्थान-स्थान पर नीतिपरक व्याख्यात्मक सूक्तियों का प्रयोग किया है। 'जीवन की सार्थकता अधिकार और सामर्थ्य में ही हैं' (पृ० ५०), 'गृहहीन वर्षा में स्तम्भ की ओट पाने का ही यत्न करता है' (पृ० ११४), 'भाग्य का अर्थ है विवशता, भाग्य का अर्थ है असामर्थ्य' जीवन अनन्त है और मनुष्य का सामर्थ्य भी अनन्त है'—इस प्रकार की उक्तियों की प्रचुरता है। चारवाक मारिश तो दार्शनिक तत्वों की व्याख्या का प्रलोभन कभी भी नहीं त्याग सकता।

'दिव्या' युग-युग की प्रताड़ित, दलित और त्रस्त नारी की करुण कथा है। इसमें ओजस्वी कलाकार की प्रतिभा ने परिस्थितियों से विवश परन्तु आत्मरक्षा के लिए संकल्प की तरह सुदृढ़ नारी के हाहाकारमय जीवन को सशक्त वाणी दी है। उपन्यासकार दिव्या के द्वारा नारी के कष्टों के प्रति सामाजिक अन्तःकरण को उद्बुद्ध करना चाहता है और नारी समस्या की आर्थिक पृष्ठभूमि की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है और वह इस उद्देश्य में अवश्य सफल हुआ है।

सरनदास भनोत

जालन्धर

मनुष्य के रूप

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व इतना बहुमुखी होता है कि उसके संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना बहुत कठिन काम है। केवल उसके बहुमुखी व्यक्तित्व और विकास को समझने के उपरांत ही उसके संबंध में कोई निश्चित धारणा बनाई जा सकती है। यह नहीं कहा जा सकता कि किसी के व्यक्तित्व की संभावनाएँ मात्र इतनी थीं, क्योंकि यह बहुत संभव है कि जीवन की परिस्थितियों ने उसकी बहुत सी शक्तियों को उभरने और विकसित होने का अवकाश ही न दिया हो। जिस सीमित अर्थ में जीवन व्यक्तित्व को प्रतिफलित होने का अवकाश देता है, उसमें भी उसके एक से अधिक पहलू सामान्यतया रहते हैं। घर में व्यक्ति का रूप और प्रकार का रहता है, कार्यालय में और प्रकार का, मित्रों के बीच और ही प्रकार का। एक ही नारी को माता-पिता और रूप में जानते हैं, सास-श्वसुर और रूप में, नौकर चाकर और रूप में, पति और ही रूप में। अतः कहा जा सकता है कि व्यक्ति के अनेक रूप होते हैं और इन सभी रूपों को कोई एक व्यक्ति नहीं जान सकता। जिसका जितना संबंध है, वह उतना ही जानता है।

यह तो हुई व्यक्तित्व की अनेकरूपता की बात। पर वह विकसित भी होता है। विकास के मूल में अनुकूल परिस्थितियों और व्यक्ति के प्रयत्नों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। पर जीवन की परिस्थितियाँ व्यक्ति के प्रतिकूल भी जा सकती हैं और वह उनसे दब भी सकता है और तब उसका पतन भी हो सकता है। विकास और पतन दोनों की सीमा पर पहुँच कर व्यक्ति आश्चर्य का विषय बन जाता है।

यशपाल के 'मनुष्य के रूप' में जीवन के इसी दुहरे अनुभव से लाभ उठाया गया है। उसमें यह भी दिखाया गया है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कितना भिन्न होता है और यह भी कि कोई व्यक्ति क्या से क्या हो सकता है। जैसा जीवन का सामान्य अनुभव है, यहाँ भी व्यक्तियों के सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक दृष्टिकोण एक से नहीं। उदाहरण के लिए जीवन, जगत और व्यक्ति को देखने का जो दृष्टिकोण धनसिंह का है, वह बरकत का नहीं, जो जगदीश सरोला का है, वह हैदरजी सुतलीवाला का नहीं, जो बनवारी का है, वह भूषण का नहीं और जो मनोरमा का है, वह सोमा का नहीं। सोमा और मनोरमा के स्वभाव में यह समता फिर भी ध्यान

देने योग्य है कि जीवन की वेदना से व्यथित रहने पर अपने प्रेमियों के प्रति दोनों की आस्था बहुत दूर तक बनी रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि व्यक्तियों के स्वभाव के मूल में कोरा वैषम्य ही नहीं, कहीं साम्य भी निहित है।

यशपाल की दृष्टि अनुभव के पहले रूप की अपेक्षा दूसरे रूप पर कुछ अधिक है और आगे चलकर तो उसी पर केन्द्रित हो गई है। पाठक जानता है कि उपन्यासकार विशेष रूप से सोमा को लेकर चल रहा है। ऐसी दशा में इस कृति का नाम 'नारी के रूप' शायद अधिक उपयुक्त होता, पर विरोध में संभव है यह कहा जाय कि नारी क्या मनुष्य नहीं होती ?

उपन्यास के पात्रों के कर्म की भूमि आसाम से बंबई तक फैली हुई है। पहाड़ों के सरल परिश्रमपूर्ण जीवन, जेल के यातनामय जीवन, सेना के अनुशासनपूर्ण जीवन, राजनीतिक दलों के संघर्षमय जीवन के साथ फिल्म के रंगीन जीवन की झाँकियाँ इस में बिखरी पड़ी हैं। इसकी पृष्ठभूमि द्वितीय महायुद्धकाल में देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं नैतिक परिस्थितियों पर आधारित है। उस काल की बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं और तिथियों को देने के साथ तत्कालीन जनता की मानसिक स्थिति का चित्रण काफ़ी ईमानदारी से उपन्यासकार ने किया है। लेखक मार्क्सवादी है और इस दृष्टिकोण का प्रभाव उसकी रचना पर पड़ा है, यह भूषण के चरित्र-चित्रण से एकदम स्पष्ट है। इसमें भी संदेह नहीं कि कम्यूनिस्ट पार्टी का परिचय उसने देश की अन्य राजनीतिक पार्टियों की अपेक्षा कुछ अधिक सहानुभूति के साथ दिया है, पर यहाँ प्रचार का अंश बहुत कम है और लेखनी में संयम की झलक है। यदि प्रचार कहीं है भी तो इतना अस्वाभाविक बनकर नहीं आया जो सहन ही न किया जा सके।

उपन्यास की प्रधान पात्री 'सोमा' का जीवन एक प्रकार से दुःख से जूझ कर उस पर विजय पाने का जीवन है। अत्याचार, बलात्कार, गंदे वातावरण और दुर्भाग्य से लड़ती हुई यह बालिका एक दिन जीवन का हँसता मुख देख पाती है, यह कम श्रेय की बात नहीं है। विजयी जीवन के प्रति यह ललक ही उसे अनेक संकटों के बीच से बचाकर ले जाती है। इसके लिए यशपाल के स्वस्थ दृष्टिकोण की मैं प्रशंसा करना चाहता हूँ। हिंदी में ऐसे उपन्यासों की कमी नहीं है जहाँ किसी नारी का अपनी भूल, सरलता या परिस्थिति की विवशता से पतन हुआ है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद के 'सेवासदन' और जैनेन्द्र के 'त्याग पत्र' को लीजिए। सेवासदन की सुमन पश्चाताप के मारे दग्ध हुई जा रही है और त्याग-पत्र की मृणाल अपने दुःख में टूट गई है। 'मनुष्य के रूप' की सोमा को एक ओर उसके विवेक ने अंतर्मुखी होने और दूसरी ओर उसके मनोबल ने उसे टूटने से बचा लिया है। इस दृष्टि से मैं सोमा को सुमन और मृणाल से अधिक शक्तिशाली चरित्र मानता हूँ, सेवासदन और त्यागपत्र से मनुष्य के रूप को अधिक ग्राह्य उपन्यास और प्रेमचंद एवं जैनेन्द्र से यशपाल को अधिक आशावादी एवं अंतर्दृष्टि-सम्पन्न लेखक।

धनसिंह का जीवन भी कम घटनापूर्ण नहीं रहा। इस सारे जीवन में सोमा का प्रेम ही एक मात्र स्थिर तत्व है। पर जब वह उसके पास थी, तब न तो वह उसका मूल्य समझ पाया और न उसे अपना प्रेम ही दे सका। जब वह दूर हो गई तब वह उसे ढूँढता फिरा और मिलने पर सदा को दूर हो गया। इस प्यार के बीच नैतिकता की भावना सदा बनी रही। सोमा का पुलिस द्वारा भ्रष्ट होना वह अपने आत्म-सम्मान पर चोट समझता है। आत्मसम्मान और प्यार का यह संघर्ष अंत तक समाप्त नहीं

होता और उपन्यास के अंत में सोमा इतनी ऊँची उठ जाती है कि धनसिंह उसे छू नहीं पाता। इसी से उपन्यासकार ने एक स्थान पर कहा है, वह सब ओर से धनसिंह को पुकार पुकार कर चुनौती दे रही थी "यह हूँ मैं, यहाँ हूँ मैं, पकड़ो मुझे।"

मनोरमा का जन्म धनी घर में हुआ है। स्वभाव से वह अत्यन्त उदार है। सोमा को आश्रय देना उसी का काम था। उसके साथ उसने सदैव समानता का व्यवहार किया और उसे अपना प्यार देकर ऊँचा उठाया। उसमें कर्मशीलता और त्याग की भावना दोनों पाई जाती हैं। जीवन में उसने एक ही भूल की और वह थी सुतलीवाला से विवाह करने की। प्रकृति ने इस व्यक्ति को नपुंसक बनाया था, अतः मनोरमा उसके साथ कहाँ तक सुखी रहती ? अपने प्रयत्न से अंत में वह अपने प्रेमी के अत्यधिक निकट आ कर उसे प्राप्त भी करती है, पर तभी धनसिंह और सोमा को मिलाने के प्रयत्न में भूषण की मृत्यु हो जाती है।

अन्य पात्रों में भूषण का जीवन साम्यवादी आदर्शों के अनुकूल ढला हुआ है। वह कर्मठ व्यक्ति है और जीवन के व्यावहारिक पहलू पर बल देता है। भद्र समाज के प्रति वह स्वभावतः शंकालु है, अतः बहुत दिनों तक मनोरमा के सच्चे प्रेम का मूल्य नहीं आँक पाता। विलायत से लौटे हुए बैरिस्टर जगदीश प्रसाद सरोला अपने दृष्टिकोण में एकदम आधुनिक हैं। शराब पीते हैं और 'लेट नाइट डांस' में भाग लेते हैं। नौकरानी सोमा को मिसेज़ सिंह कह कर पुकारते हैं और बाहर से आए व्यक्ति के सामने उसके सम्मान में कुर्सी से उठकर खड़े हो जाते हैं। उनका गार्हस्थ्य जीवन बहुत सफल नहीं हैं, अतः धीरे-धीरे सोमा के ऊपर वह निर्भर करने लगते हैं। शिष्ट और सभ्य होने पर मनोबल की उनमें भी कुछ कमी है, क्योंकि घर से निकाले जाने पर जब सोमा अंतिम आश्रय के लिए उनके पास जाती है तो वे उससे मुँह छिपा लेते हैं और इस प्रकार उसके पतन के लिए अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी बनते हैं। सुतलीवाला फिल्म उद्योग से संबंधित एक व्यवसायी व्यक्ति हैं—व्यावहारिक और चतुर—यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी वह रुपया कमाने का एक साधन बनाना चाहते हैं। इस व्यक्ति की क्लीवता मनोरमा पर जल्दी ही प्रकट हो जाती है और दोनों का संबंध-विच्छेद हो जाता है। बरकत एक पतित, गुंडा, क्रूर और परोपजीवी व्यक्ति है। बनवारी एक अनुभवी प्राणी है। व्यक्तिगत लाभ के लिए वह थोड़ी खुशामद करना बुरा नहीं समझता; पर सोमा की सहायता उसने निष्कपट भाव से की है।

द्वितीय महायुद्ध काल में देश की स्थिति का बहुत स्पष्ट चित्र उपन्यासकार ने इस कृति में खींचा है। विशेष रूप से युद्ध-कालीन नैतिकता की बहुत अच्छी झलक इस उपन्यास में हमें मिलती है। उपन्यास में कथोपकथन को स्वाभाविक बनाने के लिए अनेक स्थानों पर गालियाँ दिलवाई गई हैं।

कथानक की दृष्टि से इस उपन्यास में यशपाल ने जीवन के एक नए क्षेत्र पर प्रकाश डाला है। वह क्षेत्र है फिल्म का।

हमारा यह युग मानसिक चिंताओं का युग है। उनसे मुक्ति पाने के लिए आज का व्यक्ति मनोरंजन चाहता है। सभी वर्ग के लोगों के लिए इस मानसिक क्रीड़ा का विधान जैसा सिनेमा ने किया है, वैसा अन्य किसी साधन ने नहीं। यही कारण है कि जहाँ संभव है वहाँ जनता सिनेमा देखने के लिए टूटी पड़ रही है। किसी भी शहर के सिनेमा घर के तीसरे दर्जे के सामने भीड़ को धक्का-मुक्की करते देखकर इस तथ्य को समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे बच्चों द्वारा सिनेमा के गीत गाए जाने, युवकों द्वारा फिल्मी रिकार्डों को रेडियो से बजाने की माँग करने, आधुनिकाओं द्वारा फिल्म स्टारों के फ़ैशन

अपनाने, फिल्म से संबंधित व्यक्तियों के कहीं जाने पर अपार भीड़ के उमड़ने, उनके हस्ताक्षर लेने, उनके चित्रों से अपने शृंगार-कक्ष को सजाने और उनसे पत्र-व्यवहार करने, अन्य प्रकार के पत्रों की अपेक्षा फिल्म-पत्रों की अधिक विक्री होने, यहाँ तक कि बहुत से मासिक एवं साप्ताहिक पत्रों में पृथक् रूप से फिल्म-संबंधी स्तम्भों को रखने की सामान्य घटनाओं के कारण यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि हमारे दैनिक जीवन में सिनेमा का प्रभाव कितना गहरा घर कर गया है।

फिल्म को लेकर जो इतना बड़ा आकर्षण है उसका एक कारण यह भी है कि फिल्म का सम्पूर्ण क्षेत्र जनसाधारण के लिए अभी एक प्रकार से बंद और रहस्य से मंडित है। फिल्म संबंधी पत्रों में फिल्म जीवन की साधारण से साधारण घटनाओं को आकर्षक चित्रों के साथ इतने रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि हमारी ललक और तीव्र हो उठती है। आज फिल्म के प्रति कुछ ऐसा आकर्षण उत्पन्न हो गया है कि व्यक्ति की अदम्य आकांक्षा लाख दबाने पर भी दबती नहीं है। स्पष्ट है कि जो वस्तु हमारे दैनिक जीवन का एक विशिष्ट अंग बन गई है, उसकी अभिव्यक्ति गंभीर साहित्य में भी होकर रहेगी ही। पिछले कुछ वर्षों में लेखों, कहानियों और एकांकियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे उपन्यास भी लिखे गए हैं जिनका विषय आज का फिल्मी-जीवन है। इन उपन्यासों में यशपाल के 'मनुष्य के रूप' के साथ भगवतीचरण वर्मा के 'आखिरी दाँव', एवं इलाचंद्र जोशी के 'सुबह के भूले' ने पाठकों का ध्यान अधिक आकर्षित किया है। इस लेख में तुलनात्मक अध्ययन के लिए पिछले दोनों उपन्यासों की चर्चा भी आगे चलकर हम करेंगे।

प्रस्तुत उपन्यास में फिल्म के जीवन को चित्रित करने की आकांक्षा यशपाल के मन में जगी है, ऐसा प्रतीत होता है। सोमा को अंत में फिल्म अभिनेत्री बनाना है, इस बात पर उनकी दृष्टि पहले से ही है। कई स्थानों पर ऐसे प्रसंग आए हैं जहाँ सोमा के रूप की चर्चा हुई है। वह संगीत की प्रेमिका है। पहाड़ी प्रदेश और बंबई जैसे महानगर में रहने-सहने और वस्त्र पहनने में जो अंतर है वह दूर हुआ है बैरिस्टर सरोला और उनकी बहिन मनोरमा के सम्पर्क में। भद्र समाज में प्रचलित बहुत सी बातें वह यहीं सीखती है। रह गया किसी अभिनेत्री का नैतिकता के प्रति दृष्टिकोण, उसकी शिक्षा सोमा जीवन भर सुख-दुःख की घटनाओं से लेती ही रही है।

फिल्म के जिस आंतरिक जीवन पर यशपाल जी ने प्रकाश डाला है, वह बहुत गँदला, सस्ता और धोखेधड़ी का है। इस जीवन की कहानी कुछ बरकत, कुछ बनवारी, कुछ सोमा, कुछ सुतलीवाला के माध्यम से कही गई है। यहाँ व्यवसाय ही व्यवसाय है, कला का कहीं नाम नहीं; पतन ही पतन है, उच्च आदर्शों की कहीं झलक नहीं। पैसे के लिए व्यक्ति यहाँ कुछ भी कर सकता है। सारा वातावरण ऊपर से नीचे तक एकदम दूषित है।

जिस प्रकार 'मनुष्य के रूप' में यशपाल ने सोमा को माध्यम बना कर फिल्म जगत और फ़िल्म जीवन का परिचय दिया है, उसी प्रकार भगवतीचरण वर्मा ने 'आखिरी दाँव' में चमेली को माध्यम बना कर। इन दोनों उपान्यासों की कथा-वस्तु में थोड़ी समता है। पहली बात यह कि दोनों की प्रधान पात्रियाँ किसी न किसी प्रकार के अत्याचार से पीड़ित होकर ऐसे व्यक्ति के साथ भागती हैं जो उनसे शरीर का व्यापार कराकर स्वयँ सुख से रहना चाहता है। भाग कर दोनों पहुँचती हैं बम्बई ही। उन्हें

आश्रय भी मिलता है तो फिल्म में। दोनों का ही चारित्रिक पतन किसी सीमा तक वहाँ होता है। इसके उपरांत दोनों को असाधारण ख्याति मिलती है। यह समता थोड़े आश्चर्य में डाल देने वाली है। 'आखिरी दाँव' में फिल्म जीवन और फिल्म-निर्माण की साधारण बातों का परिचय कुछ अधिक विस्तार के साथ पाया जाता है। यों वर्मा जी ने जिस वातावरण का चित्रण किया है, उससे भी फिल्म जगत के सम्बन्ध में कुछ अच्छी धारणा नहीं बनती।

इलाचंद्र जोशी के 'सुबह के भूले' की प्रधान पात्री गिरिजा छोटी जाति में उत्पन्न हुई है। उसमें बचपन से ही अपने परिवेश के प्रति असंतोष पाया जाता है कॉलेज में पहुँच कर तो असंतोष की यह भावना और भी तीव्र हो जाती है और जैसा स्वाभाविक है निम्नवर्ग की यह बालिका अपने साथी किशन को भुला कर उच्चवर्ग के फैशनेबुल लोगों में घुलना-मिलना चाहती है। वहाँ जो उसे मानसिक आघात मिलता है वही उसे फिल्म में ले जाता है। पर जिन्होंने यशपाल तथा भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों के उपरान्त इस उपन्यास को पढ़ा है, वे इस बात पर थोड़ा आश्चर्य कर सकते हैं कि इलाचंद्र जी इन दोनों से एकदम विरोधी-मत कैसे रखते हैं। यहाँ न चरित्रहीनता का कोई चिन्ह है, न स्तुति-निंदा का, न प्रतिहिंसा का। किसी प्रकार की कोई गंदगी कहीं है ही नहीं। यहाँ तो फिल्म जगत के प्रति उल्टे एक प्रकार का प्रशंसात्मक दृष्टिकोण पाया जाता है।

इस प्रकार जहाँ यशपाल और वर्मा जी के उपन्यासों को पढ़ कर फिल्म जीवन के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है, वहाँ जोशी जी का उपन्यास इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ फिल्म में जाने के लिए यदि थोड़ा संघर्ष भी करें तो कोई अनुचित बात नहीं है। यह मतभेद दृष्टिकोण का है और तीनों को ही इस बात का अधिकार है कि जिस सत्य की उपलब्धि उन्हें अपने जीवन में हुई है, उसका प्रचार वे अपने साहित्य के माध्यम से करें।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य के इतने ही या ऐसे ही रूप होते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इस उपन्यास में उसके सभी प्रमुख रूपों का चित्रण किया गया है। किसी एक कृति में यह सब संभव भी नहीं है। 'मनुष्य के रूप' की विशेषता यह है कि यह मनुष्य के व्यक्तित्व के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डाल कर जीवन को समझने का अवसर देता है।

विश्वम्भर 'मानव'

लखनऊ

नाटककार
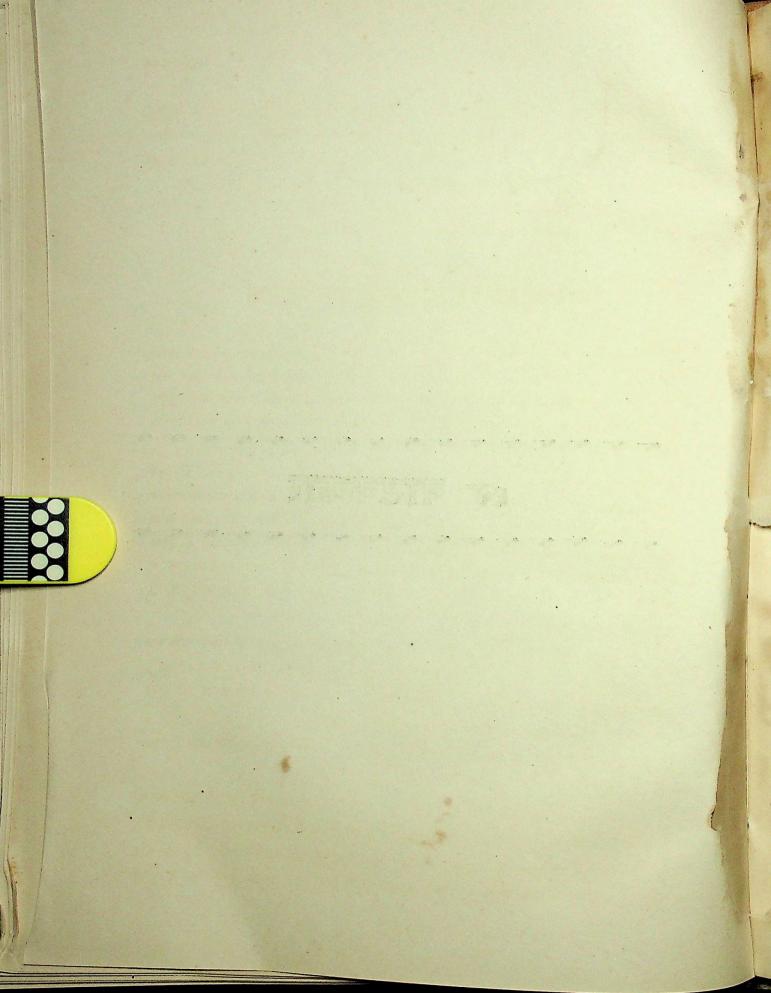
नाटककार यशपाल: एक झलक

यशपाल जी क्रान्ति के लिये ही जन्मे हैं। इनके विचारों में ही नहीं इनकी रग रग में क्रान्ति समाई है। एक ओर तो ये वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट करने के पक्ष में थे दूसरी ओर पराम्परागत आस्तिकता की ट्रेन के नीचे नास्तिक प्रतीत होने वाले तर्कों का बम विस्फोट करना चाहते हैं। इनकी आत्मजीवनी 'सिंहावलोकन' के रूप में प्रथम विस्फोट का प्रमाण है तो इनका नाटक 'नशे नशे की बात' दूसरे प्रकार का विस्फोट सूचित करता है।

यशपाल जी ने इस नाटक में गृहस्थ के उत्तरदायित्व से भाग कर अध्यात्म की मादकता में झूमने वालों पर व्यंग किया है। राधेमोहन मद्य का व्यवसायी है। वह एक मद्यप श्रमिक कामता की असमर्थ अर्द्धांगिनी की विषम स्थिति देखकर इस घृणित व्यवसाय से मुक्ति पाना चाहता है। इसी समय उसकी भगिनी अपने पति-गृह से लौट कर दुखद संवाद सुनाती है कि मेरे पति एक सन्यासी के शिष्य बनकर सन्यासाश्रम में प्रविष्ट हो गए। राधेमोहन ने अपने जिन मित्रों—जीदन और नन्दलाल के परामर्श से व्यवसाय को त्याग देना उचित समझा था उनको सन्यास धर्म की प्रशंसा करते देखा तो फटकारना प्रारम्भ किया।

"कामता शराब पीने के लिये शर्मिन्दा है परन्तु हमारे जीजा अपने ज्ञान के नशे का अभिमान करेंगे। अभिमान में अपना नशा बाँटते फिरेंगे और तुम माथा झुका कर उनका आदर करना। महात्मा लोग ज्ञान का नशा बेचें तो ठीक है। जो समाज उनका पालन करता है, उसी समाज को ठोकर मारें, तो ठीक है। राधेमोहन को बोतल का नशा नहीं वेचना चाहिये।"

"हमारे जीजा और हम दोनों नशे के व्यापारी हैं। किसे बुरा कहोगे दादा? नशे-नशे की बात है।"

समाज के अकर्मण्य दल—मद्यप और ज्ञानी—से यशपाल को वितृष्णा है। वे दोनों को समान रूप से विनाशकारी समझते हैं। यशपाल जैसे क्रान्तिकारी के मुँह से इस प्रकार का तर्क उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

इनका दूसरा एकांकी है—'गुडवाई दर्दे दिल' इस एकांकी में एक रिक्शा चालक का दैन्य और पर्वत पर मनोरंजन के लिये भ्रमण करने वाले रईसों की निष्ठुरता का परिचय कराया गया है। इस

नाटक में समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धान्तों की तुलना की गई है। इसमें एक पात्र वर्मा है वह दरिद्रों की सहायता दरिद्रों के लिये हानिकर समझता है। उसका कथन है—"अच्छा होता, दरिद्र तुम्हारी दया को ठोकर मार अपने बस जीने या मर जाने की बात सोचते! वे भगवानों के दर्दे दिल पर न पलते।"

इस नाटक में रिक्शा-चालक क्षुधा की तड़प और पर्वत की उँचाई पर चढ़ने के कारण मूर्च्छित होकर गिर जाता है। उस समय धनी सवार उसके उपचार आदि का बिना प्रबन्ध किये दूसरा रिक्शा करके अपनी प्रेमिका से मिलने चला जाता है। उस स्थान पर उच्छिष्ट स्वादिष्ट व्यंजन खिड़कियों से फेंक दिया जाता है। बाहर लूटने वाले भिखारियों में परस्पर युद्ध छिड़ जाता है।

इस नाटक में निर्धन और धनी वर्ग का संघर्ष दिखाया गया है। इस नाटक में वर्ग-संघर्ष को अनिवार्य बताया गया है। दोनों के उद्धार का यही मार्ग सुझाया गया है।

यशपाल जी ने केवल तीन एकांकी नाटक लिखे हैं किन्तु समाज में क्रान्ति की दृष्टि से इनका विशिष्ट स्थान है।

दिल्ली

दशरथ ओझा
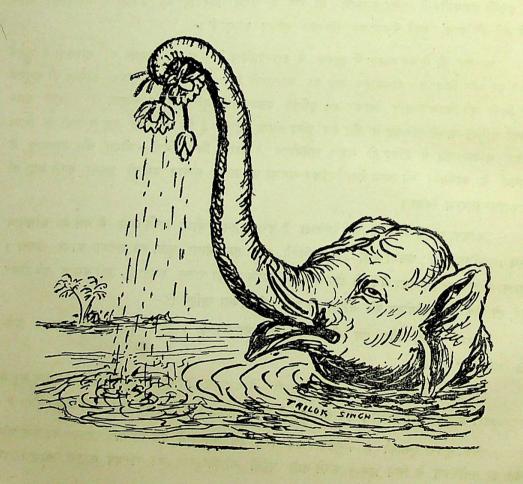
श्री यशपाल नाटककार के रूप में

श्री यशपाल हिन्दी-साहित्य गगन के चमकते हुए सितारे हैं। अपनी असाधारण प्रतिभा एवं अनवरत साहित्य-सेवा से इन्होंने हिन्दी-साहित्यकारों में गौरव का स्थान प्राप्त कर लिया है। प्रगतिशील लेखकों में तो यह अग्रगण्य हैं। यशपाल जी पंजाब के उन गिने-चुने हिन्दी-साहित्य-सेवियों में से है जिन्होंने हिन्दी साहित्य के कोष को अनेक अनमोल रत्नों से समृद्ध किया है। इनका शक्तिशाली और प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व पंजाब के हिन्दी प्रेमियों के लिये विशेष गौरव एवं प्रेरणा का विषय है।

उपन्यास, कहानी तथा निबंध के क्षेत्र में यशपाल जी प्रभूत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इन तीनों क्षेत्रों में इनकी रचनाएँ केवल संख्या में ही प्रचुर नहीं हैं, अपितु कला की दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं। नाटक के क्षेत्र में पदार्पण किये इन्हें अभी चार-पाँच वर्ष ही हुए हैं। अभी तक इनका एक एकांकी संग्रह 'नशे नशे की बात' ही प्रकाशित हुआ है। इसमें यशपाल जी के तीन एकांकी नाटक 'नशे नशे की बात', 'रूप की परख' तथा 'गुड बाई दर्दे दिल' संगृहीत हैं। बड़ा नाटक इन्होंने अभी तक कोई नहीं लिखा।

श्री यशपाल प्रगतिशील लेखक हैं। ये साम्यवाद के समर्थक हैं। अतः इनके उपन्यासों तथा कहानियों आदि की भाँति इन नाटकों में भी रूढ़िवाद के विरुद्ध विद्रोह की सबल भावना मिलती है। परंपरागत सामाजिक व्यवस्था का बौद्धिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए ये उस पर कड़ी चोट करते हैं। पुरानी निकम्मी रूढ़ियों का मूलोच्छेद करके उनके स्थान पर नवीनता को व्यावहारिक रूप में स्थापित करना चाहते हैं। अपने दृष्टिकोण के अनुकूल कथावस्तु रचने, चरित्र-चित्रण करने तथा वातावरण उपस्थित करने की यशपाल जी में अद्भुत क्षमता है।

यह बात निर्विवाद है कि यशपाल जी ने केवल कला के लिये अथवा मनोरंजन के विचार से नाटक रचना नहीं की, वरन् एक विशेष उद्देश्य से प्रेरित हो कर ही इस क्षेत्र में प्रवेश किया है। इनके नाटकों की कथावस्तु, पात्रों का चयन तथा चरित्र-चित्रण, वार्तालाप और वातावरण आदि सब कुछ पुरातन रूढ़ियों के खण्डन की तथा साम्यवादी नवीनता के समर्थन की भावना से युक्त है। इस कारण इनकी नाटकीय रचनाओं में व्यंग का बड़े सुन्दर और उपयोगी ढंग से प्रयोग किया गया है। यह व्यंग्य बड़ा तीखा और गहरा होते हुए भी शिष्टता और संयम को लिये रहता है।

यशपाल जी की अपनी नाट्य-कला के इन तीन एकांकियों में बड़ी सफलता मिली है। उपर्युक्त तीनों रचनाओं को इन्होंने 'एकांकी अथवा दृश्य कहानी' का नाम दिया है, जो कि उचित ही है। वास्तव में

तीनों रचनाएँ लम्बी संवाद-प्रधान कहानियाँ हैं। परन्तु ये इतनी सजीव तथा नाटकीय हैं कि उन्हें पढ़ते समय सारा दृश्य पाठक की आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। इन एकांकियों में यशपाल जी की तर्क द्वारा चोट करने की शैली विशेष सफल हुई है।

'नशे नशे की बात' इस संग्रह का प्रथम एकांकी है, और इन तीनों एकांकियों में श्रेष्ठ भी है। इस नाटक में दो प्रकार के नशे की बात कही गई है—एक तो मदिरापान से उत्पन्न होने वाला नशा, जिसके कारण शराब पीने वाला मनुष्य अपने परिवार तथा समाज के प्रति अपने दायित्व से पराङ्मुख हो जाता है। दूसरा नशा आध्यात्मिकता का है, जिसमें मनुष्य भगवान के ध्यान में मस्त होकर संसार तथा सांसारिक सबंधियों से मुँह मोड़ लेता है। दोनों अवस्थाओं में मनुष्य का स्वार्थ ही प्रधान है, क्योंकि शराबी तथा सन्यासी दोनों ही अपने परिवार आदि के दुःख-दर्द की चिन्ता किए बिना अपने सुख (भले ही वह शारीरिक हो अथवा आध्यात्मिक) का लोभ करते हैं। जहाँ धार्मिक विचारों के रूढ़िवादी लोग आध्यात्मिक नशे की प्रशंसा करते हैं और ऐसे नशेबाजों की पूजा करते हैं, वहाँ यशपाल जी ने इन दोनों नशों को एक समान बुरा बताया है। आध्यात्मिकता के नशे पर कड़ी चोट करते हुए इस नशे के प्रति समाज में वर्त्तमान आदर की भावना पर भी व्यंग्य किया है। इसी में लेखक के प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

इसी एकांकी में लेखक ने दिखाया है कि कामता नामक शराबी के इस व्यसन के कारण उसकी पत्नी और बच्चों की बुरी दशा है। कामता घरवाली के भूषण आदि बेचकर भी अपना व्यसन पूरा करने में संकोच नहीं करता। दूसरी ओर शराब की दुकान के मालिक राधेमोहन का बहनोई अपने परिवार के पालन की चिन्ता को सर्वथा त्याग कर सन्यास ले लेता है। दोनों ने, लेखक के मतानुसार, अपने कर्तव्य की उपेक्षा की है। इसीलिये लेखक ने राधेमोहन से, जो कि मदिरा-विक्रय के अपने व्यवसाय पर लज्जित था और इस काम को छोड़ने का निश्चय कर चुका था, फिर से दृढ़ शब्दों में उस व्यवसाय का समर्थन कराया है।

लेखक ने आध्यात्मिक नशाबाज़ों तथा उनके पुजारियों पर तीखे व्यंग्य का प्रहार किया है।

नाटककार ने अपने उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए कथानक का विकास बड़े सुन्दर ढंग से किया है। अपने मत को प्रतिष्ठित करने के आवेग में लेखक ने नाटक को थोड़ा सा विस्तार दे दिया है और राधेमोहन के मुँह से बार बार अपने दृष्टिकोण को समर्थ शब्दों में कहलाया है। फिर भी नाटक का वातावरण स्वाभाविक रहा है। पात्रों की संख्या भी एकांकी के आकार को देखते हुए बहुत अधिक नहीं है नाटक का संवाद सरल, सजीव और स्वाभाविक हैं। नाटककार ने उन्हें पात्र तथा परिस्थिति के अनुकूल बनाने में सफलता पाई है।

इसके अतिरिक्त एकांकी में कथानक, सयय तथा स्थल की एकता का पूरा निर्वाह हुआ है। प्रभाव की एकता भी बनी रहती है। प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण भी कुशलता-पूर्वक किया गया है। छिद्दू-काका, कामता, नन्दलाल और जीवन आदि तो अधिकांश टाइप अथवा प्रकार-विशेष बन कर रह गए हैं, किन्तु राधेमोहन के चरित्र की व्यक्तिगत विशेषताओं पर तथा उसके उतार चढ़ाव पर यशपाल जी ने पर्याप्त प्रकाश डाल दिया है।

'रूप की परख' में यशपाल जी ने पारिवारिक जीवन की एक साधारण घटना को कथानक का आधार बनाया है। पंडित हरप्रसाद प्राचीन परिपाटी के प्रौढ़ गृहस्थ हैं। वे अपनी बीस वर्षीया पुत्री

सुमित्रा के विवाह के लिए चिंतित हैं। दुर्भाग्यवश सुमित्रा के मुँह पर माता के दाग हैं। माता-पिता अपनी पुत्री के दोष को भारी दहेज के प्रलोभन से दूर करना चाहते हैं। इस सौदेबाज़ी में पण्डित ज्ञानचन्द दस हज़ार रुपया ले कर अपने छोटे भाई धर्मचन्द का विवाह सुमित्रा से करने को उद्यत हो जाते हैं। परन्तु सुमित्रा जो कि आधुनिक विचारों की युवती है, धन के लोभ से विवाह करने वाले परिवार को ठुकरा देती है। उसका भाई कैलाश तथा एक और क्रांतिवादी युवक चेतन पं० ज्ञानचन्द को खरी-खरी सुनाते हैं, और सुमित्रा का चेतन के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा जाता है।

इस नाटक में भी यशपाल जी ने अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय देते हुए रूढ़िवादी समाज के व्यवहार पर चोट की है। उन्होंने एक ओर तो उन माता-पिता पर व्यंग्य किया है जो जवान लड़की को कुंवारी बिठाये रखना पाप समझते हैं। यद्यपि सुमित्रा अपने विवाह के लिए उत्सुक नहीं। वह प्रगतिशील विचारों की युवती है, और बी० ए० पास करके अपने पाँवों पर खड़ा होना चाहती है। उसका भाई कैलाश उसके इन विचारों का समर्थन करता है। परन्तु परंपरागत रूढ़ियों के प्रभाव से दबे हुए माता-पिता को यह असह्य है। मां तो पड़ोसिन के द्वारा लड़की का मेक-अप करवा कर जैसे-कैसे इस भार को अपने सिर से उतार फेंकना चाहती है। दूसरी ओर पिता अपना मकान बेच कर भी लड़के वालों की दस हज़ार की माँग को पूरा करने को तैयार है।

दूसरी ओर यशपाल जी ने उन नीच वर-पक्ष वालों पर व्यंग्य-प्रहार किया है, जो अपनी लड़की की अधिक से अधिक कीमत लेना चाहते हैं। लड़की की कुरूपता का हर्जाना दस हज़ार रुपये लेकर वह विवाह-सम्बन्ध की अनुमति देने में बुराई नहीं समझते। दूसरे शब्दों में उनकी नजरों में लड़की की योग्यता अथवा रूप का इतना महत्त्व नहीं जितना कि धन का। समाज की इस कुवृत्ति का अन्त कर देना ही प्रगतिशील नाटककार उद्देश्य है।

यशपाल जी ने इस नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़े कौशल के साथ किया है। कैलाश, चेतना तथा सुमित्रा लेखक का अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, और शक्ति के साथ पुरानी गली सड़ी रूढ़ियों को उखाड़ फेंकने के लिए कटिबद्ध हैं। सुमित्रा के माता-पिता तथा लड़के के पक्ष वाले रूढ़िवादी विचारधारा के प्रतीक हैं। लेखक ने बड़े सुन्दर तथा स्वाभाविक ढंग से सुमित्रा के पिता की घबराहट का वर्णन किया है। उनकी यही चिन्ता है कि उनके प्रबन्ध में तथा स्वागत-सत्कार में कोई त्रुटि न रह जाए, जिससे लड़के वालों के रुष्ट होने की सम्भावना हो।

नाटक का वातावरण आदि से अन्त तक स्वाभाविक हैं। संवादों में भी सरसता, सजीवता और प्रसंगानुकूल कोमलता अथवा कठोरता है। इसके अतिरिक्त नाटक का चरमोत्कर्ष यद्यपि कैलाश और चेतन द्वारा लड़के वालों के अपमानित किये जाने पर है, तथापि लेखक ने चेतन को विवाह के लिये प्रस्तुत कराके नाटक के अन्त तक कौतूहल को आश्रय दिया है। धर्मचन्द के पक्ष वालों तथा चेतन के व्यवहार में यह तीव्र वैषम्य दिखा कर चेतन के महत्त्व को बढ़ा दिया गया है। इस प्रकार प्रगतिशील दृष्टिकोण के प्रचार के अपने उद्देश्य में यशपाल जी को पूर्ण सफलता मिली हैं।

'गुड बाई दर्देदिल' में यशपाल जी ने पुनः अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि प्रेम यदि व्यक्तियों के परस्पर आकर्षण का सुसंस्कृत रूप है तो व्यक्ति की यह संस्कृति केवल यौन-आकर्षण में ही प्रकट न होकर सामाजिक व्यवहार में भी प्रकट होनी चाहिए। लेखक यहाँ प्रेम की भावना का परिहास करना नहीं चाहता। परन्तु सामाजिक व्यवहार में दिल का दर्द न होने पर केवल

यौन-आकर्षण में ही दिल के दर्द का दावा करने को वह अभिनय मात्र मानता है, प्रेम की विडम्बना समझता है ।

नाटक का प्रमुख पात्र रणजीत विलायत से लौटा हुआ आधुनिक ढंग का फ़ैशनेबल युवक है। वह शशि से प्रेम करता है, और टैनिस खेलने के पश्चात् अपने मित्र केशव के साथ शशि के बँगले पर ब्रिज के के खेल में शामिल होने के बहाने शशि से मिलने जा रहा है। वह केशव के साथ रिक्शा में सवार हो जाता है और मसूरी की कड़ी चढ़ाई में भी रिक्शा कुलियों से अधिक से अधिक ज़ोर लगाने को कहता है। फलस्वरूप एक कुली चट्टान से टकरा कर गिर पड़ता है। रणजीत को घायल कुली पर दया नहीं आती। वह उन्हें कोसता हुआ उस रिक्शा को छोड़ कर एक औररिक्शा लेकर शशि के बँगले पर पहुँच जाता है। वहाँ पहले रिक्शा का कुली आकर किराया मांगता है। रणजीत उसे देने से इन्कार करता है। इतने में लीला की ज़बानी यह ज्ञात होता है कि शशि के हृदय पर रिक्शा-कुली के घायल होने की बात सुनकर बड़ा प्रभाव हुआ है। इस पर रणजीत परिस्थिति सँभालने के विचार से शशि को सुनाकर ऊँचे स्वर में उस कुली को पुकारता है और उसे पाँच रुपये का नोट दे देता है।

परन्तु शशि रणजीत के पहले व्यवहार से तथा बातचीत से यह जान लेती है कि रणजीत के दिल में दर्द नहीं है। वह रणजीत से कहती है— ..तुमने मेरा दिल और विश्वास खरीदना चाहा। मनुष्यता से नही, पाँच रुपये मे ! एक आदमी की...जान की कीमत...पाँच रुपये लगा कर।"

रणजीत का दर्दे दिल कोरे यौन-आकर्षण से आगे नहीं बढ़ पाता। मनुष्य के दुःख-दर्द के प्रति रणजीत की हृदयहीनता देखकर शशि उसकी अपने प्रति सहृदयता में विश्वास नहीं करती, और रणजीत के इस दर्दे-दिल को गुड-बाई कह कर चली जाती है।

लेखक ने रिक्शा-कुलियों के कठिन जीवन पर थोड़े में ही गहरा प्रकाश डाल दिया गया है। प्रमुख पात्रों के चरित्र की विशेषताओं को भी संक्षेप में कलापूर्ण रीति से प्रकट कर दिया गया है। केवल संकेत मात्र से संतुष्ट न हो सकने के कारण इस नाटक में यशपाल जी ने अपने सिद्धान्तों पर बल देने के लिये वर्मा तथा शर्मा की अवतारणा की है। लेखक वर्मा के पीछे खड़ा स्वयँ बोलता हुआ जान पड़ता है। वह वर्मा के शब्दों में बार-बार तीखे व्यंग्य करता है, जैसे—

वर्मा—.........वे देखें, भागवानों में कितना दर्दे-दिल है ? भागवान दरिद्र को पेट पालने का अवसर देने के लिए उसकी सवारी करता है और जब बोझ से दरिद्र का शरीर दम तोड़ने लगता है तो भागवान दर्दे-दिल से उसे इलाज के लिए धर्मार्थ-औषधालय में पहुँचाने की बात कहता हैं। ऐसे दर्दे-दिल को में कहता हूँ अलविदा दर्दे-दिल। विदा हो दर्दे-दिल। गुडबाई दर्दे-दिल।

कथोपकथन में स्वाभाविकता लाने के लिए लेखक ने रिक्शा-कुलियों की बोल चाल की भाषा का और रणजीत, केशव तथा शशि आदि अंग्रेज़ी-शिक्षा-प्राप्त पात्रों के वार्तालाप में अंग्रेज़ी के शब्दों का ही नहीं, वाक्यों का निस्संकोच प्रयोग किया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यशपाल जी ने केवल मनोरंजन के लिए, अथवा नाट्य-कला-प्रदर्शन के उद्देश्य से इन नाटकों की रचना नहीं की। वे साम्यवादी दृष्टिकोण रखते हैं, और पुरानी जर्जर रूढ़ियों को समाप्त करके नवीनता तथा प्रगतिशीलता का प्रचार करने के विशिष्ट उद्देश्य को लेकर उन्होंने इन एकांकियों का प्रणयन किया है इस उद्देश्य में वे निस्संदेह सफल हुए हैं।

शिमला

वेदपाल खन्ना 'विमल'

यशपाल की मान्यताएँ और उनके नाटक

साहित्य साहित्यकार के मन का दर्पण होता है। साहित्यकार के सभी सिद्धान्त और मान्यताएँ, उसकी आशा-आकांक्षाएँ उसके साहित्य में सहज ही प्रतिबिम्बित हो उठती हैं। कलाकार जिस दृष्टिकोण से जीवन, समाज और उसके विभिन्न पहलुओं को देखता है, उन्हें उसी रूप में जनता के सामने पेश कर देता है। यशपाल भी इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते। उनके अपने सिद्धान्त हैं, वह समाज में क्रान्ति लाकर उसे नया रूप देना चाहते हैं। उनके उपन्यासों, कहानियों, नाटकों तथा अन्य साहित्य में उनकी इस मनोकामना की छाप स्पष्ट अंकित है और वह छाप इतनी गहरी है कि किसी भी व्यक्ति के मन से एकाकार होकर उसमें अनोखी पीड़ा और क्रान्ति की भावना जगाने में समर्थ रहती है।

यशपाल के नाटक अधिक नहीं, लेकिन जो भी हैं, वे इतने अनोखे हैं कि जीवन को एक नया दृष्टिकोण देने में सफल हुए हैं। यशपाल जनवादी कलाकार हैं। पूंजीवाद की चक्की में पिसते हुए दीन-हीन-बेसहारा व्यक्तियों का हृदय-विदारक क्रंदन उन्हें सहन नहीं। वे उनकी मुक्ति के लिये तड़प उठते हैं। कुत्सित मानवता के लिये वे विद्रोह का शंख फूंक देते हैं और साथ ही समाज की सड़ी-गली व्यवस्थाओं पर तीखा व्यंग्य करने से भी नहीं चूकते। 'गुड बाई दर्दे दिल' में जब रिक्शा खींचता खींचता कुली थक कर चूर हो जाता है और दीवार से टकरा कर गिर पड़ता है तो यशपाल का हृदय भी व्यथा से पागल हो उठता है। यह अपने एक पात्र वर्मा से कहलाते हैं, "समाज ने उन्हें परवशता से घेर कर इसी काम के योग्य बना दिया है। भाग्यवानों के लिये सेवकों की आवश्यकता है। अपना वश चलते कोई अपनी पीठ पर क्यों चढ़ने देगा? यह कुली पशु से सस्ता है। सवारी करने के लिये पशु को रोज खिलाना होगा, सवारी करो या न करो। लेकिन ऐसे लोगों को जरूरत के समय पुकार लिया जा सकता है। दो घन्टे जिन्दा रहने के लिये दाम देकर इन पर सवारी की जा सकती है। फिर इन्हें भूखा मरने के लिये छोड़ देने में अपनी कोई हानि नहीं।"

यह कैसा तमाचा है हमारे समाज और उसकी व्यवस्था के मुख पर! इसमें यशपाल की प्रतिभा और स्पष्टवादिता बहुत ऊपर उभर आई है। वह अन्याय के विरुद्ध हिंसा का मार्ग अपनाने के भी पक्षपाती हैं। वे नहीं चाहते कि कोई दरिद्रों पर दया करके उनकी सहायता करे। उनकी पैनी दृष्टि इसमें 'बड़े लोगों' का स्वार्थ देखती है। वे वर्मा के मुख से कहलाते हैं, "दरिद्र की सेवा का मतलब है, दरिद्र को अपनी सेवा के लिये जिन्दा रखने की समझदारी। दरिद्र के प्रति दर्दे-दिल दिखाने का मतलब है, दरिद्र को उसके

दुर्भाग्य में ही बहलाये रखने की चतुरता। मैं ऐसी सहृदयता और दर्द-दिल को दूर से ही हाथ जोड़ता हूँ।

इसके आगे भी वर्मा ने यथास्थान समाज की इस शोषण-मूलक व्यवस्था पर फब्तियाँ कसी हैं। यशपाल के मन में पीड़ितों के लिये अनोखी तड़पन है, लेकिन वह निराशावादी नहीं। एक नयी किरण, एक नयी रोशनी उन्हें सदा उज्ज्वल भविष्य की ओर प्रेरित करती रहती है। इसीलिये वे समाज की प्रत्येक समस्या का आशावादी हल ही खोजते हैं। वे मानवता के उपासक हैं, मानवता को सबसे बड़ा मानते हैं और इसीलिये जो मानवता का निरादर करते हैं, उन्हें उनके सामने उपेक्षित होना पड़ता है। 'गुड बाई दर्द दिल' का नायक रणजीत रिक्शा खीचने वाले कुलियों को बहुत छोटा और हीन समझता है और कुली के बेहोश हो जाने पर भी किराया नहीं देता। उनके लिये उसके मन में तनिक भी दया नहीं उपजती। लेकिन जब रणजीत की प्रेमिका शशि को इस बात से दुःख होता है तो वह उसे खुश करने के लिये ही कुली को पांच रुपये बख़्शीश दे देता है। शशि का मन इससे व्यथित हो उठता है और वह व्यंग्य भरे स्वर में रणजीत से कहती है, "उस कुली की जान की कीमत तुम्हारी दृष्टि में क्या थी ? जैसे कोई कीड़ा पाँव तले कुचल गया हो। परन्तु मुझे रिझाने के लिये तुमने उसके प्रति पाँच रुपये की सहृदयता दिखा अपनी हृदयहीनता का मोल चुका दिया। तुम समझते हो, मेरे विचार में मनुष्य का मूल्य इतना ही है।" कैसा व्यंग्य है आज के ऊँचे कहे जाने वाले समाज के लोगों पर। जो लोग आदमी की कीमत रुपयों से आँकते हैं, यशपाल की दृष्टि में वे बहुत ही छोटे और हीन हैं।

यशपाल जानते है कि वे जनता का नेतृत्व कैसे करें। उसके जीवन में वे नये रुधिर का संचार करने और उसे अपने आदर्शों के प्रकाश में एक नया मार्ग दिखाने में सदैव समर्थ रहते हैं। उन्होंने एक सच्चे आदर्श और यथार्थवादी की भाँति ठोस तर्कों, अकाट्य प्रमाणों और निष्पक्ष दृष्टिकोणों को कलापूर्ण ढंग से एकत्रित करके पुरुषों को ही नहीं, नारियों को भी आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया है और वह उन्हें मार्ग दिखा कर पीछे नहीं रहे, अपने सशक्त हाथों में प्रकाश पुञ्ज लिये आगे-आगे चले हैं। उन्होंने नारियों को परम्परागत रूढ़ियों के संकीर्ण दायरे को तोड़ कर बाहर आने का मार्ग दर्शाया है। वे नारी को भोग-विलास और कुत्सित पिपासा शांत करने का साधन नहीं मानते। उनके सामने नारी का रूप ही सब कुछ नहीं है। वे नारी के गुणों को उसके रूप से अधिक महत्व देते हैं।

"रूप की परख" की नायिका सुमित्रा सर्वगुण सम्पन्न है, किन्तु वह सुन्दर नहीं है। उसके मुख पर चेचक के दाग हैं, इसीलिए उससे कोई विवाह करने को तैयार नहीं। यशपाल के मन में इससे व्यथा है। यदि सुमित्रा सुन्दर नहीं तो क्या करे, इसमें उसका क्या दोष है। और फिर रूप सदा तो नहीं रहता वह तो चार दिन की चाँदनी है। स्त्री का गुण ही जीवन भर उसके काम आता है। इसी अनुभूति को यशपाल एक स्त्री के मुख से कहलाते हैं," रूप तो बनाव सिंगार होता है। रूप सिंगार तो तू जानती है, एकबार देखा जाता है। पसन्द के बाद छः महीने में सब पुराना पड़ जाता है। घर की चीज का रूप कौन देखता है ! फिर तो काम देखती है दुनिया बहिन, और औरत का बनाव सिंगार तो ऐसा है, जैसे मिठाई पर लगी चाँदी। खाने में चाँदी का स्वाद थोड़े ही आता है, मिठाई का ही आता है। सच्ची जान तू, मिठाई जब तक बिकती नहीं, तभी बरक लगाया जाता है।" कितना यथार्थ है यह कथन। जीवन की कसौटी पर यह सत्य खरा उतरता है, बिलकुल खरा। वे नारी को आशा और उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देकर उसके मनोबल को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते हैं। रूढ़ि-जर्जर संस्कारों में पली, समाज के घिनौने बन्धनों में जकड़ी हुई शरीर, और मन से दुर्बल नारी में आत्म-जागृति और आत्म चेतना

जगाना चाहते हैं। उनकी नारी दूसरों की दया पर नहीं रहना चाहती, वह स्वाभिमान से जीना चाहती है। तभी तो सुमित्रा चेहरे पर रंग पोत कर और बढ़िया वस्त्र पहन कर अपनी कुरूपता को नहीं छिपाना चाहती। जब कैलाश के पिता अतिथियों का अपमान करने के अपराध में कैलाश को चले जाने का आदेश देते हैं तो सुमित्रा क्रोधित हो उठती है। उसे फिर से अस्वीकार कर दिया गया है, इसका उसे दुख नहीं। उसका मूल्य पैसों से आँका जा रहा था, उसे केवल इसी बात का क्षोभ है। वह कड़े स्वर में पिता से कहती है, "भैया को घर से निकालने की क्या जरूरत है। मैं इस घर के लिए इतना बोझ हूँ तो मैं स्वयं इस घर में नहीं रहूंगी।" यही नहीं, जब सुधारवादी युवक चेतन स्वयं सुमित्रा से विवाह का प्रस्ताव करता है तो वह उसे भी स्वीकार करना नहीं चाहती। क्रोध से उसके माथे पर बल पड़ जाते हैं। वह एक कदम आगे बढ़ हाथ की मुट्ठी से हवा में प्रहार करती हुई चेतन को सम्बोधित करती है, "अब आप मुझ पर दया दिखाना चाहते हैं। मुझे किसी की दया की आवश्यकता नहीं... दुनिया जानती है, मैं कुरूप हूं। क्या सारी दुनिया झूठ बोलती है, आप ही सच्चे हैं? आप झूठे हैं। मुझे कुरूपता का कोई डर नहीं, कोई लज्जा नहीं मैं सुन्दर खिलौना नहीं हूँ।" कैसा अहंकार है नारी का वह कभी पराजय स्वीकार करना नहीं चाहती। अन्याय के सामने कभी सिर झुकाना नहीं चाहती। वह समर्थ है, अकेले रहकर वह जीवन का बोझ ढो सकती है।

लेकिन अन्त में यशपाल फिर आशावादी हो उठते हैं। वे समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित करते हैं और उसे एक नया मार्ग दिखाते हैं। चेतन सुमित्रा से कहता है—"दुनिया खिलौना ढूंढती है, मैं इन्सान का आदर करता हूँ। दुनिया के लोग तुम्हें देख नहीं पाये। जिस आँख से देखते हैं वह आँख टेढ़ी है। मेरी आँखों पर दहेज के लोभ की पट्टी नहीं बँधी है, इसलिए मैंने तुम्हें देखा है और पहचाना है। मैं उस ज्योति का आदर करता हूँ।"

यशपाल की यही विशेषता उनके साहित्य में स्थान स्थान पर प्रकट होगई है। वे देश और समाज की बदलती हुई परिस्थितियों से अपरिचित नहीं हैं। उन्होंने अपनी व्यंगपूर्ण शैली में उफ़नती हुई उन भावनाओं को बाँधा हैं जो समाज के अन्याय असमानता और दासता को देखकर घृणा और जोश से तड़प उठती हैं।

यशपाल पुरातन आदर्शों और भारतीय संस्कृति के विरोधी कहीं नहीं रहे। लेकिन धर्म और आदर्श के पाखण्ड का पर्दाफ़ाश उन्होंने हमेशा किया। सत्य और यथार्थ को अपना कर सदैव मानवीय उत्थान के स्वप्न देखा करते हैं। उनकी पैनी दृष्टि जीवन के वास्तविक अर्थों में बहुत गहरी उतर कर अंचल में छिपे रहस्यों का उदघाटन किया करती है।

नशे-नशे की बात नामक नाटक में यशपाल ने धार्मिक मान्यताओं का ऐसी खूबी से पर्दाफ़ाश किया है कि देखते ही बनता है। जो लोग आध्यात्मिकता के नशे में अपने पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्य की उपेक्षा कर बैठते हैं उनके प्रति इस नाटक में भारी निरादर की भावना है।

राधे मोहन शिक्षा-प्राप्त सुधारवादी युवक है, किन्तु फिर भी वह पेट के लिए शराब की दुकान करने को विवश है। कामता कारखाने का मज़दूर है जो पत्नी के जेवर बेच कर भी शराब की बोतल खरीदता है और अपने बच्चों की भूख की परवाह नहीं करता। नन्दलाल और जीवन दो सुधारवादी व्यक्ति हैं जो राधेमोहन को समझा-बुझाकर उसे शराब की दुकान बन्द करने को तैयार कर लेते हैं। वे कहते हैं कि शराब बेचना बड़ा कमीनापन है। जो लोग ग़म और दुखों को दूसरों के लिए छोड़ कर खुद

नशे में बेखबर हो जाते हैं, वे पाप करते हैं। तुम्हें इस पाप को बढ़ावा नहीं देना चाहिए। राधेमोहन को इससे प्रेरणा मिलती है और वह शराब का ठेका छोड़ने के लिए पत्र लिख देता है, लेकिन तभी उसकी बहन रोती-बिलखती वहाँ जा पहुँचती है। उसका पति आध्यात्मिक शांति के लिए बीबी-बच्चों को छोड़ कर सन्यासी हो गया है। पत्नी के मन में उससे भारी प्रतारणा है। वह कहाँ रहे क्या खाये। बस यहीं यशपाल का विद्रोही मानव जाग उठता है। राधेमोहन शराब के ठेके का इस्तीफा फाड़ कर फेंक देता है। वह उत्तेजित होकर कहता है—

"जीजा आनन्द की खोज में चले गये। घरवाली को रुलाकर, बच्चों को बिलखता छोड़ कर आनन्द की खोज में चले गए। वे संसार की माया और परिवार के उत्तरदायित्व के भ्रम और दुख को छोड़ कर आनन्द की खोज में चले गए। क्यों जीवन भैया, क्या यह स्वार्थ और कमीनापन नहीं है।...हमारे जीजा ज्ञानी हैं? तभी तो वह भ्रम और दुःख की माया के बन्धन को छोड़ कर सुखी हो गए और बालबच्चों को बिलखने के लिए छोड़ गए। तुम उन्हें ज्ञानी और महात्मा कहोगे? और कामता को गाली दोगे? वह नशे में अपने बाल बच्चों को भुलाकर आनन्द मनायेगा तो उसे गाली दोगे? हमारे जीजा ने क्या किया है?...कामता कभी कभी अपने बालबच्चों के पेट पर पाँव रख कर नशे में नाचता है। इसलिए डरपोक और कमीना है। हमारे जीजा सदा के लिए आनन्द की बोतल चढ़ा कर सुखी हो गए, बीबी-बच्चों को लात मार गए। इसलिए वे ज्ञानी हैं"

अन्त में यशपाल निष्कर्ष निकालते हैं। "दोनों नशे चलने दो दादा! हमारे जीजा बड़े नशे में दुखी संसार को ठोकर मारेंगे और संसार सिर झुका कर उनका पालन करेगा। वे अपने नशे में संसार को छोड़ने का गर्व करेंगे और हम, बोतलों का छोटा नशा बेच कर उनके संसार का पालन करेंगे। हम दोनों नशे के व्यापारी हैं किसे बुरा कहोगे दादा! नशे-नशे की बात है।"

यही यशपाल की मौलिकता है। उनका यह कथन हमारे साहित्य की अमूल्य निधि बन कर सदा मुस्कराता रहेगा। उन्होंने कथानक के पुराने साँचों को तोड़ कर उन्हें एक नया रूप दिया है और चरित्र चित्रण को नवीन पद्धति से प्रस्तुत किया है। उनकी ठोस लेखनी बड़ी ही चतुरता और तेजी से मन की गहराइयों को छूकर निकल जाती है। जीवन की साधारण से साधारण बातों को भी वे गौर से देखते हैं और कलम की नोक से उन्हें सही चित्रित कर देते हैं।

यशपाल में एक कुशल नाटककार के सभी गुण विद्यमान हैं। वह अपनी अनुभूतियों को सफलता से चित्रित करने में समर्थ हुए हैं। उनकी रचनाओं में कल्पना तत्व कम और वस्तु तत्व अधिक है। उनके पात्र सीधी सादी और सजीव भाषा में अपने भाव बड़ी सरलता से व्यक्त कर देते हैं। यशपाल की विशेषता उनकी शैली की सजीवता, शब्दों की सुडौलता और कथानक के शक्तिशाली तथा सुन्दर गठन में ही निहित है

यशपाल आज एक महान उद्देश्य की ओर बढ़ रहे हैं। उन्होंने एक महान प्रकाश-पुञ्ज प्रज्ज्वलित किया है। जिसके आलोक से सारा हिन्दी साहित्य आलोकित हो रहा है।

दिल्ली

रमेश चन्द्र 'प्रेम'

निबंधकार

यशपाल के निबन्धों में व्यंग्य-छटा

परिस्थितियों को अपनी सुविधा के अनुकूल बनाने की शक्ति पशु में नहीं है, मनुष्य में है। इस सुविधा को व्यष्टि के स्वार्थ से निकाल कर समष्टि के कल्याण में लाया जाता है तो हमारा सामाजिक चौखटा सुन्दर और मजबूत बन जाता है। इस चौखटे में जो वस्तु ठीक नहीं बैठती हास्यास्पद बन जाती है क्योंकि उसमें आकस्मिक और अप्रत्याशित असमानता की झलक फूट पड़ती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इस लिए वह हास-परिहास-प्रिय भी है। उसकी 'हास्य-प्रियता जहाँ उसे अपने जीवन के पुराने मूल्यवान तथ्यों और मान्यताओं पर डटे रहने की शक्ति देती है वहाँ नवीन असंगतियों से बचने में भी सहायता देती है।

हास-परिहास को समझने के लिए तर्क-बुद्धि की आवश्यकता है। यह दूसरी बात है कि हम कभी-कभी अकारण ही दूसरों की देखा-देखी हँस पड़ते हैं। ऐसे अवसर की याद हमारे विनोद की वजाय आत्म-ग्लानि का कारण ही हुआ करती है। श्री यशपाल इसे खूब जानते हैं। उनके अपने शब्दों में "मनुष्य में हँसने की-अपने आप को भूल जाने की इच्छा-उसकी मनुष्यता का एक खास अंग है।" आत्म-विस्मृति के साथ अज्ञान को जोड़ दिया जाए तो वही विनाशकारी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जो बिल्ली के सामने आँखें बंद कर लेने से कबूतर की हो जाती है। किन्तु शोषित प्राणी अपनी दरिद्रता, विवशता और हीनता को भुला देने की चेष्टा करता है तो वह अपनी मुक्ति की ओर दो चार क़दम आगे बढ़ जाता है। यही हास-परिहास का सदुपयोग है।

कृत्रिम आत्मविस्मृति को ही अपना ध्येय मानने वाले नशेबाज लोग और पाखण्ड-पूर्ण ...तिकतावादी अपने समाज की तबाही का कारण बनते हैं। उन्हें सचेत करने के लिए अर्थात् मानवता ...चौखटे में वापस लाने के लिये विशेष उपचार की आवश्यकता हुआ करती है। इस उपचार का नाम है— ...ग्य! व्यंग्यकार को कुशल शल्य-विशारद की भांति तेज़ नश्तर से भी काम लेना पड़ता है। वह अपनी ...ठोरता को छिपाने के लिये हास-विनोद का नमक भी छिड़क देता है।

अरबी भाषा की एक लोकोक्ति का भाव है 'भाषण में हास्य उतना ही हो जितना खाने में ...मक। यशपाल जी की रचनाओं में भी हास्य का पुट आटे में नमक के बराबर है। वह भली प्रकार जानते

हैं कि व्यंग्य-विनोद द्वारा मानवी त्रुटियों, विषमताओं, असंगतियों और पाखंड-पूर्ण वासनाओं पर हँसने-हँसाने के अतिरिक्त एक विशेष प्रकार का उत्साह भी मिल सकता है, जिससे विषम जीवन को साम्य की ओर लाया जा सकता है। विधायक प्रतिभा, सजीव कल्पना और सशक्त भाषा के सभी सुंदर उपकरण उनकी कृतियों में मिलते हैं किंतु वह अपने मनोवेगों के विस्तार-साम्य के प्रचार को सच्चे साहित्य का प्रमुख आधार मानते हैं। उनका क्षात्र रूचि वाला मन विपक्षी को परास्त करके ही दम लेता है। 'देशद्रोही' के बद्रीनाथ हों या 'दिव्या' के धर्मस्थ की प्रपौत्री, 'चक्कर क्लब' के गांधीवादी हों या 'बात बात में बात' के सर्वोदयी महोदय, 'न्याय का संघर्ष' की पढ़ी-लिखी लड़की हो या 'तर्क का तूफान' का अपढ़ सिपाही-सभी व्यक्तिवादियों के कृत्रिम और अनुपयोगी व्यवहार पर उन्होंने विद्रूप-भरे चुटीले व्यंग्य-वाण बरसाए हैं।

उन्हें कहीं-कहीं समाज के नग्न तथ्यों का वर्णन भी करना पड़ा है, किंतु उन्होंने अपनी लेखनी को अश्लीलता से सदा बचाए रखा है।

समवेत रूप से हम कह सकते हैं कि यशपाल ने अपनी ओर से कोई बात बिना तर्क-तराज़ू पर तोले नहीं कही। उनकी ईमानदारी सर्वत्र मुखर दीख पड़ती है। चुभते-चुटीले व्यंग्य करते हुए भी उन्होने विनोद-प्रमोद का वातावरण बनाए रखा है और अपने दिमाग़ को सदा ही ठंडा रखा है, परन्तु दिल की गर्मजोशी बिगड़ने नहीं दी।

'तर्क का तूफ़ान' आदि कहानी-संग्रहों में वे प्रच्छन्न रूप में व्यंग करते रहे थे किंतु 'न्याय का संघर्ष' में उन्होंने, प्रत्यक्ष रूप में व्यंग्य किया है। इसके उपरांत उन्होंने 'चक्कर क्लब' चलाया, 'बात बात में बात' गुप्त रखनी चाही, फिर भी उनका व्यक्तित्व छिप नहीं सका क्योंकि उनके अन्तस्तल के मार्क्सवादी दार्शनिक और प्रगतिवादी इतिहासज्ञ उन्हें निष्क्रिय बैठने नहीं देते।

मौलिक रूप में यशपाल जी एक कथाकार हैं। 'न्याय का संघर्ष' यद्यपि एक निबंध-संग्रह है। फिर भी इसके अधिकतर निबंध कहानी की सी-घटनाओं और वातावरण से ओत-प्रोत हैं। 'न्याय' शीर्षक निबंध तो एक गिलहरी की करुण कहानी है। अपनी मानवी भावनाओं का मार्मिक चित्रण करके लेखक ने अपने भावुक कवि हृदय का परिचय दिया है। इस में रसमयता भी प्रचुर है, किंतु वह व्यंग्य कहने से कहीं नहीं चूके।

गिलहरी की तुलना मनुष्य से करते हुए वह एक व्यंग्य दयामय परमेश्वर पर भी कसते गए हैं—

> "यह तो है गिलहरी की बात। जमीन पर जहां-तहां पड़ा चार-दाना चुग लेने से उसका पेट भर सकता है और पेड़ की कोटर उसके लिए घर है। परन्तु हाय रे मनुष्य! तेरे तो हर काम में हज़ार झंझट हैं और फिर तेरे सिर पर कौन सी मुसीबत नहीं? आंधी-पानी है, आग और बाढ़ है, भूचाल है, उस पर चोर—डाकू हैं, अत्याचारी की स्वेच्छाचारिता है और यह सब तुम्हारे दयामय परमेश्वर की इच्छा से—उस के न्याय से।'

इसी प्रकार राजनैतिक निबंधो में प्राय: विवादों की कथात्मक शैली अपनाई गई है और राजनैतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक समस्याओं का विवेचन व्यंग्य-विनोद की छटा के साथ किया है। वातावरण और

मानसिक स्थिति का चित्रण सजीव रूप में किया है। भाव-प्रतिमाओं की मृदुल और तीखी झांकियाँ दिखाने में उनकी कल्पना-शक्ति अद्‌भुत है। क्रोचे इसी शक्ति को कला मानते हैं--"The origin of art lies in the power of forming images."

यही कारण है कि उनके विवादग्रस्त लेख भी अपनी जटिलता और कटुता को मनोरंजन और विनोद द्वारा मुखर किये रहते हैं। उनके निबन्धों के शीर्षक भी अपनी निराली फबन से पाठक का मन मोह लेते हैं। जैसे मज़हब का मुलम्मा, भगवान के कारिंदे, सत्याग्रह का ठेका, रामराज की पुड़िया, समाज का चौखटा चर्रा रहा है, गांधीवाद की शव-परीक्षा आदि। व्यंग्य-विनोद की कला का उत्तम रूप 'चक्कर क्लब' के परिचय में दीख पड़ता है।

यशपाल के व्यंग्य-विनोद की कला पर रूसी साहित्य का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। आधुनिक रूसी साहित्य में प्रायः व्यंग्यात्मक शैली में पुरातन और रूढ़िवादी जर्जर विचारधारा पर नवीन विचारधारा की विजय दिखाने का प्रयास किया जाता रहा है। पतनोन्मुख खोखले व्यक्तिवाद को चुनौती देने में उन्होंने मृदुल विनोद और तीव्र व्यंग्य का खूब उपयोग किया है।

हरजन महोदय ने लिखा है--हास्य रस कोई मामूली दिल्लगी की वस्तु नहीं; हमें इसका भली भांति उपयोग करना चाहिये।

गोगोल (Gogol) शेद्रिन (Schchedrin) चेखोव (Chekhov) मयाकोवस्की (Mayakovsky) आदि साहित्यकारों ने जनता के व्यवहार और परम्परा की त्रुटियों को निर्भीकता से सुधारने, दंभी और कपटी व्यक्तियों की पोल खोलने और समाजवादी चेतना को उभारने में साहस और जोश दिखाया है। वे सच्ची लगन के साथ अपने साम्यवादी विचारों का प्रचार करके उदास मानवता को आशावादी आश्वासन देने में प्रयत्नशील रहे हैं।

जसलावस्की (D-Zaslavsky) ने लिखा है— 'रूसी हास-परिहास का स्रोत लोक-विनोद ही है। लोग अपने दुश्मन पर चुटीली हँसी हँसते हैं। जब उन्हें अपने हाथों के रचना-कौशल की सफलता का विचार आता है वे खुशी में मस्त हो जाते हैं। उनके हास-परिहास में जीवन की विपुल शक्ति की बाढ़ सी भरी होती है।'

श्री यशपाल के व्यंग्य-साहित्य में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार; व्यक्तिवाद; पूंजीवाद और रूढ़िवाद का खण्डन; निराशा, विवशता और कंगाली से तीव्र घृणा; तंग, कृत्रिम और पीड़ाजनक परिस्थिति से असंतोष सबल कल्पना और विपुल शक्ति के साथ अंकित है। उनकी विधायक प्रतिभा ने स्वाभाविकता और सहानुभूति का सदा ही साथ दिया है। उनकी आत्मीयता सदा ही प्रखर और उज्वल बनी रहती है। रूसी प्रभाव को आत्मसात् कर उन्होंने हिन्दी में प्राणवान साहित्य का सृजन किया है।

मार्क्स, लेनन, चेखोव, टॉलस्टाय, और तुर्गनेव की प्रगतिशील तर्कशैली के बहुत से उपकरण श्री यशपाल के साहित्य में मिलते हैं; किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि वे अपने आरम्भिक जीवन में स्वामी दयानंद के सत्यार्थ प्रकाश का गंभीर अध्ययन करते रहे हैं। जीवन में दृष्टांत और प्रश्नोत्तरी शैली उन्होंने वहीं से अचेत रूप से अपना ली थी। वे संस्कृत की सूक्तियां भी कभी-कभी उसी शैली में दे जाते हैं।

वे पक्के कामरेड हैं। विचारधारा मार्क्सवादी है, परन्तु बातचीत में दाव-पेंच से नहीं, कठोर सत्य के रूप में निर्णयात्मक बात कहना चाहते हैं। इसका क्या इलाज कि कई लोग उनकी कठोर उक्तियों और गहरे मजाक से बदहवास और भौचक्के होकर उन्हें सदा ही सशस्त्र क्रांतिकारी के रूप में ही याद करते हैं।

कला-पक्ष में यशपाल जी के पास बहुत कुछ है। इस बुद्धिवादी युग में उन जैसी उत्कृष्ट गद्य-कला थोड़े से उच्चकोटि के लेखकों में ही दिखाई देती है। व्यंग्य-विनोद के निबन्धों में काव्यमय चित्रों के निर्माण का अवसर बहुत कम हुआ करता है, किन्तु उनका भावुक हृदय अपनी कोमल कांति दिखा गया है–

> 'आज प्रशस्त विशाल प्रासादों में गवाक्ष से आती हुई वर्षा की महीन-महीन फुहार, सामने क्षीणकटि कसी हुई अँगिया में जोवन दबाये, मेंहदी से चित्रित दो उंगलियों से घूंघट का कोना उठा, कान तक फैले नयनों में मुस्कराहट भर बाण छोड़ती हुई नायिकायें कहां?'
>
> [चक्कर क्लब पृ० ८

> 'इन्सान का कौतूहल न माना। इसने इतिहास की धुंधली दूरबीन उठाकर भूत की क्षीण पगडण्डी की ओर देखना शुरू कर दिया और क्या देखा?'
>
> [न्याय का संघर्ष, पृ० २५

उपमा को अलंकार शास्त्र की जान माना जाता है। यशपाल जी की रचनाओं में अछूती उपमाओं का प्रयोग उनकी व्यंग्य-शैली के लिये बहुत सहायक सिद्ध हुआ है:—

> 'रेडियो के समीप खड़ी थी प्याज की गाँठ की तरह अनेक छिलकों में लिपट कर रहने वाली एक युवती।'

> 'कामरेड अपनी वर्दाश्त से अधिक सुन चुके थे। भाड़ के चने की तरह चटख कर उन्होंने उत्तर दिया।'

> 'दार्शनिक गंजी मुर्गी की सी अपनी गर्दन उठा तत्परता से उनकी बात सुन रहे थे और बात हाथ में आते ही ऐसे झपटे जैसे मुर्गी किसी भी वस्तु पर झपट पड़ती है।'

व्यंग्यकार यशपाल निर्णयात्मक बात कहते कहते बहुत जगह दार्शनिकता की सीमा तक पहुँच गए हैं। उनके कई वाक्य सुन्दर सूक्तियों और लोकोक्तियों का स्थान सहज ही पा सकते हैं।

> 'साहित्य के भोजन में हाज़मे के लिये निरी चटनी ही नहीं कुछ पेट भरने की भी बात हो।'

> 'समाज क्या है? स्थूल रूप में समाज है–हमारे सम्मिलित जीवन का क्रम।'
> 'पूंजीवाद पर्देदार चोरी है।"
> 'श्रम ही वास्तव धन है।'
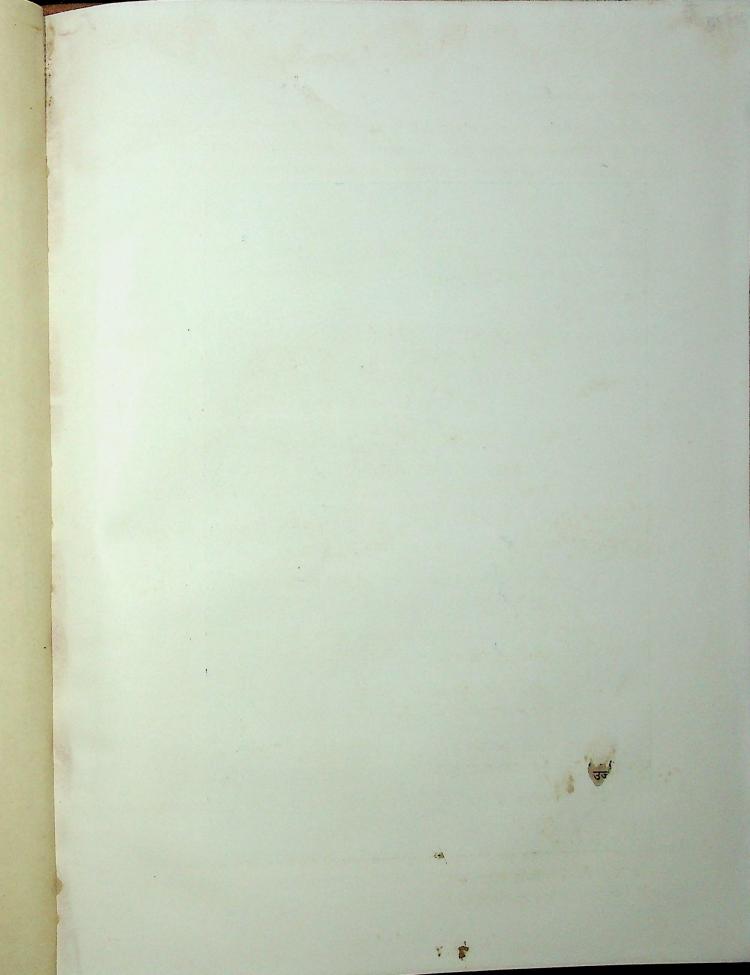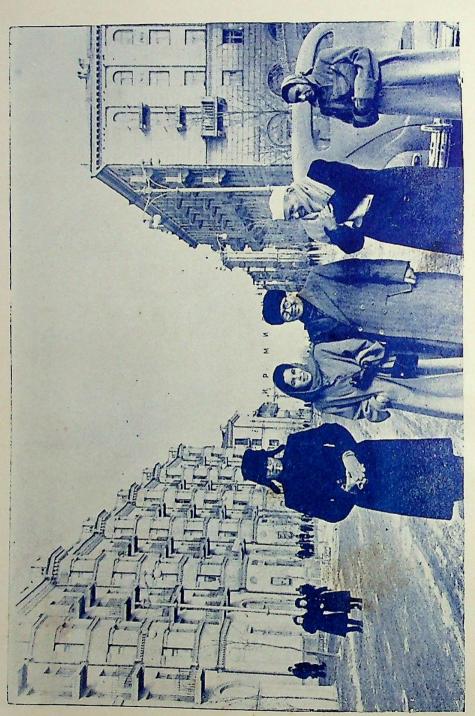
विश्वशान्ति कांग्रेस वियाना के भारतीय प्रतिनिधियों में से—यशपाल, गीता मल्लिक, पूर्णचन्द्र जोशी,
शाह और हाजरा बेगम मास्को की एक सड़क पर

'फल जमीन का नहीं, मेहनत का है।'
'रुपया ही वह डोरी है जो तोप, बन्दूक ग्रौर तलवार को चलाती है।'
'हमारे समाज में ग्रौरत की स्थिति पुरुष को रिझा सकने की शक्ति पर निर्भर करती है।'
'जेल समाज के शरीर में फोड़े हैं।'

यशपाल जी की रचनाग्रों में हमें उनका चुटीला व्यंग्य ग्रनेक रूपों में चमकता दिखाई देता है। कहीं वह ग्रपनी व्यंग्य-दृष्टि सामान्य ग्रौचित्य से भ्रष्ट होने की स्थिति में करते हैं तो कहीं स्थान या देश-विशेष की विशिष्ट स्थिति के कारण उद्भूत कल्पना के रूप में। बेमेल बातों ग्रौर पैरोडी द्वारा भी वह हास्य का वातावरण पैदा कर देते हैं। उनके इन पैंने व्यंग्यों से उनके ग्रपने प्रियपात्र कामरेड भी नहीं बच पाये। यहाँ कुछ एक उदाहरणों द्वारा उनकी बहुमुखी व्यंग्य-शैली की एक झलक मात्र ग्रपेक्षित है।

(क) सामान्य ग्रौचित्य से भ्रष्ट होने के कारण हास्यास्पद परिस्थितियाँ:--

"ग्रपनी सम्पत्ति को पीटने में कुछ बुराई नहीं। पुराने समय में रूस में जब बाप पति (दूल्हा) को लड़की सौंपता था, तो एक हंटर भी वक्त जरूरत के लिए साथ दे देता था"।

(ख) ठीक समय ग्रौर स्थान से च्युत होन के कारण हास्यास्द विषय:-

"ग्रौर की बात छोड़िये, ग्रफ्रीदियों के मौलाना लोगों का ही फतवा है कि रेडियो, शैतान की ताकत ग्रौर ग्रावाज़ है।"

(ग) बेमेल बातों द्वारा हास्य का वातावरण :—

"इतिहासज्ञ--परन्तु यह पहचान जो ग्रापने बताई है कि हम में ग्रौर ग्राप में जो कुछ बोलता है, वह ग्रात्मा है। कुत्ते-बिल्ली में जो कुछ बोलता है, वह ग्रात्मा है तो रेल के इंजन में कौन बोलता है ?"

(घ) पैरोडी--किसी की उक्ति को फेर बदल कर प्रयुक्त करना या उसी की धारणा पर नयी व्यंग्यात्मक उक्ति गढ़ना :--

"शोषक श्रेणी के प्रतिनिधि ऋषि यह उपदेश तो दे गये कि---

'मा गृधः कस्यचिद्धनम्'

परन्तु यह नहीं कहा कि-

'मागृधः कास्यचिद्-श्रमम्'

क्योंकि श्रम वे करते नहीं थे। कोई उनका श्रम क्या लेता। इससे भी ग्रधिक चतुरता उन्होंने यह की कि जनता को समझाया—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।'

ग्रर्थात् तुम मेहनत करते जाग्रो, इस बात की चिन्ता न करो कि फल मिलता है या नहीं। कारण यह कि कर्म का फल तो वे स्वयं खा लेना चाहते थे।

[बात बात में बात, पृ० ४१

भाषा-पक्ष में श्री यशपाल बहुत सफल रहे हैं। वे भाषा की सरलता के पक्षपाती हैं। उन्हींके शब्दों में—"बात का पूरा असर इसके सीधेपन में है। यही बात क्लिष्ट शब्दों में कहिये, वह बात नहीं आयगी।"

रूखे फीके और जटिल सिद्धान्तों का सार बहुत सरल और सादा शब्दों में कह देने में वह सिद्धहस्त हैं———

'अगर मुलम्मा की हुई चीज़, बाज़ार में सोने के दाम बेच देना चोरी है, तो जो माल जितनी लागत और मेहनत से बना है, उससे ज्यादा दाम वसूल कर लेना क्या चोरी नहीं।' [न्याय का संघर्ष, पृ० ६१

'बात बात में जब बात पक्की हो जाती है तो वह 'वाद' का रूप ले लेती है। पण्डितों की भाषा में उसे 'वाद' कहते हैं। बात के दो छोर होते हैं, एक आरम्भ का दूसरा अन्त का। जब बात फैल जाती है तो उसके आदि-अंत में द्वन्द्व होने लगता है, इससे नयी बात या नया ज्ञान पैदा होता है। ज्ञानी लोग बात से नहीं घबराते, उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं।' [बात बात में बात, पृ० ६

इस प्रकार सरल भाषा व्यंग्य-विनोद से सदा मुखर रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि बातचीत सामने हो रही है। इस प्रकार वे पाठक के मन में अपने भाव और विचार ऐसी आत्मीयता के साथ बिठा देते हैं जैसे ये उसके अपने विचार हों। वाक्य छोटे किन्तु, प्रभावशाली, शब्द सरल किन्तु नपे-तुले, रूप रंग और नाद की प्रतिमाएँ खड़ी कर देने वाले। श्री यशपाल की कला का दूसरा नाम सरलता है। वही सरलता जिसके सम्बन्ध में वाल्ट व्हिटमैन ने कहा है–"कला की पराकाष्ठा अभिव्यक्ति की रमणीयता और साहित्यिक प्रकाश की झलक सादगी ही है।"

अपनी रचना में वह जहाँ कहीं ऐसा शब्द देख पाते हैं, जो पाठक के लिए कठिन हो, उसका अर्थ कोष्ठकों में दे देते हैं। 'दिव्या' उपन्यास में बौद्धकालीन शब्दावली अधिक आ गई थी। आज की भाषा का विचार करके उन्होंने इन संस्कृत शब्दों की अर्थावली अंत में दे दी है।

लखनऊ के वातावरण ने यशपाल की भाषा को सरल उर्दू शब्दों से सजीव बनाया है, जैसे "मकान मालिक के मुन्शी की आंखों में कुछ अदब है। रूखे उत्तर के बजाय तफ़सील देने की तकलीफ़ गवारा करते हैं।"

श्री जैनेन्द्र कुमार ने लिखा है——"यशपाल संस्कृत के शब्दों को पंजाबी लिबास में पेश करेंगे तो संस्कृत की कितनी भी दुहाई देने से पाठकों का चाव उनके प्रति कम न होगा।" यह ठीक है कि जन भाषा की तद्भव प्रवृत्ति के कारण उन्होंने तत्सम शब्दों का प्रयोग कम किया है किन्तु पंजाबी लिबास वाले संस्कृत शब्द मुझे नहीं मिले।

काम की पूर्णता पर जोर डालने के लिए प्रायः दोहरी क्रियाएँ लगाई जाती हैं जैसे चल दिया, गिर पड़ा, मर मिटा, छपा लिया आदि। श्री यशपाल जी का मन पूर्णता की ओर इतनी तेज़ी से भागता है कि कहीं-कहीं तो चार-चार क्रिया-शब्द इकट्ठे जुड़ जाते हैं।

हर बड़े साहित्यकार की भांति श्री यशपाल जी ने कुछ नए शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग किया है। इनके द्वारा वह प्रायः व्यंग्यविनोद की भावना में रंग भरा करते हैं:— विप्लवी ट्रैक्ट, बेकार ऐण्ड कम्पनी लिमिटेड, चक्कर क्लब, सम्मानित बेकार या बिश्वस्त बेकार, एण्ड कम्पनी या सहायक, बातवीर बेकार वीरों का हवाई संगठन, आध्यात्मिक प्रेम, नपुंसक प्रेम, चर्खा मारका भगवान, बी० ए०, एम०ए० पति फँसाने का लेबल, साड़ी–गाड़ी समाज, वजनी गाली; पिंजरा नुमा बैरक आदि।

उत्तम व्यक्तित्व के सम्बन्ध में एक चीनी लेखक ने इन तीन उपकरणों के सुन्दर समन्वय का उल्लेख किया है—स्वप्न दर्शन, यथार्थ की खोज और हास्य की अनुभूति। सौभाग्य से हमारे यशपाल जी में ये तीनों उपकरण विद्यमान हैं। उनका व्यक्तित्व सहज ही उत्तम और आकर्षक प्रतीत होता है। उन्होंने जीवन की व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत इसे बदल देने का निरंतर प्रयास किया है; जर्जर और खोखली नैतिकता पर हास-परिहास करके समाज के यथार्थ की आर्थिक और राजनैतिक खोज करके उन्होंने सबल और सम्पन्न मानवता के स्वप्न देखे हैं।

वह आडम्बर-हीन, शोषण-हीन, पुष्ट, बलिष्ठ और प्रसन्न मानवता का समाजवादी विकास देखना चाहते हैं। वह अपने समय के आत्मविस्मृत समाज को झंझोड़-झकझोर कर, इसे जागृति और क्रांति की ओर लाने का कठिन परिश्रम करते रहे हैं। दासता पराधीनता, और दरिद्रता को मिटा कर वह स्वतंत्रता और प्रगति का वातावरण उत्पन्न करना चाहते ह। इस स्वप्न को साकार रूप देने के लिए जवानी ने उन्हें पिस्तौल चलाना सिखाया था। जब एक-एक करके साथी बिछड़ गए और गोलियां खत्म हो गईं और इन सब चीज़ों की आवश्यकता भी न रही तो उन्होंने अपनी लेखनी की नोक से अपने यथार्थ को अंकित करने की साधना की। 'विप्लव' कार्यालय खोल दिया गया।

उनकी सशक्त वाणी में क्षात्र वीरता, प्रगतिवादी विचारधारा में तर्कशीलता और व्यंग्यात्मक शैली में करुणा की तीखी मार्मिकता सदैव हुआ करती है। सामाजिक 'सत्यम्' को ही उन्होंने 'सुन्दरम्' का रूप देने की चेष्टा की है, परन्तु उनका सत्य अतीत का पक्ष न लेकर वर्तमान से ही अतिरंजित रहता है। जहां कहीं वे अपने व्यंग्य की आंच तेज होती देखते हैं, वहां हास्य की बर्फ रख देते हैं। जनता को साथ लेकर वे प्रगति करना चाहते हैं।

पुराने समय में बाबू बालमुकुन्द गुप्त निर्भीकता के साथ राजसत्ता के विरुद्ध नोकदार, चुभते लेख लिखते रहे थे, किन्तु उनका द्वन्द्व अस्पष्ट था। श्री यशपाल जी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, आधुनिक कला-कौशल की गंभीरता रखते हैं। अंग्रेज व्यंग्यकार स्विफ्ट की प्रतिभा से इनकी प्रतिभा की तुलना की जा सकती है। अंतर केवल इतना है कि स्विफ्ट महोदय किसी राजनैतिक दल के प्रचार से बेलाग थे जबकि यशपाल साहित्य को सभी प्रकार के प्रचार का साधन मानते हैं।

श्री यशपाल की रचना-शैली में ऐसे अनेक नश्तर छिपे रहते हैं जो फूलदार रेशमी आवरण में से गंभीर घाव कर सकते हैं। निस्संदेह वे इस युग के महान व्यंग्यकार हैं।

सीताराम बाहरी

मोगा

यशपाल और प्रकृति

सृष्टि के आदि न ही मानव ने जब अपनी सौन्दर्य-दर्शक आँख उघाड़ कर देखा था प्रकृति का स बन्ध तो उसी दिन उससे हो गया था। खिली हुई चाँदनी रातों में नदी की कलकल -छलछल धारा में पड़ रहे प्रतिबिम्ब को देख कर उसके हृदय का उल्लास साकार रूप में नाच उठा था । प्रातःकाल में उषा के रंगीन घूंघट में छिपे प्रकृति के सौन्दर्य को देखने के लिए मानव ऋषियों का स्वर लेकर मान-मनुहार करता सा उसके गीत गाने लगा था । सहृदय मानव ने प्रकृति को चेतन रूप में माना है । कृति के इस रूप को न देखने वालों की दृष्टि में भले ही जड़ हो परन्तु कलाकार का हृदय प्रसा के शब्दों में पुकार उठेगा —

नीचे जल था ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन
एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन ।

केवल एक प्रसाद ही क्या संस्कृत से लेकर अन्य सभी भाषाओं के कवियों और कलाकारों ने प्रकृति का गुणगान किया है । कालिदास का यक्ष मेघ दूत बन कर उसकी प्रिया के पास जिन-जिन मार्गों से होकर चलता है वह सभी कुछ एक कलाकार के हृदय की ही तो ध्वनि है । अंग्रेज़ी का कवि वर्डस्वर्थ ने तो प्रकृति के उस सौन्दर्य को–जहाँ सागर ने चाँदनी में अपना कक्ष नंगा कर दिया है और उठती हुई लहरें चाँद को मिलने का बुलावा दे रही हैं—न देखने वालों को ताना दिया है । इस भौतिक चक्कर में पड़े इन्सान को कोसा है , यह सब हृदय की ही तो बात है ।

यशपाल ने अपनी कलाकार की आँखों से प्रकृति के जिस सौंदर्य के दर्शन किए हैं और जिस तरह उसमें मानवता का आरोप किया है वह सभी कुछ उन्हें पुरानी चली आ रही परम्परा की माला में एक मोती का रूप दे देता है । यद्यपि कालिदास, भास, व्यास या प्रसाद और पन्त की दृष्टि में भी प्रकृति साकार रूप लेकर हँसी-गाई है, परन्तु उनमें सामन्ती युग से लेकर छायावादी युग तक की परि-स्थितियों के स्वर ही प्रधान हैं, परन्तु साहित्यिक क्रांतिकारी यशपाल के स्वरों में प्रकृति कुछ दूसरे ही स्वरों में मुखरित हुई है । वह मानव की सौन्दर्य-पिपासा शान्त करने का ही साधन नहीं है, अपितु मानव के उद्योग की ओर उसके उपयोग की पुकार करती है । यशपाल के जन्मतः पहाड़ी होने के कारण प्रकृति के प्रति आकर्षण स्वाभाविक ही है । उन्हें यदि नैनीताल से प्रेम है तो केवल इसलिए नहीं कि वहाँ प्रकृति अपना

नग्न सौन्दर्य लिए हुए है अपितु इसलिए कि वहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ मनुष्य-निर्मित वैभव का भी मेल है। उन्हें कुल्लू इसलिए आकर्षक लगता है कि वहाँ सरलता और सादगी लिए मानव की मानवता बसती है।

यशपाल का कलाकार हृदय प्रकृति को किन-किन रूपों में देखता है और किन किन रूपों में और किस तरह की उपमाओं से चित्रित करता है, यह तनिक ध्यान से देखने की ही बात है — उन्हीं की लेखनी के स्वर में सुनने की वस्तु है —

"नैनीताल की उपमा हिन्दु विवाह के लिए खूब सुसज्जित मण्डप से दी जा सकती है, बीच में धुएँ जैसे कोहरे के बादल उड़ाती झील को हवनकुण्ड समझ लीजिए। चारों ओर घनी हरियावल की सजावट से पटी पहाड़ियाँ। स्त्री-पुरुष सभी उत्सव के समय अच्छे से अच्छे कपड़े पहने हुए। पुलक और किलक भरी चहल-पहल, विवाह के उत्सव में योग देने वाले पुलकते-किलक लोगोंतें के समूह के चारों ओर कामकाजियों की भीड़।"

यशपाल की पैनी दृष्टि इस प्राकृतिक रूप में भी समाज के उन दोनों भागों की ओर स्पष्ट इशारा करती है जहाँ एक ओर झूठी दया दिखाने के बहाने उदार और दानी बने रहने की प्रबल प्रवंचना है और दूसरी ओर उसी झूठी दया को पाकर अपना जर्जर जीवन चलाए रखने का आत्मसंतोष झलक पाता है।

यशपाल ने प्रकृति में मानव का समन्वय करके देखा है, उनकी दृष्टि प्रकृति के सुन्दर-असुन्दर रूप की ओर खिंची है। कहीं-कहीं तो प्रकृति-चित्रण में एक तीखा व्यंग्य अज्ञात विवशताओं की पिटारी में बंद सांप सा मानव हृदय की छूह पा-कर फुफकारता सा झलकता है। ऐसे वाक्यों में एक मानव के नाते यशपाल का हृदय बोलता-सा प्रतीत होता है—

"सड़कों और आँगनों में लगाए फूल-पौधे आकाश से प्राप्त नाइट्रोज़न-मिले जल से सिंचित रहने के कारण साधारण आकार से बड़े और भव्य! जैसे सुख—सुविधा और चौकसी में पले समृद्ध श्रेणी के बालक हों... ज़रा बादल फटे कि ......स्वच्छ सड़कों पर, इन्द्रधनुषों के टुकड़ों के रूप में रमणियाँ और 'भले' आदमी बिखर जाते हैं।" ये भले आदमी कौन हैं। वे ही तो समाज का रक्त चूस रहे हैं एक जोंक बन कर, इसलिए कि उनकी सुख-सुविधाएँ बनी रह सकें।"

यशपाल को नैनीताल में आती-जाती धूप किसी नारी के लिपस्टिक-लगे ओठों के बीच मोती जैसे दाँतों की हँसी और कजरारे नयनों से अट्टहास करती युवती सी प्रतीत होती है, और उसके साथ ही आकाश पर छाई श्यामलता और रिमझिम भी संतोष देती है, वह इस लिए कि उन्हें किसी रूपवती के प्रणय में मान की झलक दिखाई पड़ती है। उन्हे बादलों से ढका मुंह फुलाए मानिनी—सा नैनीताल गम्भीर लगता है, और कलाकार यशपाल का हृदय उसकी गम्भीरता में खो जाना चाहता है, और उस गम्भीरता में उसे दिखाई पड़ते हैं वे लोग जो प्रकृति-पुत्र कहला कर भी दास हैं, शोषित हैं, । वे वहाँ भी प्राकृतिक स्थलों में रोचक और शोषक दोनों रूप देख पाए हैं।

यशपाल ने प्रकृति को एक वैज्ञानिक मस्तिष्क से देखा है। उनकी दृष्टि में वह केवल धनी-मानी या 'भले' कहे जाने वाले लोगों के प्रसाधन का ही नहीं अपितु मानव मात्र के कल्याण का शक्तिशाली साधन है। वे ऊँचे उठे पर्वत और उन पर उत्पन्न वनस्पतियों को देख कर ही प्रसन्न होने में सन्तोष नहीं करते, बल्कि उनका उपयोग चाहते हैं मानव के लिए—उसके कल्याण के लिए।

पटियाला

अमरनाथ शर्मा 'कौशल'

निबन्धकार यशपाल

'समाज और साहित्य परस्पर सापेक्ष हैं-इस सिद्धान्त-वाक्य पर अतीत और वर्त्तमान के प्रायः सभी विवेचक सहमत रहे हैं; किन्तु फिर भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि उक्त धारणा के अनुयायी साहित्यकारों द्वारा ही 'स्वान्तः सुखाय' की बात भी जब-तब कही जाती रही है। समन्वयवादी विवेचक 'स्वान्तः सुखाय' में ही 'समाज हिताय' का भी सामंजस्य कर डालें तो भी प्रत्येक भाषा में घोर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से लिखा गया साहित्य पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध होगा जिसे 'स्वान्तः सुखाय' के शाब्दिक अर्थों के अनुरूप मान लेने में, मेरे विचार से कोई संकोच होना नहीं चाहिये। जो है उसे वैसा मान लेना तथ्य-स्वीकृति है। व्यक्तिवादी साहित्य के विपरीत साहित्य-सम्बन्धी एक नवीनतम मान्यता है जिसे केवल इसीलिये नवीनतम कहा जा सकता है कि इस पर खुले तौर पर सर्वांशतः बल आजकल दिया जाने लगा है। इसके अनुसार अन्यान्य कलाओं की भाँति साहित्य का उद्देश्य भी जीवन में माधुर्य की सृष्टि करना है। किन्तु इसके लिये—माधुर्य की अनुभूति के लिये—आवश्यक है जीवन 'साँस भर ले सकना' न होकर ऐसा जीवन हो जिसमें मानवोचित विकास के सभी साधन उपलब्ध हों और फलतः ऐसा जीवन जीने वाले समाज का निर्माण किया जाए। केवल व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से रचा गया साहित्य तो ऐसे समाज-निर्माण के संघर्ष से घबराकर भागे साहित्यकार के 'पलायनवाद' का प्रतीक है। अतएव सच्चे साहित्यकार को सुखी मानव-समाज के निर्माण के लिये भौतिक सुख की प्रेरणा देते हुए, पथ के विघ्न-रूप रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास, दम्भ-पाखण्ड आदि का यथावसर खण्डन करते हुए अग्रसर रहना चाहिये। 'सर्वजनहिताय' की कल्पना लेकर फिलहाल 'बहुजन हिताय' की जिस विचार-धारा को उसने सामाजिक कल्याण का एकमात्र उपाय माना है, साहित्य द्वारा उसे उसी विचार धारा को मुखरित करना चाहिये। दूसरे शब्दों में बुद्धि द्वारा की गई मानव-कल्याण -चिन्ता को उसे साहित्य द्वारा लोगों के दिलों तक पहुँचाना चाहिये। साहित्य-सम्बन्धी इस मान्यता को लेकर चलने वाले जिन लेखकों को आज भारत में प्रगतिशील साहित्यकार कहा जाता है, उनमें प्रख्यात उपन्यासकार, लोकप्रिय कहानी-लेखक तथा समाजवादी विचारधारा के प्रबल प्रचारक श्री यशपाल का स्थान सर्वप्रमुख है। साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों और परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों में उपयुक्त स्थान न पाने पर भी आज यशपाल और उनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य के लिये गर्व और गौरव का विषय हैं।

अब तक श्री यशपाल ने ३४ रचनाएँ हिन्दी-साहित्य को दी हैं जिसमें बारह कहानी-संग्रह, छः उपन्यास, एक नाटक, तीन हिस्सों में आत्मकथा, चार अनुवाद और आठ निबन्ध-संग्रह हैं। निस्सन्देह कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में यशपाल का स्थान आज बहुत ऊँचा है किन्तु मेरे विचार से यशपाल-बुद्धिवादी यशपाल-को समझने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त हैं उनकी निबन्ध-रचनाएँ! क्योंकि यशपाल मूलतः बुद्धिवादी हैं। बचपन में आर्यसमाज के तर्कप्रधान वातावरण में शिक्षा पाए नवयुवक यशपाल का अपनी बुद्धि द्वारा 'स्वराज्य-प्राप्ति' का क्रान्ति-मार्ग अपनाना और आज के भारत में स्वातन्त्र्य-संघर्ष के लिये की गई अपनी कुर्बानियों के लिये पुरस्कार-प्राप्ति की कामना न करते हुए अपने दृष्टिकोण से समाज के लिये कल्याणकारी विचारधारा का प्रबल प्रचारक होना-यशपाल के मूलतः बुद्धिवादी होने का प्रमाण दे रहा है। यशपाल ने कहानियाँ-उपन्यास लिखे हैं किन्तु वे अपने इस बुद्धिवाद को कहीं भी भुला नहीं पाए। निबन्धों में तो उनका यह वास्तविक रूप बिल्कुल स्पष्ट ही है क्योंकि बुद्धि-विलास को जितना उपयुक्त विकास साहित्य की इस विधा में मिलता है वह अन्यत्र नहीं। प्रस्तुत लेख का विवेचन-विषय भी श्री यशपाल का यही रूप है।

मोटे तौर पर यशपाल के निबन्ध-साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक भाग में उनकी वे रचनाएँ हैं जिनमें उनका शुद्ध सैद्धान्तिक रूप सामने आया है। जिस विचार-धारा या वाद-विशेष के वे प्रवक्ता हैं, उसका समर्थन करते हुए उन्होंने प्रतिद्वन्द्वी विचार धाराओं पर खुले रूप में बौद्धिक आक्रमण किया है और उनकी चीरफाड़ की है। दूसरी प्रकार की निबन्ध-रचनाएँ वे हैं जिनमें यशपाल ने अपनी विचारधारा का प्रतिपादन किया तो है किन्तु शैली के संवादात्मक, संस्मरणात्मक या आपबीती होने के कारण उसमें निरी बौद्धिकता तथा राजनैतिक कटुता नहीं। इसके विपरीत पात्रों और स्थानों के रोचक चित्रण आदि इन निबन्धों में एक सरसता का संचार किये हैं।

पहले प्रकार की निबन्ध पुस्तकों को लें तो 'रामराज्य की कथा' तथा 'शोषक श्रेणी के प्रपंच या 'गान्धीवाद की शवपरीक्षा' ये दो पुस्तकें साहित्यिक और राजनैतिक क्षेत्र में भारी अनुकूल एवं प्रतिकूल आलोचना का विषय रही हैं। दोनों रचनाएँ श्री यशपाल की कम्यूनिस्ट विचारधारा की प्रतीक हैं।

यशपाल ने गान्धी जी के सत्य अहिंसा जैसे सिद्धान्तों से अपना मतभेद प्रकट किया है। गान्धी जी अहिंसा को एक शाश्वत सत्य मानते थे किन्तु यशपाल उसे केवल एक सामाजिक धारणा के रूप में स्वीकार करते हैं। इसी भाँति गांधी जी की ईश्वर, ईश्वरीय प्रेरणा, आध्यात्मिकता से लेकर घरेलू उद्योग-धन्धों के पुनर्विकास तथा विकेन्द्रीकरणतक सभी बातों की आलोचना यशपाल की इन निबन्ध-रचनाओं में हैं। यशपाल ने समाजवाद, औद्योगीकरण तथा केन्द्रीकरण का ज़ोरदार समर्थन किया है।यशपाल के तर्क और गान्धी-दर्शन के व्यापक प्रभाव वर्ग-संघर्ष, को देखते हुए प्रस्तुत विश्लेषण के सम्बन्ध में ऐकमत्य संभव नहीं किन्तु फिर भी यह बात निस्संकोच स्वीकार करनी होगी कि जिस विचारधारा या वाद-विशेष के यशपाल प्रवक्ता हैं, उसे उन्होंने सबल रूप में प्रस्तुत किया है। वैसे गान्धी जी के सिद्धान्तों के सामयिक उपयोग को यशपाल ने यथास्थान स्वीकार किया है। यशपाल ने स्वीकार किया है कि गान्धी जी ने स्वातन्त्र्य-आन्दोलन को सार्वजनिक आन्दोलन बनाया और निष्क्रिय विरोध के रूप में गान्धी जी की देन जनता को नैतिक बल देने के लिये ठीक थी। किन्तु

यशपाल का आग्रह है कि इसे नीति-नैतिकता कहा जाय शाश्वत सिद्धान्त नहीं। गान्धी जी इन्हें नैतिकता मानते थे, सत्य और अहिंसा को बहुत ऊँचा स्थान देते थे अतएव श्री यशपाल गान्धी जी तथा गान्धीवाद के सम्बन्ध में कई ऐसे निष्कर्ष निकालने की ओर प्रवृत्त हुए हैं, जिनसे भारत के सभी बुद्धिवादियों की सहमति संभव नहीं। इसी सम्बन्ध में यशपाल की तीसरी रचना है उनका 'मार्क्सवाद' नामक पुस्तक जिससे हिन्दी-पाठकों को मार्क्सवाद का ज्ञान प्राप्त करने में पर्याप्त सहायता मिलती है। प्रस्तुत पुस्तक में यशपाल का एक विवेचक का रूप ही अधिक प्रकट हुआ है, खण्डन की वह कटुता और तीखापन इसमें नहीं। 'मार्क्सवाद' में लेखक ने समाजवादी विचारों का क्रमिक विकास दिखलाते हुए 'मार्क्सवाद' का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद की आर्थिक विषमता के प्रतिरोध के लिये विभिन्न देशों में पैदा हुए फासिज़्म, नाज़ीवाद जैसे वाद-विशेषों का विवेचन कर यशपाल ने समाजवाद को ही मानव-कल्याण का एकमात्र उपाय सिद्ध किया है। लेखक ने 'प्रजातन्त्र समाजवाद' में 'प्रजातन्त्र' विशेषण को भी अनावश्यक बतलाया है क्योंकि यशपाल के विश्वास-अनुसार शोषित श्रेणी का कल्याण राज्य-सत्ता की प्राप्ति के बिना संभव नहीं और इसकी प्राप्ति के लिये वैधानिक क्रान्ति की बात कल्पनामात्र है। लेखक ने गान्धीवाद और समाजवाद का तुलनात्मक विवेचन भी किया है किन्तु यहाँ लेखक का दृष्टिकोण विशुद्ध तुलनात्मक ही रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के सम्बन्ध में स्टॉलिन और ट्राटस्की के मतभेद का विवेचन भी इस रचना में है। मार्क्सवाद के अनुसार मध्यमवर्ग कहा जाने वाला वर्ग भी वस्तुतः शोषित श्रेणी का ही अंग है जो शोषित श्रेणी के लिये प्रायः नेता उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त पूँजीवाद, उसकी उत्पत्ति और विकास, श्रम और उसके महत्व का मार्क्सवादी दृष्टिकोण यशपाल की इस रचना में बहुत ही उपयुक्त रूप में प्रस्तुत हुआ है। सीधी और सरल भाषा में 'मार्क्सवाद' के दार्शनिक एवं आर्थिक सिद्धान्तों के विवेचन की दृष्टि से यशपाल की यह रचना बहुत ही महत्वपूर्ण है।

यशपाल की दूसरी प्रकार की रचनाओं में उनकी अपेक्षाकृत पहली कृति है उनके १६ लेखों का संग्रह 'न्याय का संघर्ष'। आकार की दृष्टि से ये निबन्ध औसत दर्जे के हैं और यशपाल की उस बौद्धिक स्थिति के प्रतीक हैं जब वे समाजवाद के पक्षपाती होते हुए भी गान्धीवाद' के 'शव परीक्षक' कटु आलोचक नहीं थे। तब उनकी आलोचना इस शंका के रूप में थी कि गांधीवाद नवयुग का प्रतीक है या युगान्त का? समाज का चौखटा चर्रा रहा है; स्वराज्य और श्रेणी-समस्या जैसे निबन्धों में उन्होंने समाजवाद की प्रेरणा दी है किन्तु आवेग-रहित सहज शैली में। 'न्याय का संघर्ष' में जीवन का आधार, पढ़ी-लिखी लड़की, नींद नहीं आती, न्याय, नया वर्ष, समाज के शत्रु जैसे कुछ निबन्ध तो ऐसे हैं जो प्रत्यक्ष राजनैतिक प्रचार से स्वच्छन्द रूप में उच्चकोटि के विशुद्ध साहित्यिक निबन्ध कहे जा सकते हैं। 'जीवन का आधार' तो विशुद्ध मनोवैज्ञानिक निबन्ध है। इसी भान्ति न्याय, और 'समाज के शत्रु' आदि निबन्ध कहानी जैसी रोचकता लिये हैं। 'चोरी मत कर' में चुटीले वाक्यों और विद्रूपों का सामंजस्य बहुत ही सजीव है। 'बात बात में बात' और 'चक्कर क्लब' में लेखक ने अपने काल्पनिक पात्रों द्वारा, जो चक्कर क्लब के स्थायी सदस्य हैं, अपनी अनेकपक्षी विचार-धारा का प्रतिपादन किया है। हिन्दुराष्ट्रवादी राष्ट्रीय जी, गान्धीवादी सर्वोदयी, कॉंग्रेसी और शुद्ध साहित्यिक विविध क्षेत्रों में समाजवादी विचार-धारा के विरोधी हैं तो वैज्ञानिक, प्रगतिशील, इतिहासज्ञ, मार्क्सवादी और कामरेड़ समाजवाद के समर्थक हैं। शेष जिज्ञासु, मौजी आदि वाद-विवाद आरम्भ करने के साधन या वाद-विवाद को कोरी दो पार्टियों की राजनैतिक बहस न बनने देकर अपनी
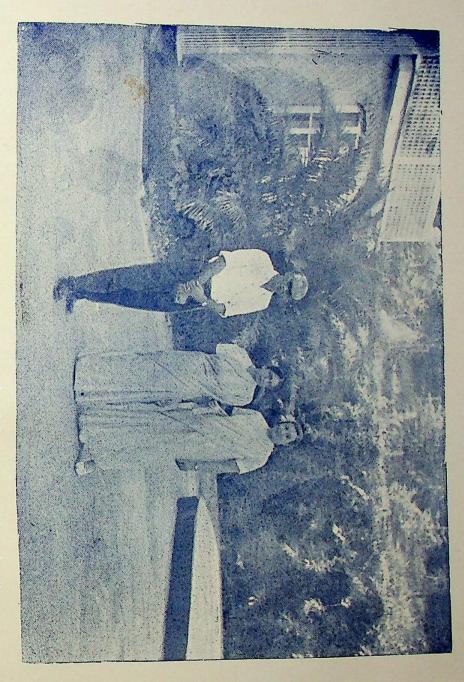
श्री यशपाल और श्रीमती यशपाल कृष्ण सागर के किनारे सूची के सोवियत सैनिटोरियम में रूसी दुभाषिया एलेक्सांडरा (भारतीय वेश में) के साथ।
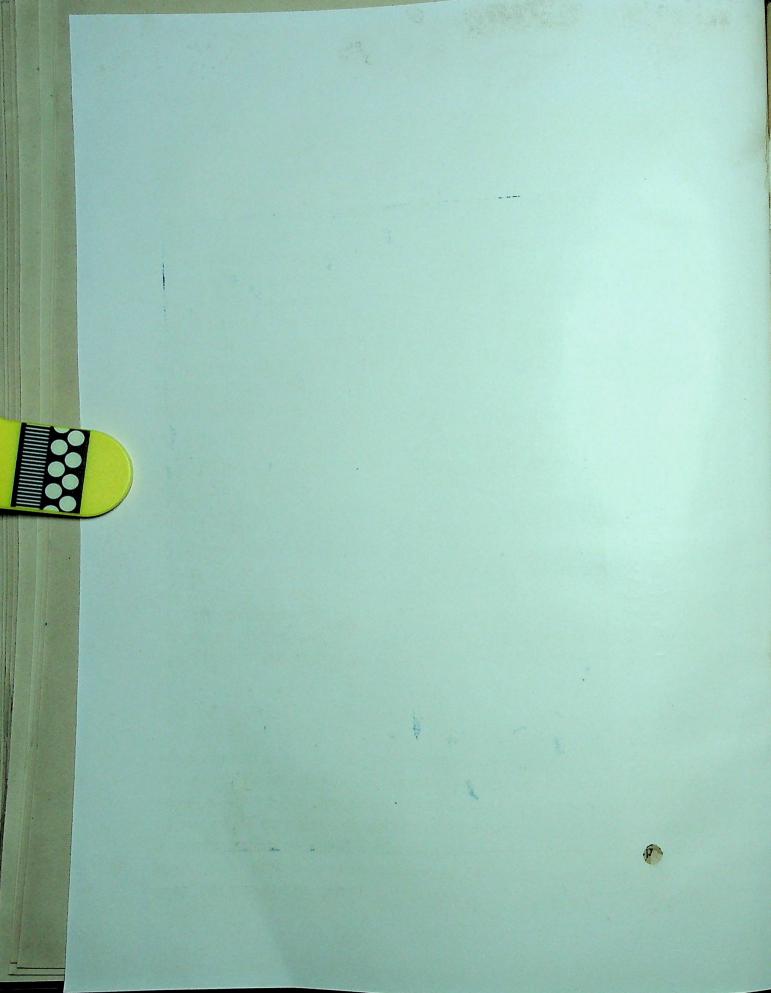
उपस्थिति द्वारा बीच-बीच में स्वाभाविक वातावरण जुटाते रहे हैं। 'बात बात में बात' में ५ विषयों पर वाद-विवाद होता है। 'साहित्य के प्रयोजन और रूप' के विषय में विवाद का सार है कि साहित्य का प्रयोजन केवल सौन्दर्य या आनन्द न होकर जीवन में सौन्दर्य, आनन्द और माधुर्य की अनुभूति जुटाना होना चाहिये ताकि जीवन-सामर्थ्य बढ़े। 'पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफा' और पूँजीवाद की भोग्य महिला समाजवाद की आत्म-निर्भर नारी' में लेखक ने पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफे को श्रम के उचित मूल्य का अपहरण सिद्ध किया है और नारी को सेवा का साधन मात्र माना जाना प्रमाणित किया है। लेखक के मत से यदि वह आत्म-निर्भर, स्वतन्त्र मनुष्य बनकर पुरुष के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर खड़ी होना चाहती है तो उसके लिये मार्क्सवाद का ही मार्ग है। राम-राज और मज़दूर राज की नैतिकता, रामराज का प्रजातंत्र और मज़दूर की तानाशाही में लेखक ने श्रम, उत्पादन, भौतिक संतोष, आत्मिक सन्तोष आदि की दृष्टि से गान्धीवादी दर्शन की आलोचना की है। इसी भाँति 'चक्कर क्लब' में 'चक्कर क्लब' के संविधान का संक्षिप्त वर्णन कर 'साहित्य कला और प्रेम' जैसे साहित्यक, स्त्रियों की स्वतन्त्रता और समान-अधिकार' जैसे सामाजिक तथा रामराज्य की पुड़िया जैसे राजनैतिक विषयों पर 'चक्कर क्लब' के सदस्यों द्वारा वाद-विवाद कराया गया है। यशपाल की निबन्ध-कला यहाँ जगह-जगह अपने अत्यन्त सजीव रूप में प्रकट हुई है। साहित्य कला और प्रेम शीर्षक उनके निबन्ध के आरम्भिक भाग कितने सरस साहित्यक हैं ये नीचे उद्धृत पँक्तियों से भली भाँति स्पष्ट होता है:—

> "कहाँ हैं अब वे ग्राम-वधुएँ, जो उमड़ते-घुमड़ते, ऊदे-ऊदे बदरा की ओर अपने नयना फैला साजन की याद में बेसुध हो जाती थीं? साजन के लौट आने से पहले ही बूँदों से चूनरी-चोखा रंग फीका पड़ने पर जो हाथ उठा बादल को शाप देती थीं? जिनके सरस नयनों से नगर की अट्टालिका और ग्राम के पनघट पर रस बरसता था?
> और आज ?......आज तो वे जार्जेट की डलशेड साड़ी पहिन, कॉलिज की लारी में बैठ साजन-समूह पर बहुत सी धूल और उड़ती-उड़ती नज़र डालती हुई वहाँ जा छिपती हैं जहाँ लोहे के सींखचे-जड़े फाटक पर लिखा रहता है—बगैर इजाज़त भीतर आना माना है।' गागर की जगह उनकी बगल में दबी रहती है छतरी। रुनन-झुनुन करने वाले पायजेब की जगह जिनके पैरों से आती है, ऊँची एड़ी की खट-खट की आवाज़। वह ऊँची एड़ी जिसे बेंध कर कोई भाग्यशाली काँटा उनकी महावर-रंगी एड़ी को चूम नहीं सकता और किसी भाग्यशाली देवर को वह एड़ी छू पाने का अवसर नहीं।

'कवित्व, परिहास और यथार्थ से पूर्ण कितना सजीव कण्ट्रास्ट बन पड़ा है इन पँक्तियों में। 'चक्कर क्लब' के व्युत्पन्नमति पात्रों को सूझती खूब है। वे एक दूसरे पर बढ़-चढ़ कर फब्तियाँ कसते हैं। आध्यात्मिक प्रेम के समर्थक द्वारा आत्मा को 'अजर अमर' बतलाने के लिये गीता का "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः—"कहते ही इतिहासज्ञ तत्काल उसका ट्रांसलेशन कर डालते हैं—"फायर प्रूफ, वाटर प्रूफ, एयर प्रूफ और बुलेट प्रूफ"—साथ ही साथ एक चुटकीली फब्ती भी कसते चलते हैं, "चीज़ तो जबर्दस्त है साहिब, हवाई हमले में विशेष उपयोग होनी चाहिये'–कितने शिष्ट परिहास का वातावरण पैदा किया गया है। इस प्रकार प्रेम के लौकिक तथा आध्यात्मिक रूप, साहित्य और कला आदि का प्रगतिवादी दृष्टिकोण से बहुत ही रोचक बौद्धिक विवेचन किया गया है। 'दरिद्रनारायण की पूजा मत कर' में लेखक ने यह विश्वास ध्वनित किया है कि दान या भीख के रूप में कुछ देना दीन-दरिद्र की सहायता नहीं प्रत्युत उसे इसी अवस्था

में बनाए रखने और उन्हें वर्तमान शोषण-मूलक व्यवस्था को उलट देने से रोके रखने के लिये घूस देना है। 'मनुष्य का आधार या विनाश की सभ्यता' में लेखक ने औद्योगीकरण की जबर्दस्त वकालत की है। बेकारी या शोषण की उत्तरदायी मशीनें नहीं प्रत्युत पूँजीमूलक समाज-व्यवस्था है इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए लेखक ने घरेलू उद्योग-धन्धों को बीते युग की वस्तु बतलाया है। स्त्रियों की स्वतंत्रता और समानाधिकार में लेखक ने आधुनिक स्त्रियों के 'स्वतंत्रता तथा समानता के नाम पर' किसी भी उत्तरदायित्व से मुक्त रहते हुए रियायतें और सहूलियतें माँगने की खूब छीछालेदर की है। 'भगवान के कारिन्दे' में यशपाल ने भगवान के नाम पर किए जाने वाले कोलाहलों को और उनके व्यवस्थापकों को अपनी बौद्धिकता का शिकार बनाया है। सन से सफेद बालों वाले हिमालय–निवासी एक सिद्ध महात्मा की आज्ञानुसार परोपकार-पीड़ित होकर किसी नगर के चौक या माल रोड की पटरी पर खड़े होकर आने २ की एक पुड़िया द्वारा गए पुरुषत्व को सहस्र गुणा कर लौटा देने वाली स्वास्थ्य-संजीवनी की घोषणा करने वाले वैद-हकीम के वाणी–कौशल का आनन्द लेना हो तो यशपाल की 'रामराज्य की पुड़िया' में मिलेगा। उसी वैद-हकीम की भाँति एक रोचक कहानी से शुरू होकर अपने मतलब पर आ पहुँचने को वही पद्धति यशपाल ने 'राम राज्य की पुड़िया' शीर्षक निबन्ध में अपनाई है। उस हकीम के व्याख्यान से शुरु कर यशपाल आखीर अपने आलोच्य विषय रामराज्य या गान्धीवाद पर आ पहुँचे हैं। इस निबन्ध में पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग भी प्रशंसनीय है। 'मनुष्य की हुंकार' में विश्वयुद्ध से पीड़ित मानवता के लिये आशा की झलक दिखाई गई है—'व्यक्ति के मिट जाने पर भी मनुष्यत्व बना रहेगा......मनुष्यत्व विजयी होकर पृथ्वी भर पर फैलेगा।....चिरंजीवी हो मनुष्य का 'मनुष्यत्व'।....मनुष्य की सामाजिक भावना।" इन शब्दों में जैसे समूची मानवता की अंतर्वाणी मुखरित हो उठी है।

'देखा, सोचा, समझा' और 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में यशपाल के संस्मरण हैं। पहली पुस्तक में लेखक के विभिन्न समयों, स्थानों और व्यक्तियों-सम्बन्धी संस्मरण हैं। 'सेवाग्राम के दर्शन' में १९४१ में गान्धी जी से श्री यशपाल के अपने भेंट-सम्बन्धी संस्मरण हैं। निश्चय ही इसी संस्मरण में लेखक ने अपनी भेंट का ब्यौरा ही नहीं दिया है बल्कि अपनी धारणा–अनुसार यथासमय अपनी विरोधी विचारधारा की लड़खड़ाहट के प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष संकेत भी दिए है। 'साहित्य का मूल्यांकन' नामक लेख में मिश्रबन्धुओं–सम्बन्धी संस्मरण तो बहुत ही मनोरंजक हैं। 'शिमला से कुल्लू' तक की पार्वत्य यात्रा के संस्मरण भी बहुत ही रोचक हैं। यशपाल की शब्द–चित्रण-कला का चमत्कार इस लेख में कई स्थानों पर तो बहुत ही सजीव बन पड़ा है जैसेः—

> "चितकबरी छाल से ढँके ऊँचे-ऊँचे तने और बल खाती टहनियों से डोरों जैसी महीन पत्तियों के गुच्छे हल्की-हल्की हवा में चँवरों की तरह डोल रहे थे।"

जहाँ लेखक प्रकृति के इन मनोरम दृश्यों का वर्णन करता चला है उसे यथास्थल पूँजीवाद और समाजवादी संस्कृति की तुलना, आर्थिक विकास की उपयोगिता, वर्णाश्रम धर्म की संकुचित भावना आदि पर राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक विषयों पर विचार करने का अवसर भी मिलता रहा है। इसी लेख में यशपाल का प्रसिद्ध कलाकार निकोलस रोरिक बैरन–सम्बन्धी संस्मरण बहुत मनोरंजक है और अन्त में कामरेड ग्लाड़ीशेव के–'जो अवसर पहले केवल रोरिक की स्थिति के व्यक्ति के लिए ही सम्भव था, अब रूस में सभी लोगों के लिए है। अब हज़ारों निकोलिस रोरिक हमारे देश में विकास कर रहे हैं —" इन वाक्यों

में यशपाल ने रूस की समाजवादी व्यवस्था के अभिनन्दन का अवसर भी प्राप्त कर लिया है। 'नादिरशाही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में यशपाल ने १९५० के अल्मोडा के अपने संस्मरण में अर्जेण्टाइनी साहेब की व्यक्तिगत स्वतन्ता को पूँजीवादी स्वतंत्रता का रूप सिद्ध करते हुए कहा है—व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम से आकर्षक दीखने वाली ऐसी प्रत्येक स्वतंत्रता धोखा है यदि उसमें साधनों की स्वतंत्रता नहीं। 'विचारों की स्वतंत्र सत्ता' और 'अपने सम्पर्कों के प्रति मेरे देय' शीर्षक दो लेखों में 'कम्यूनिज्म को फाइट' करने के लिये प्रतिज्ञावद्ध श्री जैनेन्द्र जी सम्बन्धी संस्मरण और उनकी इस प्रतिज्ञा का विश्लेषण किया गया है। श्री यशपाल को इस बात का खेद है कि मार्क्सवाद को समझने से पहले ही उसको फाइट करने की प्रतिज्ञा उपयुक्त नहीं कही जा सकती। यशपाल ने खुले रूप में स्वीकार किया है कि जिस वाद-विशेष को वे जीवन और समाज के लिये कल्याणकारी प्रवृत्ति समझते हैं उसके प्रति अपने देय को स्वीकार करने में उन्हें कोई संकोच नहीं। । मेरे विचार से 'देखा सोचा, समझा' का 'यह नैनीताल है, शीर्षक निबन्ध यशपाल के सर्वश्रेष्ठ संस्मरण-निबन्धों में गिना जा सकता है। इस निबन्ध की खास विशेषता यह है कि इसमें साहित्य—पक्ष और प्रचारपक्ष दोनों ही समान रूप से सबल हैं। समान सबल होने का अभिप्राय यह है कि लेखक ने अपनी विचारधारा का विश्लेषण ऐसे उपयुक्त स्थलों पर किया है कि इससे संस्मरण की साहित्यकता या रोचकता में कमी का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता, पर्याप्त वृद्धि हुई है। जैसा कि 'शिमला से कुल्लु' तक के अपने यात्रा-संस्मरण में भी लेखक ने स्पष्ट किया था कि उसे सूर्योदय या सूर्यास्त से दीप्त बर्फानी चोटी की अपेक्षा झोंपड़ियों के झुण्ड का चित्र, जिसमें आदमी दिखाई दें, ज्यादा मर्मस्पर्शी जान पड़ता है। इसी भाँति यशपाल को नैनीताल इसलिये अधिक सुहाता है क्योंकि यहाँ उसे प्रकृति-सौन्दर्य और मनुष्य-निर्मित वैभव दोनों एक साथ दिखाई पड़ते हैं।

नैनीताल के आलंकारिक वर्णन के पश्चात झील के किनारे 'कैपिटल' सिनेमा के पास वाले मैदान में संध्या समय एकत्रित होने वाले भद्र समाज का वर्णन करते हुए लेखक ने अपने विचार-विश्लेषण के लिये कई अवसर पा लिये हैं। एक खद्दरधारी दम्पत्ति के साथ बातचीत में लेखक ने स्त्रियों के सजाव-बनाव की मीमांसा की है। उचित बनाव-शृंगार के प्रति उपेक्षा दिखा फूहड़ रूप से समाज में प्रकट होना लेखक के विचार से अपने बड़प्पन के प्रदर्शन का दम्भ—पूर्ण प्रयास है किन्तु बनाव-शृंगार का वह रूप, जहाँ असलीपन का ही लोप हो जाता है, भी लेखक के दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं। इसके अतिरिक्त नैनीताल में एक महीना बिताने के लिए आए नगर के मध्यमवर्गी परिवार की गुज़र-बसर और भद्र-समारोह में बड़प्पन—प्रदर्शन की होड़ नैनीताल में किस रूप में निभ पाती है? इसका चित्रण कर लेखक ने वर्त्तमान व्यवस्था के खोखलेपन को प्रकट किया है। दाईयों और खटियालों का वर्णन करते समय एक बार लेखक को फिर औद्योगीकरण में ही देश का कल्याण दिखाई दिया है। नैनीताल के रोचक और शोषक दोनों रूपों का बहुत ही सजीव चित्रण इस निबन्ध में हुआ है।

यशपाल की आठवीं पुस्तक 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में उनकी 'विश्व शान्ति सम्मेलन' के सिलसिले में की गई वियेना—यात्रा और बाद में रूस—यात्रा का पुस्तकाकार संस्मरण है। लेखक की अन्य रचनाओं की भाँति यह पुस्तक भी यशपाल की व्यापक वर्णन—शक्ति और यथावसर चुटीले, चुस्त वाक्यों में अपनी विचारधारा की पुष्टि करते जाने का रोचक प्रमाण है। लखनऊ की रेल-यात्रा से लेकर हिन्दुस्तान लौट आने तक उन्हें अपनी इस यात्रा में जो—जो कुछ दिखाई दिया उसे उन्होंने ईमानदारी से अपनी रोचक शैली में प्रस्तुत कर दिया है। हवाई यात्रा में नव-विवाहित सिन्धी—दम्पति आदि के वर्णनों द्वारा उन्होंने अपने इस संस्मरण को जहां—तहां विचारों से बोझिल होने से बचाए रखा है। निश्चय ही 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में का उद्देश्य दीवार के उस पार वाले भाग की सौभाग्य—समृद्धि दिखलाना और इस पार के देशों में

लड़खड़ाती समाज-व्यवस्था का चित्रण करना रहा है किन्तु लेखक का यह उद्देश्य उसका आरोपित उद्देश्य नहीं प्रत्युत 'देखा, सोचा, समझा' उद्देश्य है। इसके साथ-साथ लेखक को काहिरा, वियाना, जिनेवा, मास्को, लैनिनग्राड आदि में जहाँ-जहाँ जो कुछ भी अच्छा-बुरा दिखाई दिया उसको उसने उसी भाँति चित्रित किया है। 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' सोवियट रूस के सामाजिक और आर्थिक जीवन के सम्बन्ध में श्री यशपाल का आँखों देखा सामाजिक चित्र उपस्थित करने वाला संस्मरण है।

यशपाल की इन आठों रचनाओं में उनके छोटे संस्मरणों को उनकी बौद्धिक विवेचना के कारण ही निबन्ध कहा जाता है अन्यथा रोचकता की दृष्टि से इन्हें कहानियों की श्रेणी में रखा जा सकता है। अस्तु, अपने इन निबन्धों द्वारा यशपाल ने कलम के श्रमिक होने के नाते अपने सहयोगी संसार के श्रमिकों की उन्नति और समृद्धि के लिये वर्त्तमान शोषण मूलक-व्यवस्था को बदल देने का नारा दिया है।

यशपाल का विश्वास है कि वर्त्तमान पूँजीवादी व्यवस्था मानवता की एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी जो अब पूर्णतया व्यर्थ हो चुकी है। अब इस व्यवस्था को जितनी जल्दी समतामूलक समाजवादी व्यवस्था द्वारा स्थानान्तरित कर दिया जाय उतना ही अच्छा है। और दूसरे मत वाद, जो समाजवादी व्यवस्था को ही आज के जगत में मानव-कल्याण का एकमात्र उपाय नहीं समझते, लेखक के विचार से शोषक-श्रेणी के प्रपंच हैं। यशपाल ने उन पर निर्दयता पूर्वक आक्रमण किया है और उन्हें मानव-विरोधी और प्रगति-विरोधी सिद्ध किया है। बहुत से लोगों को यशपाल द्वारा गान्धीवाद का खण्डन बहुत कटु और अनुपयुक्त प्रतीत होता है किन्तु यशपाल के लिये अपना रास्ता साफ है। उन्होंने सामाजिक कल्याण के लिये वर्त्तमान पूँजी-पद्धति के उन्मूलन को एकमात्र उपाय माना है अतएव वे विरोधी विचारधाराओं में पूँजीपतियों की गतिविधि ही देखते हैं। जैसा कि 'न्याय के संघर्ष' की भूमिका में आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा था कि लेखक ने आत्मविस्मृत समाज को अपनी कलम की नोक से गुदगुदा कर जगाने की चेष्टा की है और समाज को करवट बदलते न देखकर कई जगह उसने कलम की नोक समाज के शरीर में गड़ा दी है। कलम की यह नोक 'न्याय के संघर्ष' के प्रारम्भिक निबन्धों की अपेक्षा शोषण-श्रेणी के प्रपंच, रामराज्य की कथा आदि में अधिक पैनी और गहरी चुभी है। उसकी चुभन से यदि समाज के किसी अपने को जागृत समझने वाले भाग को भी तीखी चुभन महसूस हुई हो तो आश्चर्य नहीं। लेखक ने अपने निबन्धों में देश के औद्योगीकरण की जबर्दस्त वकालत की है। लेखक का विश्वास है कि आज का मानव-समाज सभ्यता और विकास की उस मंज़िल पर आ पहुँचा है जहाँ उसके लिये बिना मशीनों के गुज़ारा सम्भव नहीं। घरेलू उद्योग-धन्धों के नाम पर औद्योगीकरण या उसके अवश्यम्भावी परिणाम केन्द्रीकरण का विरोध घड़ी की सुई को उल्टा फिराने जैसी बात ही है। यशपाल ने पूरे बल से सिद्ध किया है कि विज्ञान की उन्नति द्वारा शोषण या भयंकर मारक शस्त्रों के रूप में मानव-विनाश की कल्पना का बीज विज्ञान में न होकर उस त्रुटिपूर्ण समाज-व्यवस्था में है जिसका उद्देश्य मानवमात्र की उन्नति न होकर केवल शोषक वर्ग की उन्नति है और जिसकी पूर्ति के लिये विज्ञान का दुरुपयोग किया जाता है। इसलिये विश्वव्यापी युद्धों के विरोध में यशपाल ने संसार के शान्तिप्रिय लोगों को इकट्ठे होने का सन्देश 'मनुष्यत्व की पुकार' में 'समूचा मानव समाज एक है' के नारे के रूप में दिया है। अछूतोद्धार, मन्दिर-प्रवेश नारी-स्वतन्त्रता, आदि पर भी लेखक यशपाल के स्पष्ट विचारों का परिचय हमें इनके इन निबन्धों से होता है। यशपाल नारी के लिये सच्ची स्वतन्त्रता चाहते हैं, जिसमें उसके लिये भी पुरुष की भाँति उन्नति और विकास के समान अवसर हों। धर्म का किसी रूप में सामाजिक चेतना में प्रवेश वे प्रगति-विरोधी समझते हैं। वे कड़े शब्दों में घोषित करते हैं—'हमारे मन्दिर-मस्जिद और

धर्मस्थान राष्ट्र के शरीर में नासूर हैं जो उसकी स्वाभाविक उन्नति को रोक कर उसे सुस्त और निष्प्रभ बनाने की चेष्टा करते हैं। यशपाल ने ग्राबील-द अनजियो' के इन शब्दों की पुष्टि की है कि-'एक विशाल गिर्जाघर की अपेक्षा एक कूड़े-गोबर का ढेर अधिक मूल्यवान है। उससे खेत की शक्ति तो बढ़ेगी।'

कला और साहित्य के सम्बन्ध में यशपाल का विचार है कि मनुष्य केवल रोटी खाकर ही जीवित नहीं रह सकता अतएव कला भी जीवन का एक आवश्यक अंग है। यशपाल कला को जीवन की अभिव्यक्ति मानते हैं और अभिव्यक्ति निश्चय ही प्रचार का कोई न कोई रूप लिये होगी। संघर्ष द्वारा विकास की भावना और प्रयत्न से शून्य मानी जाने वाली कला को यशपाल 'निरर्थक कला' का नाम देते हैं। इसी भाँति साहित्य के सम्बन्धमें यशपाल के विचार हैं कि 'साहित्य' को 'शाश्वत सनातन' के शब्द-जाल में न बँध कर सदा प्रगतिशील रहना चाहिये और सामयिक परिस्थितियों के अनुसार समाज को विकास का अवसर देने वाली सत्य और न्याय की धारणाओं का समर्थन साहित्य का कर्त्तव्य होना चाहिये। इसी भाँति प्रेम, हिंसा-अहिंसा, आदि के सम्बन्ध में श्री यशपाल के प्रगतिशील विचार उनके निबन्धों में विवेचन का सुदृढ आधार लेकर प्रकट हुए हैं। अपने विचारों और धारणाओं की पुष्टि में यशपाल का बुद्धिवाद इतना प्रबल है कि भिन्न मत रखने वाले व्यक्ति को भी दैनिक हिन्दुस्तान के शब्दों में 'मत-विरोध होने पर भी लेखक की कला का लोहा मानना ही पड़ता है।'

भावपक्ष में यशपाल अपने उद्देश्य के प्रति जितने ईमानदार और अपनी भावना के प्रसार के प्रति जितने निर्भीक हैं, कलापक्ष में वह उससे भी कहीं अधिक महान और सामर्थ्य-सम्पन्न कलाकार हैं। उनका शब्द-भण्डार अत्यन्त संपन्न और वाक्य-विन्यास चुस्त और प्रभावशाली है, फलतः उन्हें गम्भीर से गम्भीर बात का रोचक ढंग से विश्लेषण करने और इच्छानुकूल गम्भीर या परिहास-पूर्ण वातावरण के निर्माण में कभी अभाव का अनुभव नहीं होता। ठोस सैद्धान्तिक रूप से बहस करते समय उनकी चुटीली शब्द-योजना अपना सानी नहीं रखती। 'राम राज्य की कथा' और 'शोषक श्रेणी के प्रपंच में जहाँ उनकी गम्भीर, अविरत गति एकरूप होकर बहने वाली वाक्य-धारा की छटा में मिलेगी वहाँ 'देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर' वाक्यों के रूप में विरोधी विचार-धारा या समाज-व्यवस्था पर कसी हुई फब्तियों की चमक 'बात बात में बात' और 'चक्कर क्लब' के निबन्धों में देखने को मिलेगा। सिर्फ शीर्षक तक बात कहने की सीमा के गुण का अपूर्व प्रदर्शन 'न्याय का संघर्ष' के अनेक निबन्धों में देखने को मिलेगी। 'देखा, सोचा, समझा' और 'लोहे की दीवार की दोनों ओर' में कहानी का-सा प्रवाह यशपाल की अपूर्व वर्णन-शैली की सफलता का प्रमाण है। इस ओर यशपाल को पाठक की रूचि के अनुरूप मार्मिक स्थलों की पहिचान का गहरा ज्ञान है। कैसा भी गम्भीर या सैद्धान्तिक निबन्ध हो यशपाल उसे सदा रोचक बनाए रहे हैं। आधुनिक युग की नई सूझ से अनुप्राणित होकर वे जब बीच-बीच में आलंकारिकता की ओर झुकते हैं तब उनकी सजीव शैली बहुत सजीव हो उठती है। नीचे उद्धृत थोड़े से वाक्यों में उसका दिग्दर्शन मात्र हो अपेक्षित है :—

क—मैनेजर साहेब ने क्लॉक के पेण्डुलम की तरह अपना सिर हिलाते हुए आज्ञा देने से इन्कार कर दिया।

ख—खेत पक गए थे। बीथू के पत्ते पीले पड़ गए थे और बालें मुर्गों की कलगियों की तरह सुर्ख हो रही थीं———। अस्तोंन्मुख सूर्य की किरणें अन्तिम भेंट के लिये पहाड़ियों के माथे, झोंपड़ियों और खेतों पर झुक रहीं थीं।

—शिमला से कुल्लू।

ग—नैनीताल में आती धूप ऐसे जान पड़ती है जैसे राग-रंजित (लिपस्टिक-लगे) होठों में मोती जैसे दाँतों और गोरे चेहरे पर कारे, कजरारे चंचल नयनों से अट्टहास करती युवती।
—यह नैनीताल है।

घ—जरा बदल फटे कि झील, मकान, भीगी बनस्पति और फूल सभी चमचमा उठते हैं और स्वच्छ सड़कों पर, इन्द्रधनुषों के टुकड़ों के रूप में रमणियाँ और भले आदमी बिखर जाते हैं।
—यह नैनीताल है।

यह यशपाल की उस कवित्वपूर्ण शैली की कुछ झाँकियां हैं जिनसे यशपाल के निबन्ध कहानी-सा रोचक रूप लिये हैं। अवसरानुरूप तथा पात्रानुकूल भाषा भी यशपाल की अपूर्व विशेषता है। इस सम्बन्ध में 'रामराज्य की पुड़िया' के हकीम जी की बाजारू चटकती भाषा एक ओर है तो दूसरी ओर है वन-पर्वतों के वर्णन में प्रयुक्त हुई यशपाल की आलंकारिक भाषा। यशपाल के राष्ट्रीय जी, सर्वोदयी, दार्शनिक, कामरेड़ आदि सबकी अपनी विशिष्ट वाक्य-शैली और शब्द-योजना है। वाद-विवाद के समय कामरेड़ का बन्दर की तरह उछल-कूद कर जोश से बात करना तथा इसी भाँति बाकी पात्रों का भी अपने-अपने आरोपित व्यक्तित्व के अनुरूप चेष्टाएँ करना कल्पित संवादों को भी स्वभाविकता दिये रहते हैं।

शब्द-चयन के विषय में नाइट्रोजन के लिये नत्रजन लिखने तक तो एक बात थी किन्तु मेजबान के लिये भी यजमान का प्रयोग यशपाल की पारिभाषिक एवं आवश्यकीय शब्दों की दृष्टि से हिन्दी में संभवतः अपनी शब्द-संस्कार की प्रवृत्ति का द्योतक भी है।

भाव पक्ष और कला पक्ष के सभी दृष्टिकोणों से यशपाल इस युग के सर्वाधिक जाग्रत बुद्धिवादी कलाकार हैं। अपनी कलम से वह एक महान कार्य करना चाहते हैं जिसका संकेत चेखब से यशपाल की तुलना करते हुए श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने किया है:—

"The time has come; some thing enormous is descending upon all of us और इस उत्तरदायित्व का अहसास करते हुए यशपाल जैसे कह रहे हैं--I shall work....... every man will be working-everyman" मैं काम करूँगा------सभी काम करेंगे, हाँ प्रत्येक ही। फलतः यशपाल इस युग के महान कर्मयोगी कलाकार हैं।

पटियाला — त्रिलोकी नाथ रञ्जन
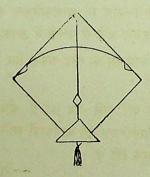
कला
एवं
मान्यताएँ

यशपाल की कला और भावना

एक क्रान्तिकारी के रूप में यशपाल जी के नाम से सबकी तरह मैं भी परिचित था। क्रान्तिकारियों रूखा-सूखा कोरा राजनीतिक कार्यकर्ता समझा जाता है। अतएव, यशपाल जी ने जब अपनी कहानियों रा साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया तो मुझे भी यह जानने का स्वाभाविक कुतूहल हुआ कि इस न्तिकारी का कलात्मक कृतित्व कैसा है।

सबसे पहिले मैंने यशपाल जी की 'पिंजड़े की उड़ान' पढ़ी। कई वर्ष हो गये, शीर्षक याद नहीं, सी कहानी में प्राचीन भारतीय आश्रम के सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण और उस वातावरण का तिक्रमण कर नर-नारी के मधुर-प्राकृतिक आकर्षण का सरस स्फूर्जन था। मुझे आश्चर्य हुआ कि संस्कृत यों में चित्रित संस्कृति और प्रकृति की यह पुरातन अभिव्यक्ति यशपाल को कहां-कैसे मिली, क्योंकि तिकारी तो आधुनिक वैज्ञानिक युग में रहता है। सन४२ में प्रत्यक्ष परिचय होने पर जब मैंने उनसे इस बन्ध में जिज्ञासा की तब यशपाल जी ने बतलाया कि बचपन में वे गुरुकुल के छात्र रह चुके हैं। मझ गया कि घटना-क्रम से शुष्क राजनीतिक वातावरण में जाकर भी क्यों उनका हृदय मरूभूमि में नहीं हो गया। बचपन का सारस्वत संस्कार उनमें बना रहा। राजनीति उन पर हावी नहीं हो सकी, वती ही राजनीति पर आरूढ़ हो गई। तभी तो स्वर्गीय चन्द्रशेखर आज़ाद स्नेहपूर्वक व्यंग्य किया करते रीके उससे कहो बन्दूक चलाना उसका काम नहीं, बैठ कर कहानियाँ लिखा करे।'

क्या हृदय का माधुर्य और क्रान्ति का संघर्ष अपने उद्देश्य में विरोध हैं? इसका उत्तर यशपाल दादा कामरेड से मिल जाता है। प्रसिद्ध उपन्यासकार टामस हार्डी के एक छोटे से उपन्यास 'How मen my velley was' में भी यही दिखाया है कि जिस जीवन को हम प्यार करते हैं उसी को ह्या के लिये ही तो संघर्ष करते हैं।

यशपाल ने कवि का भाव-जगत और कहानीकार का वस्तुजगत लेकर अपनी लेखनी को अग्रसर किया। न जैसे ठोस यथार्थ के भीतर निर्झर की तरह उनका भावुक हृदय अन्तर्हित है।

आज के इस प्रगतिशील युग में कवि सुमित्रानन्दन पन्त और कथाकार यशपाल प्रगतिवाद के

उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं। छायावाद के बाद की काव्य-चेतना पन्त की 'युगवाणी' में और प्रेमचन्द जी के बाद की युग-चेतना यशपाल की कहानियों तथा उपन्यासों में मिलती है।

इस समय हिन्दी में बहुत से नये-नये कहानी-लेखक और उपन्यास-लेखक आ गये हैं, आते जा रहे हैं। उनकी भाषा और शैली में नव-किसलयों का स्पन्दन-कम्पन है। कहा नहीं जा सकता कि उनमें से कब कौन हमारे कथा-साहित्य का परिपक्व प्रतिनिधि बन जायगा। सम्प्रति प्रेमचन्द जी के बाद यशपाल स्वाभाविकता और सरसता की दृष्टि से हिन्दी कथा-साहित्य का प्रौढ़ प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रेमचन्द और यशपाल भारत की ठेठ मिट्टी (देहात) में उत्पन्न साहित्यकार हैं। प्रेमचन्द जी यू.पी. के ग्रामीण वातावरण से साहित्य में आये थे, यशपाल पंजाब की पर्वतीय उपत्यका (कुल्लू) से। दोनों उर्दू-प्रधान कुटुम्बों में उत्पन्न हुए, फलतः दोनों की भाषा और शैली में उर्दू के भीतर से हिन्दी की सहज निखार है। फिर भी प्रेमचन्द और यशपाल के साहित्यिक व्यक्तित्व में कुछ प्रान्तीय अन्तर पड़ गया है—पंचनद-वासी होने के कारण यशपाल के पात्रों और वातावरण में स्वभावतः एक नवीनता आ गई है—पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त का भी जीवन-चित्र उनकी कथाकृतियों द्वारा सुलभ हो गया है।

यशपाल की कहानियाँ प्रेमचन्द जी की कहानियों से बहुत छोटी हैं। शॉर्ट स्टोरी की दृष्टि से इतनी छोटी सारगर्भित कहानियाँ हिन्दी में दुर्लभ हैं। यद्यपि प्रेमचन्द और यशपाल की कहानियों का गठन ड्राइंग-जैसा एक-सा ही नपा-तुला है, उसमें कला की स्वच्छन्दता नहीं है; तथापि प्रेमचन्द की अपेक्षा यशपाल की कहानियों की यह विशेषता है कि उनमें भाषा और शैली और भी सहज स्वाभाविक हो गई है।

कहानियों के अतिरिक्त यशपाल ने कई उपन्यास भी लिखे हैं—'दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड' दिव्या, मनुष्य के रूप'।

संस्कृति को रूढ़ रूप में न लेते हुए भी यशपाल ने अपने उपन्यासों में मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों का आभिजात्य (हृदय का शील पक्ष) बनाये रख कर यथार्थवाद का धरातल दिया है। 'दादा कामरेड' में यथार्थवाद मनुष्य के नैतिक-कुतूहल में परिणत हो गया है। उसमें बुभुक्षित क्रान्तिकारी नारी का नग्न समर्पण चाहता है, जिसके हृदय में अपने सन्तप्त सखा के लिए कुछ भी दुराव नहीं है। वह अभिन्न-हृदया नारी नग्न होकर भी अपनी दिगम्बरता में अवगुण्ठित हो जाती है। नारी का नारीत्व (आत्ममर्यादा) आवरण में नहीं, उसके अन्तःकरण में है, यह सत्य इस नग्न यथार्थ में साकार हो गया है।

कट्टर प्रगतिवादी समीक्षकों ने यशपाल की रचनाओं पर रोमांस का आरोप किया है। क्या रोमांस का जीवन से बहिष्कार किया जा सकता है? रोमांस का सम्बन्ध नारी से होने के कारण क्रान्तिकारी प्रवृत्ति के लोग नारी को अपने लक्ष्य में बाधा समझते रहे हैं। इस संकीर्णता की विडम्बना रवीन्द्रनाथ ने अपने 'चार अध्याय' में और यशपाल ने अपने 'पार्टी कामरेड' में दिखला दी है।।

यशपाल ने अपनी कथाकृतियों में रोमांस को बहुत दिव्य रूप में उपस्थित किया है। उसमें चेतना और भावना का आत्मोत्कर्ष है। यशपाल की भावनुभूति को हृदयगंम कर पाने के कारण निरे भौतिकवादी

आलोचक उसे आजकल के स्थूल रोमांस की दृष्टि से देखते हैं। अपने दृष्टिकोण को कलाकार पर आरोपित करते हैं। क्या जीवन में वासना ही वासना है? भावना का कोई अस्तित्व नहीं है? जल, वायु, प्रकाश, क्या पंचभौतिक पदार्थ ही हैं, उनका हमारे साथ 'कोई रागात्मक सम्बन्ध नहीं है? मनुष्य क्या उपभोक्ता ही है, अनुभूतिशील संवेदनशील प्राणी नहीं?

यशपाल ने नर-नारी के प्रणय को कितना पवित्र कर दिया है, यह उनके उपन्यास देशद्रोही में देखा जा सकता है। डाक्टर खन्ना के रूप में मानों वह स्वयं ही गृहिणी चन्दा की गोद में सिर रख कर नारी के उस समग्र रूप को सरल भाव से चाह सके हैं जिसे सम्बोधित कर कभी कवि शेली और पन्त ने कहा है :देवि, मा, सहचरि, प्राण।'

'देशद्रोही' की चन्दा न तो शृंगारिक कवियों की नायिका है और न प्रगतिशील समाज की आधुनिक नारी है; वह तो छायावाद की विदेह आत्मा है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रत्यक्षवादी होते हुए भी यशपाल जी को सामाजिक दृष्टि से ऐसी अदृश्य मानवी की झलक कहाँ से मिल गई? पूछने पर उन्होंने दान्ते की बीयट्रिस का दृष्टान्त दिया था और कहा था, उसे देखने-समझने के लिये महत्तर मनोविज्ञान की आवश्यकता है।

'दिव्या' यशपाल का बौद्धकालीन उपन्यास है। पुस्तक के नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि नारी के लिये यशपाल के अन्तःकरण में कितना सात्विक स्थान है। आधुनिक युग के मनोवैज्ञानिक लेखक होते हुए भी वे अतीत के सांस्कृतिक सौष्ठव को विस्मृत नहीं कर सके हैं किन्तु 'दिव्या' से ही यशपाल के नारी-चित्रण में वास्तविकता भी आ गई है। यद्यपि दिव्या वही है जो चन्दा है तथापि जटिल परिस्थितियों ने उसे वैसा ही विवश और निरुपाय कर दिया है जैसे 'देशद्रोही' में डाक्टर खन्ना को। अपने अनुरूप पुरुष की छत्रछाया में चन्दा का तो सामाजिक ह्रास नहीं हुआ, किन्तु भीतर से दिव्य नारी होते हुए भी निरवलम्ब 'दिव्या' परिस्थितियों की प्रवंचना में 'चन्दा' का क्षीणाभास मात्र रह गई।

'दिव्या' से यशपाल जी का दूसरा औपन्यासिक अध्याय आरम्भ होता है। उन्होंने अपनी जिन अभीष्ट देवियों को अतीत के समाज में स्नेह और सम्मान की दृष्टि से देखा था उन्हें वर्त्तमान समाज में वस्तुस्थिति की दृष्टि से भी देखा। वे सोचते रहे होंगे, कहां तक कब तक ये लोकोत्तर व्यक्तित्व सुरक्षित रह सकते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि युग की वास्तविकता ने उन्हें विचलित कर दिया, उनकी मानसी मूर्त्तियां अरक्षणीया हो गईं। 'देशद्रोही' के बाद 'दिव्या' और 'दिव्या' के बाद 'मनुष्य के रूप' में वे क्रमशः लुण्ठित और खण्डित होती गईं 'मनुष्य के रूप' में 'पहाड़िन' भी कैसी सरल वनबाला थी, किन्तु परिस्थितियों ने उसका कैसा जघन्य रूपान्तर कर दिया।

यह ध्यान देने की बात है कि प्रगतिवादी होते हुए भी यशपाल जी ने अभी तक आधुनिक युग की किसी नारी को अपनी भावना की दिव्य मूर्त्ति बना कर उपस्थित नहीं किया है। 'रोमैन्टिक काव्यों और लोकगीतों की नारी को ही वे समाज में शीर्ष स्थान देते रहे हैं। यदि वे आधुनिका नारी को ही अपना अभीष्ट मान कर चलते तो उनके उपन्यास दुखान्त नहीं होते। नयी पात्रियाँ नयी परिस्थितियों का सामना कर लेतीं। किन्तु इस तरह के उपन्यास लिखना आसान है। यशपाल की कठिनाई यह है कि प्रगतिवादी दृष्टि से वे जिन परिस्थितियों और समस्याओं को सुस्पष्ट करते हैं उन्हींके बीच वे 'चन्दा' को 'दिव्या'

को, 'पहाड़िन' को उत्तीर्ण देखना चाहते हैं। यह भावना और यथार्थ का ही नहीं, दो भिन्न युगों का बहिरन्तर द्वन्द्व है। 'देशद्रोही' के बाद. अन्तर्द्वन्द्व (श्रेय-प्रेम का द्वन्द्व) दब गया, बहिर्द्वन्द्व (आर्थिक और सामाजिक द्वन्द्व) विजयी हो गया। यशपाल जी ने प्रगतिवादी दृष्टि से जो आर्थिक और सामाजिक स्थापना की, उसीमें उनकी भावना की इतिश्री हो गयी। उनके दृष्टिकोण से मतभेद हो सकता है किन्तु उनका चरित्र-चित्रण और घटना-संयोजन, कला की दृष्टि से निर्दोष और स्वाभाविक था। अन्य किताबी प्रगतिवादियों से उनकी यह भिन्नता है कि वे देश-काल-पात्र का ध्यान रखते हैं और अनावश्यक उत्साह का प्रदर्शन नहीं करते।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

बनारस
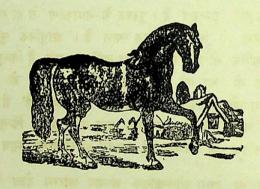
यशपाल की मान्यताएँ

हिन्दी में यशपाल एक ऐसे लेखक हैं जैसे कभी नहीं हुए ; भविष्य में होंगे तो ज़रूर ही—होने ही चाहियें। यह हिन्दी साहित्य के युग-प्रवर्त्तकों में से एक हैं। युग-प्रवर्तक लेखक वह है जो साहित्य की पगडंडी को प्रशस्त कर राजमार्ग बनाता है, जो जन-जीवन के स्पन्दनों और वाणियों को अपने साहित्य की आत्मा बना लेता है, और जो एक युग को समाप्त कर सर्वथा नए युग का निर्माण करता है। वह सृष्टि नहीं, स्रष्टा है, दृश्य नहीं द्रष्टा है। किसी भी लेखक को महान बनाता है उसका विचार। विचार ही मनुष्य या लेखक को उठाता है या गिराता है। इसलिये-साहित्य का भाव या विचार-पक्ष सबल और प्रबल होना ही चाहिये। उसका कला-पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि अभिव्यक्ति की नूतनता भी लेखक को यश का भागी बनाती है। यशपाल, सौभाग्यवश, एक ऐसे ही लेखक हैं, जिनमें सबल विचार भी हैं और कला की नवीनता भी। ज्ञान और कला का संयोग किसी विरले को ही नसीब होता है। संसार के सभी महान साहित्यकारों में ये दो गुण वर्त्तमान रहे हैं। यशपाल संसार के अमर साहित्यकार हैं क्योंकि अपने साहित्य में उन्होंने एक और जन-जीवन के अनुकूल एक निश्चित विचार-तत्व दिया है और दूसरी ओर कला के सिद्धान्त और अभिव्यक्ति के नये संकेत दिये हैं।

इन बातों के अतिरिक्त यशपाल के साहित्य को जो तत्व ऊपर उठाता है, वह यह कि उन्होंने युग की आवश्यकताओं के अनुकूल समाजवादी साहित्य को जन्म दिया। हिन्दी में प्रेमचन्द के पहले तक का साहित्य व्यक्तिवादी था जिसमें परम्परा की पुकार, इतिहास की पुनरावृत्ति और रूढ़ियों के समर्थक विशेष रूप से मिलते हैं। प्रेमचन्द ने समाज के निम्नस्तर के लोगों को लेकर जिस साहित्य की रचना, विशेषकर 'गोदान' (१६३६) से शुरु की, उसीको यशपाल ने व्यापक बनाया और समाज के शोषित जन-जीवन को नंगे रूपों में खोल कर रखा। हिन्दी साहित्य में जनवाणी को उभारने के अवसर बहुत कम मिले हैं। क्योंकि हर लेखक या कवि ने विचार की बँधी हुई परम्परा-रेखा पर चलने का प्रयत्न किया। यशपाल बँधी हुई रेखाओं पर चलना उचित नहीं समझते क्योंकि उनकी मान्यता है कि समाज का हर व्यक्ति स्वतन्त्र है और उसकी नागिरक स्वतंत्रता के अनुकूल उसके विचार भी स्वतंत्र होने चाहियें। उसे अपने आन्तरिक भावों या विचारों को खुल कर कहने का जन्मसिद्ध अधिकार है। पशुओं को बांध कर रखा जा सकता है, पर मनुष्यों को विचार का बंदी बना कर रखना, उसके साथ अन्याय करना है।

यशपाल हिन्दी के एक स्वस्थ विचारक भी हैं। जहाँ एक ओर उन्होंने कथा-साहित्य लिखा वहाँ दूसरी ओर अपने स्वतंत्र और निर्भीक विचारों को भी प्रकट किया। कहानी, कला, उपन्यास, साहित्य और विचार के सम्बन्ध में उनकी निजी मान्यताएँ हैं, जो उनके विचारात्मक साहित्य में बिखरी हैं। 'बात बात में बात' (१९५४) 'देखा, सोचा, समझा' (१९५१) 'सिंहावलोकन' (२ भाग—१९५१-५२), 'नशे-नशे की बात' कुछ ऐसी ही रचनायें हैं जिनमें यशपाल की साहित्यिक और राजनैतिक मान्यताएँ स्पष्ट हुई हैं। यों तो, विचार की दृष्टि से ये मार्क्सवाद के जबर्दस्त समर्थक हैं, पर अपने साहित्य को इन्होंने कोरे राजनैतिक प्रचार से बचाया है। क्योंकि कला या साहित्य का प्राण प्रचार नहीं, प्रतिभा है। जो लेखक अपने साहित्य को प्रतिभा के रंग से जितना अधिक रंजित करेगा, उसमें उतना ही निखार आएगा। राजनैतिक निबन्धों में यशपाल की विचारधारा, स्पष्ट, तीखी, व्यंग्यात्मक और तर्कसंगत है। कहानियों में उनका राजनैतिक प्रचार मौन है, जीवन की यथार्थता अपेक्षाकृत अधिक मुखर है। यहाँ मेरा उद्देश्य यशपाल की कुछ सामान्य मान्यताओं को स्पष्ट करना है।

यशपाल का साहित्यकार कम्युनिज्म की 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा' का अनुमोदन करता है। 'देखा, सोचा और समझा' पृष्ठ १०८ में उन्होंने इस बात को स्पष्टतः स्वीकार किया है—"मैं सर्वसाधारण जनता को शोषित और अन्याय-पीड़ित समझता हूँ। इस अन्याय से जनता की मुक्ति का उपाय कम्युनिज्म की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा को मानता हूँ।" इससे यह स्पष्ट है कि यशपाल हिन्दी के कम्युनिस्ट लेखक या विचारक हैं। कम्युनिज्म की मान्यताओं में उनका अटूट विश्वास है क्योंकि, उनकी दृष्टि में, यह युग की आवश्यक मांग है।

यशपाल परम्परावादी लेखक नहीं जो पिटी हुई रेखाओं पर चलकर संतोष कर लें। वह मानते हैं कि मनुष्य के विचारों की एक स्वतंत्र सत्ता नहीं है और मनुष्य समाज की विचारधारा मनुष्य-समाज के जीवन का क्रम निश्चित करती है। यशपाल जीवन और विचार में अभिन्न संबंध मानते हैं। उनका कहना है कि "जीवन के बिना विचारों की कल्पना करना संभव नहीं, इसलिये जीवन से स्वतंत्र सत्ता की बात करना भी युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता।——आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार जिस समाज का जीवन जिस ढंग का होता है उस समाज के विचार भी उसी ढंग के होते हैं। अतः यह मानना पड़ेगा कि विचारों की सत्ता ठीक वैसी ही चीज़ है जैसे कटी डोर की पतंग। विचारों की सत्ता पूर्णतः जीवन से तभी स्वतंत्र हो सकती है जब विचारों का जीवन से कोई सम्पर्क न रह जाने पर भी विचारों की सत्ता बनी रहे। ऐसी आदर्शवादी विचारधारा जीवन की वास्तविकताओं की उपेक्षा करके जहाँ चाहे उड़ा करती है और स्वयं जीवन को ही मिथ्या बताकर जीवन की वास्तविकता का निरादर करना चाहती है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि यशपाल लेखक या मनुष्य के विचारों को जीवन की सृष्टि, आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम और जीवन की विषमताओं की उपज मानते हैं, जिनका सम्बन्ध रूमानी कल्पना, आकाशी चिन्तन और हवाई आदर्श से कुछ भी नहीं है। यशपाल का विचारक जीवन के याथर्थ की भूमि पर पांव जमाये रखता है। उनके साहित्य में अतिशय यथार्थवाद का यही कारण है और यही मान्यता उनके कथा-साहित्य के मूल में सदा वर्तमान रहती है। वे आदर्शवादी (Idealist) नहीं, घोर यथार्थवादी (Realist) हैं।

यशपाल किसी भी प्राचीन आदर्शवादी विचारधारा में विश्वास नहीं करते और न ही समाज के सुधार में प्रसिद्ध गांधीवादी अस्त्र हृदय-परिवर्तन पर अपनी श्रद्धा का फूल चढ़ाते हैं। 'देखा, सोचा, समझा' के

प्रसिद्ध लेख 'विचारों की स्वतंत्रता' में उन्होंने इस विषय को बहुत ही स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार लिखा है—"यह उदाहरण (हृदय-परिवर्तन) है समाज की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किये बिना, समाज में शोषित और शोषक वर्गों के मौजूद रहते, केवल विचारों के बल से समाज से अशान्ति और विषमता को दूर करने की कल्पना। इस विचारधारा का प्रयोजन स्पष्ट है कि हम अपना ध्यान आर्थिक कठिनाईयों और विषमताओं की ओर से हटा कर केवल आदर्शों के बल से वर्त्तमान अन्याय और दुरवस्था का उपाय करने में लगे रहें अथवा कटी डोर की पतंग को आकाश में डांवाडोल होते देखकर अपना भाग्य ईश्वर की इच्छा से चलने वाली वायु पर निर्भर मान संतुष्ट बने रहें। आध्यात्मिकता के इस प्रपंच का सांसारिक प्रयोजन स्वामी-श्रेणी के आर्थिक हितों पर आने वाले संकट को दूर रखना ही है।" यह यशपाल के विचारक का निजी मत है। इससे उनके साहित्य-कथासाहित्य—का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं।

विचारों को जीवन से स्वतन्त्र न मानने के लिये यशपाल उस विषय का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं:—"जीवन के यथार्थ से विचारों की सत्ता को स्वतन्त्र मानने के दो प्रयोजन हैं; १-जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन स्वीकार करके भी आदर्शों को यथावत् रखना; दूसरा-बुद्धिवादी संतोष पाने के लिए विचारों की क्रान्ति को स्वीकार करके भी उसे समाज की व्यवस्था पर प्रभाव डालने से रोकना। * * * विचारों की स्वतन्त्रता से समाज के सामने समता और सर्वसाधारण की स्वतन्त्रता का आदर्श रखना और कर्म से शोषक और पूँजीवादी व्यवस्था को यथावत् बनाये रखना। विचारों और आदर्शों की सत्ता को जीवन से स्वतन्त्र मानने के आदर्शवादी कारण का अनिवार्य परिणाम यह होता है कि विचारों की तो अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, समाज का विचारों पर कोई नियंत्रण नहीं। * * * समाज की विचारधारा का ऐसा कोई स्रोत नहीं जिसपर मनुष्य-समाज का प्रभाव और नियंत्रण न हो। मनुष्य को इस बात की स्वतंत्रता है कि वह अपनी परिस्थितियों के अनुकूल समाज के कल्याण के लिये अपनी विचारधारा को ढलने दे।" वे आगे लिखते हैं:— "शाश्वत आदर्शों और विचारों की स्वतन्त्र सत्ता की कल्पना जनता और मानव-समाज से आत्म-निर्णय का अधिकार छीन कर उन्हें पंगु बना देने का सबसे सफल साधन रही है। शोषक-वर्ग आज भी उस साधन को छोड़ देने के लिये तैयार नहीं।" कहने का मतलब है कि यशपाल परिवर्त्तनशील और विकासशील आवश्यकताओं के अनुकूल मनुष्य-समाज के विचारों में नवीनता और समाज की व्यवस्था में नये मापदंड और मूल्यांकन के नये आधार को स्वीकार करते हैं।

उनके इस सामाजिक और राजनैतिक मतवादों के सम्बन्ध में हिन्दी के दूसरे प्रगतिशील लेखक श्री अज्ञेय ने लिखा है—"मैं समाज के विकास में आर्थिक परिस्थितियों के महत्व को स्वीकार करता हूँ परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य वस्तु को भी महत्व देता हूँ; विचारों का भी अपना प्रभाव और स्थान समाज के विकास में रहता है। मैं यह तो मानता हूँ कि मनुष्य भौतिक परिस्थितियों और पदार्थों का स्वामी बन जाता है, उनका नियंत्रण करता है। इसी प्रकार मैं मानता हूं कि जीवन से ही विचारों की उत्पत्ति होती है, परन्तु जीवन से विचारों की उत्पत्ति हो जाने के बाद विचारों की अपनी एक स्वतंत्र सत्ता भी हो जाती है।" अस्तु, यशपाल के मतवाद से कोई भी सहमत या असहमत हो सकता है किन्तु यशपाल जी की मान्यता के अनुसार ही इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बुद्धिजीवी किसी भी मान्यता को आँख बन्द कर स्वीकार नहीं करते। मनुष्यों में वैचारिक मतभेद समाज-विकास के शुभ लक्षण हैं।

यशपाल विचारक तो हैं ही, पर कहानीकार पहले हैं। उनका कथा-साहित्य वर्त्तमान युग के ह्रास और विकास का संगम है। कहानी के भाव-पक्ष और कला-पक्ष में उन्होंने क्रांतियाँ की हैं। यशपाल से हिन्दी का कथा-साहित्य नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ है, उसका एक नया अध्याय खुला है। स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव ने इन शब्दों में उनके कहानी–निबन्धों का बड़ा ही यथार्थ मूल्याङ्कन किया है। "यशपाल की कहानियों या लेखों को पढ़ कर आपके ओठों पर मुस्कराहट आयेगी। यह आत्मविस्मृति और आनन्दोल्लास की न होकर क्षोभ, परिताप और करुणा की होगी। * * * लेखक आत्म-विस्मृत समाज को कलम की नोक से गुदगुदा कर जगाने की चेष्टा करता है। समाज को जागते न देख कभी कलम की नोक समाज के शरीर में गड़ा भी देता है।" सच्ची बात तो यह है कि उनकी कहानियाँ उनके लिये लिखी गई हैं जो आँख खोल कर देखने, देखकर सोचने और सोचकर समझने के लिए तैयार हैं। फलतः ये कहानियाँ मनोरंजक ही नहीं, वरन् वर्त्तमान जीवन की विकट परिस्थितियों, असमंजस और समस्याओं को उभारने वाली भी हैं। इनमें हमारे समाज और मनुष्य का स्पन्दन है, और भविष्य के मनुष्य-समाज का संकेत भी।

कहानी के संबंध में यशपाल की अपनी मान्यताएँ हैं। उन्होंने कहानी और उसकी कला पर अपने ढंग से विचार किया है। जून, १९५२ में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'चित्र का शीर्षक' की भूमिका में यशपाल ने कहानी-कला से सम्बन्धित अपनी मान्यताएँ बड़ी ही स्पष्टता और विश्वसनीयता के साथ प्रकट की हैं। वे 'कला कला के लिए' वाले सिद्धान्त के जबर्दस्त विरोधी हैं। उनकी दृष्टि में कला मनुष्य के भावों का परिमार्जित रूप है; ऐसा रूप जो कलाकार व्यक्ति, समाज के विचार, चिन्तन और उपयोग के लिये समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। * * * स्थान और समय के अन्तर से भावों अथवा कला को प्रकट करने के साधनों या बाहरी रूप में अन्तर आ जाना आवश्यक है। स्थान और समय का दूसरा नाम है परिस्थितियाँ। मनुष्य की परिस्थितियों का प्रभाव न केवल कला की उत्पत्ति और रूप पर ही पड़ता है, बल्कि कला के मूल्यांकन पर भी पड़ता है।" कहने का मतलब यह है कि कला परिस्थिति, स्थान और समय की उत्पत्ति है और उसका प्रयोजन सभी समस्याओं में नैतिकता और कर्तव्य की प्रवृतियों की चिनगारियों को भावना की फूँक मार कर सुलगाता ही रहता है। अन्तर रहता है, हमारे विश्वास और दृष्टिकोण में। कभी हम समझते हैं, इन चिनगारियों से निकली हुई ज्वाला प्रकाश का मार्ग दिखायेगी, कभी हम समझते हैं, यह ज्वाला हमारे समाज की रक्षा करने वाले छप्पर को फूँक कर राख कर देगी (भस्मावृत्त चिनगारी की भूमिका से)। कला जीवन से विच्छिन्न नहीं हो सकती। यशपाल कला को सार्वभौम और विश्वजनीन सत्य नहीं मानते क्योंकि हर देश और समाज की कला एक दूसरे से भिन्न होती है।

यशपाल के कहानीकार ने रवि बाबू की उस उक्ति का विरोध किया है, जिसमें यह बताया गया है कि 'कहानी का उद्देश्य स्वयँ कहानी है।' यशपाल जी ने कहानी की भी नई मान्यताएँ स्थापित की हैं। उन्होंने इस सन्बन्ध में दो प्रश्न खड़े किये हैं। १–कहानी से रूप क्यों मिलता है? २–कहानीकार को कहानी सुनाने की इच्छा ही क्यों होती है? इन दो प्रश्नों के उत्तर में उनका कहना है कि पाठक के कौतूहल, उत्सुकता, सहानुभूति और विरोध का आधार कहानी द्वारा कहानी की समस्या से आत्मीयता अनुभव कराना ही है।—— कहानी से रस मिलने का कारण श्रोता या पाठक का कहानी के पात्र के जीवन और व्यवहार के प्रति कौतूहल और उत्सुकता है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में यशपाल ने लिखा है कि "कहानीकार को कहानी सुनाने की इच्छा का स्रोत पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आवश्यकतानुकूल काल्पनिक चित्रों द्वारा

अनुभूति और विचारों के आदान-प्रदान का अवसर पाना ही है, जिसमें श्रोता या पाठक अनुभूतिगम्य आत्मीयता का अनुभव करता है। हर हालत में कहानीकार और पाठक का पारस्परिक संबंध–संतुलन ठीक रहना चाहिये। कहानी की स्थूलता के सम्बन्ध में यशपाल का कहना है कि यदि कहानी के रूप में सामाजिक समस्या के विवेचन और चिन्ता को हम बोझ के रूप में अनुभव नहीं करते तो उसे हम कहानी–कला की सफलता अवश्य समझ सकते हैं। कहानी को निश्चय ही अरुचिकर और बोझिल नहीं होना चाहिये। परन्तु कहानी का उद्देश्य स्वयं कहानी ही बता देना कहानी को निष्प्रयोजन और निरुद्देश्य बना देना होगा। ****कहानी निष्फल और प्रमाण–शून्य न कभी हुई है न हो ही सकती है। कहानी से पढ़ने वाला उसका प्रभाव ही उसका प्रयोजन और उद्देश्य है।———जनवाद के इस युग में कला पर एकाधिकार की यह प्रवृत्ति कैसे सहन की जा सकती है। '-यशपाल की दृष्टि में कहानी जीवन की समस्याओं के सुलझाने का साधन है।' जीवन और कला का सम्बन्ध अटूट है। कहानी इस सम्बन्ध को अधिक से अधिक मजबूत करती है। यशपाल जी के वैचारिक मतवाद से मतभेद रखकर भी उनकी कहानियों का लोहा मानना ही पड़ता है, इसलिये कि वे हमारे समाज की नंगी भावनाओं और चित्रों को खोलकर हमारी आँखें खोलती हैं। हमारी विगत परम्परायें झनझना उठती हैं और हम नये समाज के पुनर्निमाण में लग जाते हैं। कविवर मैथिलीशरण ने यशपाल के बारे में ठीक ही कहा कि 'हिन्दी साहित्य अब देने योग्य हो गया है। उसके पहले तो वह लेता ही रहा।'

यशपाल हिन्दी साहित्य के उन कर्णधारों में से एक हैं, जिन्होंने साहित्य साधना के कुंड में अपने शरीर और आत्मा को तपाकर और गला कर सिद्ध कहानीकार यशपाल को पैदा किया। उनकी साहित्यिक ईमानदारी उनके नाम और काम को अमरता का प्रदान कर रही है। वह निस्संदेह विश्व के अमर साहित्यकारों की पंक्ति में बैठने-योग्य हैं।

गया वासुदेवनन्दन प्रसाद

यशपाल : प्रगतिशील साहित्यकार

पैप्सु सरकार प्रतिवर्ष अपने वार्षिक हिन्दी दरबार के अवसर पर पंजाब और पैप्सु के प्रमुख साहित्यकारों को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करके सम्मानित करती है । अन्य राज्य-सरकारों द्वारा ऐसे साहित्यिक दरबार आयोजित करने की प्रथा शायद अभी नहीं है । इस लिए पैप्सु सरकार का यह आयोजन अपने आप में अभिनन्दनीय है । पंजाब और पैप्सु ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को कई समर्थ और प्रतिभाशाली लेखक दिये हैं, इस लिए अपनी प्रादेशिक भाषा के साहित्य-सेवियों के साथ-साथ अपने प्रदेश के हिन्दी लेखक को भी सम्मानित करना एक उदार दृष्टि का ही परिणाम है, जो अन्यत्र भी अनुकरणीय है । पैप्सु सरकार एक और दृष्टि से भी बधाई की पात्र है । सरकारी तौर पर बहुधा ऐसे लेखकों और विचारकों को ही सम्मानित किया जाता है, जो प्रगतिवादी या उग्रपन्थी न हों, अर्थात जो वर्तमान समाज की व्यवस्था के तीव्र आलोचक न हों । इसके विपरीत जो साहित्यकार जितना ही अधिक पुराण-पन्थी हो, वह हमारी सरकारों की दृष्टि में उतना ही अधिक सम्मान के योग्य ठहरता है । इसी कारण अक्सर लेखक का साहित्यिक कृतित्व उनके निर्णय का आधार नहीं बनता । किन्तु पैप्सु सरकार ऐसे संकीर्ण पूर्वग्रहों को लेकर नहीं चली है, और इस वर्ष हिन्दी क प्रमुख प्रगतिशील लेखक श्री यशपाल को सम्मानित करने जा रही है, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है । श्री यशपाल सभी दृष्टियों से अभी तरुण साहित्यकार ही हैं, और अपनी साहित्य-सर्जना की अन्तिम मंज़िल तक पहुँचने में उन्हें अभी कई दशक लगेंगे, अर्थात उनकी प्रतिभा अभी विकासमान है और वे अपनी संपूर्ण शक्ति से साहित्य-रचना के कार्य में संलग्न हैं । बीस वर्षों के अनवरत परिश्रम के बाद भी उनकी रचना-शक्ति में शैथिल्य नहीं आया—इस लिए पैप्सु सरकार ने उनको सम्मानित करने का जो आयोजन किया है, वह इस कारण कि उन्होंने इस थोड़ी आयु में ही जिस साहित्य की सृष्टि की है, वह विशिष्ट ही नहीं श्रेष्ठ भी है । साहित्य में कृतित्व की पूजा होनी चाहिए, आयु या मतवाद की नहीं; पैप्सु सरकार इस उदार दृष्टि को लेकर चली है, इसके लिए साधुवाद ।

लेखक या कलाकार के जीवन-काल में हम अक्सर इस सिद्धान्त का व्यतिक्रम कर जाते हैं, लेकिन साहित्य और कला के इतिहास में अन्ततः इस सिद्धान्त की ही विजय होती है, यानि लेखक या कलाकार का कृतित्व ही पूजित होता है । अपने जीवन-काल में किसी लेखक या कलाकार को कितना सम्मान या असम्मान मिलता है, इतिहास में उसकी स्थायी कीर्ति पर इसका कोई असर नहीं पड़ता । स्थायी कीर्ति उसकी रचना की श्रेष्ठता पर ही निर्भर करती है लेकिन किसी भी सच्चे और श्रेष्ठ लेखक या कलाकार

को अपने जीवन-काल में वह कीर्ति न मिले, जो उसका प्राप्य है, तो वह कोई सुखकर बात नहीं है, चाहे बाद में उसे कितनी भी महान कीर्ति क्यों न मिले। यह असंगति जीवन के एक व्यापक वैषम्य की ही सूचक है। पहले चाहे जैसा होता हो, लेकिन हमारे जनवादी समाज और राज्य-तंत्र को तो इस वैषम्य को मिटाने का सजग प्रयत्न करना चाहिए, ताकि किसी भी प्रतिभाशाली रचनाकार का जीवन-काल कटु और दुखी न बने।

यशपाल के संबंध में लिखते समय यह सब उल्लेख करने का कारण यह है कि आरंभ में यशपाल जैसे ख्यातनामा क्रान्तिकारी व्यक्ति को भी एक लेखक के रूप में स्वीकृति पाने के लिए कई वर्षों तक विकट संघर्ष करना पड़ा है।

यशपाल ने लगभग तीस वर्ष पहले अपने जेल-जीवन में ही लिखना आरंभ किया था। उनसे मेरा परिचय लगभग सोलह-सत्रह वर्ष पुराना है। पहले कांग्रेसी मंत्रिमंडल के ज़माने में जेल से छूट कर यशपाल ने 'विप्लव' का प्रकाशन-संपादन शुरू किया था, और उनकी कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। उन दिनों का साहित्यिक वातावरण उनके लिए अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार का साबित हुआ। यशपाल एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी युवक थे, जेल से छूट कर आये थे और मार्क्सवादी विचारों के व्यक्ति थे—ये सब बातें लेखक के रूप में उनकी लोक-प्रियता बढ़ाने में अनुकूल सिद्ध हुई, क्योंकि राष्ट्रीय चेतना में उन दिनों क्रान्तिकारी और मार्क्सवादी विचारों का स्फूर्तिदायक समावेश हो रहा था और भारतीय जनता में ही नहीं बुद्धि-जीवी वर्ग में भी इन उग्र विचारों के प्रति सहज आकर्षण था। इस लिए यशपाल को लोक-प्रियता पाने के लिए विशेष संघर्ष नहीं करना पड़ा, क्योंकि वातावरण उनके अनुकूल था। इसके अतिरिक्त साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन अभी नया-नया ही शुरू हुआ था और उस पीढ़ी के अधिकांश तरुण लेखक प्रगतिशील आंदोलन के समर्थक थे इस लिए यशपाल को हिन्दी पाठकों या अपनी पीढ़ी के तरुण लेखकों या आलोचकों से विरोध नहीं मिला। उन्हें विरोध मिला तो पिछली पीढ़ी के साहित्यकारों और आलोचकों से, जिनका प्रभाव साहित्य के सीमित क्षेत्र में पर्याप्त था। इन आलोचकों में अधिकतर शास्त्रीय पद्धति के रूढ़िवादी आलोचक थे और विश्व-विद्यालयों और साहित्य संस्थाओं पर उनका प्रभुत्व था। साहित्य के एक विशिष्ट अभिजात वर्ग में ऐसे रूढ़िवादियों का हमेशा, ही पर्याप्त प्रभाव रहता है, जिससे वे किसी भी नये रूढ़ि-विरोध लेखक को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान करने में मनचाही देर लगा सकते हैं। जब से खड़ी बोली में हिन्दी-साहित्य की रचना शुरू हुई है, तब से इलाहाबाद और बनारस उसके प्रमुख केन्द्र रहे हैं, यद्यपि इन नगरों की प्रादेशिक भाषा खड़ी बोली नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जब तक इन केन्द्रों के हिन्दी-लेखक अन्य स्थान के किसी लेखक को मान्यता प्रदान न कर दें, तब तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान पाना उसके लिए दुर्लभ रहता है। इतना ही नहीं, साहित्य-जगत में, समुचित प्रतिष्ठा भी उसे नहीं मिलती। यह भी एक रूढ़ि-सी बन गयी है। यशपाल को आरंभ में इस रूढ़ि का मुकाबला करना पड़ा। यशपाल पंजाबी हैं, अर्थात जन्मत: हिन्दी-क्षेत्र से बाहर के निवासी—स्वाभाविक है कि उनकी भाषा-शैली जयशंकर प्रसाद या चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' जैसी संस्कृत-गर्भित नहीं हो सकती थी। इस लिए आरंभ में आलोचकों के वर्ग में यशपाल के बारे में एक बहुप्रचारित धारणा यह थी कि "यशपाल तो पंजाबी हैं। उन्हें हिन्दी लिखना नहीं आता। उनकी भाषा अनगढ़ है। उसमें पर्याप्त मार्जन नहीं हैं। हां, कहानियाँ रोचक लिख लेते हैं, लेकिन जब भाषा ही अशुद्ध हो तो उनका साहित्यिक मूल्य क्या हो सकता है?"

अनुमान किया जा सकता है कि किसी भी प्रतिभाशाली लेखक के विरुद्ध इस प्रकार का भाषा–सीमित दुराग्रह बहुत दिन तक नहीं चल सकता, क्योंकि लेखक स्वयं विकास करता है, और भाषा और शैली की जिन त्रुटियों की ओर आलोचक इशारा करते हैं, उन्हें अगली रचनाओं में दुहराने से यथा-साध्य बचने की कोशिश करता है। इसके अतिरिक्त उसके पास यदि कहने को कुछ नया होता है और उसके विचारों में ताज़गी और गहराई होती है, तो पाठक-वर्ग में उसकी बढ़ती हुई लोक प्रियता के आगे बड़े से बड़ा दुराग्रही आलोचक भी अपना सिर झुकाने के लिए विवश हो जाता है और भाषा-व्याकरण की साधारण त्रुटियों की उपेक्षा करने लगता है। इसलिए यशपाल के सम्बन्ध में रूढ़िवादियों की ओर से यह भाषागत छिद्रन्वेषण बहुत दिनों तक नहीं चला, यद्यपि इस विरोध की प्रतिक्रिया के रूप में यशपाल ने अपना दूसरा उपन्यास 'दिव्या' लिखा था, जिसमें उन्होंने तत्सम शब्दों का प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि वह भी प्रसाद-हृदयेश-शैली की संस्कृत-गर्भित हिन्दी लिख सकते हैं।

हिन्दी के रूढ़िवादी आलोचक और लेखक यशपाल को हिन्दी–साहित्य की एक नयी, उभरती हुई शक्ति के रूप में न चाह कर भी स्वीकार करने के लिए विवश हो रहे थे उनकी कहानियों की विचार–वस्तु के कारण, जो उनकी समस्त नैतिक मान्यताओं को एक खुली चुनौती थी। अपने पहले उपन्यास 'दादा कामरेड' में यशपाल ने नयी क्रान्तिकारी विचार–वस्तु देकर पुरानी मान्यतओं को जोर से झकझोर दिया था और विरोधियों के तर्क–वाण भाषा की अनगढ़ता को छोड़कर यशपाल के विचारों और पात्रों के चरित्र–चित्रण पर साधे जाने लगे। विशेषकर शैल को उपन्यास में हरीश के सामने नंगा कराने के प्रसंग को लेकर खूब तूफान खड़ा किया गया। श्लीलता और अश्लीलता का प्रश्न उठाया गया, यद्यपि हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में तथा मध्ययुग के शृंगारी साहित्य में इससे भी अधिक नग्न प्रसंगों की भरमार है। विश्व–साहित्य की महान कृतियों में रति और प्रेम–क्रीड़ा के प्रसंग विरल नहीं है। लेकिन 'दादा कामरेड' की शैल को नग्न होते देखकर हमारे रूढ़िपंथी आलोचक विचलित हो उठे। इस प्रसंग की आड़ लेकर समूचे प्रगतिशील आंदोलन पर नैतिक आक्रमण करने का उन्हें एक सुगम बहाना मिल गया। लेकिन यह विरोध भी बहुत दिनों तक नहीं चला, क्योंकि जैसा पहले ही बताया जा चुका है संस्कृत या रीतिकालीन साहित्य में या पाश्चात्य साहित्य में नग्न प्रसंग कभी वर्जित नहीं रहे। इसके अतिरिक्त यशपाल से पहले जैनधर्मावलम्बी, और गांधीवादी जैनेन्द्र कुमार अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'सुनीता' में सुनीता को भी निरावरण करके दिखा चुके थे। इसलिए 'दिव्या' की रचना के समय तक यशपाल के विरुद्ध आलोचकों की ओर से भाषा की अनगढ़ता और विचारों की अश्लीलता के आधार पर किये जाने वाले आक्रमण शान्त हो गये और यशपाल को उन्होंने भी प्रेमचंद के बाद जैनेन्द्र कुमार के समान ही एक समर्थ एवं शीर्षकोटि कथाकार स्वीकार कर लिया। यहां पर यह सूचित कर देना दिलचस्प होगा कि जब रूढ़िवादियों तथा प्रगतिवाद के विरोधियों के आक्रमण और लांछन समाप्त हो गये, तो कुछ प्रगतिवादी आलोचकों ने यशपाल के विरुद्ध उन्हीं तर्कों का अपने ढंग से इस्तेमाल करना शुरु किया। मैं इस संबंध में यशपाल की हिमायत नहीं कर रहा लेकिन इतना अवश्य चाहता हूँ आलोचक के लिए बहुत व्यापक और उदार नैतिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। खैर, हम यशपाल के आलोचकों और विरोधियों को छोड़ कर आगे बढ़ सकते हैं। एक नयी दृष्टि से सम्पन्न लेखक के नाते यशपाल को अपनी साहित्यिक यात्रा के आरंभ में जितना विरोध मिलना था वह उन्हें मिल चुका। अब हम एक रचनाकार के रूप में यशपाल के कृतित्व का संक्षेप में मूल्यांकन कर सकते हैं।

यशपाल मुख्यत: एक कथाकार हैं। यद्यपि उन्होंने कुछेक एकांकी भी लिखे हैं। लेकिन कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में उनका प्रमुख स्थान है। हिन्दी-कथा-साहित्य में यशपाल का कृतित्व असाधारण महत्व का है अपने उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने युग-जीवन और उसके संघर्षों को आकलित करने का प्रयत्न किया है। उनका उद्देश्य वर्तमान समाज की मान्यताओं के खोखलेपन को उघाड़कर सामने रखना रहा है, ताकि पाठक उस द्वैत और वैषम्य के प्रति सचेत हो सके, जो आधुनिक मनुष्य के विचार और कर्म में पैदा हो गया है और जो वस्तुतः वर्ग-समाज के वैषम्य का ही मानव-सम्बंधों पर पड़ा अक्स है। आज के समाज की व्यवस्था ऐसी है कि मनुष्य अपनी स्वाभाविक इच्छा से तो ऊँचे, उदार और नैतिक विचारों की ओर आकृष्ट होता है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में अपने उच्च सिद्धान्तों, संकल्पों और आकांक्षाओं को ताक पर उठाकर रख देता है और नीच से नीच कर्म करने के लिए विवश हो जाता है। यशपाल की कहानियां और उनके उपन्यासों में दरअसल वर्ग-समाज के हर स्तर पर रहने वाले प्राणियों की इस विवशता की कहानी की ही वैविध्यपूर्ण विवृति मिलती है। संभव है कि व्यंग्यपूर्ण शैली के कारण यशपाल ने सामाजिक जीवन के इस सत्य को रेखांकित करने में अतिरंजना से काम लिया है, जिससे उनके चित्रण एक सीमा तक एकांगी हो गये हैं और कुछ आलोचकों को भ्रम हुआ है कि वे जान-बूझ कर नग्न प्रसंगों की भरती करते हैं या राजनीतिक-रोमांस लिखते हैं। लेकिन यशपाल की कला के वास्तविक मर्म को इस प्रकार के भ्रमों में पड़कर समझना संभव नहीं है। यशपाल की रचनाओं में एकांगिता इस लिए नज़र आती है क्योंकि अक्सर ऐसा लगता है जैसे वे जीवन की समस्त समस्याओं को 'शिश्नोदर' की समस्या के रूप में ही देखते हैं। पुरुष के सामने प्रेम और त्याग का कोई मूल्य नहीं, वह अपना पेट भरने के लिए और अपनी वासना तृप्ति के लिए गर्हित काम कर सकता है और प्रेम का स्वांग रच सकता है। स्त्री भी आश्रय पाने के लिए किसी भी पुरुष के आगे अपने को समर्पित कर सकती है। यशपाल की रचनाओं को पढ़कर साधारणतया यह सन्देह होता है कि सचमुच लेखक इस 'सत्य' का ही उद्घाटन करना चाहता है। और चूँकि यह मानव-जीवन का एकांगी सत्य ही है इस लिए पाठक को ऐसा भ्रम हो जाता है कि यशपाल 'शिश्नोदर वादी' हैं। लेकिन यशपाल की रचनाओं का वास्तविक अर्थ यह नहीं है। मैं उनकी रचनाओं के मर्म को समझना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि उनके आलोचक यह भूल जाते हैं कि यशपाल अपने उपन्यासों में किसी 'शाश्वत' पुरुष या नारी 'का चित्रण नहीं करते—कोई कथाकार नहीं करता—बल्कि वर्त्तमान वर्ग-समाज की विकृतियों से पीड़ित, अभिशप्त स्त्री-पुरुषों का चित्र खींचते हैं। वर्त्तमान समाज ने 'अधिकांश' लोगों के विचार और कर्म में यह द्वैत पैदा कर दिया है, इसमें संदेह नहीं। लेकिन 'अधिकांश' लोगों में ही, 'सब' में नहीं यह भी उतना ही सत्य है। यशपाल चूँकि अधिकतर इन अभिशप्त लोगों को ही चित्रित करते हैं, इसलिए यह भ्रम पैदा होना स्वाभाविक है कि वे मानव-प्रकृति को अधम और शिश्नोदर संबंधी स्वार्थों तक ही सीमित मानते हैं। एक कलाकार की हैसियत से यशपाल का मन्तव्य चाहे यह न रहा हो, लेकिन उनके पाठकों में ऐसा भ्रम पैदा होता रहेगा—यह स्वाभाविक है। क्योंकि मूलतःव्यंग्यकार होने के कारण वे अक्सर जीवन के एकांगी सत्य को ही अतिरंजित करके दिखाते हैं और उनके रचे पात्रों में 'नैगेटिव' पात्र अधिक हैं, 'पाज़िटिव' पात्र कम हैं। 'दिव्या' का मारिश और 'मनुष्य के रूप' का धनसिंह एक प्रकार से अपवाद मात्र हैं। यशपाल चित्रण के लिए कौन से और कैसे पात्र चुनते हैं और जीवन के किन प्रसंगों का जीवन करते हैं, यह आलोचक और पाठक के निर्णय का विषय नहीं है। उन्होंने जो पात्र और जीवन-प्रसंग चुने हैं और वर्णित किये हैं, हमारे लिए तो

वे ही विचारणीय हैं। इस दृष्टि से यद्यपि हमें उनके पात्र और प्रसग एकाग और कभी कभी अतिरंजित क्यों न लगते हों! किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि उन्होंने अपनी रचनाओं में आधुनिक जीवन की एक मौलिक समस्या को उद्घाटित किया है—वह यह कि पूँजी की सत्ता वाले समाज में 'प्रेम' की निष्कलुष, त्यागमयी मानवीय भावना भी विकृत हो कर व्यावसायिक रूप धारण कर लेती है। जो समाज इतना विकृत हो चुका हो, वह किसी भी प्रकार हितकर नहीं समझा जा सकता। उनका उपन्यास 'मनुष्य के रूप' इस विकृत समाज का जीता-जागता चित्र उपस्थित करता है। यशपाल का एकांगी किन्तु निर्मम व्यंग्य इस समाज के प्रति आत्मा में विद्रोह जगाता है जो उनकी कला का संविधायक (पाज़िटिव) पक्ष है। यशपाल की कला हमें अपने समाज की यथार्थता के एक क्रूर पहलू से परिचित कराती है, यह उसकी सफलता का प्रमाण है। 'आश्रय का आदान-प्रदान' ही मानव समाज की नैतिकता का मूलाधार हो, यशपाल ने यह कभी नहीं कहा। उनका कहना केवल इतना है कि मौजूदा समाज में ऐसा होता है, जिससे मनुष्य के विचार और कर्म में एक भयंकर वैषम्य पैदा हो गया है। यह स्थिति वांछनीय नहीं है, यशपाल की रचनाएँ इस सत्य की ओर ही संकेत करती हैं। इस संकेत को अधिकांश पाठक ग्रहण कर लेते हैं, चाहे कुछ आलोचक न कर पाते हों।

अजमेर

शिवदानसिंह चौहान

यशपाल की कला का सामान्य स्वरूप

यशपाल के लिए कला का जीवन और मानवता से सीधा सम्बन्ध है । यदि कला मनुष्यता के विकास में अपना योगदान नहीं देती तो यह निष्प्रयोजन है । कला के विषय में उनका मत है कि "कलाकार मानव पहले है और कला उसकी मानवता का विकास और स्फुरण मात्र है । जो भावना और व्यवस्था मानवता के विकास में और समृद्धि में सहायक है वह कला के विकास की शत्रु नहीं हो सकती । मानवता की पूर्णता और उपलब्धि के लिए संयम को स्वीकार करना कला का विनाश है ।" सत्य तो यह है कि जिन लोगों के पास सामाजिक जीवन को व्यक्ति की इकाई और उसकी समस्याओं से जोड़ने का दम नहीं रहता वे कला के निष्प्रयोजन रूप की बात उठाते हैं । प्रकृति में जो है उसका उपभोग मनुष्य ही करता है, मनुष्य जिसका निर्माण करता है वह भी अपने लिए ही, फिर कला मनुष्य के लिए न होकर स्वयँ अपने लिए ही है—इसके कुछ अर्थ नहीं ? मनुष्य जब कलाकार के शिल्प को परखता है तो उसका

उद्देश्य उस शिल्प से कुछ पाने का ही होता है ।

यशपाल के सम्मुख यह स्पष्ट है कि मनुष्य, समाज और जीवन-जगत् की वस्तुस्थिति और रहस्यों को जानने की इच्छा रखता है जिससे वह अपने सुख का मार्ग बना सके । कला का उद्देश्य जीवन में पूर्णता की खोज है । कला वही है जिसके भीतर से मनुष्य को अपनी जिज्ञासा का, समस्याओं का उत्तर मिले । जिसमें भौतिक जगत का सूक्ष्म स्वरूप मिले, जिसे मनुष्य जानता हो, जिसे देख कर मनुष्य कह दे—हाँ, यही ठीक है क्योंकि ऐसा ही है ऐसा ही होता है । एक साहित्यकार की कला का स्वरूप भी तभी महान है जब उसमें से एक स्वर उठे; दुःख की समस्याओं के समाना के लिए एक दिशा का संकेत हो ; अन्यथा वह व्यर्थ है—शब्दों और विचारों का जंजाल मात्र है । वह ऐसी मूर्ति की भाँति है जो किस चीज़ से बनी है इसका पता नहीं; वह क्या चीज़ बनी है इसका पता भी नहीं । ऐसी कला के पास, जो व्यक्ति-विशेष की अन्तश्चेतना को अभिव्यक्त करने का दंभ भरती है अपनी ही चेतना को दूसरों का भी समझ लेती है, संवेदना की कमी होती है, वह दूसरों के अन्तर्मन में प्रवेश कर देखना नहीं चाहती, शायद प्रवेश ही नहीं कर सकती । इसलिए वह कहने का दंभ करती है कि उसका अन्तर्जगत बहिर्जगत से बड़ा है, वह अपने में स्वतन्त्र है, उसका बाहर से कोई सम्बन्ध नहीं । किन्तु यह गलत है क्योंकि व्यक्ति अपने आप में पूर्ण नहीं होता । इसका अन्तर्जगत बहिर्जगत की ही प्रतिछाया है और जो बाहर नहीं देख सकता उसको विचार नहीं मिलेंगे, भावनाएँ नहीं मिलेंगी । वह भावनाओं का दरिद्र होगा,

इसलिए उसकी कला कुछ दे भी नहीं सकती। वह कला बिना पतवार की नौका की भाँति लहरों में चकराया करेगी।

यशपाल व्यक्तिवादियों की इस संकीर्णता के प्रति सजग हैं। इसलिए उनकी कला का स्वरूप सर्वथा भिन्न है। मानव-जीवन, इस जीवन की प्रकृति के बीच स्थित' समाज की विभिन्न प्रवृत्तियाँ, व्यक्ति का अपनी उन्नति के लिए उपयुक्त रूप-आदि सभी कुछ उनकी कला से निखरते गए हैं। केवल अपने अन्तःकरण की बात ढोंग है, एक घिरे चौखटे में बंद होने का प्रयत्न है इसलिए कलाकार अपने से अलग जो बेचैन हैं, जो कराह रहे हैं, उनकी बात न कहे, उनकी पीड़ा को न उभारे तो वह व्यक्ति और समाज दोनों के प्रति अपने देय से इनकार करता है। यशपाल की इस ईमानदारी की अभिव्यक्ति का स्वरूप दिनों-दिन निखरता जा रहा है। उन्होंने कहा है कि 'कलात्मक अथवा रोचक ढंग से विचारों की अभिव्यक्ति करने की सफलता ही कला की सफलता है। साहित्य को प्रयोजनपूर्ण बनाने और साहित्य द्वारा अपनी मान्यताओं की स्थापना करने की प्रवृत्ति केवल आज के प्रगतिशील साहित्य का ही आविष्कार अथवा दुराग्रह नहीं है।........सभी युगों के साहित्यिकों ने इस प्रवृत्ति को निबाहा है।'

कलाकार का यह दायित्व ही उसकी कला का प्राण है। जो अपना दायित्व ही नहीं मानता वह उसे पूरा कहाँ करेगा, वह पूरा क्या करेगा? जो कहता है 'मैं' और 'मेरे' अन्दर का जो है सत्य है—उसे देखो, तुम्हें देखना होगा क्योंकि यही मैं दे सकता हूँ, वह दूसरा क्या देखना चाहता है, उसे क्यों जानना चाहेगा। किन्तु जो कहता है,—मेरे अन्दर जो है वह तो आप से आप बाहर आयेगा जब मैं तुम्हें कुछ देना चाहूँगा लेकिन तुम में जो है, जिसे तुम नहीं जानते, जिसे तुम्हें जानना चाहिए वह भी मैं तुम्हें दूँगा और दूँगा इसलिए कि 'मैं' और 'तुम' अलग अलग इकाइयाँ तो हैं सही लेकिन एक 'हम' भी हैं और वही प्रबल है, वही मान्य है। बिना उसके 'मैं' और 'तुम' अलग-अलग कुछ हैं ही नहीं। यशपाल की कला से उस 'हम' का स्वरूप ही शक्ति पाता है, वही है जिसे वे केवल 'मैं' से बड़ा मानते हैं और ऐसा इसलिए है कि जीवन की गति 'हम' से ही संभव है। प्रकृति का समस्त सौन्दर्य उस 'हम' के कारण ही 'मैं' को आनन्द देता है अन्यथा प्रकृति शून्य है, जड़ है, व्यर्थ है। व्यक्ति समाज में रह कर ही प्रकृति को अपने उपभोग का साधन बना सकता है। अकेला या कुछ 'अकेले' तो निःसहाय और निरीह ही होंगे।

नूतन शक्तियों का सृजन ही कलाकार का काम है। वे शक्तियाँ जीवन से ली गई हों, अतीत को वर्त्तमान के अनुरूप रखते हुए भविष्य के निर्माण में सहायक हों। जो अतीत को ही वर्त्तमान में रखना चाहता है वह मनुष्य और समाज की गति को रोकना चाहता है। वही प्रतिक्रियावादी है वह आगे नहीं पीछे की ओर दौड़ रहा है। वह कला क्या जो वर्त्तमान को इतना न दे कि भविष्य का स्वरूप निश्चित हो। जो कहते हैं भविष्य कुछ नहीं वर्त्तमान ही है, उन्हें कहना चाहिए अतीत ही कुछ नहीं। भविष्य का वर्त्तमान बन कर पीछे हो जाना ही अतीत है किन्तु भविष्य तब भी रहता है जब अतीत बन गया होता है। ईमानदार कलाकार तीनों का समझता है। वह अतीत को भुलाता नहीं लेकिन वह उसे वर्तमान भी नहीं मान लेता।

यशपाल में हम यही पाते हैं। वे अतीत से लेते हैं लेकिन वही जो उन्हें वर्त्तमात में कुछ दे जो उनके वर्त्तमान को भविष्य के रूप में ताज़गी दे। जहाँ अतीत की कमियों को दिखाने का प्रयत्न उन्होंने किया है वह भी

व्यर्थ नहीं । वे उन कमियों को जान गए हैं और उन्हें जान लेना भी तो पाना ही है क्योंकि जान लेने पर वे पुनः घटित नहीं होंगी । न जाने कितनी रूढ़ आस्थाएँ, कितने प्रतिगामी विचार जो आज के मनुष्य को अपने होने से ही दाह रहे थे यशपाल द्वारा झकझोर दिए गए हैं ।

उनकी कला का एक स्वरूप उसकी मुक्ति-भावना भी है । जहाँ कहीं भी घेरे रहे हैं यशपाल ने उन्हें तोड़ना चाहा है ताकि उन घेरों से मुक्त होकर ज़िन्दगी खुल कर साँस ले सके । नारी ! जो भारतीय समाज में धर्म और नीति की चक्की में पिसती रही है यशपाल की कला से छटपटा कर चक्की के उन पाटों को तोड़ देना चाहती है । शायद नारी का जो रूप यशपाल चाहते हैं वह कम ही लोगों द्वारा मान्य होगा, क्योंकि इतना मुक्त रूप पुरुषों के स्त्री को सम्पत्ति समझने के परम्परागत अधिकार पर भरपूर चोट करता है । किन्तु वह मुक्ति इसलिये नहीं है कि प्रेम के स्रोत सूख जाएँ-पुरुष और नारी दो विपरीत दिशाओं में भागें या पास रह कर भी एक तनाव हो, बल्कि इसलिये कि प्यार के सूखे सोतों में नए जीवन का कलकल रव भर जाएँ, यह जीवन की मांग है क्योंकि मनुष्य के विकास की वह बहुत महत्त्वपूर्ण धुरी है। यशपाल नारी-विषयक समस्याओं में प्रेमचन्द से आगे हैं । उनकी नारी प्रेमचन्द की भाँति पतिव्रता रह कर पवित्र नहीं रहना चाहती । वह तलाक देती है और उसे देना चाहिए । स्त्रियों के विषय में प्रेमचंद का दृष्टिकोण अधिक व्यापक नहीं था । 'जब हमें इस बात का निश्चय ही नहीं है कि तलाक हमारी वैवाहिक बुराइयों को दूर करेगा, मैं उसे समाज पर लादना नहीं चाहता ।' या 'मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग-सेवा-पवित्रता का केन्द्रित होना ।' प्रेमचन्द का यह आदर्श तुलसी का आदर्श न सही पर मर्यादावादी अवश्य है । नारी को कितनी मुक्ति चाहिए इसका निर्णय पुरुष नहीं नारी ही करेगी । यशपाल यह मानते हैं इसीलिए जहाँ प्रेमचन्द की कला को, नारी को अत्यधिक आदर्शवादी रूप देने से कुछ क्षति पहुँची, यशपाल की कला में उसकी मुक्ति-भावना से एक दमक आ गई है ।

यशपाल की कला में निखार का एक और कारण, बहुत बड़ा कारण उनकी तर्क-शक्ति है जैसा कि उन्होंने 'तर्क का तूफ़ान' की भूमिका में स्पष्ट किया है । जो स्पष्ट है, सुलझा हुआ है वही एक स्पष्ट चित्र एक मुखर कलाकृति दे सकेगा । और स्पष्ट वही होगा जो तर्क को सदा साथ रखने का प्रयत्न करेगा उसे पंगु नहीं बनायेगा । तर्क तभी पंगु होता है जब अंध विश्वास, रहस्यवाद या अध्यात्मवाद की शरण ली जाती है और यदि तर्क से भय लगे (जैसा कि धर्म और ईश्वर से भय खाने वाले (god fearing) व्यक्तियों को लगता है) तो विचारों और भावनाओं की सुघड़ अभिव्यक्ति होगी । यही सुघड़ता कला की प्राण है । व्यक्तिवाद और आस्तिकता के परम भक्त श्री आई.ए. एक्स्ट्रास महोदय अपनी पादरियों जैसी भाषा में कहते हैं

"नास्तिक और मानववादी उत्तरदायित्व का भार सहन करने से डरते हैं । सन्देह के वातावरण में पले होने के कारण उनको कहीं गहरी आस्था नहीं होती और न दृढ़ निश्चय ही होते हैं" ।

अगर इस "गहरी बात" को मान लिया जाय तो बुद्ध और महावीर, मार्क्स और लेनिन, बालजक और होवर्ड फास्ट, गोर्की और शोलोकोफ तथा प्रेमचन्द और राहुल जैसे मेधावी व्यक्तियों का क्या होगा? क्या एक्स्ट्रास महोदय यह कह देंगे कि उपर्युक्त प्रतिभाओं ने अपना उत्तरदायित्व नहीं निबाहा और अज्ञेय जी की स्थिति क्या होगी जो कभी सोचते हैं ईश्वर है और कभी उससे इनकार भी कर जाते हैं ।

---

१ प्रेमचन्दः एक विवेचना-इन्द्रनाथ मदान (अन्त में दिए गए पत्र)

यशपाल की कला में निम्न कोटि की चीज़ खोजने का प्रयत्न भी किया गया है। इस तरह की खोज करने वाले अपने को उदारमना कह कर यह घोषणा करते हैं कि साहित्यकार को राजनीति से बिलकुल अलग रहना चाहिए (वैसे इन लोगों की भी राजनीति होती हैं जिसे कहते हैं पूँजीवादी राजनीति) नहीं तो उसकी कला में विशुद्धता नहीं रह पायेगी। ऐसे लोग विशुद्ध कला की बात उठा कर अपनी ईमानदारी की खुद तारीफ करते हैं। यदि उनकी बात को स्वीकार कर लिया जाय तो राजनीति को जीवन का अभिन्न अंग मानने वाले साहित्यकार ईमानदार नहीं हो सकते। इसलिए साहित्य-कला में ईमादारी क्या है यह जान लेना अपेक्षित है।

सीध-सादे अर्थ में ईमानदारी है यथार्थ को स्वीकार करना। जो है, उसे मानना कि वह है। और जो है उससे इनकार कर जाना ईमानफरोशी है। तो क्या राजनीति के बिना आज का सामाजिक जीवन संभव है? क्या वर्त्तमान समाज-व्यवस्था में जों पूर्णतया पूँजीवादी है, जब निर्वाचन और मत देने के अधिकार हैं, हर सच्चा नागरिक अपने अधिकार को साहित्यकार होने के कारण छोड़ देता है, यदि वह छोड़ देता है तो निश्चय ही उसे राजनीति का 'रोग' नहीं है लेकिन छोड़ देने पर वह सच्चा नागरिक भी नहीं है, क्योंकि अधिकार होने के साथ-साथ वह उसका कर्त्तव्य भी है। उस कर्त्तव्य की शर्त कैसे होगी? स्पष्ट है कि नागरिक का जो साहित्यकार भी हो सकता है, एक विशेष राजनीतिक लक्ष्य होता है कि समाज-व्यवस्था या शासन-प्रणाली की कमी और उसे दूर करने के प्रयत्न का संकेत करे।

इलाचन्द्र जी, जैनेन्द्र जी, अज्ञेय जी आदि व्यक्ति, जिनका ध्येय किसी भी राजनीतिक या धार्मिक विचार-धारा से सम्बन्ध न रखते हुए साहित्य-रचना करना है, एक राजनीतिक दृष्टि रखते हैं! यह दृष्टि इसलिए रखनी पड़ती है कि बिना उसके काम नहीं चल सकता क्योंकि वर्त्तमान काल में राजनीति का जीवन से अभिन्न सम्बन्ध है।

अब प्रश्न है कि इस राजनीतिक दृष्टि को साहित्य में स्थान मिलना चाहिए या नहीं? विशुद्ध कलावादी या प्रयोगवादी कहेंगे—नहीं, जब कि हम देख चुके हैं कि उनके जीवन में भी राजनीति घुसती गई है। यहाँ शिवदान सिंह चौहान की बात बहुत कुछ स्पष्ट कर देगी ',यदि कोई राजकुमारों और राजकुमारियों, कोमलांगियों और सूटबूट-धारी पुरुषों के विषय में लिखता है तो यह उनकी दृष्टि में प्रोपगेण्डा नहीं है किन्तु यदि कोई किसान-मजदूर या मुफलिसों की बस्तियों के बारे में लिखता हैं वो वह प्रोपगैण्डा है।" शिवदान सिंह जी चौहान की बात मैंने इसलिए कही कि विशुद्धता का दावा करने वाले साहित्यकार राजनीतिक दृष्टिकोण को प्रोपगैण्डा मानते हैं। साहित्यिक तब इस राजनीतिक दृष्टि को अपनी कृति में स्थान देने से कतरा जाता है? जब वह समाज को नहीं अपने मन के भीतर को ही देख कर खुश रहना चाहता है, जब वह समाज में रहते हुए भी अपने को एक 'द्वीप' मान लेता है और उस 'द्वीप' के किनारों पर सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं की लहरें उफन-उफन कर टकराती हैं लेकिन उसे कुछ नहीं होता-क्योंकि वह एक 'द्वीप' होता हैं जो रूसो के 'द्वीप' का ही छोटा संस्करण है। ऐसे लोगों की कला का आधार शून्य होता है और शून्य पर खड़ी कला भी शून्य ही होगी।

किन्तु यशपाल! उनके लिए कला वही है जो जीवन से ली गई हो, जो जीवन की स्थिति को, उसकी पीड़ा और दर्द को, उसके हर्ष और आनन्द को निखारे और चूँकि जीवन समाज से ही संभव है, कला उस
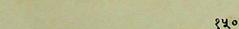
समाज से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकती। कला मनुष्य के भावों का परिमार्जित रूप है। ऐसा रूप जो कलाकार व्यक्ति-समाज के विचार-चिन्तन और उपयोग के लिए समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। राजनीति से समाज-व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध है और समाज-व्यवस्था पर व्यक्ति का सुख निर्भर करता है। व्यक्ति की अलग-अलग इकाइयाँ, सामाजिक जीवन की समृद्धि से अपना सुख ग्रहण करती हैं इसलिए राजनीति· जीवन का अभिन्न अंग है, इसलिए वह अंग कला की आधारभूमि की एक महत्वपूर्ण ईंट भी है। यशपाल में कला का यही स्वरूप है। उनकी कला का आकर्षण उनके बुद्धि तत्व में है अर्थात बुद्धि को उनकी कला द्वारा तृप्ति मिलती है। जो साहित्य समाज के दर्द से घबरा कर अपने अन्दर ही खोजना शुरू करता है, उस अन्दर को ही सत्य मान कर बाहर के वस्तु-सत्य से इनकार करता है, वह जीवन में आस्था भी नहीं रखता। अध्यात्मवादियों का संसार से परे या शरीर के भीतर ही (अष्ट चक्र में) सत्य को पाने का आग्रह जीवन के स्थूल सत्य से इनकार करना है।

यशपाल ने अपनी मेधा और तर्क से कला के इस असत्य रूप पर प्रहार किया है। उनकी कला के माध्यम से इस समाज-व्यवस्था की पोली स्थिति झाँक उठती है, पर्दाफाश होता है।

मनुष्य देखता है कि वह जिसे जीवन समझ कर जी रहा था, वह तो घिसट-घिसट कर मिलने वाली मौत थी। इसलिए एक प्रेरणा जन्म लेती है और वह इतनी बलवती होती है कि अंधविश्वासों की सुदृढ़ और कठोर दीवार को गिरा देती है; लगता है लेखक की कलम ने समाज को नंगा खड़ा कर दिया है। किन्तु वह नंगा रूप उसे बेइज्ज़त करने के लिए नहीं उसे दिखलाने के लिए है कि वह वैसा ही हो गया है; यदि वह उस नंगेपन को नहीं ढँकेगा तो लाज मर जायेगी।

वर्त्तमान समाज में कला के दो स्वरूपों का टकराव है—एक ओर व्यक्तिवाद और प्रयोगवाद की छिछली कला है तो दूसरी ओर सामाजिक जीवन में व्यक्ति की इकाईयों को मुक्त करने की प्रेरणा देकर जीवन में निष्ठा-भावना को शक्ति देने वाली कला है। इस टकराव का जो अन्त होगा वही मनुष्यता का भविष्य निश्चित करेगा, वही जीवन में कला की गति और दिशा का निर्णय करेगा।

यशपाल में जीवन के प्रति अपार निष्ठा है जो मनुष्य के दुख में प्रवेश कर उसका कारण ही जानना नहीं चाहती उसका अन्त भी करना चाहती है। कला की यह वेगवती धारा केवल यशपाल में नहीं आज हर ईमानदार कलाकार में जीवित है चाहे वह कृशन चन्दर और अब्बास हों चाहे राहुल, रांगेय राघव और नागार्जुन। भारतीय जीवन की वर्त्तमान घुटन में घुटन महसूस करने वाला आज कोई कलाकार ऐसा नहीं है जो इस घुटन से बाहर आने के लिए आवाज न उठा रहा हो। हाँ, यह उनमें नहीं मिलेगा जो 'शुद्ध साहित्यिक के रूप में राजनीति से ऊपरी तौर पर बहुत घबड़ाते हैं या घबड़ाने का ढोंग करते हैं। वे समाज में रह कर भी उससे अलग हैं और इसलिए अर्थ-संकट में न होते हुए भी बहुत ऊबे, बहुत परेशान और बेचैन हैं। यह बात उनके व्यक्तिगत जीवन से चाहे न पता चले लेकिन उनके साहित्य से ज़रूर पता चलती है। यशपाल के साहित्य से शुद्ध कलावादियों के साहित्य की तुलना करने से फर्क आप से आप मालूम हो जाता है। उसे छिपाया नहीं जा सकता।

जीवन की माँग केवल यही नहीं हैं कि हम अकेले ही उसके सौन्दर्य को जानें बल्कि यह भी है कि दूसरों को भी जीवन के अनन्त सौन्दर्य के प्रति आकर्षित करें, यह बताएँ कि वर्ग-विशेष के स्वार्थ के कारण

उत्पन्न की गई परिस्थितियाँ अब तक जीवन की रोशनी को सभी तक फैलने से रोकती रही हैं। इसलिए जीवन के दम घोंटने वाले घेरों को तोड़ दें। जिस कलाकार की कृति से यह बात उभरती है, जो जीवन के ऐसे रूप की आकांक्षा रखता है वह अपने दायित्व को निबाहता हैं, वह अपने सामाजिक और वैयक्तिक कर्त्तव्य के प्रति सजग है और यह एक बहुत बड़ी बात है। जो समाज की बेचैनियों के प्रति उदास रहता है. वह विश्वासघात करता है क्योंकि जिस समाज से उसका जीवन संभव हुआ वह उसी की दर्द भरी आवाज को, अपनी आवाज़ के माध्यम से नहीं उठाता।

जब हम यशपाल की कला का आधार देखते हैं तो हमें यही मिलता है कि उन्होंने अपना दायित्व निबाहा है। वे मनुष्य की छटपटाहट के साथ ही छटपटाए हैं, उन्होंने मानव की जिजीविषा को अपनी कला के माध्यम से उभारा है।

मानव की जिजीविषा को उभार कर उसके हाथों में प्यार और आत्म-विश्वास की लगाम देने वाले श्री यशपाल हिन्दी के अत्यन्त प्राणवान कथा-शिल्पी हैं।

इलाहाबाद — अनन्त

विद्रोही साहित्यकार

श्री यशपाल यद्यपि आजकल उत्तर प्रदेश में रहते हैं परन्तु जन्मत: वह पंचनद-निवासी हैं। उनकी क्रान्तिकारी साहित्यिक कृतियों और राजनैतिक प्रवृत्तियों तथा सामजिक रुचियों को प्रथम प्रेरणा-पंजाब के वातावरण से ही मिली। इसलिये पंचनदीय संस्थाओं द्वारा उनकी सेवाओं की सराहना में अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करना उचित ही है।

श्री यशपाल ने अनुवादक, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार और निबन्धकार-अनेक रूपों में रचनाएँ की हैं। अधिकांश रचनाएँ 'विप्लव ग्रन्थ माला' नाम से प्रकाशित हुई हैं। इन सब साहित्यिक कृतियों में अपनी-अपनी विशेषता का होना स्वाभाविक है। एक सामान्य प्रवृत्ति जो १६२१-१६५६ तक की उनकी रचनाओं में पायी जाती हैं-वह समाज की वर्तमान स्थिति के प्रति असन्तोष और आर्थिक विषमताओं के कारण मानवता के विकास के मार्ग में बाधक ढाँचे के प्रति विद्रोह की भावना है। असन्तोष और विद्रोह की इस भावना-को पैदा करने में उनके वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन ने भी काफी भाग लिया है।

शैशवकाल में, उनकी शिक्षा वैदिक आदर्शों को वर्तमान युग के वैज्ञानिक वातावरण में मूर्त रूप देने का प्रयत्न करने वाली संस्था गुरुकुल में हुई थी। उस समय के नास्तिक-आस्तिक क्रान्तिकारी समय-समय पर इस संस्था में आश्रय लेते थे और विद्यार्थियों में वर्तमान स्थिति के प्रति विद्रोह असन्तोष पैदा करते थे। श्री यशपाल जी का भी इनसे प्रभावित होना स्वाभाविक था। इसकी झलक इनकी साहित्यिक कृतियों में दिखाई देती है। युवावस्था-या यूँ कहना चाहिये-कॉलेज के विद्यार्थी जीवन-काल में लायलपुर-लाहौर के राजनैतिक क्रान्तिकारी वातावरण ने उन्हें स्वर्गीय स० भगत सिंह की टोली का क्रान्तिकारी साहित्यिक बनाने में पर्याप्त योग दिया। इस प्रयत्न का मूर्त रूप संभवत: उनकी प्रथम साहित्यिक कृति; जिसे संभवत: वह स्वयं भी विप्लवों के उतार-चढ़ाव में भूल चुके हों, 'वर्तमान भारत' थी, जो श्री आर पामदत्त के 'माडर्न इंडिया' का अनुवाद है। इस वर्त्तमान भारत पुस्तक के प्रारम्भ में श्री यशपाल ने दो शब्द लिखे हैं। पुस्तक १६२६ में लाहौर में कांग्रेस के तरुण साम्यवादी राष्ट्रपति को भेंट की गई है और उनके तरुणावस्था के चित्र के नीचे Think Dangerously, live Dangerously का आदर्श वाक्य लिखा है। १६२६ ई० में श्री यशपाल जी की मानसिक प्रवृत्तियों को चित्रित करने के 'लिये दो शब्द के' महत्वपूर्ण अंश यहाँ उद्धृत कर देना आवश्यक है। इसके अध्ययन

से १६५४ ई. में लिखी पुस्तकों की विचारधारा के साथ संतुलन करने में सुविधा होगी और पाठक देख सकेंगे कि किस प्रकार 'राष्ट्रीय ग्रन्थमाला' के प्रथम पुष्प 'वर्तमान भारत' के अनुवादक-लेखक और १६४५ में प्रकाशित 'विप्लव ग्रन्थमाला' की छठी पुस्तक 'वह दुनिया' के लेखक में कलात्मक दृष्टि से कुछ अन्तर होने पर भी भाव-पक्ष की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं आया। बाह्य परिस्थितियों-साथी-साथियों के बदलने के साथ-साथ कला-पक्ष में तो कुछ परिवर्तन हो रहा है परन्तु भाव-पक्ष की दृष्टि से उनका मन आज भी असन्तोष और विद्रोह की चिनगारियों से अनुप्राणित है।

दो शब्द

"भारत में ब्रिटिश राज्य के उद्देश्य तथा नीति को लॉर्ड ओलिवर के यह शब्द स्पष्ट करते हैं। "भारत पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों, ब्रिटिश राज्य कर्मचारियों, तथा व्यापारियों के अधिकार करने का आधार यही है कि भारत जो कुछ भी है, इसको इस दशा में लाने का श्रेय ब्रिटिश जाति को ही है।"

उपरिलिखित वाक्य में 'श्रेय' के स्थान पर 'उत्तरदायित्व" शब्द रख सकते हैं। इससे हमारा अभिप्राय बहुत अंश तक स्पष्ट हो जाता है। परन्तु इस 'शब्द-परिवर्तन' से हम इंगलैण्ड का अधिकार नहीं छीन सकते। भारत पर भारतवासियों का भी कोई अधिकार है या नहीं इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। भारत-वासियों ने अपना अधिकार सिद्ध नहीं किया। गौ के दूध पर जन्मसिद्ध अधिकार तो बछड़े का ही होता है। परन्तु उसका अधिकांश मनुष्य ही पी जाते हैं।

आज भारत में देशोद्धार की पुकार सब ओर सुनाई दे रही है। कुछ लोग ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता तथा सहयोग से स्वराज्य प्राप्त करने की आशा लगा रहे हैं। कुछ लोग आध्यात्मिक उन्नति के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं। कुछ चर्खे-तकली से ही मानचैस्टर का सामना करने की आशा करते हैं। कुछ लोग पहले देश में एक धर्म का प्रचार कर स्वराज्य का मार्ग सरल बना देना चाहते हैं। इनमें से कौन सा उपाय अधिक कारगर हो सकता है, यह सहसा कह देना कठिन है।

* * कुछ लोग देश में वैध तथा शान्त उपायों से राष्ट्रीय आन्दोलन चलाकर सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। यह बात साधारण बुद्धि के लिये दुर्गम्य है। संसार में आज तक कोई शासन ऐसा सुना नहीं गया जिसके कानून उसी शासन को हटा देने की आज्ञा तथा अवसर देते हैं।

भारतवासी स्वभाव से ही कुछ अध्यात्म-प्रेमी होते हैं। इसलिये आज गुलामी की फाँसी में फँस कर भी जब स्वतंत्र-स्वच्छन्द सांस लेना दूभर हो रहा है, देश की सन्तान करोड़ों की संख्या में भूखी मर रही है, वे आत्मा में अमरत्व, जीव-ब्रह्म के ऐक्य तथा धार्मिक ग्रन्थों की ईश्वरीयता पर विचार कर सकते हैं।

* * देश क्या है। हम कौन हैं, हम भूखे क्यों मर रहे हैं, हमारी शक्ति का ह्रास क्यों हो रहा है? आयु क्यों घटती है? इन विषयों को निरर्थक तथा निष्प्रयोजन समझा जाता है।

' घर में अन्न नहीं, व्रत करो। जेब में पैसा नहीं, संतोष करो। हाथ में शक्ति नहीं, इसलिये क्षमा करो। कुछ कर नहीं सकते, इसलिये शांत रहो। यदि इसीका नाम आध्यात्मिकता है तो निश्चय ही यह जीवन मुक्ति का मार्ग है।

असन्तोष और विद्रोह की भावना तभी प्रदीप्त रह सकती है यदि व्यक्ति–लेखक व पाठक के रूप में अपने आपको दुख:-प्रधान वातावरण से आवृत रखे। इस वातावरण को सुख-समृद्धि सम्पन्न बनाने के लिये साहित्यकार कई साधनों का प्रयोग करते हैं। इसी परम्परा में श्री यशपाल ने भी दिसम्बर, १९४१ में 'वो दुनिया' पुस्तक में कहानियाँ द्वारा समाज की आर्थिक विषमताओं, और युक्ति-हीन पुरानी रूढ़ियों के कारण पैदा हुई समस्याओं को जनता के सामने रखा है। १९२९ ई० में 'दो शब्दों' में यही समस्या जनता के सामने रखी थी परन्तु उस समय उनके सामने मुख्यत: आर्थिक समस्या ही थी और नारी-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों में प्रतिबिंबित समस्याओं का नाम तक नहीं लिया गया! परन्तु १६ साल बाद लिखी गई 'वो दुनिया' पुस्तक में आर्थिक विषमता-मूलक समस्याओं का असर स्त्री-पुरुष के पारिवारिक सम्बन्धों पर क्या पड़ता है यह भी दिखाया गया है। इन १६ सालों में निर्धन पुरूष-समुदाय के अतिरिक्त शिक्षित-अशिक्षित, स्वतंत्र-परतंत्र स्त्री–समाज के सम्पर्क में आने पर उन्होंने स्त्री-पुरुषों के पारिवारिक सम्बन्धों पर भी आर्थिक विषमताओं के कारण पैदा होने वाले परिणामों का उल्लेख कर असन्तोष और विद्रोह की भावना को उद्दीप्त किया है। यह भावना उनकी १९२१ वाली भावना से ही मिलती–जुलती है। इस भावना के फलस्वरूप परिणाम में उन्हें अपेक्षित सफलता मिली है।

अम्बाला छावनी — भीमसेन विद्यालंकार
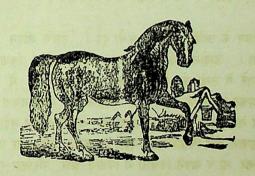
प्रेमचन्द की परम्परा के साहित्यकार यशपाल

हिन्दी-कथा साहित्य में यशपाल का आगमन एक घटना है आज हम यह निस्संकोच भाव से कह सकते हैं। यशपाल आज तो एक प्रतिष्ठित कथाकार हैं, मगर जब उनका 'पिंजरे की उड़ान' कहानी संग्रह-प्रकाशित हुआ था तभी उनके वैशिष्ट्य की ओर हिन्दी वालों की दृष्टि गई थी। जब उनके उपन्यास 'दादा कामरेड' तथा विशेषतः 'देशद्रोही' प्रकाशित हुए तब उनकी विशिष्टता की छाप गहरे रूप में लगी थी, और उनकी यही छाप अन्य रचनाओं के प्रकाशन द्वारा बराबर गहरी होती गई। समय पाकर उनका उपन्यासकार तथा कहानीकार का रूप बराबर निखरता गया। उनकी रचनाओं में निहित जीवन तथा समय के कल्मष के प्रति व्यंग तथा अलहदा रूप से लिखी गई व्यंग्यात्मक टिप्पणियों द्वारा वे तीखे व्यंग्यकार के रूप में भी हमारे सामने आये। हम उनके निबन्धकार तथा आत्म-कथाकार के रूप से भी परिचित हैं। उनके निबन्ध भी एक कथाकार द्वारा लिखे गए प्रतीत होते हैं। वे प्रायः कथात्मक हैं। इस प्रकार यशपाल, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार, आत्म कथाकार, व्यंग्यकार के रूप में हमारे बीच विद्यमान हैं।

यह तो यशपाल के जीवन के साहित्य-क्षेत्र की चर्चा हुई। उनके जीवन का एक कर्मक्षेत्र भी रहा है जो कर्म-क्षेत्र क्रान्ति का था। उन्होंने क्रांति से ही अपना जीवन आरंभ किया था। जिन भावों-विचारों को लेकर वे कर्म-क्षेत्र में उतरे थे उन्हीं को लेकर वे बाद में साहित्य-क्षेत्र में भी आए। उनके कर्म तथा साहित्य दोनों क्षेत्रों की प्रकट शक्ति थी व्यष्टि तथा समष्टि में नवमानवता के भावों-विचारों को भरने की भावना। वह व्यष्टि तथा समष्टि में कहीं भी मानवता को गलित–दलित नहीं देखना चाहते। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि यशपाल कोरे सिद्धान्तवादी नहीं, वह कर्मठ साहित्यकार एवं विवेकशील विचारक हैं। अतः किसी वाद से संपृक्त रहकर भी वे अपने विचारों में विकास और परिष्कार-संस्कार लाने में प्रयत्नशील रहे हैं और रहते हैं, इसी लिये आग्रहवादियों से उनकी अधिक नहीं बनती। क्रांति-कर्म-क्षेत्र से साहित्य-क्षेत्र में यशपाल के चले जाने का एक प्रधान कारण यह है कि वह विकासशील विचारक हैं।

ऊपर के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि यशपाल कर्मठ तथा आदर्शशील व्यक्ति हैं। उनके जीवन का कोई आदर्श है, कुछ लक्ष्य है, और वह उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिये लगे हुए हैं। वे अपने आदर्श और लक्ष्य को अपने मन की स्वप्न-कल्पना में नहीं रहने देना चाहते वरन उन्हें जगत-जीवन में प्रतिष्ठा देना चाहते हैं। आदर्शशील व्यक्ति यदि कर्मठ न हो तो उसका आदर्श उसके मन के कानों में ही

पड़ा रहेगा तात्पर्य यह कि आदर्शशील होने की सफलता व्यक्ति के कर्मठ होने में ही है। यशपाल की यह विशेषता है कि वह आदर्शशील होने के साथ ही कर्मठ भी हैं। इसे हमने देखा है। यहाँ इसपर दृष्टि जाती है कि इन दोनों तत्वों का समुचित समन्वय व्यक्ति में विरले रूप से ही मिलता है, और जिनमें यह समन्वय मिलता है, वे निश्चय ही युग-परिवर्तनकारी व्यक्ति होते हैं। यशपाल ऐसे ही व्यक्ति हैं। ऊपर हमने यशपाल के दो क्षेत्रों–कर्म तथा साहित्य क्षेत्रों– का उल्लेख किया है। उन्होंने अपने आदर्शों को उक्त दोनों क्षेत्रों के माध्यम से मूर्त्त रूप दिया है।

यशपाल ने आत्मोत्सर्ग की भावना के माध्यम से भी राष्ट्र, समाज तथा जीवन की सेवा की हैं और साहित्य के माध्यम से भी ऐसे व्यक्ति किसी राष्ट्र में विरले रूप में ही मिलते हैं। आज भी यशपाल का सेवा-कार्य प्रधान रूप से साहित्य के माध्यम से जारी है। स्वतंन्त्र देश में किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा के भोग की भावना उन्हें इस कार्य से विचलित कर सकती थी। परन्तु उन्हें राष्ट्र की सच्ची सेवा का लोभ है, अपनी सुख-सुविधा का लोभ नहीं। इसी लिये स्वतन्त्र देश में भी उनकी दृष्टि जहाँ मानवता के प्रतिकूल परिस्थितियों पर पड़ती है, वहाँ वह उन परिस्थितियों को देश समाज तथा जीवन से दूर करने की परिपूर्ण चेष्टा अपनी रचनाओं के माध्यम से करते हैं। उनकी यह चेष्टा इसी लिये है कि उनके मन का मानव लोक-मानव को किसी भी प्रकार हीन–नहीं देखना चाहता। उनके मन के मानव की धारणा है कि जब मानव में समानता है तब समाज के किसी स्वार्थ परक वर्ग द्वारा किसी वर्ग को हीन मानने का कोई मतलब नहीं, समाज के किसी स्वार्थ परक वर्ग द्वारा किसी वर्ग को नीच और हीन मान कर भाव और रूप से उसका शोषण व्यर्थ है। यशपाल मानते हैं कि मानव को अपने कर्मों द्वारा उन्नति करते जाने का पूरा अधिकार है, और वह इस आशय से अपनी रचनाएँ लिखते जा रहे हैं कि उन रचनाओं की प्रेरणा से देश, समाज तथा जीवन में, और इस प्रकार समस्त संसार में, मानव अपने अधिकार की प्राप्ति के लिये उत्साह प्राप्त करेगा। इस प्रकार मानवता की स्थापना में एक तुच्छ देन उनकी भी होगी। यशपाल ऐसे ही मानवता–वादी साहित्यकार हैं।

यशपाल की साहित्य-रचना से विभिन्न रूपों का उल्लेख ऊपर हुआ है। वे अपनी समस्याओं में जीवन और समाज के विभिन्न रूपों के चित्र देने में ईमानदार हैं। ईमानदार का तात्पर्य यह है कि वे अपने साहित्य के लिये गृहीत विषयों को यथार्थ रूप में बिना अतिरंजना के हमारे सामने रखते हैं। वह जो कुछ दिखाना चाहते हैं, जिस यथार्थ में चित्रित करते हैं, उसे यथार्थ में व्यावहारिक और बौद्धिक सत्य दोनों है। और यह यथार्थ हमें विभिन्न रूपों में आदर्श अथवा नवीन जीवन तथा समाज की स्थापना के लिये प्रेरणा प्रदान करता है। उनका यथार्थ प्रेमचन्द के यथार्थ की भाँति हमें आदर्श की ओर ले जाने का संकेत देता है। यशपाल ने अपने साहित्य में प्रधानतः शहरी मध्य वर्ग के जीवन तथा समाज को मूर्त्त किया है। प्रेमचन्द की भाँति उनका झुकाव ग्रामीण जीवन की ओर कम है। उनकी रचनाओं में पंजाब के पहाड़ी गांवों के चित्र कभी-कभी जरूर मिलते हैं। यशपाल अपने क्रांतिकारी जीवन में पंजाब तथा उसके आस पास के ऐसे जीवन तथा समाज से परिचित हुए थे जिन के चित्र हमें उनकी रचनाओं में मिलते हैं। यशपाल की रचनाओं के ऐसे चित्रों द्वारा पाठकों को एक नवीन वातावरण का परिचय मिलता है। वे बड़े चाव से इन्हें पढ़ते हैं और एक नए प्रकार के जीवन से परिचित होते हैं। इस प्रकार हिन्दी के अन्य कलाकारों की रचनाओं के स्थानिक वातावरण से ऊबे पाठकों को यशपाल की रचनाएँ एक नवीन स्थानिक वातावरण में ले जाती हैं।

यशपाल की रचनाओं में शहरी मध्यवर्ग के जीवन तथा समाज के चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में उनकी दृष्टि बड़ी व्यापक और तल-स्पर्शिनी है। इस क्षेत्र में वह सूक्ष्म दृष्टि बड़ी व्यापक और तल-स्पर्शिनी है। इस क्षेत्र में वह सूक्ष्म दृष्टि—सम्पन्न कलाकार हैं। इस वर्ग की मनोशक्तियों तथा कार्य-कला के वह पूर्ण ज्ञाता हैं। इस वर्ग की दलन-शोषण पद्धति की जानकारी भी उनको हैं। इन्हीं सब कारणों से वह इस वर्ग का यथार्थरूप अपनी रचनाओं में खींच सकते हैं।

यशपाल लिखने के लिये नहीं लिखते जैसे प्रेमचन्द लिखने के लिये नहीं लिखते थे। यह एक दम स्पष्ट है ये दोनों कथाकार एक मिशन लेकर लिखते हैं। प्रेमचन्द और यशपाल दबी मानवता को उठाने और उसे स्वर देने के लिये लिखते हैं। उनका यह लक्ष्य (मिशन) बहुत उजागर है। यही कारण है कि प्रेमचन्द तथा यशपाल शिल्प (टैक्नीक) के क्षेत्र में पड़े दिखाई नहीं पड़ते। ये शिल्प को ही दृष्टि में रख कर नहीं लिखते। सहज और आवश्यक कलाकारिता के अन्तर्गत जो शिल्प आ जाता है ये उसीसे संतुष्ट हैं। क्योंकि इतने से ही इनके लक्ष्य के सिद्ध होने की संभावना दिखाई पड़ती है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रेमचन्द तथा यशपाल की रचनाओं में कलाकारिता नहीं है। इसके विपरीत तथ्य यह है कि अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिये इन्होंने अपने ढंग को शिल्प का रूप दिया है।

ऊपर मैंने यशपाल के साथ प्रेमचन्द के नाम का उल्लेख किया है। इसका कारण यही है कि यशपाल हिन्दी कथा साहित्य में उस ईमानदारी, उत्साह, लगन, और लक्ष्य के साथ काम कर रहे है, जिस ईमानदारी उत्साह, और लगन और लक्ष्य के साथ प्रेमचन्द ने किया हैं। प्रेमचन्द की भाँति यशपाल ने भी प्रधानतः अपने लिये कथा का ही क्षेत्र चुना हैं। इसी लिये मुझे प्रेमचन्द तथा यशपाल का लक्ष्य ही समान लगता है चाहे लक्ष्य-प्राप्ति के मांध्यम में थोड़ा भेद हो। इस प्रकार यशपाल हिन्दी में प्रेमचन्द की परम्परा के साहित्यकार हैं और उन्होंने अपने ढंग से प्रेमचन्द की परम्परा को काफी आगे बढ़ाया है। हिन्दीं कथा-साहित्य को भी आगे बढ़ने में गति दी हैं।

ऐसे मानवतावादी उदारचेता, अपने युग को शक्ति देने वाले साहित्यकार शिल्पी यशपाल की संवर्द्धना के शुभ अवसर पर मैं यही निवेदन करता हूँ:—

नवा नवा भवसि जायमाना
तुम भारत भूमि में पुन:पुनः जन्म लेकर नव-नव रूप से हमारे सामने आओ।

शान्तिनिकेतन शिवनाथ
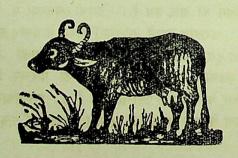
श्री यशपाल का यथार्थवादी दृष्टिकोण

हेनरी जेम्स ने उपन्यासों का वर्गीकरण करते हुए जिसे 'जीवन-उपन्यास' कहा है, यशपाल के उपन्यास उसी कोटि में स्थान पाते हैं । यथार्थ जीवन की सुदृढ़ भित्ति पर स्थित होकर गतिमान, प्रवाह-युक्त मानव-जीवन से आख्यान के उपकरण संचय करना और उन्हें रूप-आकार प्रदान करना 'जीवन-उपन्यास' का शिल्प है। विदग्ध कल्पना द्वारा उन तथ्यों को मार्मिक बनाने का निषेध इस यथार्थ- सृष्टि में नहीं होता, यदि ऐसा होता तो यथार्थ का शुष्क कंकाल उन मार्मिक छवियों से शून्य होकर भयावह और वीभत्स-मात्र बन जाता। यशपाल ने अपने कथा-साहित्य में जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है उसका मूलाधार क्या है और उसको उपन्यास का रूप देने में उन्हें कहाँ तक सफलता मिली है, इस प्रश्न पर हमें विचार करना है ।

हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में यथार्थवादी अभिव्यक्ति का प्रारम्भ प्रेमचन्द की रचनाओं से ही देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने अपने 'ग़बन' और 'गोदान' में ऐसे पात्रों की, सृष्टि की जो जीवन के यथार्थ को ग्रहण कर उसके द्वारा समाज की परम्परागत मान्यताओं को-अन्धविश्वासमय रूढ़ियों को-चुनौती देने में अग्रसर हुए थे। प्रेमचन्द का यह प्रयोग उनकी संस्कार-निष्ठ आदर्श भावना से पृथक्‌ सर्वथा नूतन मार्ग का ग्रहण न था। उनके यथार्थ- गुण का पर्यवसान सदैव एक ऐसे स्थल पर हुआ है जो वैषम्य का उद्घाटन करता हुआ भी नैतिक मूल्यों की अवहेलना नहीं करता; साथ ही मान्य आदर्शों के आभ्यन्तर-मूल्यों को भी छोड़ने की प्रेरणा नहीं देता । हाँ, आदर्शों के नाम पर जो रूढ़िगत अन्ध मान्यताएँ समाज के बाहर-भीतर घर कर गई हैं, उन्हें छोड़ने का आग्रह उनमें प्रबल रहता है। यशपाल का यथार्थवादी दृष्टिकोण इस प्रकार का नहीं है । उनके यथार्थचित्रण के दो पक्ष हैं; एक पक्ष तो साम्यवादी विचारधारा के माध्यम से पुष्ट होकर समाज के उन गुह्य स्तरों में प्रवेश करता है जहाँ आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक वैषम्य के कारण वेदना, पीड़ा, कष्ट और शोषण का व्यापार प्रबल हो गया है। यथार्थ चित्रण का दूसरा पक्ष प्रकृतवाद का सम्मिश्रण कर घटनाओं को अतिरंजित करके इस रूप में प्रस्तुत करना है कि उनके द्वारा समाज के घृणित कृत्यों के छल-कपट,

मक्कारी-बदमाशी, धूर्त्तता-जालसाज़ी का पर्दाफाश हो सके । इन वर्णनों को प्रस्तुत करते समय लेखक के समर्थन में जिस प्रबल आक्रोश और प्रतिशोध का भाव रहता है वैसा प्रेमचन्द के मन पर नहीं रहता। यशपाल ने इन वर्णनों में व्यंग्य को प्रहार और संहार का माध्यम बनाया है। समाज के नानाविध स्वार्थ-संकुल एवं पंकिल राग-द्वेष के विपाक्त वातावरण को चित्रित करने की कला उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण का फल है। अपने यथार्थ चित्रण में यशपाल के अन्तर्मन में किसी विशिष्ट नैतिक सिद्धान्त का आग्रह न होकर सामाजिक सुधार का सामान्य भाव रहता है। बौद्धिक दृष्टि से भी उनके यथार्थवादी वर्णन तथा तज्जन्य निष्कर्ष अग्राह्य नहीं लगते। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है —'यशपाल जी का अनुभव-क्षेत्र बड़ा है और वे विशाल और निर्बाध जीवन-परिस्थितियों का चित्रण करने की क्षमता रखते हैं।' आगे चलकर वाजपेयी जी ने यशपाल जी के साम्यवादी दृष्टिकोण के विषय में कुछ आलोचना भी की है। यह ठीक है कि किसी एक सिद्धान्त या मतवाद का आग्रह सार्वभौम साहित्य-सृजन का प्रेरक नहीं होता, किन्तु प्रत्येक लेखक का अपना विशिष्ट जीवन-दर्शन और दृष्टिकोण होता है। उसकी सर्वथा उपेक्षा करके भी वह साहित्य-सृजन नहीं कर सकता। यदि करता है तो उसकी ईमानदारी में सन्देह पैदा होना स्वाभाविक है! यशपाल के साहित्य पर साम्यवादी विचारधारा का व्यापक प्रभाव है किन्तु उन्होंने जिन समस्याओं को उठाया है वे इतनी प्राणवान है कि उनका चित्रण ही लेखक को सफल कलाकार की कोटि में रख देता है। यशपाल की रचनाओं में 'दादा कामरेड,' देशद्रोही, और दिव्या के वर्णनों को हम उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। यशपाल का यथार्थ जनता की अनुभूतियों, वेदनाओं और पीडाओं का सत्य है। वह एक ऐसा सत्य है जिसकी मार्मिक अनुभूति जन-जीवन के साथ अभेद्य रूप से संपृक्त हो गई है। पन्त जी ने लिखा है—'सत्य नहीं वह जनता से जो नहीं प्राण—सम्बन्धित।' अत: यशपाल के यथार्थ को हम केवल मार्क्सवादी विचारधारा तक ही सीमित नहीं कर सकते, वह अपने चित्रण में जनता का सत्य बनकर हमारे सामने आता है अतः ग्राह्य एवं उपादेय है।

यशपाल की सफल यथार्थवादी रचना 'मनुष्य के रूप' में जिन सजीव पात्रों के साथ अवतरित हुई है वह इस बात का प्रमाण है कि यथार्थ का रूप भी समाज की चेतना के लिये स्वीकार्य हो सकता है। अभिप्राय और प्रयोजन के समवेत प्रभाव को लेकर लेखक ने इस रचना में जो तथ्य अंकित किये हैं वे किसी भी यथार्थवादी या प्रकृतवादी हिन्दी-लेखक से सर्वथा भिन्न एवं ठोस धरातल पर स्थित हैं। केवल कला-शिल्प में नहीं अपने प्रतिपाद्य में भी उनका महत्व हमें स्वीकार करना पड़ता है। सामाजिक वैषम्य की भित्ति पर—समस्या-मूलक उपन्यासों एवं गल्पों का हिन्दी में अभाव नहीं है किन्तु उनके ठोस धरातल तथा अवमूल्यन की जैसी दृढ़ता यशपाल में है निश्चय ही हिन्दी के किसी उपन्यास—लेखक या गल्प-लेखक में नहीं। हिन्दी के कुछ आलोचक यशपाल के उपन्यासों पर यह दोषारोपण करते हैं कि उनका कथा-वस्तु का गठन केन्द्रीय प्रवाह से हट कर असंगत घटनाओं और परिस्थितियों के अनावश्यक तूल देने से नष्ट हो जाता है। मेरा इस सम्बन्ध में स्पष्ट मतभेद है। जहाँ तक यशपाल के उपन्यासों की मूर्त्तता और सार्थकता का प्रश्न है किसी भी सहृदय एवं निष्पक्ष पाठक को यह मानने में आपत्ति नहीं होगी कि यशपाल के मूर्त्त चित्र इतने विशद-व्यापक एवं प्राणवान् होते हैं कि उपन्यास समाप्त करने के बाद भी रह- रह कर उनकी तस्वीरें अन्तर्मन पर उतरती रहती हैं। 'दिव्या' में चार्वाक मारिश का चरित्र जिस रूप में अंकित किया गया है वह पाठक के साथ—चाहे उसके सिद्धान्तों से सौ फी सदी विरोध क्यों न रखता हो—चिपट जाता है और अपनी मूर्त्तता को स्पष्ट करता रहता है।

यशपाल का जीवन-दर्शन उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण में स्पष्ट रूप से प्रतिफलित होता हुआ दृष्टिगत होता है। यशपाल मानव-समाज के नैतिक आदर्शों का विरोध कहीं नहीं करते, वे विरोध करते हैं उन आदर्शों का जो समाज के नूतन निर्माण में बाधा उपस्थित कर उसे किसी ऐसे पुरातनता के मोहपाश में जकड़ रखना चाहते हैं जो युग-चेतना के प्रतिकूल हैं। मैं समझता हूँ कोई भी समझदार व्यक्ति उनके दृष्टिकोण से मतभेद रखने वाला न होगा । हां, यथार्थवादी चित्रण से जिन्हें मतभेद है वे विरोध-प्रदर्शन कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है।

यथार्थ चित्रण में सत्य के दो रूप होते हैं— एक पक्ष है सामाजिक सत्य और दूसरा है व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक सत्य। जिस उपन्यास में सामाजिक एवं वैयक्तिक सत्यों का अंगांगिभाव से ग्रहण होता है वह उपन्यास यथार्थवादी होने पर भी सफलता के चरम बिन्दु तक पहुँच सकता है। यदि कोई लेखक यथार्थवादी दृष्टिकोण की चरम परिणति प्रकृतवाद के वर्णन में ही समझ बैठे तो यह उसका मरुभूमि में भटकना होगा, किन्तु यशपाल के साथ कहीं भी यह बात नहीं है । प्रत्येक सफल लेखक को किसी महाकाव्य, उपन्यास या नाटक लिखते समय ऐतिहासिक चेतना, वैज्ञानिक चेतना तथा दार्शनिक चेतना का पूर्ण रूप से अपने भीतर आकलन करना आवश्यक होता है। जो इन त्रिविध चेतनाओं को तिरस्कृत कर अपनी नूतन बात करने में लीन होता है उसकी कला-साधना कभी सफल नहीं होती। जीवन की सफलताओं, कमियों और त्रुटियों का वर्णन करते समय यदि व्यापक दृष्टि-उन्मेष के साथ यथार्थ का ग्रहण न किया जाय तो सफल उपन्यास या काव्य लिखा ही नहीं जा सकता। अतः यशपाल के उपन्यासों में यथार्थ का ग्रहण जिस पूर्णता के साथ हुआ है उसे हम अनावश्यक या असंगत विस्तार नहीं कह सकते।

कम्युनिस्ट चरित्रों के साथ पूँजीवादी चरित्रों की अवतारणा एक विरोध-वैषम्य का प्रदर्शन है जो यथार्थ के लिये सहज सम्भाव्य होकर आया है। हमारी यह धारणा किसी पक्षपात पर आधारित नहीं है। यथार्थवादी दृष्टिकोण का सबसे व्यापक-विशद स्वच्छ और स्पष्ट निखरा और सुथरा रूप हिन्दी में यशपाल के कथा-साहित्य में ही है। उसमें साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव होने पर भी जैसी व्यापकता और मार्मिकता है वैसी अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होती। यदि यशपाल जी अपनी कृतियों में यथार्थवाद के साथ जीवन के विकास के, मानव चेतना के-शाश्वत विकास-पथ के संकेतों का भी उल्लेख करते जाएं तो पाठक को दिशा-निर्देश भी उपलब्ध हो सकेगा।

विजयेन्द्र स्नातक

देहली

मेरी दृष्टि में साहित्यकार यशपाल

यशपाल जी का अभिनन्दन करते हुए, उन्हें अपने हृदय की श्रद्धा और भावना अर्पित करते हुए आज हम कृतकृत्य हो रहे हैं। यशपाल के रूप में आज हम अपने समुन्नत और उज्ज्वल साहित्यकार को देख कर गौरवान्वित होते हैं और हिन्दी के कहानी और उपन्यास-साहित्य में यशपाल की अनमोल देन का आदर करते हैं। पिछड़ा हुए माने जाने वाले पंजाब प्रान्त की ओर से यशपाल के रूप में हिन्दी-साहित्य को आधुनिक युग का कहानीकार, उपन्यासकार, निबन्धकार और विचारक देने का गर्व भी अनुभव कर रहे हैं।

यशपाल अपने संघर्षमय स्वावलम्बी जीवन में कुंदन की तरह तप कर निकले हैं। उन्होंने कोरी भावुकता और कल्पना को ही अपनी कृतियों का आधार न मानकर, यथार्थ की नींव पर यथार्थ को चित्रित किया है। उन्होंने तीक्ष्ण व्यंग्य और अनूठे चरित्र-चित्रण द्वारा बात को उलझा कर नहीं बल्कि सीधे स्पष्ट कह कर पुराने गले-सड़े संस्कारों पर मार्मिक चोट करके, नयी चेतना, नयी जागृति और मानव की विचारधारा को नई दिशा की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया है।

आज से लगभग १४-१५ वर्ष पूर्व पंजाब प्रांत में लाहौर ही हिन्दी प्रचार, प्रसार, पठन-पाठन, साहित्यिक चर्चा और साहित्यिक तथा राजनीतिक आन्दोलन का केन्द्र माना जाता था। उसी ज़माने में और वहीं यशपाल के साहित्य-क्षेत्र में आगमन की बात सुनाई दी और तभी उनकी रचनाओं से साक्षात्कार हुआ था। उस समय हिन्दी के कहानी-साहित्य में सुदर्शन, अश्क, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय प्रभृति लेखक यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। यशपाल विप्लवी जीवन से हट कर साहित्य-सृजन में लग गए थे और उनकी कृतियों ने जैसे पानी से लबालब शांत तालाब में पत्थर नहीं बल्कि छोटा सा पत्थर ही फैंक दिया। बड़ी हलचल मची, असंख्य लहरें उठीं, शोर-गुल हुआ, हाय-तोबा हुई। प्रशंसा कम, विरोध अधिक हुआ, परन्तु यशपाल की कर्तृत्वशक्ति का लोहा सबको मानना पड़ा। उसे अस्वीकार कोई न कर सका। जो कुछ उन्होंने कहा है, उसपर सहमत न होते हुए भी जैसे कहा गया है इससे किसी को इन्कार न था। यशपाल की लेखनी ने चारों ओर चकाचौंध फैला दी।

'पिंजरा की उड़ान' और 'ज्ञानदान' ने उनके कहानीकार रूप को उजागर किया। उनकी कला से प्रभावित होकर ही कच्चेपन और पुराने संस्कारों पर चोट सी पड़ी। तबीयत घबराई भी परन्तु लेखक की

कलम का सिक्का मानना पड़ा। अपनी विचारधारा से यशपाल की बातों का मेल न होने से मन दुखी होता था। जी चाहता था यह सब कुछ न लिखकर यशपाल यदि अपनी कला द्वारा हमारी मान्यताओं और धारणाओं की पुष्टि में कुछ लिखते तो क्या ही बात थी ?

साथ ही साथ यह भी कम आश्चर्यजनक न था कि निरन्तर विप्लवी जीवन की बड़ी मंज़िलें तै करने वाला यह व्यक्ति इतनी रस-भरी, जीवन की यथार्थता से ओत-प्रोत रचनाएँ कैसे प्रस्तुत कर सकता है। उस समय यह पता न था कि यशपाल कौन हैं, कहां के हैं ?

उन्हीं दिनों लाहौर में पंडित उदयशंकर भट्ट के साथ कुछ साहित्य-चर्चा चल रही थी कि यशपाल जी का भी ज़िक्र आया। उल्लास-भरे स्वर में कहने लगे—लायलपुर स्कूल में जब मैं पढ़ाता था तो यशपाल वहीं पढ़ा करते थे। मन की प्रसन्नता स्वाभाविक ही थी। तब से यशपाल की कृतियों में और भी दिलचस्पी बढ़ी, उनसे मिलने, उन्हें देखने, दो बातें करने की साध बढ़ती गई, जो दुर्भाग्यवश आज तक पूरी न हो सकी। पाठक का यह दुर्भाग्य लेखक के लिए कितने सौभाग्य की बात है कि उसे बिना देखे, बिना जाने, उसकी रचनाओं के बल पर ही अनेकों पाठक उसे चाहने लगते हैं। उसके बारे में सोचते-विचारते रहते हैं।

उम्र के साथ-साथ ज्यों-ज्यों जीवन-अनुभव बढ़ा त्यों-त्यों यशपाल की कृतियो को समझने और उनमें भरोसे की शक्ति बढ़ती गई, और यशपाल की कला का प्रभाव भी बढ़ता गया। प्रेमचन्द के 'गोदान' के होरी, जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' की मृणाल के साथ साथ 'दादा कामरेड' तथा 'मनुष्यता' के रूप' को पहाड़िन सोमा ने भी मन पर अमिट छाप बिठा दी।

'भस्मावृत्त चिंगारी,' और 'ज्ञानदान' के पात्र भी सहते में पीछा नहीं छोड़ते। औरों की तो नहीं कह सकता अपने विचार से मुझे यशपाल की कृति 'मनुष्य के रूप' में उनके सर्वाधिक सफल रूप के दर्शन हुए हैं। वहाँ न तो वह किसी वाद के पचड़े में पड़े हैं, न कहीं उपदेशात्मक प्रवृत्ति की झलक ही है, बल्कि इसके विपरीत वह मनुष्यता को विविध रूपों में चित्रित करते हुए स्वाभाविक गति से आगे बढ़ते चले गए हैं। कहीं भी जोर दबाव से काम नहीं लिया, कोई पात्र गढ़ा हुआ नहीं दीखता। कथानक की नायिका सोमा के प्रति कहीं करुणा, कहीं घृणा कहीं स्नेह, कभी उपेक्षा उमड़ी चली आती है। परिस्थितियाँ उसे कहाँ ले जाती हैं। मानव-मन की स्थिति का स्वाभाविक विकास और ह्रास कितने सहज ढंग से चित्रित हुआ है। आज के जीवन की समस्याओं और उलझनों को स्पष्ट करके प्रकाश में लाने का सफल प्रयत्न इस उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है। 'मनुष्य के रूप' में यशपाल किसी एक पक्ष के समर्थक न होकर समन्वयवादी निष्पक्ष द्रष्टा दिखाई देते हैं। पर्वत प्रान्त में नारी की दुर्दशा, विलासी मनुष्यों का अबलाओं पर अत्याचार, पूँजीपतियों का नैतिक पतन, ऐक्टर-ऐक्ट्रसों का नारकीय जीवन, तथाकथित साम्यवादियों की खोखली कार्य-प्रणाली तथा जीवन के सत्य और सुख को मिटाने वाले पूँजीपतियों की बर्बरता-सबका दिग्दर्शन इस उपन्यास में मिलता है। जहाँ कहीं भी समाज की हीनता दिखाई दी वहीं यशपाल ने चोट की है।

सोमा का चित्रण इतना वास्तविक और स्वाभाविक है कि एक बार उस कल्पना-रचित पात्र को, भले ही वह किसी वास्तविक पात्र को लेकर गढ़ा गया हो, देखने की इच्छा बरबस मन में जाग्रत हो जाती

है, और अपने ही रचे इस समाज और इसके क्रूर नियम-विधानों के प्रति, जो अच्छे-भले मनुष्य को सांस तक नहीं लेने देना चाहिते, एक प्रकार की वितृष्णा, सी विरक्ति-सी उत्पन्न हो जाती है । मेरे विचार में यदि स्वयं लेखक से पूछा जाए तो वह भी यह स्वीकार करेगा कि 'मनुष्य के रूप' अब तक की उसकी रचनाओं में सर्वोत्तम और हृदयग्राही है ।

'यशपाल' अभी थक नहीं गए होंगे, उनकी कला जागृत है, उनका जीवन-अनुभव और भी गंभीर तथा विशद हो रहा है । उनकी ग्राह्य शक्ति बलवती है, लेखनी में जान है । जीवन-दर्शन की साधना वेगवती तथा चिंतनधारा की गति अवाध है, इस लिए उनका बार-बार अभिनन्दन करते हुए हिन्दी-साहित्य को उनसे और भी अनेकों महान कृतियों की आशा है, जो कला की कसौटी पर खरी उतर कर जीवन के सत्य को स्पष्ट करेंगी ।

दिल्ली — सत्यदेव शर्मा

प्रगतिशील साहित्य और परियाँ

परियों के अस्तित्व के विषय में आज कितना भी संदेह क्यों न हो यह तो निस्संकोच माना जा सकता है कि इस विचित्र जीव की कल्पना प्रत्येक देश के साहित्यकों तथा कथाकारों ने अपनी कृतियों में सँजोई है।

भारतीय पौराणिक साहित्य में इन्हें अप्सरा का नाम दिया गया। अनेक तपस्वियों के तप, देव लोक के राजा इन्द्र ने, अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए इन्हीं द्वारा भंग करवाए थे। पुरातन यूनानी, ईरानी, मिसरी आदि लोक-कथाओं, पौराणिक आख्यानों-उपाख्यानों में परियों की चर्चा प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। युरोपीय साहित्य में तो परी-कथाओं की एक विशिष्ट धारा ही स्थापित हो गई थी। बाल-साहित्य, ग्रामीण साहित्य आदि का तो लगभग सारे का सारा ताना-बाना ही, परियों, देवों-जिन्नों के कारनामों से भरा पड़ा है।

पुरातन साहित्य की बात जो भी हो, आधुनिक साहित्य में प्रगतिवाद के नाम पर हमारे साहित्यकार प्रत्येक उस बात का परित्याग आवश्यक मानते हैं जिसमें पुरानेपन की जरा सी भी गंध हो।

साहित्य में प्रगतिवाद उन्हीं विचारों का प्रतिरूप माना जाता है जो राजनीति के क्षेत्र में साम्यवाद के नाम से प्रसिद्ध हैं। साम्यवादी देश रूस के साहित्य तथा वहाँ की कला में परियों का क्या स्थान है, यह जानना रुचिकर होगा। यह तो विदित है कि साम्यवाद कार्यात्मक रूप में अगर कहीं देखा जा सकता है तो रूस देश में। यहां यह उल्लेख भी अप्रासंगिक न होगा कि परियों का निवास-स्थान परम्परा से कोहक़ाफ नामक पर्वत पर माना जाता है, और वह कोहक़ाफ रूस के समाजवादी सोवियत संघ की एक एशियाई सोवियत गुर्जी (ज्यॉर्जिया) के अंतर्गत माना जाता है।

कामरेड यशपाल दिसम्बर १९५२ में वियाना विश्व शांति कांग्रेस से लौटते समय रूस भी गए थे। वहाँ उन्होंने आधुनिक रूसी नाटक, ऑपेरा तथा बेले आदि देखे। आपका कथन है कि इनमें उन्हें कई जगह परियों के प्रसंग देखने को मिले।

इस विषय में अपनी ओर से कुछ न कह कर, यशपाल जी की पुस्तक 'लोहे की दीवार के दोनों ओर 'से' एक सन्दर्भ उद्धृत है :—

> उस संध्या एक रंगीन सोवियत फिल्म 'सादको' देखी। अभिनय और अद्‌भुत दृश्यों को उपस्थित करने के कौशल के अतिरिक्त याद रहने लायक बात यह थी कि कहानी का नायक सुख और सन्तोष की खोज में भारतवर्ष भी पहुँचता है। भारतवर्ष के कुछ आधुनिक और कुछ सामन्तकालीन मिले-जुले जीवन का प्रतिबिम्ब हमारे आधुनिक बाजारों, आगरे, और फतहपुरी के प्राचीन किलों और महलों से लिया गया है। निम्न श्रेणी के दैन्य जीवन की छाया भी है और राजसी ठाट-बाट, बारहदरियों और फव्वारे के दृश्य भी दिखाए गए हैं। दोनों का ही प्रदर्शन इस देश में बनने वाली फिल्मों की अपेक्षा अधिक यथार्थ है। कहानी का नायक अनेक देशों में ही नहीं, सुख-सन्तोष की खोज में पाताल में परियों के देश में भी जाता है। परियों के देश का जल मार्ग और परियों की कल्पना भी बहुत ही सुन्दर प्रस्तुत की गई थी। इससे पूर्व मास्को और बिलीसी में भी ऑपेरा, बैले और फिल्म में भी सभी जगह कथानकों में परियों का प्रसंग देखने में आया था। कला में परियों का प्रसंग नहीं आना चाहिये, ऐसा कोई नियम यथार्थवाद की दृष्टि से नहीं बना दिया जा सकता परन्तु मेरा व्यक्तिगत ख्याल है कि कथानकों को रोचक बनाने के लिए अथवा विचारों को प्रकट करने के लिए परियों या काल्पनिक वस्तुओं को माध्यम बनाना यथार्थ कल्पना की कसौटी से एक प्रकार की न्यूनता ही है। क्या हम सभी विचारों को प्रकट करने के लिए यथार्थ-जीवन से रूपक या कथानक नहीं ले सकते ?
>
> मराठी उपन्यास–लेखिका मालतीबाई का ध्यान मैंने सोवियत कला में परियों के बाहुल्य की ओर दिलाया। यह उन्हें भी खल रहा था। उन्होंने मुझसे ही प्रश्न किया कि सोवियत कलाकारों के अत्यन्त यथार्थवादी होने पर भी उनकी कला में परियों के माध्यम के प्रयोग और बाहुल्य का कारण क्या हो सकता है ? इस विषय में क्रेमापालोवा और दूसरे सोवियत साथियों से भी बात की थी। उन्होंने इसकी कोई व्याख्या न कर केवल यही कहा था कि संयोगवश हम लोगों ने परियों के ही प्रकरण अधिक देखे होंगे, साधारण: ऐसी बात नहीं है। इस उत्तर से समाधान नहीं हुआ। मुझे सोवियत कला में परियों के प्रसंग का कारण यही जान पड़ा कि सोवियत कलाकार समाजवादी नैतिकता और सामाजिक भावना को बुद्धि से तो ग्रहण कर चुके हैं परन्तु इस नैतिकता के व्यवहार की परम्परा अभी उनके सामने नहीं है। यह नैतिकता सोवियत समाज में कार्यरूप में भी परिणत हो रही है परन्तु वह अभी समाज का अनायास, परम्परागत स्वभाव नहीं बन पाई। यह सोवियत की सचेत चेष्टा है संस्कारगत स्वभाव नहीं। इसके लिए प्रचुर उदाहरण और दृष्टान्त समाज में नहीं मिल सकते। सोवियत कलाकार सामन्तवादी और पूंजीवादी नैतिकता को मान्यता देने के लिए गढ़ी गई कला को भी प्रश्रय नहीं देना चाहते इसलिए सुलभ, निरीह कल्पनाओं से ही अपनी कलात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। किसी भी नैतिकता के समाज के संस्कारों और भावों में परिणत हो जाने के लिए कुछ समय दरकार होता है। तभी वे हमारे संस्कारों और स्वभाव का रूप ले सकती हैं और हम समाज के अनायास
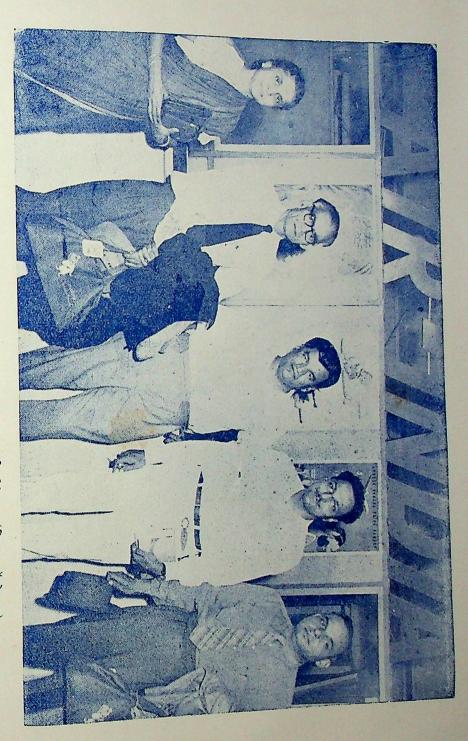
श्रीमती मालती बेडेकर (मराठी उपन्यासकार) श्री यशपाल, श्री बेडेकर (फ़िल्म डॉयरेक्टर)
श्री इन्द्रराज (फ़िल्म लेखक) श्री टी० के० चतुर्वेदी (वकील)

व्यवहार में उनकी कल्पना करते हैं। कलाकार अपना मसाला विधि-निषेधों से नहीं समाज के जीवन और व्यवहार से पाता है। सोवियत समाज में नवीन नैतिकता और न्याय को क्रियात्मक रूप दिया जा रहा है परन्तु इन आदर्शों के अनुकूल कला को मूर्त्त बना लेना वहाँ के लेखकों के लिए अभी अनायास कार्य नहीं हो पाया है। दूसरी ओर हमारे देश के प्रगतिशील आलोचक हैं जो अपने लेखकों पर सदा इसीलिए चाबुक ताने रहते हैं कि अपनी कला द्वारा वे समाज के नव-निर्माण के मूर्त्त क्यों प्रस्तुत नहीं कर रहे ?

[पृ० १६१

आशा है हमारे साहित्यक भी इससे कुछ सीख लेंगे और जनगत लोक-परंपराओं का उपयोग अपनी रचनाओं में करते समय हीन-भाव का अनुभव नहीं करेंगे।

पटियाला — देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी

साहित्यकार यशपाल

श्री यशपाल जी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है वह सभी दृष्टियों से सराहनीय है। साहित्य के सभी समर्थ समालोचकों और विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से उन्हें प्रेमचन्द जी के बाद हिन्दी का सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक माना है।

आपकी कहानियों के विषय में नैशनल हैरल्ड जून १९४० में समीक्षा करते हुए लिखा गया था—"ये कहानियाँ संसार की किसी भी भाषा की श्रेष्ठ कहानियों के संग्रह में ऊँचा स्थान पाने योग्य हैं।"

आपकी उपन्यास-कला का विवेचन करते हुए महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन जी ने यह धारणा प्रकट की थी कि यशपाल जी की तूलिका स्थायी मूल्य की चीज़ों के लिए है।

आपके निबन्धों को आचार्य नरेन्द्रदेव ने आत्मविस्तृत समाज को कलम की नोक से जगाने के शक्तिशाली साधन माना है।

उक्त तीन प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियाँ इस बात की द्योतक हैं कि यशपाल एक महान साहित्यकार के रूप में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं। श्री यशपाल जी की इस बहुमखी साहित्य-साधना के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए हम अभी उनसे और भी उत्कृष्ट रचनाओं की आशा करते हैं।

पटियाला

जीत सिंह 'सीतल'
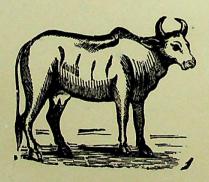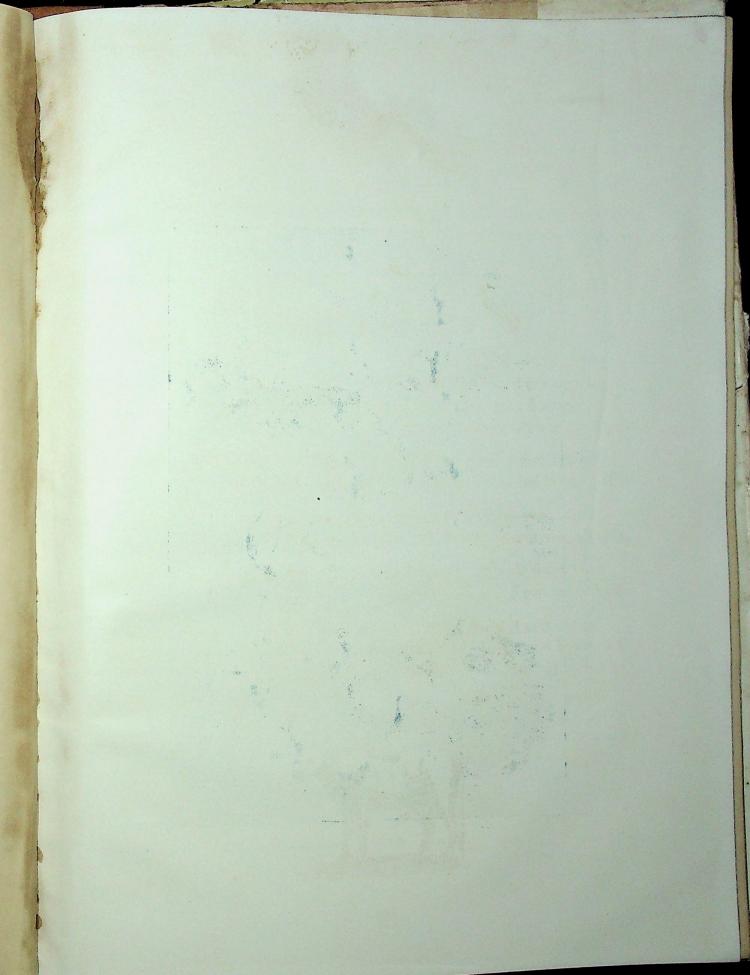
मास्को के एक सम्मेलन में श्री यशपाल प्रश्नों के उत्तर देते हुए

दो पत्र

(श्री यशपाल जी की रूस यात्रा के समय उनके नाम लिखे गये दो रूसी नागरिकों के पत्र यहाँ अविकल रूप से उद्धृत किये जा रहे हैं। इनसे जहाँ श्री यशपाल के साहित्य के प्रति रूसी नागरिकों और विद्यार्थियों की अभिरुचि का पता चलता है वहाँ रूसियों द्वारा लिखी गई हिन्दी का नमूना भी प्रस्तुत है)

लेनिनग्राद,
पेत्रोद्वोरेन्स,
क्रास्नि प्रोस्पेक्त ४०-आ
३१ ओगस्त, १९५५

मेरे अनदेखे गुरु और मित्र, श्री यशपाल,

क्षमा करना कि मैं आपको तकलीफ देता हूँ। मुझे आशा है यह पत्र यथासमय आपके पास पहुँचे। कहते हैं कि आप सोची शहर से थोड़े वक्त में जाना चाहते हैं। इस लिये जितनी जलदी हो सकता है आप की कहानी 'भस्मावृत चिनगारी' के रूसी अनुवाद आप को भेज देता हूँ। इस पर मेरे अध्यापक इसरार कर रहे हैं। विशेषकर आप की परिचित अध्यापिका आदरणीय ततियाना येवोन्येव्ना कतेनिना। अवश्य स्वयं मैं यह करना मत मन में न ठानतूं चूँकि मैं मुझे इस कद्र अनुभव-प्राप्त और अभ्यस्त न समझता हूँ कि आप ही. श्री यशपाल, जैसे अनंतरूप और कमरतोड़ (सम्भव है मेरे ही लिये) लेखकों के पुस्तक अनुवाद कर सकूं।

इस पर भी, यदि आप के पास भेजा हुआ अनुवाद रत्ती भर भी आपको पसंद आयेगा और योग्य होगा, तो मैं बड़े उपभोग और अकृत्रिम संतोष के साथ अवश्य आपकी सम्मति के अनुसार-आपके कहानियों का अनुवाद फिर कर रहूँ। अगर मैं हमारे देश में आपके अजीब लेखों की सर्वप्रियता के लिये लेश मात्र भी कर सकूँ, तो इससे मुझे बेहद हर्ष होगा। केवल यह नहीं जानता हूँ—आप और अखिल-सोवियत लेखक-संघ इस पर स्वीकार करें या न करें इसके विषय मेरी तरफ से लेखक-संघ में अब तक कोई मांग न थी।

बहुत अफसोस की बात है कि मैं ने आपसे मिलने का अवसर खोया जब आप लेनिनग्राद में थे, तब मैं कोलखोज़ में था। आशा रखता हूँ कि आप दूसरी बार हमारे नगर आयेंगे

निदान अपना किसी न किसी परिचय करना चाहता हूँ। मेरी उम्र ३२ बरस की है। महान् देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वक्त मैं सोवियत फौज में नौकरी कर रहा था। इसके बाद चार साल मैं एक समाचार-पत्र के संपादक मंडल में काम कर रहा था। अब मैं विद्यार्थी हूँ, हिन्दी में मेरी अधिक रुचि है।

मेरी बुरी हिन्दी के लिये क्षमा कीजिए-अभ्यास तो बहुत कम है। अपने सामर्थ्य से ऊँचा कूदना मुश्किल है न!

पत्रोत्तर की अनवरत प्रतीक्षा में

आपका
लेल कुजनेत्सेव

श्री यशपाल जी ।

मुझे बहुत खेद है, कि लेनिनग्राद में मेरी आपसे मुलाकात नहीं हुई । यह मुलाकात मेरे लिये इस कारण से विशेष महत्व की होती, कि मैं आपकी रचनाओं से भरी भांति परिचित हूँ। मेरे 'डिप्लोमा-निबन्ध' का विषय था—आपका उपन्यास "पार्टी-कामरेड"। इस मेरे ऊपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। अब मेरी इच्छा यह है, कि इस उपन्यास पर मेरे काम को आगे बढाऊँ, और सब से पहले इसका रूसी में अनुवाद करूँ। बहुत अच्छा हो अगर आप इस भावी प्रकाशन के लिये भूमिका लिख दें। मुझे आशा है कि यह अनुवाद प्रकाशित किया जा सकेगा। मैंने अभी हाल में विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त की है। मेरा नाम है, जात्रा कुबेकोवा। अगर आप को अवकाश मिले, तो कृपा से मुझे इस पते पर उत्तर लिख देना ;

नमस्ते

ज. कुबेकोवा

चित्रकार: त्रिलोकसिंह

जीवन का आधार

"Man does not live by bread alone."

बाइबिल में कहा है, मनुष्य केवल भोजन से ही जीवित नहीं रह सकता। यह वाक्य आध्यात्मिक उद्देश्य से कहा गया है, परन्तु मनुष्य के साधारण सांसारिक जीवन क्रम में भी यह उतना ही सत्य है जितना कि मसीह की दृष्टि में आध्यात्मिक दृष्टि से था।

आत्मा-परमात्मा की चर्चा मनुष्य अपने आत्मिक या मानसिक विकास के अनुपात से सदा ही करता रहा है और न जाने कब तक करता रहेगा? जो लोग प्राचीनअन्ध-विश्वास से खीझ कर आत्मा-परमात्मा की धारणा के विरुद्ध जिहाद करते हैं, वे भी केवल खा-पीकर जीवन को परिपूर्ण समझने का दावा नहीं कर सकते। भौतिक तथा शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त उन्हें भी कुछ और चाहिये। आत्मा-परमात्मा में अन्ध-विश्वास या मानसिक दासता के विरुद्ध जिहाद करने के लिये वे आतुर क्यों हो उठते हैं? ऐसा न करने से सर में दर्द या पेट में मरोड़ तो उठता नहीं, जोड़ों के दर्द की भी यह दवा नहीं। फिर भी पेट भर खा-पीकर नरम बिस्तर पर उन्हें चैन की नींद क्यों नहीं आती? मानसिक बेचैनी क्यों होती है?

शारीरिक आवश्यकताओं से परे, इस स्थूल जगत से परे कुछ ऐसा है अवश्य जो मोटी नजर से प्राण रक्षा के लिए अनिवार्य न जान पड़ने पर भी अनिवार्य ही है। जीवन के लिए कुछ परमावश्यक भावना है जरूर; और यह जो स्थूल जीवन के परे सूक्ष्म परमावश्यक भावना है, सम्भवतः इसे हम 'मनुष्यता' की एक परिभाषा कह सकते हैं।

मनुष्य में हँसने की, अपने आपको भूल जाने की इच्छा उसकी मनुष्यता का एक खास अंग है। मनुष्येतर प्राणियों में भी ऐसी भावना है तो जरूर पर वह इतनी कम विकसित है कि हम लोगों को उसका स्पष्ट अनुभव नहीं हो पाता। यह उनके जीवन में अत्यन्त गौण है। उनके जीवन-रक्षा के साधन इतने अविकसित हैं कि जीवन-रक्षा में ही उनकी सम्पूर्ण शक्ति व्यय हो जाती है। पशुओं में जीवन की विपुल शक्ति का उच्छ्वास (Exuberance of superfluous energy) उतनी प्रत्यक्ष और प्रकट नहीं होता जितना कि मनुष्य में।

जीवन-शक्ति का उच्छ्वास मनुष्य की आदिम अवस्था में भी इतना ही स्पष्ट था जितना कि बीसवीं सदी की अत्यन्त सभ्य अवस्था में है। निस्संदेह वह इतना परिष्कृत न था। हमारे जहाँगीर और वाजिदअलीशाह की रंग-सभाएँ, ओपेरा, नाशियोनालपारी के तमाशे अमेरिकन जैज़ और जुलू तथा सुहाली लोगों का सुरा-पान कर अग्नि स्तूप के चारों ओर नृत्य करना भिन्न-भिन्न चीज़ें नहीं हैं। जीवन-रक्षा की आवश्यकताएँ हमें जितना व्यस्त करती हैं, जीवन-शक्ति के उच्छ्वास को तृप्त या प्रकट करने की आवश्यकताएँ हमें उससे कम व्यस्त नहीं करती।

'मद' को सभी धर्म गुरुओं ने 'धर्म ज्ञान' का घातक कहा है परन्तु 'मद' मनुष्य के विकास का उतना ही आदिम अंग है जितना कि 'धर्म-विश्वास'। जब मनुष्य उषा के बालसूर्य, सुनील आकाश और भयंकर आँधी के सम्मुख दण्डवत कर अपने कल्याण का बीमा कर लेने का विश्वास कर लेता था, तब भी 'मद' उसके साथ था। मालूम होता है 'मद' और धर्म-विश्वास' मनुष्य जीवन के एक समान आवश्यक अंग हैं।

'धर्म-ज्ञान' और 'धर्म-भाव' का आविष्कार मनुष्य ने शोक, संताप और भय से बचने के लिये किया गया है। 'मद' का आविष्कार उसने किया है भय को भुला कर सुख और आह्लाद की अनुभूति के लिये। फ़र्क़ कुछ नहीं। अभिप्राय और लक्ष्य है—दुःख की अनुभूति से बचने और सुख की अनुभूति की चाह। धर्म निवारक (negative) और मद पोषक (positive) साधन हैं। जिन दो घटनाओं ने पहले-पहल 'धर्म' और 'मद' का आविष्कार किया होगा, वे मनुष्य- समाज की परम कृतज्ञता की पात्र हैं।

दिवाली या ईस्टर धार्मिक त्योहार है। परन्तु उनमें भी 'धर्म' तो रह जाता है ओट में और मुख्य रूप से आगे आता है, आनन्दोल्लास! यही हाल क्रिसमस का है। ईसाई देशों में क्रिसमस के समय 'मद' के झाग का जो प्रवाह बहता है और 'बाल' नाच का जो बवंडर उठता है, उसमें बेचारे मसीह का जन्म बिलकुल डूब जाता है।

मुसलमानों का मुहर्रम सरासर ग़म और आहोज़ारी का दिन है लेकिन उस दिन भी जीवनशक्ति का उच्छ्वास कितना विकट और प्रत्यक्ष होता है? उस दिन ग़म इतना प्रबल नहीं होता जितना जोश! किसी के 'धर्म-भाव' और 'धर्म-अभिमान' को चोट न पहुँचाने के लिये, डरते-डरते कहूँगा कि इस 'हाय हुसैन' कहकर पीटने में, छाती से लहु बहाने में भी एक उन्माद का संतोष है।

हिन्दुओं के त्योहर का कहना ही क्या। मानों हमेशा आनन्द में पागल हो जाने का बहाना ढूँढते फिरते हैं। होली को ही लीजिए। होली के दिन तो जो कुछ न हो जाय वही ग़नीमत! भारत में होली के अवसर पर जीवन-शक्ति का जितना उत्कट उच्छ्वास होता है, मेरे विचार में उसे यदि नियमित रूप से संचित कर संसार के बड़े से बड़े सम्राज्य की जड़ा में लगा दिया जाय, तो वह साम्राज्य की अडिग चट्टान को डाइनामाइट की तरह उड़ा देगी।

मनुष्य आनन्द में पागल होकर अपनी शक्ति का व्यय क्यों करता है? शरीर को पुष्ट

करने के लिये। व्यायाम करने में भी मनुष्य अपनी शक्ति को व्यय करता है। शारीरिक शक्ति के व्यय से शरीर सशक्त होता है, उसी प्रकार आनन्द में उच्छ्वासित होकर जीवनशक्ति बहाने से जीवन-शक्ति और जीवन के उच्छ्वास बढ़ते हैं। इस लिये राष्ट्र के स्वास्थ्य के लिये नाच, गान, मेले-तमाशे नाटक, दंगल आदि बहुत जरूरी हैं। वे समाज में जीवन-शक्ति उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियाँ हैं। हमारे मन्दिर, मस्जिद और धर्मस्थान राष्ट्र के शरीर में नासूर हैं, जो उसकी स्वाभाविक उन्नति को रोक कर उसे सुस्त और निष्प्रभ बनाने की चेष्टा करते हैं। 'गाब्रील-द-अनजियो' ने एक जगह लिखा है—"एक विशाल गिर्जाघर की अपेक्षा एक कूड़े गोबर का ढेर अधिक मूल्यवान है। उससे खेत की शक्ति तो बढ़ेगी।"

मतलब यह है कि हमारा आनन्दोच्छ्वास हमारी जीवन-शक्ति का एक सहायक स्रोत है! वह हमारे जीवन-प्रवाह में शक्ति को बढ़ाने का एक उपकरण है, परन्तु हमारे धर्मशास्त्र आनन्दोच्छ्वास को नरक का द्वार बताते हैं। नाच, गाना, थियेटर, सिनेमा, दंगल, मेले आदि इनकी दृष्टि में पाप हैं परन्तु मैं समझता हूँ और हर एक समझदार आदमी मानेगा कि यह सब जीवन-शक्ति के छोटे-छोटे स्रोत हैं। यह समाज के शरीर में जीवन-शक्ति उत्पादन करने वाली ग्रन्थियाँ हैं।

आज होली है, जेल की होली! आज मेरी जेल की छटी होली है। मैं त्यौहारों के दिन प्रायः निष्प्रभ हो जाता हूँ और होली के दिन तो ख़ास तौर पर। वजह क्या है? ऐसी वजहों को खोल कर जाँच लेना, उनके तलस्तर की पड़ताल कर लेना बहुत कठिन समस्या है।

आज होली के दिन जेल ख़ास देखने की चीज़ है। क़ैदियों को आज उत्सव मनाने की और आनन्द मनाने की मनाही है। इससे उनके शोक की सीमा नहीं। मनुष्य का स्वाभाविक अधिकार भी उनसे छीन लिया गया है। आज जेल पर कैसी विरूपता छा रही है!

लेकिन इतने पर भी गमक-गमक की आवाज़ आ रही है। कहीं तसला बज रहा है, कहीं मटका खटक रहा है। हँसने-गाने से, आनन्द मनाने से सजा मिलेगी, लेकिन इस वृत्ति को रोकना कितना कठिन है? आनन्द का आकर्षण कितना विकट है?

आनन्द और जीवन में फ़र्क़ ही कितना है? आज के दिन यदि क़ैदियों को खाना रोक कर उन्हें गाने-बजाने और हँसने की इजाज़त दे दी जाय तो वे बहुत खुश होंगे।

इस लिये तो कहता हूँ—मनुष्य के जीवन का आधार केवल भोजन ही नहीं।

['न्याय का संघर्ष' में से

कहानी

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित एक कहानी संग्रह की भूमिका में कहानी के प्रयोजन के सम्बन्ध में विवेचना की गई है । इस प्रसंग में गुरुदेव रीवन्द्र के एक उद्धरण के आधार पर मन्तव्य प्रकट किया गया है कि कहानी का उद्देश्य केवल कहानी है; कहानी लेखक कहानी लिखना या सुनाना चाहता है, इसी लिये कहानी लिखता है। कहानी लिखने या सुनने से या कहानो सुनाने या पढ़ने से जो संतोष होता है वही कहानी का आद्योपान्त उद्देश्य और लक्ष्य है, अन्य कुछ नहीं।

'बेटी को सुना कर बहु को सीख देने' के ढंग से कहानी के सम्बन्ध में गुरुदेव के यह विचार निश्चय ही हिन्दी जगत के उन नौसिखिये प्रगतिवादी लेखकों को सुनाये गये हैं, जो कहानी या साहित्य को समाजिक उद्बोधन और समाज की आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक समस्याओं के हल का साधन बनाना चाहते हैं। गुरुदेव के समान मानवता से आत्मीयता स्थापित कर सकने वाले कलाकार की गवाही से कहानी का प्रयोजन कला के लिये कला या कहानी से रस लेना ही बता देने के पश्चात नौसिखिये प्रगतिवादी लेखक की बात का शायद कुछ मूल्य रह ही नहीं जाता। परन्तु यह बात भी भुला देने योग्य नहीं कि गुरुदेव के वचन सभी लोगों के मुँह में जा कर एक-सा ही अर्थ नहीं रख सकते। उदाहरणतः गीता का उपदेश देते समय कृष्ण के ये शब्द, "सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य की उलझन में न पड़ कर तू बस मेरी बात मान) सभी के मुख से न तो उतनी विश्वासोत्पादक हो सकते हैं, न प्रभावशाली।

अपने-अपने मानसिक विकास के क्षेत्र और सांस्कृतिक स्तर के अनुसार व्यक्ति के स्वान्तः सुख और संतोष का रूप बदलता रहता है। एक सुसंस्कृत व्यक्ति आत्मतोष की भावना से ही जनकल्याण के लिये प्राण दे देता है और दूसरा पड़ोसी के घर सेंध लगा कर संतोष पाना चाहता है। क्या ऐसे दोनों व्यक्तियों के आत्मतोष की भावना पर एक समान भरोसा किया जा सकता है? ऐसे ही कहानी लिखने से भी सभी लेखक एक ही प्रकार के आत्मतोष या स्वान्तः सुख की चेष्टा नहीं करते। उदाहरण के लिये गुरुदेव रवीन्द्र की

कविताओं से एक पंजाबी लोकगीत 'तूम्बा वजदाई ना' की तुलना करना पर्याप्त होगा। निश्चय ही 'तूम्बा वजदाई ना' के गायक ने अपने गीत में एक स्वान्तः सुख प्राप्त किया होगा, जैसे कि गुरुदेव अपनी कविताओं या गीतों में करते थे परन्तु 'तूम्बा वजदाई ना' की स्वान्तः सुख की अनुभूति समाज द्वारा स्वीकृत नैतिकता के लिये इतनी असह्य थी कि सरकारी आज्ञा से उस का सार्वजनिक रूप से गाया जाना निषिद्ध ठहराना आवश्यक समझा गया और गुरुदेव के गीत को राष्ट्रीय गान का स्थान देने से जनता को संतोष हुआ।

महापुरुषों के वचनों के लिए प्रायः ही टीका और भाष्य की आवश्यकता होती है, इसलिये गुरुदेव की बात को समझने का प्रयत्न करना धृष्टता न समझी जानी चाहिये। हमारे सामने दो मौलिक प्रश्न हैं—एक, कहानी से रस क्यों मिलता है? दूसरा, कहानीकार को कहानी सुनाने की इच्छा ही क्यों होती है? शायद यह उत्तर विवादास्पद न समझा जायगा कि कहानी से रस मिलने का कारण श्रोता या पाठक का कहानी के पात्र के जीवन और व्यवहार के प्रति कौतूहल और उत्सुकता है। पाठक या तो कहानी के पात्र के प्रति सहानुभूति से या पात्र के अनुचित कार्य के प्रति विरोध अनुभव कर कहानी में रस पाता है। पाठक के कौतूहल, उत्सुकता, सहानुभूति और विरोध का आधार कहानी द्वारा कहानी की समस्या से आत्मीयता अनुभव करना ही है। कहानीकार की कहानी सुनाने की इच्छा का स्रोत पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर आवश्यकतानुकूल काल्पनिक चित्रों द्वारा अनुभूति के और विचारों के आदान-प्रदान का अवसर पाना ही है। इस सामाजिक चित्र से कथाकार और श्रोता दोना की ही अनुभूतिगम्य आत्मीयता होना आवश्यक है। यदि कहानी से रस मिलने और कहानी कहने की इच्छा के सम्बन्ध में उपरोक्त मन्तव्य को अंशतः भी स्वीकार किया जा सकता है तो कहानी मूलतः एक सामाजिक वस्तु हो जाती है। और उसे केवल व्यक्तिगत संतोष का साधन कह कर छोड़ देना, कहानी के मूलतत्त्व से इनकार कर देना होगा।

कहानी को एक सामाजिक सूत्र मान कर हम कहानी के प्रयोजन और कथाकार के सामाजिक उतरदायित्व की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते हैं? इस सामाजिक सूत्र का एक छोर कथाकार है, दूसरा श्रोता। इनके अस्तित्व को भुला कर कहानी को केवल कथाकार के आत्मसंतोष का ही साधन कैसे मान लिया जा सकता है? हाँ, यदि कहानी के रूप में सामाजिक समस्या के विवेचम और चिंता को हम बोझ के रूप में अनुभव नहीं करते तो उसे हम कहानी कला की सफलता अवश्य समझ सकते हैं। कहानी को निश्चय ही अरुचिकर और बोझल नहीं होना चाहिए परन्तु कहानी का उद्देश्य स्वयं कहानी ही बता देना कहानी को निष्प्रयोजन और निरुद्देश्य बना देना होगा। हमें मान लेना होगा कि हम कहानी से श्रोता या पाठक पर कोई भी प्रभाव पड़ने की आशा नहीं करते।

यदि कहानी की सफलता की कसौटी पाठक या श्रोता पर पड़ने वाले प्रभाव को माना जाय तो कहानी से पड़ने वाले प्रभाव के प्रति सतर्क रहना भी सामाजिक कर्तव्य हो जाता है। कहानी निष्फल और प्रभाव शून्य न कभी हुई है न हो ही सकती है। कहानी से पड़ने वाला प्रभाव ही उसका प्रयोजन और उद्देश्य है। हम इस प्रयोजन या उद्देश्य के प्रति सचेत हों या न हों।

कहानी द्वारा परम्परागत मान्यताओं के समर्थन को कला का स्वान्तः सुख बता देना और कला के माध्यम से नवीन विचारों का परिचय देने के प्रयत्न को कला का दुष्प्रयोग बता देने, कला को एक विशेष विचारधारा की चेरी बनाये रखने का ही प्रयत्न है। जनवाद के इस युग में कला, पर एकाधिकार की यह प्रवृत्ति कैसे सहन की जा सकती है ?

['चित्र का शीर्षक', भूमिका

❀ ❀ ❀

संसार की समृद्ध भाषाओं में कहानी कला का विस्तार और विकास खूब हो चुका है। परिस्थितियों के कारण हमारा देश और इस देश की भाषाएँ पिछड़ी रहीं। अब दूसरों के अनुभव से बहुत कुछ पाने का अवसर होने के कारण हमारे देश की भाषाओं में भी कहानी कला का विकास अपेक्षाकृत तेजी से ही हो रहा है।

जब किसी भी वस्तु का विकास और विस्तार होने लगता है तो उसमें भिन्नताएँ भा पैदा होने लगती हैं। इन भिन्नताओं के विचार से जो वस्तुएँ एक प्रकार और शैली में आ सकें उनके अलग-अलग वर्ग और उपवर्ग बनने लगते हैं। यह बात हमारी कहानी कला पर भी चरितार्थ हो रही है। इस समय हिन्दी और उसी के अन्तर्गत उर्दू में भी अन्य समृद्ध भाषाओं की ही तरह अनेक प्रकार और शैली की कहानियाँ लिखी जा रही हैं। प्रायः ही इन कहानियों में गठन और शैली का भेद इतना उग्र होता है कि दो भिन्न प्रकार की रचनाओं के लिये एक ही साहित्यिक परिभाषा 'कहानी' मान लेना कठिन जान पड़ता है। ऐसी अवस्था में कहानी की कला को अनुशासन में रखने के लिये कहानी की परिभाषा पर विचार करने की इच्छा असंगत नहीं समझी जानी चाहिये।

कहानी की परिभाषा निश्चित कर के कहानी कला को अनुशासन में रखने के सुझाव का अभिप्राय कहानी कला या इस वर्ग के साहित्य के विस्तार और विकास पर बन्धन लगाना नहीं है, न उस पर किसी वाद या दल का एकाधिकार जमाना है, प्रयोजन केवल कला को अधिक परिष्कृत और सार्थक करने की इच्छा ही है।

एक समय कहानी पढ़ी नहीं सुनी जाती थी। ऐसी भी कहानियाँ थीं जो महीनों चलती रहती थीं उदाहरणतः 'सहस्र रजनी चरित्र'। ऐसी कहानियाँ आवश्यक तौर पर एक घटना से प्रसूत होने वाली घटनाओं की शृङ्खला होती थीं। आज घटनाओं की ऐसी शृङ्खला की रोचकता और कलात्मकता पर संदेह न कर के भी उसे कहानी नहीं कहा जा सकेगा, उसके लिये साहित्य के विभागीकरण ने और भी बड़ा नाम और परिभाषा दे दी है—उपन्यास।

आज दिन कहानी की परिभाषा या व्याख्या स्वयं ही सर्वमान्य हो गयी है कि किसी घटना का ऐसा कारण-सम्बद्ध वर्णन कहानी है जो भावोद्रेक कर सके।

लेखक कभी-कभी विचारों के उद्गार से ऐसी भी रचनाएँ लिखते हैं, जिनमें तथ्य या भाव को घटना के माध्यम से प्रस्तुत न करके केवल विचारों को शृङ्खला या शब्द-चित्र के रूप में पेश कर दिया जाता है। अथवा कभी किसी विशेष व्यक्तित्व को उसके जीवन की किसी घटना का आधार लिये बिना ही पाठकों से परिचित कराने का प्रयत्न किया जाता है।

इस प्रकार की घटनाहीन, वर्णन-प्रधान रचनाओं की सारगर्भिता और रोचकता के विषय में संदेह न होने पर भी उन्हें कहानी की व्याख्या और परिभाषा में ही क्यों समेटा जाय? कोई भी परिभाषा वस्तुओं के वर्ग की समता की द्योतक होती है।

पत्रकारों की भाषा में सभी खबरों को 'स्टोरी' कहा जाता है परन्तु वे कहानी की साहित्यिक परिधि और परिभाषा में नहीं आ सकतीं। इसी प्रकार काबुल या लासा के बाज़ार का वर्णन या सड़क पर हुए किसी कत्ल के वर्णन, या साम्प्रदायिक सहिष्णुता अथवा विश्व-शान्ति के सम्बन्ध में दो यात्रियों की बातचीत को या जीवज वृत्तान्तों को कहानी की परिधि में नहीं समेट लिया जा सकता।

नये-पुराने लेखक अपने विचार और उद्गार प्रकट करने के लिये कभी-कभी ऐसी शैली और माध्यम का उपयोग करते हैं, जिसमें घटना के बिना वर्णन और वार्तालाप ही रहता है। ऐसी रचनाओं को कहानी न मानने पर उन लेखकों को असंतोष भी अनुभव होता है। यह मान लेना आवश्यक नहीं कि कहानी लिखने से बढ़ कर कोई कला है ही नहीं। जैसे कहानी के क्षेत्र का विस्तार हो जाने से उपन्यास और कहानी के क्षेत्र अलग-अलग बट गये तो हानि के स्थान पर विकास में सहायता ही मिली है, उसी प्रकार कहानी के क्षेत्र में कहानी से भिन्न रूप-रंग और शैली की वस्तुओं की रचना हो जाने पर कुछ और वर्गीकरणों को स्वीकार कर लेने से भी हानि न होगी।

शब्द-चित्रों (sketches), गद्य-काव्यों (prose poetry) आपबीतियों, विचार-चित्रों या कथात्मक निबंधों (personal essays) को कहानी न मानने से उनकी रोचकता, कौशल या कलात्मकता से इनकार नहीं किया जा सकता। यह कहानी की कला से प्रेरणा पाकर उत्पन्न हुई कला की नवविकसित स्वतन्त्र शाखाएँ हैं। नकशों, तालिकाओं या चार्टों को चित्र न मानने से उनकी सार्थकता और कौशल में तो सन्देह नहीं होता। ऐसे ही साहित्य के विभिन्न माध्यमों द्वारा सामाजिक कर्तव्य निबाहने पर उन्हें कहानी ही कहते जाने की जिद अनावश्यक है। कहानी का सप्रयोजन और सार्थक होना तो अनिवार्य है परन्तु सामाजिक कल्याण की कामना से लिखी सभी रचनाओं को कहानी नहीं कह दिया जाना चाहिये।

समय-समय पर विचार वस्तु के लिये उपयोगी माध्यम चुनने के विचार से मैंने स्वयं शब्द-चित्रों और अनुभूति प्रधान निबन्धों आदि की शैली का उपयोग किया है और उन्हें प्रकाशन की सुविधा के लिये कहानी संग्रहों में सम्मिलित भी कर लिया गया है। परन्तु ऐसी रचनाओं को कहानियाँ मान लिये जाने का आग्रह मैं नहीं कर सकता।

['तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूँ', भूमिका

साहित्य का मूल्यांकन

साहित्य के मूल्यांकन के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त हैं परन्तु साहित्य के मूल्यांकन की वास्तविकता दूसरी ही है। इन सिद्धान्तों और वास्तविकताओं में उतना ही अन्तर है जितना कि जीवन के आदर्श सम्बन्धी दूसरे सिद्धान्तों और उन सिद्धान्तों के प्रयोग की वास्तविकता में।

लगभग सन् १९४५ के मई-जून की बात है। गत महायुद्ध समाप्ति पर था। सी० बी० राव, आई० सी० एस० (स्वर्गीय नेता श्री० सी० वाई० चिन्तामणि के पुत्र) लखनऊ सेक्रेटेरियट में अंग्रेजी-भारतीय सरकार के प्रचार विभाग में संचालक के पद पर काम कर रहे थे। श्री सी० बी० राव का हिन्दी के प्रति अनुराग है। उस सरकार के जमाने में, जब सरकारी कार्यों में उर्दू का ही बोल-बाला था, श्री सी० बी० राव के प्रचार विभाग के संचालक के पद पर होने के कारण हिन्दी के लेखकों का भी कुछ भला हो रहा था।

श्री० सी० बी० राव का लखनऊ से तबादला हो गया। उनके लखनऊ से जाने के समय, उनकी कृपा से लाभ उठाने वाले हिन्दी लेखकों को उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का भी ध्यान रहा। श्री० सी० बी० राव को विदाई देने के लिये लेखकों की एक गोष्ठी अथवा चाय-पार्टी का आयोजन किया गया। इस आयोजन में शायद कवि श्री० शिवसिंह 'सरोज' का विशेष हाथ था।

तब तक हिन्दी के अधिकांश लेखक मुझे कम ही जानते थे परन्तु 'सरोज' जी से व्यक्तिगत परिचय हो चुका था। इसलिए मुझे भी गोष्ठी में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। एक उच्च-पदस्थ हाकिम को विदाई देने के लिए आयोजित गोष्ठी में सम्मिलित होने कुछ संकोच से ही गया; क्योंकि उस सरकार के जमाने में सरकारी अफसरों का मुझसे मिलना-जुलना सरकार की दृष्टि में बहुत वांछनीय नहीं हो सकता था। सरकार तो बदल गई है परन्तु वह बात आज भी अनुभव करता हूँ। साहित्य में रुचि रखने वाले अनेक सरकारी अफसर, जो सरकार के कांग्रेसी रूप लेने के उषा काल में मुझ से निःशंक मिलने लगे थे, अब आमना-सामना होने पर फिर आँखें चुरा जाते हैं और कहीं निरापद स्थान में मिलने पर संकोच से दीनता भी प्रकट कर देते हैं—"भाई, सरकारी नौकरी जो करनी है......" खैर निमन्त्रण में गया।

निमन्त्रण में आये हुए अधिकांश लोगों के लिये मैं अपरिचित था। श्री० सी० बी० राव भी अधिकांश से अपरिचित ही जान पड़े, क्योंकि उपस्थित लोगों से उनका व्यक्तिगत परिचय कराना आवश्यक समझा गया। मेरी बारी आने पर 'सरोज' जी ने सरकार विरोधी 'विप्लव' का प्रसंग बचा कर मेरे कहानी संग्रहों और उपन्यासों का ज़िक्र किया। उन्होंने मेरे लिखे उपन्यासों में 'देशद्रोही' का भी नाम लिया।

'देशद्रोही' का नाम सुनकर श्री० सी० बी० राव फड़क उठे। बोले—"आपके उपन्यास मैंने पढ़े हैं, खास तौर पर 'देशद्रोही' . . . ." और उन्होंने उदारता से 'देशद्रोही' की प्रशंसा कर अंग्रेजी के कई उपन्यास लेखकों के नाम गिना कर 'देशद्रोही' को उनके उपन्यासों से अधिक सफल बता दिया। इस पर 'सरोज' जी ने मेरी और भी अधिक प्रशंसा की।

मेरे इस परिचय और प्रशंसा से सबसे अधिक विस्मय हुआ हिन्दी साहित्य का इतिहास और अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखने वाले मिश्रबन्धुओं में ज्येष्ठ श्री शुकदेवबिहारी जी मिश्र को। मिश्र जी मेरे सामने वाली पंक्ति के बीचोंबीच बैठे थे। उन्होंने कान पर हाथ रख और भौं ऊँची कर प्रश्न किया—"क्या नाम है आपका ?"

अपना नाम ज़रा ऊँचे स्वर में उन्हें बताया। मिश्र जी ने मेरा नाम अपनी स्मृति में खोजने का यत्न किया और फिर स्वीकार किया कि यह नाम उनके लिये नया है। उन्होंने मुझ से पूछा- "तो आपने अभी नया हो लिखना शुरू किया होगा ?"

"जी हाँ, अभी कुछ ही दिन से, पांच-छः वर्ष से।"—मैंने स्वीकार किया।

"हमने अभी तक आपका लिखा कुछ पढ़ा नहीं। आँखों के कष्ट के कारण हम आजकल अध्ययन कम कर पाते हैं। लिखने के लिये अध्ययन करना आवश्यक है"—उन्होंने उपदेश दिया और बताया, "हम पचास पृष्ठ पढ़ते हैं तो एक पृष्ठ लिखते हैं। आप किसी दिन अपनी लिखी कुछ कहानियाँ लेकर हमारे यहाँ आइये तो हम आपकी कहानियों को देखेंगे और तब अपना मत दे सकेंगे।"

अपनी कहानियाँ सुनाने के लिये किसी के यहाँ जाने की बात मुझे रुचिकर नहीं लगी परन्तु मिश्र जी के वय और हिन्दी साहित्य में उनके स्थान के प्रति आदर के विचार से उत्तर दिया—"जब भी आप आज्ञा दें, उपस्थित हो सकता हूँ।" मिश्र जी ने तीसरे या चौथे दिन दोपहर के बाद आने के लिये आदेश दे दिया।

अपनी कहानी दिखाने के लिये जाने का उत्साह न होने पर भी कर्तव्य निबाहने के विचार से 'पिंजरे की उड़ान' और शायद 'वो दुनियाँ' की एक-एक प्रति लेकर गोलागंज में मिश्र-बन्धुओं के भवन में पहुँचा। सूचना देने पर भीतर बुला लिया गया। एक बड़े से कमरे में, कमरे से कुछ ही छोटा, खूब बड़ा तख्त बिछा था। तख्त पर दरी और उस पर सफेद चादर और बड़े-बड़े दो गावतकिये पड़े थे। ज्येष्ठ और कनिष्ठ दोनों ही मिश्रबन्धु, गर्मी अधिक होने के कारण केवल महीन धोतियाँ पहने लेटे थे। दोनों ही गौरवर्ण वृहद शरीर और स्थूलोदर। शरीर में आगे बढ़ी हुई तोंदों के बोझ के कारण लेटे रहने में ही उन्हें सुविधा अनुभव हो सकती थी।

कमरे में मेरे पहुँचने पर ज्येष्ठ मिश्र जी ने लेटे ही लेटे बाँह फैला तख्त के समीप पड़ी एक कुर्सी की ओर संकेत किया- "आइये, बैठिये। कैसे आये ?"

उन्हें याद दिलाया—"आपने मुझे अपनी कहानी दिखाने के लिए आज के दिन आने को कहा था।" अपना नाम बताया। याद दिलाया कि बात गंगाप्रसाद-मेमोरियल लाइब्रेरी की छतपर श्री सी० बी० राव की विदाई की गोष्ठी में हुई थी।

याद आ जाने पर मिश्र जी बोले—"हाँ हाँ बैठिये!" वे अनेक प्रश्न मुझसे पूछते रहे। मेरा मकान कहाँ है, कितनी शिक्षा पायी है, कब से लिखना शुरू किया है, किस दफ्तर में नौकरी करता हूँ या मेरा व्यवसाय क्या है आदि-आदि। यह जानकर कि मेरा व्यवसाय लिखना ही है, मिश्र जी को बहुत विस्मय हुआ।

अनेक नौकरों को पुकारने पर एक प्रकट हुआ। मिश्र जी ने मेरे सत्कार के लिए बाजार से दो आने का कुछ मीठा-नमकीन ले आने का आदेश दिया। इसके लिए मैंने क्षमा चाही, क्योंकि मैं दोपहर में भोजन काफी देर से करता हूँ।

मिश्र जी ने मेरे नकार की, परवाह न कर उत्तर दिया—"हमारे यहाँ का नियम है कि साहित्यिकों के आने पर हम उनका सत्कार करते हैं। पहले आप जल-पान कर लीजिए तब आपकी कहानी देखेंगे।"

विवश हो उनके इस नियम के आगे झुक जाना पड़ा और दोने में उपस्थित किये गये 'सत्कार' को अशंतः निगल और नौकर द्वारा उपस्थित कुल्हड़ से जल-पान कर निवेदन किया—"यह आपके विश्राम का समय है"—क्योंकि दोनों बन्धु तख्त पर अपने अंगों को ढीले छोड़ कर लेटे हुए थे—"मैं दो पुस्तकें छोड़ जाता हूँ। आप सुविधा से इन्हें देख सकेंगे।" मन ही मन मैं उस स्थान और वातावरण से भाग निकलने के लिये छटपटा रहा था।

ज्येष्ठ मिश्र जी ने करवट ले, अपना जनेऊ दोनों हाथों से तान कर अपनी पीठ खुजलाते हुए उत्तर दिया—"नहीं, नहीं! आप स्वयं अपनी सबसे अच्छी कहानी पढ़ कर हमें सुनाइये। हम इसी समय सुविधा से सुन सकते हैं।"

अपनी कहानियों में सबसे अच्छी कहानी चुन लेना मुझे कभी आसान नहीं जँचा। वहाँ से शीघ्र ही निकल भागने के लिए मैं एक मँझले आयतन की कहानी चुन कर पढ़ डालने के लिये तैयार हुआ ही था कि मिश्र जी ने हाथ उठा कर आदेश दिया—"ऐसे नहीं! आप पहले कहानी की घटना और उसका भाव हमें मौखिक बता दीजिए और तब उसे पढ़ कर सुनाइये। इस प्रकार हम कहानी के घटनाक्रम, भाव और आपकी शैली की पृथक-पृथक विवेचना कर सकेंगे।"

उनकी इस आज्ञा का भी पालन करने के लिए पहले कहानी की घटना और भाव संक्षेप में बता कर कहानी पढ़ना आरम्भ किया। मन ही मन पछता रहा था कि कहाँ आ फँसा! मँह में तिरस्कार का कड़वापन भी अनुभव कर रहा था परन्तु अब तो निबाहना ही था, सो पढ़ने लगा।

कुछ देर पढ़ पाया था कि खर्राटे की आहट सुनाई दी। किताब के पन्ने से आँख चुराकर देखा, ज्येष्ठ मिश्रबन्धु की आँखें मुँद गयी हैं, मुख खुल गया है और बाहें तख्त पर शिथिल हो गयी हैं। पढ़ना रुक गया।

कनिष्ठ मिश्रबन्धु की ओर देखा, वे जाग रहे थे। "पढ़िये, पढ़िये"--उन्होंने उत्साहित किया। उनके शब्द से ज्येष्ठ मिश्रबन्धु भी आँखें खोल बोल उठे—"हाँ हाँ हम सुन रहे हैं। आप पढ़ते जाइये।"

फिर कहानी पढ़ना शुरू किया। दो पैरे और पढ़ पाया हूँगा कि फिर खर्राटे की आहट। फिर देखा, अब को ज्येष्ठ मिश्र जी की आँखें खुली थीं। और कनिष्ठ की मुंदी हुईं। इस बार पढ़ता ही गया। सोचा कि जैसे-तैसे कहानी समाप्त कर ही डालूं।

मैं कहानी पढ़ता गया। बारी-बारी से मिश्र बन्धुओं के खर्राटों और उनके विस्तृत स्थूल उदरों से निकलने वाली ऊर्ध्ववायु और अधोवायु अपनी मुक्ति की घोषणा करती रही। उस ओर ध्यान न देने का निश्चय कर लिया और कहानी पढ़ ही डाली।

कहानी का कुछ भाग ज्येष्ठ मिश्र जी ने और कुछ कनिष्ठ मिश्र जी ने सुन लिया। चुप हो जाने पर दोनों मिश्र बन्धुओं की नींद खुल गई, जैसे चलती ट्रेन में गाड़ी के थम जाने पर झपकी टूट जाती है। ज्येष्ठ मिश्र जी ने करवट ले जनेऊ की सहायता से पीठ को खुजाते हुए सम्मति दी—"कहानी आपकी जरूर बहुत अच्छी है। हम को बहुत पसन्द आयी। आपकी शैली नयी है। आपकी शैली को प्रेमचन्द की शैली से मिलता-जुलता कहा जा सकता है परन्तु उसमें और इसमें भेद है। आपको खूब अध्ययन करना चाहिए। आपने किस-किस, पाश्चात्य लेखक की पुस्तकों का अध्ययन किया है ?"

जानबूझ कर जोला, अनातोल-फ्रांस, गाब्रील-द-अनजियों, तुर्गनेव, आरागों के नाम गिना दिये। कुछ नये नाम सुन कर मिश्र जी ने विस्मय से पूछा—"क्या इन सब के अनुवाद हिन्दी में हो गये हैं ?"

"मेरा अनुमान है शायद नहीं हुये होंगे। मैंने इन्हें मूल फ्रेंच, इटालियन और रशियन में पढ़ा है।"

बहुत विस्मय से मेरी ओर देख मिश्र जी ने पूछा—तो आप यह सब पढ़ लेते हैं ?·· कहाँ पढ़ा आपने।"

उत्तर दिया- "जेल में काफी बरस रहने का मौका मिला है। वहाँ सिवा इसके और कोई काम ही नहीं था।"

जेल की बात सुन मिश्र जी को और भी अधिक अचंभा हुआ। उनके कौतूहल का समाधान करने के लिये जेल जाने का कारण भी बताना पड़ा और उन्हें मालूम हुआ कि मैं राजनैतिक कारणों से जेल गया हूँ। भगतसिंह का नाम तो उन्हें भी याद था।

बात पलट कर फिर साहित्य की ओर आयी। मिश्र जी ने फिर पूछा कि मैं यहाँ क्या व्यवसाय करता हूँ। फिर उत्तर दिया कि केवल लिखना ही मेरा व्यवसाय है, दूसरा कोई व्यवसाय नहीं।

मेरी बेकारी के प्रति सहानुभूति से मिश्र जी के चेहरे पर करुणा झलक आई—"तो आपका निर्वाह कैसे चलता है ? क्या लिखने से गुजारा चल जाता है ?"

"जी हाँ, जैसे-तैसे चल ही जाता है।"

माथे पर चिन्ता की रेखाएँ प्रकट कर मिश्र जी ने फिर प्रश्न किया– "कितना बन जाता है ?"

मिश्र जी के सामने अपनी आमदनी की वात ठीक-ठीक बता देने में इन्कमटैक्स का भय तो नहीं था परन्तु कोई ऐसी गर्व करने योग्य आमदनी भी तो नहीं। इस लिये फिर भी उत्तर दिया कि जैसे-तैसे निर्वाह हो ही जाता है।

मेरी बात पर विश्वास कर सकने के लिए मिश्र जी ने मेरी पुस्तकों के बारे में अधिक व्योरे से पूछा, कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, महीने में कितना लिख लेता हूँ और अन्त में अनुमान प्रकट किया– "साठ-सत्तर रुपये महीना तो हो ही जाता होगा ?"

"जी हाँ, निर्वाह हो ही जाता है"—उन्हें सान्त्वना दे दी।

" तब तो बहुत अच्छा है"—मिश्र जी ने संतोष प्रकट किया—"बहुत अच्छी बात है कि हिन्दी में भी लोग लिखकर निर्वाह करने लगे हैं। अब तक हमारा ध्यान आपकी रचनाओं की ओर नहीं गया था। अब आपकी जो रचनाएँ प्रकाशित हों, हमें भेजते रहा कीजिये। हिन्दी साहित्य के इतिहास का शेष भाग जब हम लिखेंगे, उसमें आपका भी नाम लिख देंगे।

मिश्रबन्धुओं का आशीर्वाद पा विदा ली। उनके मकान से बाहर निकलते ही हँसी आयी कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में अब मेरा भी नाम लिख दिया जायगा क्योंकि लेखक के व्यवसाय से निर्वाह के लिये साठ-सत्तर मासिक कमा ही लेता होऊंगा !

पहाड़ी सड़क पर

धनसिंह प्रायः डेढ़ बरस से इस सड़क पर मोटर चला रहा था। जाड़े के दिन थे। वह दोपहर से कुछ पहले कुल्लू से चला था। 'मण्डी' पार कर वह अपेक्षाकृत सीधी और ढलवां सड़क पर 'बैजनाथ' की ओर निश्चिन्त, केवल अभ्यस्त सावधानी से चला जा रहा था। उसकी अपलक और स्थिर दृष्टि सड़क पर लगी हुई थी और सड़क तेजी से उसकी लारी के पहियों के नीचे से फिसलती जा रही थी जैसे मशीन के पहिये पर पट्टा फिसलता जाता है। मोटर की दिशा निश्चित करने वाले धक्के (स्टियर) पर टिकी उसकी उँगलियाँ सड़क की अवस्था के अनुसार स्टियर को गति दे देतीं और सम्भल जातीं।

सड़क के बाईं ओर फैली घाटी के किनारे-किनारे मोटर पहाड़ियों की पसलियों पर से चली जा रही थी। घाटी की हरियाली ने जाड़े-पाले से पीली पड़ सुनहरी आभा ले ली थी। सूर्य ढल रहा था, जैसे घाटी की पश्चिम सीमा पर रखे, चीड़ से छाई पहाड़ियों के तकियों पर अपना सिर टिका देना चाहता हो। धनसिंह को केवल नौ मील आगे, बैजनाथ तक ही पहुँचना था। सवारियों की चें-चें और चख़-चख़ की कोई चिन्ता न थी। लारी में आलू की बोरियाँ लदी थीं!

धनसिंह का सहायक, लारी का क्लीनर कर्मू लारी के पिछवाड़े आलुओं की बोरियों में घोंसला बना कर लेटा हुआ था। वह मुँह ऊपर उठाये, कानों में उङ्गलियाँ दिये, गले की पूरी शक्ति और हृदय के उच्छ्वास से एक पहाड़ी झिंझोटी अलाप रहा था —

"दिलां दियां कुण्डियां खुलाई कने बो,
प्रीतां दियां रीतां भुलाई कने बो,
दित्ता बिछोड़ा बंदिया जो।"
(मन के किवाड़ों की सांकल खुला करके,
प्रीत की रीतें भुला करके,
दिया बिछोड़ा दासी को रे।)

कमू की आवाज़ सुरीली थी और उसमें दर्द भी था। लारी की थिरकन से उसमें कम्पन भी आ रहा था। लारी की चाल और इंजन का शब्द साज़ बनकर गीत के लिये ताल दे रहे थे। ऊँचे स्वर से गाये गीत का अधिकांश गाड़ी की तेज़ चाल के कारण पीछे उड़ जाता! धनसिंह को गीत कोमल होकर दूर घाटी में से आता हुआ सुनाई दे रहा था। धनसिंह के हाथ स्टियर पर, पाँव ब्रेकों को छूते हुए, आँखें उड़ती हुई सड़क पर, कान गीत के स्वर में और मन गीत के विषय में डूबा हुआ था। उसकी सतर्क दृष्टि में तरलता और चेहरे पर मग्नता का भाव था।

सड़क पर मोटर के सामने कुछ बकरियाँ और मेमने दिखाई दिये। धनसिंह की उङ्गलियों ने स्वतः भोंपू बजा दिया। बकरियाँ और मेमने कुछ भटके और सड़क की मुंडेरों की ओर हो गए परन्तु दो छोटे-छोटे मेमने सहसा अपनी दोनों टाँगें उठाकर फिर मोटर के सामने कूद आये और उनके ऊपर, छाया की तरह, आ गिरी एक औरत।

यंत्र की स्वाभाविकता और अचूक फुर्ती से धनसिंह का हाथ क्लच और पाँव ब्रेक पर जा पड़े। गाड़ी अपनी गति के प्रवाह में अलंघ्य बाधा पा सड़क हर उछल कर खड़ी हो गई। गाड़ी का पुर्ज़ा-पुर्ज़ा चर्रा गया। धनसिंह के रोम-रोम से पसीना छूट गया। औरत गाड़ी के मडगार्ड का धक्का खा गिर पड़ी थी। एक छटपटाते मेमने की टाँगें अब भी उसके हाथ में थीं और दूसरा उछल दूर सड़क पार की चट्टान पर खड़ा हो इस खेल से प्रसन्न हो मिमिया रहा था। औरत ने हाथ के मेमने को सुरक्षित देख उसे छोड़ दिया और स्वयं आँचल सम्भाल उठने के यत्न में उसने ड्राइवर की ओर देखा।

धनसिंह का क्रोध उबल पड़ा। आँखों में खून उतर आया। दायें हाथ से दरवाजा खोला, सड़क पर कूद वह गाड़ी के सामने पहुँचा। बड़ी कठिनाई से उसने अपनी फड़कती हुई बाहों को औरत को पीट देने से रोका। आखिर औरत जात थी; प्रन्तु गालियाँ उसके मुख से कितनी ही गई। "तेरी माँ...फाँसी लगवायेगी? बहन......फालतू है घर में?"—क्रोध में वह कितनी ही गालियाँ बक गया।

वह स्त्री एक हाथ से चोट खाई कमर को दबाये और दूसरी बाँह सिर को चोट की आशंका से बचने के लिये उठाये आतंक से फैले हुये नेत्रों से मूक धनसिंह की ओर देखती रही। धनसिंह अपनी विवशता में खीझ गया। वह इतनी भयंकर शरारत करने वाले व्यक्ति को पीट कर अपना क्रोध भी न उतार सका!

वह स्त्री, जवान लड़की और स्त्री की संधि की-सी अवस्था में थी। उसकी तरल फैली हुई आसमानी रङ्ग की बड़ी-बड़ी आँखें मूढ़ता से स्थिर हो गई थीं। घबराहट के कारण जल्दी-जल्दी आते हुए लम्बे-लम्बे साँसों से उसके उभरे हुये सीने फटे हुये कुर्ते से झाँकने लगे थे। उन्हें आँचल में छिपा लेने की सुध लड़की को घबराहट में न रही थी। उसकी इस मूढ़ता ने धनसिंह के उफनते क्रोध को छींटा मार कर बैठा दिया।

कमू झटके से गिरते-गिरते बचा था। वह भी उतर कर सामने आ गया। जवान लड़की को यों भयभीत, उघाड़ी और खोई हुई अवस्था में देख उसने खीसें निकाल धनसिंह

को सम्बोधन किया, "हैं उस्ताद, खूब माल है।" और लड़की को पुचकारने के लिये उसने होंठों से सीटी बजा दी। धनसिंह भी हँस दिया। लड़की को सम्बोधन कर उसने कहा—"तेरे बाप को तेरे लिये लड़का नहीं मिलता तो यों ही किसी के साथ चल दे! हम गरीबों का गला क्यों कटवा रही है चुड़ैल?"—लड़की को समझा देने के लिये वह पहाड़ी बोली में ही बोल रहा था।

लड़की चोट से स्तम्भित हो जाने के कारण धनसिंह की क्रुद्ध और तीव्र दृष्टि से भी संकोच न कर पाई थी। पर अपनी बोली में बात सुन और कमूं का संकेत समझ उसने घसे-फटे मैले कुर्ते से झाँकते अपने शरीर के उभार को अँचल में छिपा लिया और उसकी लम्बी-लम्बी पलकें आँखों की जल मिले कच्चे दूध की सफेदी पर झुक गईं, संकोच से गर्दन भी झुक गई।

कमूं ने अपनी कुचेष्टा फिर दोहराई। धनसिंह भी हँसकर बोला—"भगवाने, अब उठ! सड़क छोड़। घर जा! ......नहीं तो गाड़ी में ही बैठ ले। तुझे भी ले चलूँ।"

लड़की चोट से काँपती हुई उठी और सड़क किनारे मुंडेर के पास जा खड़ी हुई। धनसिंह गाड़ी में अपनी जगह पर जा बैठा। उसने मोटर का स्विच और स्टार्टर दबाये। इंजन ने इस संकेत का कोई उत्तर नहीं दिया।

"ले भाई कमूं!"—उसने क्लीनर को पुकारा—"आ गई मुसीबत। क्या बैटरी के तार टूट गये?" धनसिंह फिर मोटर से उतरा। इंजन का पर्दा खोलकर देखने लगा। कमूं ने लड़की की ओर संकेत कर सुझाया—"अरे भाई, खूबसूरत औरत की नज़र बुरी होती है। आदमी हलाक हो जाता है यह तो लोहे की मोटर ही है, देखा न, मचल गई!"

धनसिंह ने भी कहा—"यह क्या जादू कर दिया कालका माई? अब रात यहीं काटनी पड़ेगी तो कुछ चना-चबेना, रोटी का टुकड़ा खाने को देगी या ऐसे ही मारेगी?" लड़की कुछ जवाब न दे सिर झुकाये सड़क पार कर समीप की चट्टान के साथ की पगडण्डी से ऊपर चढ़ दृष्टि से ओझल हो गई। ....

['मनुष्य के रूप' में से

भगवती भाई की शहादत

"...बात हो ही रही थी, एक टाँगा बंगले में आया। उसमें सुखदेवराज दिखाई दिया। मुझे टाँगे से उतार लो"—उसने पीड़ाविकृत स्वर में पुकारा। छैलबिहारी, मदनगोपाल और मैंने उसे सवारी से उतार लिया। उसके पाँव में लिपटे पकड़े में से जगह-जगह खून फूट रहा था। हम लोगों ने आशंका से चोट का कारण पूछा। पीड़ा से होंठ दबाते हुए उसने बताया—"बम को आज़माइश के लिए फेंकते समय बम हरी (भगवती) के हाथ में फट गया। वे बहुत जख्मी होकर गिर पड़े हैं। मेरे पाँव में सख्त चोट आई है। बच्चन पीछे था। उसे चोट नहीं आई। वह उनके पास है।"

मैंने मास्टर छैलबिहारी को साथ लिया और तुरन्त मालरोड पर चारिंगक्रास की ओर दौड़ चले। हम लोग सड़क पर सचमुच दौड़ लगा रहे थे। वहाँ से एक टैक्सी किराये पर ले रावी किनारे के जंगल के जितना समीप पहुँच सकते थे गये और फिर रेतीले मैदान को पार कर घने जंगल में धँसे। भटक-भटक कर बच्चन को पुकारा। उसके उत्तर की पुकार के सहारे ढूँढ़ लिया। देखा—

भगवती भाई घुटने उठाये चित्त पड़े थे। उनकी दोनों बाहें कोहनियों से उठी हुई थीं। एक हाथ कलाई से उड़ गया था, दूसरे की उंगलियाँ जड़ से कट गईं थीं। चेहरे पर कई जगह गहरे घावों से खून बह रहा था। पेट में दाईं ओर बड़े-बड़े छेद होकर खून बह रहा था और बाईं ओर से पेट फट कर कुछ आंतें बाहर आ गई थीं। बच्चन एक कपड़ा भिगो लाया था और उनके मुँह में पानी की बूंदें निचोड़ रहा था।

हमें देख पहले वे ही बोले—"तुम आ गये, अच्छा हुआ। आज़ाद भी आ जाते तो देख लेता।"

"भैया इस समय घर पर न थे वर्ना जरूर आते।"

"कोई बात नहीं"—उन्होंने हमें परवाह न करने के लिये कहा।

हम सभी लोग स्काउटिंग की शिक्षा पाये हुए थे। आमने-सामने से अपनी बाहों को जोड़ उन्हें उठाकर जंगल से बाहर गाड़ी तक ले जाने का यत्न किया। शरीर हिलते ही उनके मुख से चीख़ निकल गयी। उन्हें फिर लिटा दिया। सोचा एक खाट या स्ट्रेचर के बिना उनका शरीर नहीं उठाया जा सकेगा।

रुँधे हुए गले को वश में कर मैंने आश्वासन दिया—"हम अभी जा कर खाट लाते हैं। घबराना नहीं।"

"तुम समझते हो मैं डर रहा हूँ? यही दुःख है कि मैं भगतसिंह को छुड़ाने में सहयोग न दे सकूँगा। यह मृत्यु दो दिन बाद होगी।" उन्हें उठाकर ले जाने के लिये आवश्यक सामान लेकर मेरे लौटने की बात के उत्तर में उन्होंने कहा—"व्यर्थ है। ऐसा न करो। बम का धड़ाका बहुत ज़ोर का हुआ था। यदि उसकी आहट के सन्देह में पुलिस खोज करती आ जाय तो क्या फायदा? यदि हाथ रह जाते तो तुम एक रिवाल्वर दे जाते और पुलिस को मेरे यहाँ जख़्मी होने की खबर दे दी जाती! भगतसिंह को छुड़ाने का यत्न नहीं रुकना चाहिये।" वे रुक-रुक कर अंग्रेज़ी में बात कर रहे थे। दिमाग़ इतना साफ़ था कि उन्होंने अपने बच सकने की निराशा के सम्बन्ध में यह अनुमान बताया कि पेशाब की हाजत होने पर भी पेशाब नहीं आ रहा। बम का कोई टुकड़ा गुर्दे में चला गया है। मृत्यु का यों साक्षात्कार करके भी भय को अस्वीकार करने वाले ऐसे क्रान्तिकारियों को ही गांधी जी ने वाइसराय इरविन के प्रति सहानुभूति के अपने प्रस्ताव में 'कायर' और जघन्य' काम करने वाले बताया था।

छैलविहारी को उनके पास छोड़ मैं बच्चन को लेकर लौटा। आवश्यक चीजें समेटने के लिये हम क्रिश्चियन कालेज के बोर्डिंग में पहुँचे। देवराज सेठी और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन (अब अज्ञेय के नाम से प्रसिद्ध) से उन्हीं दिनों परिचय हुआ था। दोनों ही हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ शरीर थे। भगवती भाई को सुविधा से उठा सकने के लिये वे सहायक हो सकते थे। यहाँ से ही दो चादरें और खाट भी ले ली। रास्ते में बरफ़ ले ली कि घावों पर लगा सकेंगे और चुसाते रहेंगे। इन्द्रपाल को भी साथ ले लिया और तुरन्त फिर उसी स्थान की ओर लौटे।

अन्धेरा घना हो चुका था। हम लोग टार्चें जलाकर घने जंगल में उन्हें खोज रहे थे। छैलविहारी का नाम ले पुकारना शुरू किया। कोई उत्तर न मिला। हमारी टार्चों के प्रकाश से और चिल्लाहट से पेड़ों पर बसेरा करते पंछी डर-डर कर उड़ रहे थे परन्तु हमारी पुकार का कोई उत्तर न था। टहनियों से लटकती सफेद कपड़े की धज्जियाँ दिखाई दीं। इन धज्जियों की दिशा में बढ़ते गये। टार्चों के प्रकाश में भगवती भाई का निष्प्राण शरीर हम लोगों के सामने पड़ा था। छैलविहारी उनकी मृत्यु के बाद, शायद भयभीत हो उन्हें अकेला छोड़ कर चला गया था। हृदय उमड़ कर मुंह में आ गया। होंठ काट कर अपने आपको वश किया। बच्चन विह्वल हो फूट फूट कर रो रहा था। अब क्या हो सकता था? शव को उठाकर ले जाने से उसे फिर बंगले के बाहर निकालने की समस्या बन जाती। दूसरे सब

साथी खतरे में पड़ जाते। साथ लायी हुई एक चादर में हमने उनका शरीर ढँक दिया।

रुँधे हुए गले से मैंने आदेश दिया—We must honour our Brave Leader and give him last Salute (अपने बहादुर नेता के सम्मान में अंतिम सलामी दी जानी चाहिये।) मेरे 'सैल्यूट'! कहने पर सब लोग शव के चारों ओर एक मिनिट तक सलामी में माथे पर हाथ छुआये खड़े रहे। हम लोग लौट आये। लौटते समय मेरे घुटने और पूरा शरीर जर्जर हो रहा था। कदम न उठता था। मैं एक बार सुबह से रात एक बजे तक चौंसठ मील चलता रहा था परन्तु वैसी थकावट तब भी अनुभव न हुई थी।

मैं और बच्चन बंगले पर लौटे। सब लोग बीच के बड़े कमरे में इकट्ठे हो प्रतीक्षा कर रहे थे, जैसे संकट के समय मनुष्य और जीव सिमिट जाते हैं। हम लोगों को खाली हाथ देखकर सब लोगों ने धड़कते हृदय से लम्बा सांस लिया। उनकी अशंका और जिज्ञासा से फैली हुई आँखें पूछ रही थीं, क्या हुआ?

कुछ कहने का सामर्थ्य शेष न था। दोनों हाथ हिलाकर संकेत किया—'सर्वनाश!' बच्चन फिर रो पड़ा। भाभी जैसे बैठी थीं वैसे ही आँखें मूंद रह गईं। सुशीला ने सिर झुका दोनों हाथों से थाम लिया। भैया निश्चल फ़र्श को ओर देखते रह गये। मदनगोपाल भी पत्थर की मूर्ति की तरह सुन्न खड़ा था। उसी समय छैलबिहारी पहुँचा। पैदल आने के कारण वह पीछे रह गया था। उस पर आँख पड़ते ही मुझे क्रोध आ गया। धीमे स्वर में परन्तु क्रोध से फटकारा—"तुम छोड़कर कैसे आ गये?" उसने विवशता प्रकट की—"मृत्यु हो जाने के बाद मैं आया हूँ।"

"तुम्हें वहाँ रहने के लिये कहा था। हम लोग पुकारें लगाते रहे?"

"रास्ता दिखाने के लिये मैंने टहनियों से धज्जियाँ लटका दी थीं।"

"छोड़ आने के लिये तुम्हें किसने कहा था?"—क्रोध से थिरकते होठों से भैया ने पूछा परन्तु क्रोध व्यर्थ समझ चुप रह गये।

बहुत देर तक कोई भी कुछ न बोल सका। भैया सबसे पहिले बोले "अब कुछ नहीं हो सकता। आप लोग उठिये।" कठिनाई से निकलते शब्दों में उन्होंने भाभी को सम्बोधन किया—"तुम हम सब की माँ-बहिन हो। तुमने सर्वस्व पार्टी के लिये न्योछावर किया है। हम सब तुम्हारे ऋणी हैं। तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्य को कभी नहीं भूलेंगे। भैया और बच्चन भाभी को दोनों ओर से थाम कर एक पलंग की ओर ले गए और लिटा दिया। उनमें स्वयं कोई संज्ञा नहीं जान पड़ती थी। न आँखों में आँसू, न होठों पर शब्द। हृदय फाड़ देने वाली चोट को सह सकने के लिये चीख़ या आँसू से सहायता ले लेने का भी अवसर न था। उनके आत्मदमन पर ही बंगले में इकट्ठे सब फरारों और दल के नेता की सुरक्षा निर्भर थी। जैसे लिटा दिया लेट गईं। उसके बाद भैया ने दीदी को भी धैर्य रखने के कह कर दूसरे पलंग पर लिटा दिया। लगभग रात के ग्यारह बज चुके थे। मैं अपने दुःख में सब का दुःख भूले, एक सोफे पर निश्चेष्ट आँखें मूँदे पड़ा था।

भैया ने स्वयं बंगले की बिजली बुझाई और मुझे बाहर ले जाकर पूछा "शरीर किस अवस्था में छोड़ आए?"—मैंने बताया कि अन्धेरा घना होने और आस-पास की जगह ठीक

से मालूम न होने के कारण केवल एक चादर से ढाँक आये हैं। उन्होंने सुझाया—"जंगली-जानवर, गीदड़, लोमड़ी या लकड़बग्घा शरीर को खराब न करें। मैं भी एक बार देख आऊँ। सुबह अन्धेरा रहते चलेंगे और कुछ प्रबन्ध कर आयेंगे।" वे मुझसे भगवती भाई के लगे घावों की बाबत पूछते रहे। मैं यथाशक्ति बताता रहा।

"अब क्या करना होगा?"––उन्होंने पूछा, "ऐक्शन किया जा सकेगा? दो आदमी कम हो गये हैं।"

ऐक्शन ज़रूर हो। यह उनका अन्तिम अनुरोध था। अब तो करना ही होगा ज़रूर।"—मैंने उत्तर दिया।

सुबह अन्धेरा रहते भैया ने पुकारा—"उठो चलना है।" मैंने साइकिलें निकालीं। भैया भाभी और सुशीला जी को कहने गये कि हम लोग शव का प्रबन्ध करने जा रहे हैं। सुशीला जी ने आग्रह किया कि वे भी अन्तिम दर्शन के लिये साथ चलेंगी। भैया ने मुझसे पूछा—"ले चलें?" मैं ने इनकार कर दिया। सुशीला जी ने बहुत अनुनय किया। भैया ने मेरी ओर देखा—"क्या हर्ज है?" मैंने समझाया—"अभी सड़कों पर बिजली जल रही है। जगह-जगह पुलिस के सिपाही मिलेंगे। इस अन्धेरे में किसी स्त्री को साइकिल के पीछे बिठा कर ले जाने से ही संदेह होगा।" उन दिनों लाहौर में भी किसी स्त्री का साइकिल के पीछे बैठा कर आना-जाना लोगों की निगाह खींचता था। भाभी हम लोगों से मिलने के लिये कभी धर्मपाल या धन्वन्तरी के साथ साइकिल पर बैठ कर रात से आतीं थीं। यह उनके उच्छृङ्खल समझे लिये जाने का कारण था।

भाभी अब भी वैसे ही निश्चल पड़ी थीं। मैं, भैया और बच्चन तीनों रावी किनारे जंगल में पहुँचे। पौ फटने को हो रही थी। कहीं कहीं कोई कौवा बोल रहा था। उस जंगल में लाहौर भर के कौवे बसेरा लेते थे। हमारी आहट से ही कौवों की नींद खुली होगी। भगवती भाई का शरीर श्वेत चादर से ढका पड़ा था। किसी जानवर ने उसे छेड़ा न था। चादर के कोनों और किनारों को हम पत्थरों से जैसे दबा गये थे, वे वैसे ही दबे थे। केवल खूब बड़े-बड़े चेंटे, शायद रक्त की गंध से आकर्षित होकर चादर के ऊपर काफी संख्या में घूम रहे थे।

हम लोगों ने आस-पास जी जाँच-पड़ताल की। साथ फावड़ा ले गये होते तो वहाँ क़ब्र या समाधि के लिये जगह खोद सकते थे। घूम-फिर कर चारों ओर देखा। लगभग पचास-साठ गज़ पर रावी नदी की एक शाखा थी। जल काफी गहरा था। हम लोग निरुपाय थे। रात जो चादर शव पर ओढ़ा आये थे उसी ने शरीर को उंकड़ बैठा कर अच्छी तरह बांधा। इस समय तक शरीर बिल्कुल ऐंठ गया था। बच्चन साथ एक कैंची ले गया था। शव के माथे पर से कुछ बाल काट लिये जो हम लोगों ने स्मृति चिन्ह रूप रख लिये थे। तीनों साथी मिलकर शव को जल तक उठा ले गए। शरीर की गठरी में कुछ बड़े-बड़े पत्थर भी डाल दिए ताकि ऊपर तैर न आये और जल में समाधि दे दी।

['सिंहावलोकन' में से

आदमी या पैसा ?

कालिज के सहपाठी हम सब लोग अब बिखर चुके हैं। हम लोगों के जीवन में अब कोई सादृश्य और समता रह भी नहीं गयी। कभी आपस में साक्षात्कार हो जाने पर शिष्टाचार के नाते मुस्कराहट भर होठों पर आ जाती है। अधिकांश में हम लोग अपनी अपनी क्लिष्टता में, या कहिये निर्वाह न हो सकने लायक आमदनी में सन्तोष और सफलता अनुभव कर लेने की आध्यात्मिक प्रक्रिया का अभ्यास करते रहते हैं।

अपने सहपाठियों में से प्रायः नरदेव और राम बाबू की याद आती है। नरदेव आई० सी० एस० में चला गया था। वह अब सेक्रेटेरियट में एक काफी ऊँचे पद पर है। जब कोई पूछ बैठता है कि हमने एम० ए० कब पास किया था तो मुंह से उत्तर निकल जाता है—"हमने और नरदेव ने प्रेजीडेन्सी कालिज से एक साथ ही एम० ए० किया था। अरे, जानते नहीं ? वही नरदेव, जो स्वायत्तशासन का सेक्रेटरी है, दो हजार मासिक ले रहा है !"

इस दृष्टि से हमारे दूसरे साथी राम बाबू को भी बहुत सफल समझा जाना चाहिये, परन्तु उनके प्रति समाज में और अपने मित्रों में भी वह आदर नहीं जो नरदेव के लिये है। तनखा के नाम पर राम बाबू भी डेढ़ हजार ले रहे हैं परन्तु न उनके चेहरे पर और न समाज के हृदय पर ही उनका वैसा रौब है। हम लोग प्राय॰ राम बाबू की चर्चा सहानुभूति से कर संतोष अनुभव करते हैं कि वह भी कोई जिन्दगी है ?··· इसे तो बरबादी ही समझिये !

राम कालिज में प्रतिभावान और बेपरवाह भी था। कालिज के बाद पत्रकार बन गया। खबरें इकट्ठी करने या गढ़ने और रंग देने की अद्वितीय प्रतिभा के कारण आज पत्रकारों में उसकी तो नहीं ; अलबत्ता उसकी कलम की धाक है। शरीर से रूखा-सूखा, कपड़ों की ओर से भी बेपरवाह, आँखो पर मोटे-मोटे शीशों का चश्मा चढ़ाये, मेज पर बैठ कुछ घंटे कलम घिस कर वह ऐसी बात पैदा कर सकता है कि कभी-कभी सरकार भी परेशान हो जाती है और समाज के बड़े-बड़े स्तंभ पंजीपति भी तिलमला उठते हैं। यह सब कर सकने पर भी राम बाबू की अवस्था दयनीय ही है।

राम बाबू एक बड़े होटल में रहते हैं। डेढ़ हज़ार मासिक तनख़ा पाने पर भी होटल का मासिक बिल भी छः महीने का उधार चढ़ा रहता है। तनख़ा सप्ताह भर में ही समाप्त हो जाती है और फिर मित्रों से दस-दस, पाँच-पाँच उधार माँगते फिरना! सबसे बड़ा प्रलोभन तनख़ा मिलते ही राम के सामने आता है, घुड़दौड़ में बाजी लगाने का।

राम बाबू से अपनी आंतरिकता चली आ रही है। उनकी दयनीय दशा देखकर डेढ़ हज़ार रुपये माहवार पाने वाले व्यक्ति की तुलना में उससे लगभग एक चौथाई तनख़ा पा कर भी अपना जीवन सन्तुष्ट समझने का संतोष होता है और उसे उपदेश दे सकने की महत्वाकाँक्षा भी पूरी होती है। राम का जीवन एक खूब ऊँचे लम्बे बांस जैसा जान पड़ता है, जो बिना किसी सहारे के अकेला खड़ा है। हवा और आँधी में ऐसे झूलता है कि जब चाहे गिर जाय! हम लोगों के जीवन बीसियों टेकों और रस्सियों से पृथ्वी के साथ जकड़े हुए हैं। ऊँचे न सही पर उनके हरदम गिर पड़ने की आशंका नहीं। इसलिए राम को कई बार समझाया है कि यदि तुमसे अपने खर्च की व्यवस्था ठीक से नहीं हो पाती तो तनख़ा मिलने पर हमारे यहाँ अपनी भाभी के पास जमा कर दिया करो! वह बड़ी समझदार हैं। जानते हो, बालबच्चे वाला घर है!···तुम, जैसे-जैसे ज़रूरत हो, लेते जाया करो!

राम बाबू ने दैन्य से दाँत निकाल कर हँसते हुए हाथ हिला कर उत्तर दिया—"यह बात नहीं! पर भई, अखिर करें भी तो क्या?······बस ऐसे ही चलता है।······विवशता है!"

"विवशता है?···तनख़ा मिलते ही पाँच सौ हज़ार घुड़दौड़ में लगा देने को तुम्हें क्या विवशता है? तुम आशा करते हो, पचास हज़ार मिल जायगा और पाँच सौ हज़ार खो बैठते हो। तुम्हें पचास हज़ार की ज़रूरत ही क्या है? क्या डेढ़ हज़ार में गुजारा नहीं चल सकता? हम लोगों को देखो!···जेब का रुपया खो देने पर परेशानी हो जाती है, सो साफ ही है। मान लो, पचास हज़ार आ भी जाय और वह भी दाँव पर लगा दिया तो?"—तर्क से राम बाबू को समझाने का यत्न किया।

"सवाल गुज़ारे का नहीं है, भाई! विपद तो यही है कि मैं गुजरता जा रहा हुँ!"—विवशता में हाथ फैला राम ने अपनी कटहल के छिलके जैसी हजामत बढ़ी ठोड़ी उठा दी, "पचास हज़ार की ज़रूरत नहीं, ठीक कहते हो!···हज़ार में ही काम चल सकता है, यह भी ठीक है; पर आदमी करे क्या? और करे किस के लिये?"—कुर्सी पर सम्भल कर उसने कहा, "सुनो, एक बाज़ी लगा देने से ऐसा मालूम होता है कि कोई ऐसी चीज़ सामने आ गई है जिस में आदमी डूब गया हो··! सब कुछ उसी के लिए है, समझे! उससे परे कुछ दिखाई नहीं देता। आशा और आशंका की झनझनाहट अनुभव होने लगती है। कुछ देर के लिए जरा जिन्दगी मालूम होती है, आदमी जिन्दगी के बोझ को भूल जाता है। जिन्दगी स्वयँ ही दौड़ पड़ती है, उसे ढोना नहीं पड़ता। मन उमड़ पड़ता है कि जूझ जायें!···नहीं तो जिन्दगी में है क्या? ···बाज़ी हार गये तो

क्या ? और जीत गये तो क्या ? गर्मी तो थ्रिल की होती है। वह थ्रिल ही सब कुछ है।"—राम शिथिलता में कुर्सी पर लुढ़क गया, "और जब जिन्दगी की गर्मी या थ्रिल नहीं रही तो फिर थ्रिल के अभाव को अनुभव न करने के लिये, मन में गर्मी पैदा करने के लिये तबीयत होती है कि पियो ! अगर न पियो तो सोचते रहो कि जिन्दगी किस लिये है ?"—राम ने उत्तर माँगने के लिये दीनता से हाथ फैला दिये।

राम उस रोज़ बीस रुपये उधार माँगने आये थे। जानता था देना ही पड़ेगा, परन्तु रुपया उधार दे देने से पहले इतने समर्थ मित्र की भलाई के विचार से यह समझा देना भी कर्तव्य समझा— "देखो, आड़े समय तुम्हें दस-बीस रुपये उधार दे सकता हूँ। बताओ, जीवन में तुम सफल हो या मैं ? राम भैया, जिन्दगी को जानबूझ कर ढलवान पर ढकेलते जाने में ही क्या संतोष ?···एक दिन ऐसी जगह पहुँच जाओगे कि ऊपर चढ़ना सम्भव ही न रहेगा ! कहीं एक जगह पाँव टिका कर फिर ऊपर की ओर चढ़ने की कोशिश करनी चाहिए !·········इतना घुड़दौड़ में उड़ा देना ; इतना पी डालना और रहा-सहा छोकरियों को खिला देना ; इसमें क्या तथ्य है ? ··तुम्हारे हाथ में क्या रह जाता है ? भाई, जीवन में कुछ स्थिरता तो हो !···तुम्हारे हाथ में प्रतिभा और पैसा दोनों हैं। तुम चाहो तो क्या नहीं कर सकते ?"

"बताओ मैं क्या करूँ ?···मैं क्या कर सकता हूँ ?"—राम ने ठोढ़ी पर हाथ रख कर मेरे आग्रह के प्रति विवशता प्रकट की, "डेढ़ हज़ार रुपये से ज्यादा तनखा की आशा इस व्यवसाय में नहीं की जा सकती। इसके आगे एक ही महत्वाकाँक्षा हो सकती है कि मैं अपना पत्र चलाने की बात सोचूँ। मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि साधनहीन हो कर भी अपरिमित साधन पत्र-मालिकों से होड़ करने की बात सोचूँ और वह सिर-दर्दी मैं समेटूँ किस के लिये ?······मैं डेढ़ हज़ार रुपये में अपना श्रम बेचता हूँ, परन्तु मैं अपने पूँजीपति मालिक के हाथ में एक चाबुक की तरह हूँ, या तुम समझ लो, मेरा मालिक मुझे जनमत पैदा करने की कीमती मशीन समझता है, जिसे वह अपनी सामाजिक और राजनैतिक शक्ति बनाये रखने के लिये चला रहा है। इससे मशीन को क्या फायदा ? · क्या संतोष ? ·· मशीन का अपना क्या अस्तित्व ?

"सुनो, मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि अपने पूँजीपति मालिक की दृष्टि में उपयोगी हो सकने के कारण अपने व्यक्तित्व को कोई खास महत्वपूर्ण चीज़ समझ बैठूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि जो आदमी डेढ़ हज़ार रुपये माहवार दे सकता है, वह पैसे के लिये बातूनी कलाबाजी करने वाले मुझ जैसे बीसियों आदमी खरीद सकता है। मुझ से तेज़ बीसियों पड़े हैं, जिन्हें अवसर नहीं मिल रहा ! वे हज़ार आठ सौ में वही कलाबाज़ियाँ कर सकते हैं जो मैं पन्द्रह सौ में करता हूँ। कहो, किस बात के लिये पाँव जमाने की कोशिश करूँ ?"

"बताओ जिन्दगी में कया उद्देश्य बना लूँ ? अगर औरत घर में लाकर उसे और उसके बच्चों को ही पालना शुरू कर दूँ तो यही कौन बड़ा काम है !"—राम ने पश्न में मुँह फैला अपने टूटे हुए दाँत दिखा दिये, "किसी ने मुझे खरीद रखा है, किसी को मैं खरीद लाऊँ ?·· यदि मुझे उसका स्वभाव और व्यवहार असह्य जान पड़ा तो ?···मेरे

जैसे दो-चार और मनुष्य पैदा हो जायँगे तो इससे समाज का क्या बन जायगा ?···मेरा मालिक मेरा उपयोग करता है। मैं अपने आपको भुलाने कि चेष्टा कर आत्माभिमान बचाये हूँ। अच्छा अब बीस रुपये निकालो !"—राम ने उठने के लिये तैयार होकर कहा, "भई, आज झरना के यहाँ जाना चाहता हूँ। तबीयत बड़ी सुस्त है······जल्दी करो।

"चले जाना"—मैंने कहा, "ऐसी जल्दी क्या है ?"

"जल्दी ही है। फिर कोई दूसरा वहाँ जा बैठेगा तो मुश्किल होगी न ?"—राम उतावली से बोला, "निकालो न रुपये !"

"झरना के यहाँ आखिर क्या मिल जायगा ?"—मैंने समझाना चाहा।

"क्या मिल जायगा ?" हाथ हिलाते हुए राम ने उत्तर दिया, "दो-तीन घंटे अपने आपसे चिढ़ूंगा नहीं। ··· खिन्नता नहीं अनुभव करूंगा। उसकी बातों में भूला रहूँगा। ···दिल बहलाव रहेगा !"

"जब तुम जानते हो"—मैंने आग्रह किया, "कि उसके यहाँ बीसियों आदमी आते-जाते हैं तो उसकी बातों में बहलना धोखा नहीं ?"

"यह जान कर जाता हूं तो धोखा नहीं है"—राम समझाने के लिये शिथिलता छोड़ कुर्सी पर आगे झुक गया, "मैं कौन उसका उम्र भर का ठेका लेने को तैयार हूँ ! बीस रुपये दूंगा, रात भर का हक होगा। तुम क्या चाहते हो, वह मुझे कहे कि वह मेरे सिवा किसी को जानती ही नहीं ! · मेरे लिये जान दे देगी !······उस पाखंड में क्या रखा है ? सच पूछो तो वह निन्यानवे फी सदी पतिव्रताओं से ज्यादा ईमानदार है।"

राम की बात का विरोध किया—"वह ईमानदार है ? उसके साथ ईमानदारी का सवाल ही क्या ?"

"है कैसे नहीं ? पहली ईमानदारी तो उसकी यही है कि वह ईमानदारी का दम नहीं भरती। वह ऐसी जगह बैठी है जहाँ बात साफ है कि सम्बन्ध या मित्रता कुछ घण्टों की है। अगर किसी का मन धोखे के बिना न मानता हो तो इससे अधिक जो चाहे समझ ले !"

"जब जानते हो कि कुछ घण्टों के रिझाव का किराया दे रहे हो तो उसे प्रेम और मित्रता समझ सकते हो ?"--मैंने तर्क किया।

"प्रेम और मित्रता क्या हैं ? कुछ घण्टे अपने मन की खिन्नता भुलाने का मोल है, भैया ! जैसी बात मैं चाहता हूँ, वैसी ही वह करती है। बस इस बात का दाम है। और फिर प्रेम होता क्या है ? किसी से संतोष पाने से ही तो प्रेम होता है। जिन्दगी भर का प्रेम मेरी समझ में नही आता। जिससे मन ऊबने लगे उससे प्रेम कैसा ? बिना प्रेम अनुभव किये प्रेम की तुलना कैसे की जाय ? यदि मैं उसे छल करने के लिए विवश न करूँ, तो वह छल नहीं करती।"

"छल नहीं करती ?" मैंने राम को कोंचने के लिये विस्मय प्रकट किया।

"छल नहीं करती है ! पिछले दफे जब मैं उसके यहाँ गया तो योंही थकावट अनुभव कर मैंने कहा—झरना, मेरे शरीर पर पाउडर लगा कर मालिक कर दो ! वह मालिश कर रही थी। मुझे अच्छा लगने लगा। उससे कुछ बात करने के लिये पूछ बैठा—मुझे तो मालिश

से अच्छा लग रहा है परन्तु तुम्हें इससे क्या संतोष ?"

मेरी जाँघ पर बहुत-सा पाउडर डाल उसे हाथों से मलते हुए उसने उत्तर दिया—"संतोष क्यों नहीं बाबू ? टका मिलता है।"

मैंने बात बढ़ाई—"टका ही मिलता है न ? ··संतोष तो नहीं मिलता ?"

"टके से ही संतोष मिलता है बाबू !"—उत्तर दिया, "पेट तो भरना है ! टका तो चाहिये। टके के लिए करती हूँ। नहीं तो तुम टका क्यों दोगे ?"

"टके के लिये करती हो ?"—मैंने फिर पूछा, "अगर तेरे पास काफी रुपया होता तो क्या करती ?"

"करती क्या बाबू ?···करती यह कि मज़े में लेट जाती और किसी को बीस रुपये देकर कहती कि रात भर मेरे शरीर की मालिश करो !"

राम ने कुर्सी पर सम्भलते हुए प्रश्न किया—"बोलो, है ईमानदार कि नहीं ?"—फिर ताव में आकर बोला, "मैंने पूछा यह काम क्या तुम्हें अच्छा लगता है ? ··तुम सन्तुष्ट हो ?"

उसने उत्तर दिया—"बाबू, क्या सब लोग संतुष्ट ही हैं ? मनचाहा ही काम करते हैं ? पेट बहुत कुछ कराता है बाबू। जैसे और सौ काम एक यह काम ! पालने वाला कोई एक न हुआ, दस-बीस के ही सहारे जिन्दगी काट रहा हूँ। दस बुरा कहते हैं तो दस को अच्छी लगती हूँ ?···चोरबाज़ार करने वाले को सब गाली देते हैं, तो क्या कोई अपना धन्धा छोड़ देता है ? मैं कौन अनोखी बात करती हूँ, बाबू ? अपने-अपने घरों में दूसरी सब औरतें क्या करती हैं ?"

मैंनें समझाया—"झरना, कैसे-कैसे आदमी तेरे यहाँ आते हैं ?" उसे गुलज़ारसिंह की याद दिलाई। गुलज़ारसिंह ड्राइवर है। तारकोल के पीपे की तरह काला, मोटा और पसीने से चिपचिपा; तिस पर सूखी झाड़ी-सी दाढ़ी, दुर्गन्ध भरी पगड़ी। उसे झरना के यहाँ आते देख मुझे घृणा होती है। उसकी याद दिला कर मैंने कहा—कैसे-कैसे भूतनों के साथ सो जाती है तू ? ··· बुरा नहीं लगता ?"

"क्या बुरा लगता है बाबू ? यही बात तुम गुलज़ारसिंह की बहू से तो पूछो ?···उसकी बहू न कर सकती है ? वह उसे रोटी जो देता है ? मुझे भी कभी-कभी देता है। वह कभी-कभी आता है, कैसे इनकार करूँ ? ·· अच्छा बाबू, तुम जिस मालिक की नौकरी करते हो, तुम्हें क्या प्यारा लगता ? बाबू जो अन्न देता है, अपना काम लेता है। तुमने नहीं देखा कैसे-कैसे भूसंड सेठ परियों को लिये फिरते हैं। कोई भलेमानस परी इस पर एतराज़ करती है?—उन्हें सेठ का क्या प्यारा लगता है ? पैसा ही तो !···बाबू तुम बीस देते हो, तुम्हारी बात दूसरी है, पुराना साथ है। गुलज़ारसिंह आता है, पचीस-तीस दे जाता है। बोतल साथ लाता है। कभी साड़ी, कभी कपड़ा अलग से दे जाता है। बाबू, यह आदमी नहीं सोता साथ, उस का पैसा सोता है !"

राम उच्छृङ्खलता पर उत्तर आया था। मैं चौंका, रसोई में बैठी बच्चों की माँ इसकी बातें सुन नरही हो !

"बस ! बस !" —हाथ के संकेत से उसे चुप करा रुपये लेने भीतर के कमरे में चला गया।

समाधि की धूल

इनके बारे में तो सुना था—बड़े भले आदमी हैं, बहुत पढ़े-लिखे हैं, अमृतसर के किसी कारखाने में मैनेजर हैं। ससुराल का ध्यान कर घबराहट होती थी। सुना था—बज्र दिहात है; पहाड़ में व्यास नदी के किनारे! रेल तो क्या, नदी पार मोटर-लारी भी नहीं जाती। निराले रीति-रिवाज हैं। छोटे भैया साथ थे। बेर-बेर पूछते जाते—'जल या खाने को कुछ चाहिये? गरमी तो नहीं लग रही? कुछ और जरूरत हो तो कहो?" ओढ़नियों और फुलकारियों की तहों में यों लिपटी थी कि किसी तरह साँस भर आ रही थी। लज्जा के मारे बोल भी न पाती। सिर हिलाकर रह जाती।

मोटर लारी रुकी। नायन ने उलझ गये कपड़ों को सुलझा, कंधे को सहारा दे, लारी से उतार पालकी में बैठा दिया। नदी पर नाव और नाव पर पालकी, ऐसे नदी पार कर कुछ दूर गये। बारात के साथ बाजे बज रहे थे। इनके अतिरिक्त और भी बाजों का स्वर सुनाई दिया। बारात के साथ के बाजों का स्वर ऊँचा हो गया। समझी—पहुँच गये।

बाजे सब हमारे ही स्वागत में बज रहे थे। यों तो जो होना था, हो चुका था। मैं अब इसी घर की थी परन्तु द्वार पर पहुँचते कनपटियों से पसीने की धारें एड़ी तक पहुँचने लगीं। हृदय की गति बढ़ गई। बाजों की तुमुल ध्वनि, पटाखों और बन्दूकों का शब्द, मंगलाचरण गाती स्त्रियों के कण्ठ का सम्मिलित, अस्पष्ट परन्तु ऊँचा स्वर, पुरुषों की झुंझलाहट, चिंता और हकूमत भरी आवाजें, विराट समारोह हो रहा था। मेरे छोटे से हृदय में मेरा संसार बदल रहा था। कभी से मैं उसकी प्रतीक्षा और तैयारी कर रही थी। वह सब तैयारी व्यर्थ रही, हृदय आतंक से बैठा जा रहा था, सिर में चक्कर आने लगा।

गीत गाती स्त्रियों के गिरोह ने पालकी को घेर लिया। पर्दा उठा बाँह थाम मुझे बाहर आने का संकेत किया गया। कांपते पैरों से मैं द्वार की ओर सरकने लगी। कुछ गोलमाल सा सुनाई दिया! स्त्रियों का गाना रुक गय? "पहले समाधि पूजी जायगी। ... इधर चलो न? हाँ-हाँ चलो!" मेरे कन्धे थामें स्त्रियों ने मुझे घुमा दिया।

गोलमाल में भैया का उत्तेजित स्वर सुनाई दिया— "यह सब मसान-मढ़ैया पूजने के खुराफ़ात नहीं होंगे। क्या तमाशा हो रहा है?" उन्हें उत्तेजित स्वर में उत्तर मिलने लगे —"यह तुम्हारा घर नहीं है। हमारे रीति-रिवाज कैसे नहीं होंगे?" किसी ने शान्ति से समझाया— "भाई पीर मसान की पूजा नहीं है। गाँव का ऐतिसासिक स्थान है। नये ब्याहे लड़के-लड़की के लिये आशीर्वाद की कामना से ऐसा किया जाता है। इसमें हर्ज की कोई बात नहीं है।" मन में आया, भैया व्यर्थ में झंझट कर रहे हैं। जब तुझे दे ही डाला तो अब तुम्हारा अधिकार क्या? स्त्रियों का गिरोह चलने लगा। उसके बीच कन्धों से थामकर मुझे चलाया जा रहा था।

कुछ लड़के-लड़कियाँ उत्साह से भागते हुए आगे-आगे चल रहे थे। स्त्रियों ने हथेलियों पर जल के लोटे और पूजा के सामान की थालियाँ ली हुई थीं। हमारे आँचल के छोर से दुपट्टे के छोर की गाँठ बांधे 'वे' भी चल रहे थे। स्त्रियाँ बेमेल तीखे स्वर में गाती जा रही थीं। स्त्रियों की किलकिलाहट और बच्चों की चीख़ों के बीच समाधि की आरती उतारी गई। हम दोनों ने समाधि पर माथा टेका। लौटकर द्वार-चार और दूसरी रीतियाँ बहुत देर तक होती रहीं।

सिमिटी बैठी थी। दिनभर की थकावट से शरीर जकड़ सा रहा था। आँखें नींद से भारी थीं परन्तु मुंद न पातीं, जैसे उनमें तिनके अड़े हों। सबसे उत्कट क्षण अभी आने को था!

बिना आहट किये आ वे मेरे समीप पलंग पर बैठ गये। मैं और सिमिट गई। कुछ सोचकर उन्होंने पूछा—"रास्ते में कोई तक़लीफ तो नहीं हुई?" चुप रही। स्वयम् ही कहने लगे—"इस सफ़र से थकावट बहुत हो जाती है। आराम से लेट जाओ न!" लज्जा से मेरा सिर झुक गया।

कुछ और सोचकर बोले—"समाधि की पूजा से भैया को बुरा लगा। पर उसमें ऐसी बात नहीं है। कोई पीर मसान नहीं है। लोग उसे 'प्रेमियों की समाधि' या 'बल्लू चमेली की समाधि' कहते हैं। यहाँ इस समाधि की बड़ी मान्यता और महत्त्व है। यह पत्थर की पूजा नहीं, भाव की आराधना है।"

तकिया बग़ल में ले वे करवट से हो गये—"आराम से बैठो!"—उन्होंने आग्रह किया, परन्तु मैं लज्जा कर वैसे ही सिमिटी रही।

सुनाने लगे—

"यह बल्लू-चमेली की समाधि बजती है।

"यहाँ से दस कोस ऊपर पहाड़ में एक गाँव है 'पतिया'। बल्लू उसी गाँव के गुजर रद्दू का बेटा था। भला-सा जवान। ग़रीब माँ-बाप का बेटा। चीड़ के पेड़ों की घाटी में पतिया है, उस पार रेहड़ में डामू की बस्ती। डामू के राधे साह का बड़ा नाम था। तीस-चालीस कोस में उनकी हवेली की धूम है। चमेली राधे साह की बेटी थी, ओस में भीगी, सुन्दर, निर्मल और सुगंध से भरपूर चमेली की कली।

"बल्लू अपने गाँव और डामू के गोरू चराता था। एक रोज़ उसने बीच की घाटी की बावड़ी पर चमेली को देखा। देखा चाहे पहले भी हो, पर किसी क्षण का देखा कुछ और ही हो जाता है। हो सकता है, किसी पिछले जन्म के संस्कार जाग उठे; बल्लू चमेली के पीछे हो लिया।

"पास पड़ोस में चर्चा होने लगी। चमेली का घर से निकलना बन्द हो गया। बल्लू अपने गोरू छोड़ दिन-रात डामू की बस्ती की परिक्रमा करने लगा। दुपहर की वायु से सांय-सांय करती चीड़ों के नीचे, घटाटोप अन्धेरी-काली रात में, डामू के नीचे श्मशान से और मूसलाधार वर्षा में, किसी भी समय चमेली को टेरती, बल्लू की बांसुरी की तान सुनाई दे जाती।

"राधेशाह अपना अपमान समझ गूजर के लड़के पर बहुत बिगड़े। रदू के छप्पर में आग लगवा दी। उनके आदमी लट्ठ लिये बल्लू को मारने के लिये फिरते रहते। कहते हैं - बल्लू के गोरू बल्लू को घेर कर बैठ जाते और वह प्रेम का देवता उन्हें वंशी सुनाता। एक दिन राधे साह के नौकर ने बल्लू पर लट्ठ उठाया। बल्लू खड़ा हँसता रहा। डामू के ही एक सांड ने उठाकर नौकर को चट्टान पर दे मारा। उसकी दो पसली टूट गईं।

"चमेली पर कड़ा पहरा था; कभी हवेली के आँगन से निकलने न पाये। राधे साह ने लड़की की सगाई, भिजवा गाँव के मट्टू साह के लड़के से करदी। प्रेमी के मन की आह लगी। लड़के को साँप डस गया।

"यहाँ से चार कोस ऊपर, नदी किनारे 'जलेश्वर' का स्थान है। बैसाखी के दिन जलेश्वर के पूजन का बड़ा महात्म और पुण्य है। वहाँ बैसाखी का बड़ा भारी मेला लगता है। दूर-दूर से बसाती, हलवाई और तमाशे वाले आते हैं। झूले पड़ते हैं। दस पन्द्रह कोस के भीतर कोई आदमी नहीं जो मेले में न आता हो।

"मेले में राधे साह लड़की को ले पूजन कर मनौती मनाने आये। बल्लू की तो सुरत ही चमेली में लगी थी। उसके हृदय से कैसे छिप सकता था! अदृश्य तार से बँधा वह भी नंगे पाँव से चट्टानों पर लहू टपकाता, वंशी बजाता मेले में पहुँचा।

"चमेली पूजन के लिये नये कपड़े पहिनकर आई थी। काली सूफ़ की तंग सुत्थन (पायजामा) गुलाबी कुरता और पीली ओढ़नी में गोटा टँका हुआ। माँ, भावजें और सहेलीयों में घिरी वह बिसाती के यहाँ टिकुली, बुन्दे खरीद रही थी। बल्लू की दृष्टि उस पर पड़ी और पुकार बैठा—'चमेली!'

"माँ, भावजें और सहेलीयाँ चमेली को दूसरी ओर ले गईं। बल्लू पालतू कुत्ते की भाँति उनके पीछे-पीछे चला। स्त्रियों ने उसे गालियाँ दीं। बल्लू चुप रहा परन्तु चमेली को एक बेर देख पीछा न छोड़ा।

"धर्म-स्थान का मेला ठहरा। सब भले घरों की बहू-बेटियाँ वहाँ पूजन के लिये आती हैं। ऐसा अनाचार वहाँ कैसे सहा जाय? लोग जमा हो गये। बल्लू को डांट फटकार और

नसीहत करने लगे। बल्लू के मनमें प्रेम का आनन्द समा गया था। वह गाली, लानत और फटकार सुन मुस्कराता रहा। केवल चमेली को उसनें अपनी आँखों से ओट न होने दिया।

"चमेली की माँ और उसकी सहेलियाँ उसे ले शिव पूजन के लिये मन्दिर में गईं। वह बावला भी मन्दिर के भीतर धँसने लगा। प्रेम भगवान के सच्चे पुजारी के लिये ही भगवान के चरणों में स्थान न था! उसे धक्के दे बाहर निकाल दिया गया। वह उठा और फिर भीतर चला। राधे साह ने गाँव के लोगों को पुकारा। बल्लू पर लात, घूँसे और पत्थर पड़ने लगे। उसके माथे का खून ऐड़ी तक बह गया। चमेली को देख पाने के लिये मन्दिर में घुसने के प्रयत्न से वह न हटा।

"मन्दिर के भीतर कोने में खड़ी सहेलियों से घिरी चमेली यह देख रही थी। कहते हैं उस युग में हर के लिये सती ने तपस्या की थी। उसी का बदला हर, बल्लू के रूप में तपस्या कर, दे रहे थे। सती चमेली से न रहा गया। आँसू बहाते हुये अपनी माँ की बगल से आकर उसने कहा—'इतना ही मेरा प्यार है तो नदी में जाकर डूब मर!····· क्यों मेरी जग-हँसाई करा रहा है?'

"ऊपर से गिरती-पड़ती ब्यास जलेश्वर में आती है। जल तीर जैसा तेज़ और बरफ़ जैसा ठण्डा। नदी बड़ी-बड़ी और पेनी चट्टानों से भरी है। नदी की धार चट्टानों से टकराती है तो बाँसों ऊँची फ़ुहारें उठती रहती हैं। नदी का पाट फेन से भरा रहता है। मनुष्य तो क्या; यदि समूचे वृक्ष का कुन्दा भी उसमें गिर जाय तो छिपटी उड़ जाय।

"चमेली की बात सुन बल्लू जैसे क्षण भर को सहम गया, फिर नदी की ओर मुँह कर दौड़ पड़ा। सब लोगों की भौंचक दृष्टि उसी ओर थी कि जैसे हवा में बिजली कौंद गई,बल्लू के कदमों पर चमेली दौड़ती दिखाई दी। उतनी ही तेज़ और उससे भी अधिक उतावली। कोई कुछ समझ या बोल सके, इससे पहले ही वह भी नदी के उमड़ते फेन में कूद पड़ी।

"विस्मय-स्तब्ध बेबस लोगों की पंक्तियी नदी किनारे खड़ी थी पर कोई क्या कर सकता था?

"प्रेम की महिमा···! अगले दिन लोगों ने देखा—यहाँ एक चट्टान पर एक-दूसरे की बाहों में लिपटे, दोनों के शरीर रखे हैं। भक्ति-भाव से उठा लोगों ने उन्हें सद्गति करने के लिये चिता दी। उनकी तो सद्गति पहले ही हो चुकी थी। यहीं उनकी समाधि बनाई गई। अब जलेश्वर के पूजन के साथ इस समाधि की भी पूजा होती है। ब्याह के पश्चात्, द्वार-प्रवेश से पहले, नयी आई बहू के साथ वर 'प्रेमियों की समाधि' की पूजा करता है। लोगों का विश्वास है, इससे उनमें कभी प्रेम-क्षय नहीं होता। जिन घरों में कलह रहती है, वहाँ लोग समाधि की धूल रख लेते हैं। इससे पति-पत्नी की कलह दूर हो जाती है।

"अलौकिक प्रेमियों से सतत प्रेम का वरदान पाने के लिये ही वह पूजा की गई थी।"

सांस रोके मैं सुन रही थी। प्रतिक्षण उनके स्वर से बढ़ता परिचय उनके स्वर के माधुर्य को बढ़ाता जा रहा था, बात समाप्त हो जाने पर हृदय से एक गहरा विश्वास उठा और मेरा सिर प्रेम के माधुर्य की स्मृति और नवीन अनुराग से झुक गया।

उन्होंने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया। माधुर्य की तीव्रता से मैं कण्टकित हो उठी। आर्द्र स्वर में उन्होंने पूछा—"इससे पहले भी कभी तुमने प्रेम किया है ?"

मेरा श्वास रुकने लगा 'अक्षय और सतत प्रेम का वरदान पा, अनुराग का प्रथम घड़ी में ही प्रेमी को धोखा दे जीवन को कैसे विषाक्त करदूँ ?' सिर झुकाय चुप रह गई। आँसू छलक आये और भी तरल अनुरोध से उन्होंने बाँह मेरी पीठ पर रख कर दोहराया —"बोलो !"

होठ काट आँसुओं का घूंट भर उत्तर दिया—"प्रेम करना सीखा था !"

❀ ❀ ❀

कितनी बेर समाधि पर अत्यन्त श्रद्धा से प्रार्थना कर, समाधि की धूल ला घर के कोने-कोने में रख चुकी हूँ……पर उस धूल को उनके हृदय में कैसे रख पाऊँ ?………

अमर

बात का सिलसिला जोड़ने के लिये स्मृति को पच्चीस वर्ष पीछे ले जाना होगा। जान पड़ता है किसी दूसरे की बात हो, या किसी से सुनी हुई कहानी।···समय भी कितना बीत गया है। तब से तो एक नयी पीढ़ी चलती-फिरती नज़र आने लगी है।

कालेज में पढ़ रहा था, जीवन में सफल हो सकने की तैयारी कर रहा था। कौन नहीं जानता कि समाज में आदर और आराम से जीवन बिता सकने के लिये अच्छी जगह पा लेना आसान नहीं है? जगह की कमी जान पड़ती है। दोनों कोहनियों से टेकते हुये, जगह बना कर आगे बढ़े बिना कुछ नहीं हो सकता।

सौंदर्य अपनी ओर खींचता था परन्तु जीवन निर्वाह की आशंका पीछे लगी थी कि जीवन में आर्थिक सफलता की ट्रेन पकड़ कर उसमें पाँव जमा लेना पहले ज़रूरी है। चित्र-कारी में लग जाने से अपना और परिवार का निर्वाह हो जाने लायक पैसा पा जाने की आशा कहाँ थी?···सौंदर्य और कला शौक की चीजें ठहरीं। पहले ज़िन्दगी, तब शौक। वकील बनना ज़रूरी, अर्थात् दूसरे की असुविधा से लाभ उठाने की विद्या सीखना। चित्रकारी का अभ्यास न होने के कारण यत्न करने पर मेरे हाथ से सौंदर्य की बजाय कुरूपता ही बन पड़ती थी। मन के लिये वह कितनी बड़ी ठेस थी।

अल्मोड़ा के एक सहपाठी मित्र से पहाड़ों के सौंदर्य की बातें सुन-सुन कर एक बार दसहरे की छुट्टियों में उसी का मेहमान बन कर अल्मोड़ा आया था। अब फिर यहाँ आकर वह स्मृति ऐसी ताज़ी हो गई है, जैसे कोई पुराना सुरक्षित रखा चित्र मिल गया हो।

अल्मोड़ा के अनेक स्थलों पर घूम-घूम कर वह चित्र देखे जिन्हें मनुष्य की अंगुलियाँ नहीं बना सकतीं, प्रकृति की विराट शक्तियाँ ही उनका आयोजन करती हैं। ऊपर नीलम सा नीला आकाश, सड़क के नीचे घाटियों में भरे बादलों का निस्सीम विस्तार। इन बादलों की पीठ पर तैरते स्तूपों जैसे पहाड़ और उनके ऊपर चाँदी के भग्न पिरामिडों की पंक्तियों जैसे धूप में चमकता बरफ़ की चोटियाँ!···मित्र के साथ बात-चीत करते हुए घूम-फिर कर यह सब दृश्य देख लेने से संतोष नहीं होता था। इसलिये जब-तब चुप-चाप अकेले में इन्हें देखने निकल जाता।

अल्मोड़ा बाज़ार से 'पोखर खाली' और 'हीरडुंगरी' की लम्बी चढ़ाई चढ़ कर, शहर से डेढ़ एक मील पर ही 'नारायण तिवाड़ी देवाल' की बसती है। पहाड़ियों पर ऊपर नीचे साहब लोगों के कुछ बंगले हैं। सड़क के किनारे बाएँ हाथ आठ-दस दुकानों का सिलसिला है। दाएँ हाथ भी शुरू में ही दो एक दुकानें हैं, शेष सड़क से खुला दृश्य है।

दुकानें मैली-मैली बेरौनक हैं! गुड़ और तेल के सौदे पर मक्खियाँ और बर्रें मंडराते रहते हैं। चारों ओर चीड़के ईंधन की कमी नहीं है। चीड़ के ईंधन के धुएँ का आवरण दुकानों की दीवारों और सब सामान पर चढ़ा रहता है। दुकान की सब चीज़ों से काली टीन की एक केतली भट्टी चूल्हे की विरहाग्नि पर सुरसुराती प्रेमी ग्राहक की प्रतीक्षा करती रहती है! ग्राहक के आने पर दुकानदार किसी भी समय पीतल के गिलासों में चाय बना देते हैं।

इन दुकानों के ऊपर ही दूसरी मंजिल में दुकानदारों के परिवार रहते हैं। दूसरी मंज़िलकी ऊँचाई इतनी है। कि बाजार में सड़क पर खड़ा आदमी हाथ बढ़ा कर चीज़ ले सकता है। आते-जाते मुसाफिरों को खिड़कियों से पीतल के बरतन अलगनियों पर लदे कपड़े और चारपाइयों के पाँव दिखाई देते रहते हैं।

अल्मोड़ा बाज़ार में हर चालीस-पचास कदम पर चाय को दुकानें हैं। लेकिन लंबी, करी चढ़ाई चढ़ 'नारायण तिवाड़ी देवाल' पहुँचने हर अगली चढ़ाई शुरू करने से पहले चाय पीने की रुचि होने लगती है। खासकर इसलिये कि चाय पीते समय सामने जंगलों का दृश्य सामने रहा है। कई बार इधर आ चुका था।

छुट्टियों के अन्त में, अल्मोड़ा छोड़ने से पहले, एक दिन सुबह ही उस ओर गया। प्रयोजन था, उससे आगे 'कसार देवी' से दिखाई देने वाली हिमालय की बरफानी चोटियों की दीवार का एक फोटो लेने का 'कोडक' का बक्स-कैमरा हाथ में था। 'नारायण तिवाड़ी देवाल'पहुँच चाय के गिलास से पहली थकावट मिटाने के लिये दाएँ हाथ की पहली दुकान के भीतर जा बैठा।

दुकानदार ने अनगढ़ शाखाओं के पायों पर चीड़ के मोटे तने से बगल की बची फाक जड़ कर ग्राहकों के बैठने के लिये बैंच बना दी है। दुकानदार धूनी पर तपस्या करती केतली के नीचे फूंक मार कर आग को सचेत करने लगा। सांस ले पाने के लिये कुछ प्रतीक्षा कर लेने में मुझे भी आपत्ति नहीं थी।

बैंच पर बैठने से नज़र चौड़े दर्रे के बाहर सड़क के उस पार दुकान की दूसरी मंज़िल की खिड़की पर ही पड़ती थी। खिड़की का आधा निचला भाग तख्ते से पटा था। इस तख्ते के किनारे पर जाँघ रखे, एक भरी जवानी लड़की या एक बच्चे की माँ युवती खिड़की के चौखटे में अटी बैठी थी। वह सड़क से उतरती ढलवानों के परे, कहीं दूर नजर गढ़ाये थी या सुबह की ठण्डक में कुछ क्षण के लिये ताज़ी धूप सेंक रहीं थी।

अल्मोड़ा में नागरिक श्रेणी की स्त्रियाँ घर के बाहर प्रायः नहीं दिखायी देतीं। लड़की बेखबर सी, घर के काम काज में चीड़ के धुएँ से मटियाली धोती में शरीर को लपेटे थी परन्तु उसके स्वस्थ गोरे चेहरे और चौखट को थामे हाथों और बाहों पर न चीड़ के धुएँ की मलीनता और न घर के भीतर मुंदे रहने की कुम्लाहट ही थी। मानो केसर मिला दूध चू

जाना चाहता हो ! उसके चेहरे और शरीर पर फूटती जवानी को संभालने में उसकी मैली धोती के आंचल के तार-तार खिंच रहे थे। तख्ते पर दबी उसकी जांघ जैसे धोती में छिपाई सुडौल लंबी लौकी हो और कमर डमरू जैसी।

धुआँखे हुए मकान की खिड़की में वह चेहरा ऐसे जान पड़ रहा था जैसे सूखी काई से छाये ताल में एक कमल फूट आया हो या जैसे उसी रोज़ सुबह देखा था, धूसल मटियाले बादलों के उफान पर किरणों के स्पर्श से गुलाबीपन लिये कोई बरफ की शिला तैर आयी हो। अन्तर था, कमल या बरफ की उजली शिला में सौंदर्य परखना पड़ता है, उस युवा शरीर से फूटती लहरें देखने वाले शरीर को मथ कर प्राणों को समेटे लेती थीं।

हाथ समीप रखे कैमरे की ओर बढ़ गया। कैमरे को गोद में ले, सिर झुका 'व्यू फाईंडर' में देख साध लिया। एक बार खिड़की की ओर निगाह उठायी; यदि आँखें मिल सकें ? आँखें मिल गयीं जैसे नये तोड़े नारियल की सफेदी में काली तुतलियां ? हाथ ने ठीक समय पर कैमरे का ट्रिगर दबा दिया। शरीर में जैसे बिजली का तार छू गया हो...!

लड़की झमक कर ऐसे अदृश्य हो गयी जैसे खरगोश शिकारी कुत्ते को समीप देख झाड़ी में कूद जाय। वह चली गयी तो क्या ? उस कैमरे रूप का प्रतिबिम्ब तो मेरे कैमरे में सदा के लिये आ गया था। सन्तोष का एक उच्छवास ले कैमरे को एक ओर रख दिया। एक अनमोल रत्न समेट पाने का गर्व था।

चाय का गिलास अभी आधा ही समाप्त कर पाया था कि सामने की दुकान से एक व्यक्ति ने बहुत ऊँचे स्वर में सम्बोधन किया—"यह क्या बदमाशी हो रही है ? देश के गुंडों को हम सीधा कर देते हैं..."

उसकी चिल्लाहट से दो तीन और आदमी आस्तीनें चढ़ाते हुए पास-पड़ोस की दुकानों के सामने आ जमा हुए। सब से पहले ललकारने वाला आदमी चिल्लाने लगा—"ऐसे बदमाश हैं कि घर के भीतर बैठी औरतों की तस्वीरें खींचते हैं ...

उस समय सौंदर्य की उपासना की बात कहने से पिटे बिना नहीं बच सकता था। प्राण बचाने के लिये झूठ का ही सहारा लेना पड़ा। कैमरा उन लोगों की ओर बढ़ा कर कहा—"यहाँ किसकी फोटो लेता ? फोटो नहीं ले रहा था। अभी सिर्फ इसे ठीक कर रहा था। आप लोगों को संदेह है तो किसी फोटोग्राफर को दिखाकर तसल्ली कर सकते हैं।"—उन्हें बात सुनते देख यह भी कह दिया—"भैया कहो तो अभी खोल कर दिखा दूं।

उनमें से एक व्यक्ति जानकार की तरह आगे बढ़ कर बोला—"देखें !"

इस अज्ञान से हैरान हो कर समझाया—"यों क्या दिखाई देगा......? फिल्म खराब हो जायगी !"

अधेड़ आदमी बिगड़ उठा—"है न बदमाश ? अभी कहता था, देख लो ! और अब दिखाता नहीं। हम तस्वीर कभी नहीं ले जाने देंगे !"

लिए हुए चित्र और फिल्म का मोह न कर पिटने से बचने के लिए कैमरा खोल कर वह फिल्म उन लोगों के हाथ में दे दी। फिल्म रोशनी में खोल दी जाने से काले-धुंधले शीशे की सपाट पटिया जैसी दिखायी देने लगी। उन्हें मेरी बात पर विश्वास हो गया।

वह फिल्म वहीं सड़क पर खेलते एक बच्चे को थमा कर उतराई पर ठोकरें खाता अल्मोड़ा की ओर लौट आया, जैसे सफलता के स्थान से धकेल दिया गया व्यक्ति लौटता है। अपने मेहमान मित्र से उस घटना की कोई चर्चा करना उपयुक्त नहीं समझा।

हाथ में आया अनमोल रत्न छिन जाने की याद लिये इलाहाबाद लौटा। बहुत दिनों तक मन पर उस घटना की चोट रही;...यह उस सुन्दरी का गर्व था या सतीत्व की धारणा?...या उसने अपने आकर्षण के प्रभाव में अपना अपमान समझा?

बीच के इतने वर्षों की लम्बी बात से क्या फायदा? भविष्य को सुखमय बनाने के लिये सब सुख और विश्राम त्याग कर कठिन परिश्रम से जीवन को इतना दुखमय बना लिया कि जीवित रह सकने में भी संदेह होने लगा। डाक्टरों ने स्वास्थ्य सुधारने के लिये सब परिश्रम छोड़ कर विश्राम करने और जंगलों और पहाड़ों की स्वच्छ जलवायु में जाकर जीवन की शक्ति को कुछ सहायता देने का परामर्श दिया।

मैं फिर अल्मोड़ा में आकर रहने के लिये ही विवश हो गया। ऐसी अवस्था में आकर अल्मोड़ा के उस भाग में शरण ली है जो शहर से दूर, 'नारायण तिवाड़ी देवाल' के आगे चीड़ों और देवदारों की छाया में अलग-अलग, छोटे-छोटे मकानों के रूप में बसा है, जहाँ रोगी लोग स्वस्थ हो जाने की आशा में लेटे रहते हैं।

जीवन में सुख की खोज के लिये कठोर परिश्रम के परिणाम में दुःसाध्य रोग का दुःख पाकर यह समझ लेना आसान था कि सुख की इच्छा और खोज केवल भ्रम है, संसार में जन्म पा लेने से ही दुःख का यथेष्ट भोग भाग्य में आ जाता है। दुःख और दुःखों की मूल तृष्णा को बढ़ाने से अधिक मूर्खता और क्या होगी? इस परिणाम पर पहुँच कर अल्मोड़ा में आ बैठा हूँ परंतु .....

परन्तु देखता हूँ कि प्रकृति जैसे पच्चीस वर्ष पूर्व छटा दिखाकर मोहित करती थी वैसे ही आज भी कर रही है। आज भी नीचे की घाटी में भरे बादलों के आलोर सागर पर नीलो-काली पहाड़ियाँ सिर पर चाँदी की पिछौरे (चादरें) ओढ़े तैरती दिखाई देती हैं और इन पहाड़ियों को काले कपड़े पहने उज्ज्वलमुखी युवतियों के रूप में देखा जा सकता है। यह दिखाई तो जरूर देता है परंतु इस आत्मप्रवंचना से लाभ?

और, यदि सचमुच ही उज्ज्वलमुखी युवती काले कपड़े पहन कर सामने बैठ मुस्कराती रहे, तो भी क्या? इससे अनुभव होने वाले रोमांच की अनुभूति कितनी देर तक रहेगी? उस में सार क्या? जल्दी ही उसका अंत नहीं हो जायगा? उस सुन्दरी को सराहने वाले भोगी का शरीर, बुढ़ापे से जर्जर होकर, छप्पर के सड़े हुए फूस की तरह विरूप और नष्ट नहीं हो

जायगा ? शरीर और शरीर की अनुभूतियाँ, दोनों का ही अंत निश्चित है। बेसुधी में सुखी हो कर अपने आपको ठगने से लाभ ?

अब मैं बहुत अधिक नहीं चल पाता हूँ, न मुझे चलना ही चाहिये। इसलिये जब मकान से बाहर निकलता हूँ तो अल्मोड़ा तक न जाकर 'नारायण तिवाड़ी देवाल' या उसके समीप बने 'हैलेट टैंक' तक ही जाकर लौट आता हूं। पिछले पचीस बरस में 'नारायण तिवाड़ी देवाल' के अल्मोड़ा वाले छोर पर घने पांगरों की छांव में कुछ और दुकानें बन गयी हैं। चहल-पहल बढ़ गयी है। चाय की वह दुकान अब नये सिरे से बन गई है और बूढ़े की जगह एक नौजवान उस पर बैठने लगा है! इसके सामने की दुकान की दूसरी मंज़िल पर बनी खिड़की को कैसे न पहचानता ? यह लोग मुझे नहीं पहचानते, यह अच्छा ही है।

अपनी उस मूर्खता को अच्छी तरह समझ लेने के लिये मैं फिर उसी दुकान पर, उसी जगह बैठ कर कई बार चाय पी चुका हूँ और उस खिड़की की ओर देखा है। खेलते और रोते हुए बच्चे उस खिड़की से दिखाई देते हैं। एक शिथिल शरीर बुढ़िया को भी देखता हूँ जो अपने शरीर की चिन्ता नहीं करती। उसकी कनपटियों से ओठों तक पड़ गई झुर्रियों ने उसके गालों में गढ़े डाल कर चेहरे को ऊंची नाक के दोनों ओर खींच लिया है। कभी वह किसी काम से थकी सी नीचे दुकान के दरे की दहलीज़ पर ही आ बैठती है। मेरा विश्वास है कि यह वही है, एक दिन जिसको छवि की स्मृति साथ ले जाने के लिये मैंने मार खाने की आशंका सिर ली थी। आज यह चौंक कर अपने आप को नहीं छिपाती। कोई देखना चाहे तो वह छिपाने की भी बात सोचे ! इसका आकर्षण सचमुच भ्रम ही तो था।

'नारायण तिवाड़ी देवाल' से लौट कर मन सौंदर्य के आकर्षण और सुख के पीछे भागने की निस्सारता समझ पाने के बोझ से बहुत निरुत्साह हो रहा था। पलंग पर लेट गया सदा शुद्ध वायु की पहुँच में रहने के लिये खिड़की के सामने लेटता हूँ और नज़र खिड़की से बाहर स्वेच्छा से उगी 'कोसमोस' 'ब्लेड्स' और कई सफेद फूलों की झाड़ियों और उन पर लिपट गई 'मार्निंग ग्लोरी' के नीले फूलों की बेलों पर पड़ती रहती है। इनके आगे दिखाई देती है, नीचे उतरती हुई घाटी के पार दूर नीली-काली पहाड़ियों की एक के आगे दूसरी फैलती जाती रेखाएँ और उनके ऊपर झांकती बर्फ़ानी चोटीयाँ।

फूलों की इन झाड़ियों पर तितलियाँ उजलत और बेसुधी में उसी प्रकार मँडरा रही हैं, जैसे मेले के दिनों में हरिद्वार के स्टेशन पर रंगबिरंगी भीड़ गाड़ी में जगह पाने के लिये बेचैन होती है।

पचीस बरस पहिले भी ऐसी ही तितलियों को फूलों पर ऐसे ही मँडराते देखा था और तब भी हिमालय की उन चोटियों पर वह बरफ़ नीले आकाश को भेद कर अभिमान से ऐसे ही सिर उठाये थी। यह क्या वे ही फूल हैं?...वही तितलियाँ हैं... और क्या वही बरफ़ है?...

फूल और तितली का जीवन कितने दिन का ?·· सूर्य की किरणों के स्पर्श से विव्हल होकर बहे जाने वाली बरफ की स्थिरता कितने समय की ? फूल तितलियाँ और बरफ अपने-अपने सौंदय का प्रयोजन पूरा करके चले जाते हैं। ·चले कहाँ जाते हैं ? वे तो कहीं चले नहीं गये। सामने मौजूद हैं... वे तो अमर हैं। इस सृष्टि और संसार को क्षणभंगुर बताने वाले मनुष्य व्यक्ति की तुलना में तो वे अनादि और अनंत है। उनका सौन्दर्य अमर है। मनुष्य ने उनकी परम्परा का अभाव कब देखा है ? बाल्मीकि और कालिदास के समय में भी यह सौंदर्य ऐसा ही था और आज भी है।

और, समीप के सोते से बहने वाली नाली का यह कल-कल शब्द क्या कहता है ? कितने सौ वर्षों से यह नाली बह रही है ? इस नाली या किसी भी नदीं में बहने वाले जल के कणों में कितनी स्थिरता और अमरता है ? इन कणों का प्रवाह ही तो अमर है,कोई कण अमर नहीं। यदि जल के कण ठहर कर अपनी अस्थिरता और क्षण-भंगुरता की बात सोचने लगें ?

जल के इस प्रवाह में जल के प्रत्येक कण का अपने आगे और पीछे के कणों से संबंध ही उस कण का जन्म और मृत्यु है। जल के कणों का अपने आगे और पीछे के कणों से यह सम्बन्ध ही प्रवाह में उसके स्थान को निश्चित किये है। वैसे ही क्या मनुष्य व्यक्ति की भी स्थिति नहीं ?···मनुष्य समाज में वह कौन कातर और मूर्ख था जिसने मनुष्यों के प्रवाह की अमरता के विषय में शंका पैदा कर 'मनुष्य व्यक्ति' को कातर और अनुत्साही बना दिया ? 'मनुष्य' को यों ठगने का प्रयोजय क्या है ? उसे जीवन के उत्साह से विमुख करने का प्रयोजन क्या है ? ..बेचैनी के कारण लेटा न रह सका। उठ कर पलंग से पाँव लटकाये बैठ गया।

इस मकान में आ कर ठहरने के समय मुझ से पहले रह जाने वाले रोगी के रोग से बचे हुए कीटाणुओं को समाप्त कर देने के लिये नये सिरे से चूना-कलई करवा ली थी कमरे के दायीं ओर की दीवार में अंगीठी के ऊपर एक तस्वीर किसी अंग्रेजी पत्रिका से फाड़ी हुई, बिना फ्रेम और कांच के ही महीन कीलों से दीवार में जड़ी हुई है। मकान में कलई करवाते समय इस तस्वीर को उतार कर फेंक देना स्वाभाविक था परन्तु...तस्वीर में चाय के बागीचे की झाड़ियों से पत्ती चुनती उस युवती ने झाड़ी से आँख उठा, मुस्करा कर मेरी ओर देखा। मैं रोग और कीटाणुओं के भय को भूल गया।

उस तस्वीर को वहीं रहने दिया। इस चित्र में इतना सामर्थ्य है कि इस चित्र के रहने से कमरे में अकेलेपन का भय अनुभव नहीं होता। अब फिर उसी चित्र की ओर देख रहा हूँ। वह युवती सीने से जीवन के उत्साह का उच्छ्वास भर मुस्कराती आँखों और स्पन्दित ओठों से एक ही बात कह रही है ....."जियो" !

मैंने कभी नहीं सोचा यह तस्वीर कितनी पुरानी है ? यह युवती कहाँ है ? हो सकता है, दार्जीलिंग के किसी चाय के बगीचे में अभी पत्ती तोड़ रही हो। हो सकती है, उस के यौवन और रूप ने मानवता के प्रवाह में अपने स्थान पर प्रवाह को अमर बनाये रखने का काम पूर्ण

शक्ति से पूरा कर दिया हो। यह भी हो सकता है कि आज उसके गालों का मांस झुर्रियों के रूप में नाक के दोनों ओर सिमिट आया हो! परन्तु उसका सौन्दर्य अमर हो कर मुझ से पहले इस मकान में टिके रोगी को और आज मुझे, और जाने संसार के किस-किस भाग में कहाँ-कहाँ जीवन प्रेरणा देता है और दे रहा है। वह आज भी धूप में चमकने वाली हिमालय की चोटी की तरह अमर है.....!

और यदि उस दिन खिड़की की चौखट में अटे उस रूप और यौवन का चित्र ले पाता तो आज उस विरूप हो गये शरीर की कितनी बड़ी देन 'मनुष्य' के लिये रह जाती ? मनुष्य के सामर्थ्य और उसके सौन्दर्य की अमरता के प्रति संदेह पैदा करके उसे निरुत्साहित करने वालों को, उसे ठगने वालों को कब तक क्षमा किया जाता रहेगा ?